बी.एड., द्वितीय वर्ष

स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा और योग

(HEALTH, PHYSICAL EDUCATION AND YOGA)

GEDE-20

मध्यप्रदेश भोज (मुक्त) विश्वविद्यालय – भोपाल

MADHYA PRADESH BHOJ (OPEN) UNIVERSITY - BHOPAL

Reviewer Committee

1. Dr. Vandna Chaturvedi
   Assistant Professor
   RKDF University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Mamta Bakliwal
   Professor
   Rajiv Gandhi College, Bhopal (M.P.)

Advisory Committee

1. Dr. Jayant Sonwalkar
   Hon'ble Vice Chancellor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

2. Dr. L.S. Solanki
   Registrar
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

3. Dr. Jyoti S. Parashar
   Assistant Professor
   Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal (M.P.)

4. Dr. Vandna Chaturvedi
   Assistant Professor
   RKDF University, Bhopal (M.P.)

5. Dr. Chitra Sharma
   Principal
   Ever Green Education Society, Bhopal (M.P.)

6. Dr. Mamta Bakliwal
   Professor
   Rajiv Gandhi College, Bhopal (M.P.)

COURSE WRITERS

Dr. Ajit Kumar, Assistant Professor, Amity School of Physical Education and Sports Sciences, Amity University, Noida
Unit: (1.0-1.1, 1.4.2, 1.6-1.10, 2, 3.0-3.2.6, 3.2.7, 3.2.8-3.2.9, 3.3-3.3.4, 3.4-3.8)

Dr. Jagwanti, Yoga Professor, Maharishi Dayanand University, Rohtak
Units: (1.2-1.3.2, 1.4-1.4.1)

Dr M S Deswal, Director, The Yoga Education, Haryana
Unit: (1.3.3)

Dr.Ruchika Mehndiratta, MD, MBBS, Dermatologist, Ghaziabad
Unit: (1.5-1.5.2)

Dr Meenu Agrawal, Principal, Ginni devi Girls PG College, Modinagar (UP)
Dr Rakhi Mittal, Associate Professor, Ginni Devi Girls PG College, Modinagar (UP)
Unit: (1.5.3)

Copyright © Reserved, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafter invented, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Registrar, Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal.

Information contained in this book has been published by VIKAS® Publishing House Pvt. Ltd. and has been obtained by its Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, the Madhya Pradesh Bhoj (Open) University, Bhopal, Publisher and its Authors shall in no event be liable for any errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically disclaim any implied warranties or merchantability or fitness for any particular use.

Published by Registrar, MP Bhoj (Open) University, Bhopal in 2020

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

VIKAS® PUBLISHING HOUSE PVT. LTD.
E-28, Sector-8, Noida - 201301 (UP)
Phone: 0120-4078900 • Fax: 0120-4078999
Regd. Office: A-27, 2nd Floor, Mohan Co-operative Industrial Estate, New Delhi 1100 44
• Website: www.vikaspublishing.com • Email: helpline@vikaspublishing.com

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा और योग

Syllabi	Mapping in Book
इकाई–1 स्वास्थ्य और रोग की अवधारणा– अर्थ एवं परिभाषा, लक्ष्य और उद्देश्य; सर्वांगीण (समग्र) स्वास्थ्य की अवधारणा– यौगिक साहित्य में समग्र स्वास्थ्य, पतंजलि योग–सूत्र, हठयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग; आत्म नियंत्रण एवं ध्यान– पतंजलि का अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि), नैतिक मूल्य और व्यक्तित्व विकास; संचारी–असंचारी रोग– संचारी–असंचारी रोग : कारक, संचरण, प्रभाव एवं चुनौतियां, संचारी–असंचारी रोगों की रोकथाम, योगाभ्यास तथा इसका आधुनिक जीवन शैली पर प्रभाव	**इकाई 1** : स्वास्थ्य और योग **(पृष्ठ 3–158)**
इकाई–2 मानव शरीर : वृद्धि और विकास– शारीरिक शिक्षा : लक्ष्य और उद्देश्य, मानव शरीर : वृद्धि और विकास; शारीरिक गतिविधियों के अनुसार खान–पान– आहार : भूमिका एवं महत्ता, संतुलित आहार और स्वास्थ्य, कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन, खनिज आदि घटक; क्रीड़ा और खेल के आधारभूत कौशल– नियम, विनियम एवं नैतिकता– क्रीड़ा और खेल (गेम्स एंड स्पोर्ट्स) के आधारभूत कौशल, खेल में नियम, विनियम तथा नैतिकता; शारीरिक स्वस्थता, शारीरिक मुद्रा और लचीलापन, खेलों में शक्ति और स्ट्रेचिंग व्यायामों का महत्व– शारीरिक मुद्राएं और लचीलापन, खेलों में शक्ति और स्ट्रेचिंग व्यायामों का महत्व	**इकाई 2** : शारीरिक शिक्षा **(पृष्ठ 159–212)**
इकाई–3 योगाभ्यास– ध्यान, ताड़ासन, वृक्षासन, अर्धचक्रासन, पद्मासन, वक्रासन, वज्रासन, हलासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पवनमुक्तासन, भुजंगासन, धनुरासन, शलभासन, ब्रह्म मुद्रा, योग मुद्रा, अनुलोम–विलोम, उज्जायी, भस्त्रिका एवं भ्रामरी प्राणायाम, मकरासन, शवासन, योग साधना का महत्व; शारीरिक शिक्षा का अभ्यास– लचीलापन, सहनशक्ति और गति में वृद्धि हेतु व्यायाम, ट्रैक और फील्ड की मूलभूत बातें : 100 मीटर, 200 मीटर, लांग जंप, ब्रॉड जंप, राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तरीय दो खेलों का अध्ययन : कबड्डी, खो–खो, बॉस्केटबॉल, क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, वालीबॉल, विद्यालयों अथवा समुदाय में स्वास्थ्य संदर्भित परियोजनाएं	**इकाई 3** : अभ्यास और क्रियाकलाप **(पृष्ठ 213–342)**

विषय–सूची

परिचय **1–2**

इकाई 1 स्वास्थ्य और योग **3–158**

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 स्वास्थ्य और रोग की अवधारणा
 1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
 1.2.2 लक्ष्य और उद्देश्य
1.3 सर्वांगीण (समग्र) स्वास्थ्य की अवधारणा
 1.3.1 यौगिक साहित्य में समग्र स्वास्थ्य
 1.3.2 पतंजलि योग–सूत्र
 1.3.3 हठयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग
1.4 आत्म नियंत्रण एवं ध्यान
 1.4.1 पतंजलि का अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि)
 1.4.2 नैतिक मूल्य और व्यक्तित्व विकास
1.5 संचारी–असंचारी रोग
 1.5.1 संचारी–असंचारी रोग : कारक, संचरण, प्रभाव एवं चुनौतियां
 1.5.2 संचारी–असंचारी रोगों की रोकथाम
 1.5.3 योगाभ्यास तथा इसका आधुनिक जीवन शैली पर प्रभाव
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 2 शारीरिक शिक्षा **159–212**

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 मानव शरीर : वृद्धि और विकास
 2.2.1 शारीरिक शिक्षा : लक्ष्य और उद्देश्य
 2.2.2 मानव शरीर : वृद्धि और विकास
2.3 शारीरिक गतिविधियों के अनुसार खान–पान
 2.3.1 आहार : भूमिका एवं महत्ता
 2.3.2 संतुलित आहार और स्वास्थ्य
 2.3.3 कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन, खनिज आदि घटक
2.4 क्रीड़ा और खेल के आधारभूत कौशल– नियम, विनियम एवं नैतिकता
 2.4.1 क्रीड़ा और खेल (गेम्स एंड स्पोर्ट्स) के आधारभूत कौशल
 2.4.2 खेल में नियम, विनियम तथा नैतिकता
2.5 शारीरिक स्वस्थता, शारीरिक मुद्रा और लचीलापन, खेलों में शक्ति और स्ट्रेचिंग व्यायामों का महत्व
 2.5.1 शारीरिक मुद्राएं और लचीलापन
 2.5.2 खेलों में शक्ति और स्ट्रेचिंग व्यायामों का महत्व
2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

इकाई 3 अभ्यास और क्रियाकलाप **213–342**

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 योगाभ्यास
3.2.1 ध्यान
3.2.2 ताड़ासन, वृक्षासन, अर्धचक्रासन
3.2.3 पद्मासन, वक्रासन, वज्रासन
3.2.4 हलासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पवनमुक्तासन
3.2.5 भुजंगासन, धनुरासन, शलभासन
3.2.6 ब्रह्म मुद्रा, योग मुद्रा
3.2.7 अनुलोम–विलोम, उज्जायी, भस्त्रिका एवं भ्रामरी प्राणायाम
3.2.8 मकरासन, शवासन
3.2.9 योग साधना का महत्व
3.3 शारीरिक शिक्षा का अभ्यास
3.3.1 लचीलापन, सहनशक्ति और गति में वृद्धि हेतु व्यायाम
3.3.2 ट्रैक और फील्ड की मूलभूत बातें : 100 मीटर, 200 मीटर, लांग जंप, ब्रॉड जंप
3.3.3 राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तरीय दो खेलों का अध्ययन : कबड्डी, खो–खो, बॉस्केटबॉल, क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, वालीबॉल
3.3.4 विद्यालयों अथवा समुदाय में स्वास्थ्य संदर्भित परियोजनाएं
3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा और योग' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित (बी. एड. द्वितीय वर्ष) पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। व्यक्ति का स्वास्थ्य अमूल्य निधि के समान है। एक स्वस्थ व्यक्ति ही जीवन का आनंद सच्चे अर्थों में ले सकता है। हमारे शरीर का निर्माण प्राकृतिक तत्वों से हुआ है। प्रकृति के अनुकूल दिनचर्या अपनाकर और रोगोपचार में योग की सहायता लेकर हम स्वस्थ और सानंद रह सकते हैं। योग एक प्राकृतिक विज्ञान है, जिसके माध्यम से शरीर को स्वस्थ एवं सक्रिय रखा जा सकता है। आयुर्वेद में निर्दिष्ट सद्वृत्त एवं स्वास्थ्य के नियमों के परिपालन से शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के सभी चार पक्षों की पूर्णतया रक्षा की जा सकती है। योग में उपदिष्ट यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि जहां स्वास्थ्य के शारीरिक पक्ष के रक्षक हैं, वहीं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि स्वास्थ्य के मानसिक पक्ष को उदात्त बनाते हैं। इस पुस्तक में योग और स्वास्थ्य के आपसी संबंधों का विस्तार से विवेचन किया गया है।

छात्रों की सुविधा के लिए पुस्तक की प्रत्येक इकाई के आरंभ में उससे संबंधित विषय का परिचय और उद्देश्य स्पष्ट कर दिए गए हैं। विद्यार्थियों के स्व–मूल्यांकन के लिए प्रत्येक इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' स्तंभ के अंतर्गत वैकल्पिक प्रश्न भी दिए गए हैं।

अध्ययन की सुविधा के लिए समूचे पाठ्यक्रम को तीन इकाइयों में समायोजित किया गया है। इन इकाइयों का विवरण इस प्रकार है–

पहली इकाई 'स्वास्थ्य और योग' विषयगत आधारभूत तथ्यों पर आधारित है। इसमें स्वास्थ्य और रोग की अवधारणा, सर्वांगीण स्वास्थ्य की संकल्पना, आत्म नियंत्रण एवं ध्यान से संबंधित अहम पक्षों का विश्लेषण किया गया है।

दूसरी इकाई 'शारीरिक शिक्षा' से हमारा परिचय कराती है। इसमें मानव शरीर, वृद्धि और विकास, शारीरिक गतिविधियों के अनुरूप खान–पान, गेम और स्पोर्ट्स : क्रीड़ा एवं खेल के आधारभूत कौशल की विवेचना करते हुए शारीरिक स्वास्थ्य (फिटनेस) से संबंधित जानकारी दी गई है।

तीसरी इकाई योगाभ्यास एवं तत्संदर्भित क्रियाकलापों पर आधारित है। इसमें ध्यान, विविध आसन, प्राणायाम को विश्लेषित किया गया है। ट्रैक एंड फील्ड, राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय खेल, संचारी–असंचारी रोग आदि विषयों पर सामग्री भी इस इकाई में दी गई है।

प्रस्तुत पुस्तक में स्वास्थ्य, शारीरिक शिक्षा और योग विषय को सरल भाषा में रुचिकर बनाकर लिखा गया है, जिससे विद्यार्थी योग और स्वास्थ्य के महत्व को समझने में सक्षम हो सकें। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों को योग और स्वास्थ्य के महत्व को समझाने में उपयोगी सिद्ध होगी।

इकाई 1 स्वास्थ्य और योग

टिप्पणी

संरचना

1.0 परिचय
1.1 उद्देश्य
1.2 स्वास्थ्य और रोग की अवधारणा
 1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा
 1.2.2 लक्ष्य और उद्देश्य
1.3 सर्वांगीण (समग्र) स्वास्थ्य की अवधारणा
 1.3.1 यौगिक साहित्य में समग्र स्वास्थ्य
 1.3.2 पतंजलि योग–सूत्र
 1.3.3 हठयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग
1.4 आत्म नियंत्रण एवं ध्यान
 1.4.1 पतंजलि का अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि)
 1.4.2 नैतिक मूल्य और व्यक्तित्व विकास
1.5 संचारी–असंचारी रोग
 1.5.1 संचारी–असंचारी रोग : कारक, संचरण, प्रभाव एवं चुनौतियां
 1.5.2 संचारी–असंचारी रोगों की रोकथाम
 1.5.3 योगाभ्यास तथा इसका आधुनिक जीवन शैली पर प्रभाव
1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
1.7 सारांश
1.8 मुख्य शब्दावली
1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1.0 परिचय

स्वास्थ्य के अनुपालन से ही मानव–जीवन के शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक एवं सामाजिक पक्षों का अभ्युत्थान होता है जिससे मनुष्य ऐहिक एवं पारलौकिक कर्तव्यों का पालन करते हुए समस्त सुखों को प्राप्त करता है। इसलिए चरक संहिता में यह वर्णित है कि संसार में सब कुछ त्याग कर तन एवं मन की सुरक्षा करनी चाहिए, क्योंकि शरीर ही समस्त प्रकार के सुख–दुःख के भोगों का भागी है। जिस भांति नगर की रक्षा उस नगर का अधिपति करता है एवं रथ की देखभाल में सारथी तत्पर रहता है, उसी भांति विवेकी व्यक्ति को अपने तन एवं मन की सुरक्षा में तत्पर रहना चाहिए।

आयुर्वेद में निर्दिष्ट सद्वृत्त एवं स्वास्थ्य के समुचित परिपालन से मनुष्य शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक स्वास्थ्य के सभी चार पक्षों की पूर्णतया रक्षा करने में समर्थ हो सकता है। योग में उपदिष्ट यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि जहां स्वास्थ्य के शारीरिक पक्ष के रक्षक हैं, वहीं प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि स्वास्थ्य के मानसिक पक्ष को उदात्त बनाते हैं।

अपनी पूर्णायु तक स्वस्थ जीवन जीने के लिए आहार, निद्रा एवं ब्रह्मचर्य के नियमों का अनुपालन भी अनिवार्य है। यदि इनका समुचित परिपालन नहीं हो पाता है

तो शरीर व्याधिग्रस्त हो जाता है। इस प्रकार, हम यह कह सकते हैं कि सद्‌वृत्त, स्वस्थ जीवन एवं आहार स्वास्थ्य निर्भरता के प्रमुख तत्व हैं।

टिप्पणी

इस इकाई में हम स्वास्थ्य और रोग की अवधारणा, सर्वांगीण स्वास्थ्य की अवधारणा, आत्म नियंत्रण और ध्यान की विवेचना करते हुए संचारी तथा असंचारी रोगों के बारे में जानेंगे।

1.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- स्वास्थ्य, रोग और सर्वांगीण स्वास्थ्य की अवधारणा समझ पाएंगे;
- आत्मनियंत्रण एवं ध्यान से अवगत हो पाएंगे;
- संचारी तथा असंचारी रोगों की जानकारी प्राप्त कर पाएंगे।

1.2 स्वास्थ्य और रोग की अवधारणा

स्वास्थ्य को जानने से पहले स्वास्थ्य क्या है– यह जानना आवश्यक है। आत्मपरक सार्वनामिक विशेषण 'स्व' के साथ 'स्था' धातु एव 'क्त' प्रत्यय के योग से 'स्वस्थ' शब्द निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है – स्वस्मिन् तिष्ठति अर्थात स्वयं में स्थित हो। इसी स्वस्थ शब्द में स्व + स्था + कः प्रत्यय के संयोग से 'स्वास्थ्य' शब्द की निष्पत्ति होती है, जिसका अर्थ है 'स्वयं में स्थित होने की अवस्था'। यह स्वास्थ्य का शाब्दिक अर्थ है।

सुश्रुत संहिता में स्वस्थ पुरुष के लक्षण बताए गए है–

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियाः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।।

अर्थात जिसके त्रिदोष (वात, पित्त एवं कफ) सामान्य अथवा विकार रहित हों, जठराग्नि (पाचन शक्ति) सामान्य हो, सातों धातुएं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य) विकार रहित हों। तीनों मल (स्वेद, पुरीष एवं मूत्र) सामान्य हों तथा जिसकी आत्मा, इंद्रिय एवं मन प्रसन्न हो, वही स्वस्थ कहलाता है। इस प्रकार न केवल रोगों की अनुपस्थिति को बल्कि व्यक्ति की पूर्णतया सम्यक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक अवस्था को स्वास्थ्य कहते हैं। स्वास्थ्य ठीक होने पर ही संसार की प्रत्येक वस्तु रुचिकर लगती है और मन प्रसन्न रहता है। इस इकाई में स्वास्थ्य के प्रमुख घटकों एवं महत्व को परिभाषित किया जा रहा है।

1.2.1 अर्थ एवं परिभाषा

स्वस्थवृत्त में स्वास्थ्य की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–

उत्थायोत्याय सततं स्वस्थेनारोग्यमिच्छता।
धीमता यदनुष्ठेयं तदस्मिन् संप्रवक्ष्यते।। (स्व. वृ. समु.)

अर्थात आरोग्य की कामना करने वाले स्वस्थ एवं बुद्धिमान व्यक्ति को प्रातः उठकर जिस चर्या का पालन करना चाहिए, वही स्वास्थ्य कहलाता है।

टिप्पणी

मनुष्य की सर्वतोभावेन सुखावहा अवस्था का आधार स्वास्थ्य ही है। स्वास्थ्य का परिपालन करते हुए ही मानव जीवन के मौलिक उद्देश्यों–पुरुषार्थ चतुष्टय (धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष) तथा त्रयैषणाओं (प्राणैषणा, धनैषणा एवं लोकैषणा) को प्राप्त किया जा सकता है। आयुर्वेद का भी मूल उद्देश्य यही है–

धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्। (चरक संहिता)

अर्थात स्वास्थ्य सर्वदा एवं सर्वथा वांछनीय है। अतएव, स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा जिस प्रकार से हो सकती है, वैद्य को उसी प्रकार का यत्न करना चाहिए। साथ ही, आयुर्वेद में परिभाषित स्वास्थ्य का भी यत्नपूर्वक पालन करना चाहिए।

आचार्य शार्गंधर ने कहा है कि इस पृथ्वी पर कोई भी जीवधारी अमर होकर जन्म नहीं लेता। मृत्यु तो अनिवार्य है किंतु रोगों का निवारण संभव है।

अतएव जीवधारियों, विशेषतः मनुष्यों को आयुर्वेद में वर्णित स्वस्थ–दिनचर्या, रात्रिचर्या एवं ऋतुचर्या का सदैव पालन करना चाहिए–

दिनचर्या निशाचर्यामृतुचर्या यथोदिताम्।

आचरन्पुरुष स्वस्थः सदा तिष्ठति नान्यथा। (भा.प्र.)

मानव जीवन में स्वास्थ्य का महत्व

महर्षि चरक ने कहा है –

प्रयोजनं चास्य स्वस्थ स्वास्थ्य आतुरस्य विकारप्रशमनं च।

अर्थात स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य का परिरक्षण एवं रोगातुरों के विकार (रोग) का प्रशमन ही आयुर्वेद का मुख्य प्रयोजन है। स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा उसके आचरण से ही संभव है।

स्वास्थ्य अथवा आरोग्य सर्वदा अभीष्ट है, क्योंकि यही पुरुषार्थ चतुष्टय एवं त्रयैषणा की प्राप्ति का साधन है।

आचार्य वाग्भट्ट ने भी कहा है–

आयुः कामयमाननेन धर्मार्थसुखसाधनम्।

आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः।।

धर्म, अर्थ, काम, मोक्षादि को सुखपूर्वक प्राप्त करने का साधन आयु अथवा आरोग्य ही है। इस आरोग्य की प्राप्ति हेतु आयुर्वेद के उपदेशों (स्वास्थ्य के आचरण) का सम्यक पालन करना मनुष्य का पुनीत कर्तव्य है।

रोग के सामान्य कारण

स्वास्थ्य हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है और इस अधिकार को पाने के लिए किसी अस्पताल या औषधि का सहारा लेने की आवश्यकता नहीं, बल्कि स्वस्थ रहना पूरी तरह हमारे अपने हाथ में है। जैसा कि हम जानते हैं कि शरीर की रचना एक राज्य की शासन प्रणाली के समान है। शरीर में भी अलग–अलग विभाग काम करते हैं। उनमें एक विभाग सुरक्षा मंत्रालय का भी है। जिस प्रकार देश की सुरक्षा का दायित्व सुरक्षा मंत्रालय पर होता है, इसके लिए सेना के तीनों अंगों को शक्तिशाली बनाने के लिए उपकरण, हथियारों तथा संचार प्रणाली की व्यवस्था की जाती है। जैसे ही देश पर किसी दुश्मन का हमला होता है, तो देश की पूरी व्यवस्था और सुरक्षा विभाग हरकत में आ

टिप्पणी

जाता है और दुश्मन को खदेड़ने का प्रयत्न पूरी शक्ति से किया जाता है, वैसे ही हमारे शरीर में भी रोग रूपी दुश्मन से लड़ने के लिए आधुनिक से आधुनिकतम व्यवस्था है। जैसे ही शरीर पर रोग का हमला होता है, शरीर के श्वेत रक्त कणों में एक रासायनिक क्रिया होने लगती है जिससे कि रोग के बढ़ते प्रभाव को समाप्त किया जा सके। उस समय पूरी शक्ति रोग को शरीर से बाहर फेंकने में लग जाती है।

जैसे बुखार होता है, शरीर का तापमान बढ़ जाता है, हृदय तेजी से रक्त फेंकने लग जाता है। उसकी गति बढ़ जाती है, शरीर सुस्त हो जाता है, भूख खत्म हो जाती है, रेडियो–टीवी आदि कुछ भी अच्छा नहीं लगता। शरीर आराम चाहता है। यह सब कुछ इसलिए होता है क्योंकि शरीर का पूरा तंत्र रोग को शरीर से बाहर फेंकने में लग जाता है। यदि हम शरीर की इच्छा के अनुसार उसे सहयोग दें, शरीर को आराम दें, कुछ खायें नहीं, उपवास कर लें, गर्मी को शांत करने के लिए केवल पानी या नींबू पानी लेते रहें, मन को शांत रखते हुए शरीर को शिथिल कर दें, तो स्वतः ही एक–दो दिन में बुखार चला जाएगा।

शरीर में रोग होने के कई कारण माने जाते हैं। आधुनिक स्वास्थ्य विज्ञान, रोग का कारण भिन्न–भिन्न कीटाणुओं को मानता है। रोग का दूसरा बड़ा कारण इस आधुनिक युग में मानसिक तनाव भी है। शरीर के अंदर के अंगों का पूरा नियंत्रण नाड़ी–संस्थान द्वारा मस्तिष्क से होता है, जैसे– आपके हृदय का धड़कना, पाचन रसों का बनना, ग्रंथियों का रासायनिक कार्य करना, श्वास–प्रश्वास यंत्र का कार्य करना, त्वचा तथा गुर्दों का रक्त शुद्धि करना आदि। मानसिक तनाव के कारण शरीर के ये सभी कार्य अपनी पूरी सूक्ष्मता से नहीं हो पाते जिससे शरीर का विकार शरीर में ही रह जाता है और शरीर रोगी हो जाता है।

रोग का एक कारण गलत आहार–विहार भी है। शरीर को शक्ति देना, शुद्ध रक्त का निर्माण करना, अंगों को पुष्ट व स्वस्थ रखना, यह हमारे आहार पर ही निर्भर करता है। गलत आहार, दोषपूर्ण मिश्रणों, असंतुलित आहार, अधिक कार्बोजयुक्त आहार खाने, समय–असमय खाने या हर समय खाते ही रहने आदि से शरीर में रोग जड़ पकड़ लेता है।

दवाई भी तभी काम करती है जब अंदर का शरीर सक्रिय हो, जैसे हृदय ठीक काम करे, रक्त का संचार सारे शरीर में ठीक प्रकार से हो, फेफड़े वायु को शुद्ध करके सारे शरीर में भेजें, पाचन तंत्र ठीक तरह काम करे, शरीर की समस्त ग्रंथियां अपना काम ठीक कर शरीर का संतुलन बनाए रखें, नाड़ी तंत्र सुचारु रूप से पूरे शरीर का नियंत्रण करे। यदि औषधि ही आपको स्वास्थ्य देने वाली होती तो आज जिस तरह विज्ञान ने उन्नति की है, औषधियों का आविष्कार हुआ है, रोगों के उपचार के लिए नए ढंग निकल आए हैं, इस अवस्था में मानव को बीमार होना ही नहीं चाहिए। किंतु रोग बढ़ रहे हैं, नए–नए नामों से सामने आ रहे हैं और मानव दुःखी से और दुःखी हो रहा है। इसके पीछे औषधि का अधिक उपयोग और हमारा दवाइयों पर अधिक विश्वास बहुत बड़ा कारण है।

आज के विज्ञान और उपचार संबंधी उपकरणों का बहुत अधिक और सुचारु रूप से लाभ उठाया जा सकता है, यदि हम थोड़ा सा समय अपने शरीर के लिए दें, थोड़ा अपने अंदर जाएं, शरीर के अंदर की आवाज को सुनें, अंतर्मुखी हों और थोड़ा शरीर को सहयोग दें तो हमें अपने को तथा दूसरों को स्वस्थ रखने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। योग मानव को शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ रखने में पूरी तरह सक्षम है।

टिप्पणी

आजकल योग को चिकित्सा (योग थैरेपी) का नाम दिया जा रहा है और उसका प्रचार किया जा रहा है और आज हम योग को इसी रूप में मानकर चल रहे हैं कि कौन–से आसन और क्रिया किस रोग में लाभदायक हो सकती है। वास्तव में योगासनों की रचना रोगों के उपचार के लिए नहीं हुई थी। योग तो परमात्मा से मिलने और आनंद प्राप्ति का साधन मात्र था। योगासनों से शरीर निरोग होता है, यह सनातन सत्य है, क्योंकि निरोग रहना शरीर का स्वभाव है।

आज भी विज्ञान यह नहीं जान पाया कि शरीर में अचानक परिवर्तन क्यों होते हैं, जैसे– अचानक दस्त लग जाना, वमन होने लगना, नाक बहने लग जाना, खांसी शुरू हो जाना, खारिश होने लगना, हाथ–पांव का फट जाना, त्वचा में खुश्की आ जाना, रोग का कैंसर जैसा बन जाना आदि। इस समय डॉक्टर के पास यही उत्तर है कि रोग या तो छूत से होता है, एलर्जी से होता है, कीटाणु से होता है, वायरस से या मच्छर से फैलता है।

यदि यह कारण ठीक है तो इसका प्रभाव सभी पर होना चाहिए, कुछ पर क्यों होता है? इससे यह स्पष्ट होता है कि शरीर की रोग नाशक शक्ति के कम हो जाने तथा स्नायुमंडल के कमजोर हो जाने से कीटाणु हमला करते हैं या छूत लगती है और दवाइयों के अधिक उपयोग से स्नायुमंडल और अधिक कमजोर हो जाता है। इससे यह सिद्ध होता है कि वास्तविक ध्यान स्नायुमंडल को सबल बनाने का है, जिससे शरीर के अंदर के अंग पुष्ट रहें और रोगों की प्रतिरक्षात्मक शक्ति पूरी तरह काम करती रहे। इसके लिए योगासनों का प्रतिदिन अभ्यास करने के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं, अन्यथा तो मानव दुःखी होता ही रहेगा। भले ही विज्ञान कितनी उन्नति कर ले, योगासन और ध्यान की क्रियाओं से शरीर व मन को पूरी तरह शिथिल करके असाध्य से असाध्य रोगों को ठीक किया जा सकता है।

संतरे, मौसम्मी व नींबू का रस, चर्म रोगों में रामबाण का काम करता है। अंगूर, किशमिश, मुनक्का और शहद तपेदिक व फेफड़ों के रोगों में बहुत लाभदायक हैं। नजला, जुकाम, खांसी में अदरक का रस, मधु, आंवले का रस और ताजी सब्जियों के गर्म सूप बहुत काम करते हैं। दस्त व मरोड़ों में बेल का फल व उसका शरबत, सेब–अनार का रस व खूब पका केला एक उपचार ही है। गठिया व जोड़ों के दर्दों में अदरक व लहसुन, किशमिश, मुनक्का भिगोकर, गाजर–अदरक का रस, सब्जियों के रस व सूप रोग को भगाने में बहुत उपयोगी हैं।

रोगों के मूलभूत स्वरूप

प्रकृति के नियमों के अनुसार शरीर अपने आपको स्वस्थ और अच्छी हालत में रखना चाहता है। इसके लिए शरीर अपने विजातीय पदार्थ को मल–मूत्र, श्वास व पसीने से बाहर फेंकता रहता है। जब यह साधारण रास्ते से किसी कारण से अपना काम नहीं कर पाते तो ये विकार रोग के रूप में हमारे सामने आ जाते हैं। रोग मोटे तौर पर तीन प्रकार के होते हैं–

(अ) तीव्र रोग (Acute Diseases)

ये रोग तीव्र गति से होते हैं इनमें बहुत घबराहट व पीड़ा होती है, जैसे– बुखार, दस्त, पेचिश, जुकाम, खांसी, खारिश, चेचक, हैजा आदि। ये रोग बच्चों तथा शरीर से कमजोर व्यक्तियों को बहुत जल्दी पकड़ते हैं। यह शरीर को शुद्ध करने की प्रकृति की अपनी चेष्टा है। जो तीन–चार दिन या एक–दो सप्ताह ही रहते हैं और शरीर को

टिप्पणी

विकार–मुक्त कर शुद्ध कर देते हैं। यदि दवाई न दी जाए और परहेज किया जाए तो रोग जल्द ही ठीक हो जाते हैं। इन रोगों में किसी भी प्रकार का कार्बोज तथा प्रोटीन आदि का भोजन नहीं देना चाहिए। यदि खाने को कुछ दे देते हैं तो पाचन–क्रिया शुरू हो जाती है जिससे सफाई के काम में बाधा पैदा होती है। दवाई, जो अधिकतर विषैली होती है, उसके सेवन से रोग दब जाता है, फिर कुछ समय पाकर दूसरा रूप धारण कर लेता है। दवाई लेते रहने से रोगी अंदर से स्वस्थ नहीं होता, भूख कम हो जाती है, कब्ज रहने लग जाता है, खुश्की हो जाती है और थकावट रहती है। प्रकृति कई बार रोग के रूप में विकार को निकालने का प्रयास करती है और हम दवाई से उसे दबा देते हैं। यदि शरीर की इस कोशिश को बार–बार दबा दिया जाए तो जीर्ण रोग पैदा हो जाते हैं।

तीव्र रोगों में कम से कम पहले तीन दिन तो पानी के सिवा कुछ नहीं लेना चाहिए, बाद में दिन में दो–तीन बार मीठे फलों का रस या सब्जियों का रस या सूप ले सकते हैं। इन रोगों में आराम बहुत जरूरी है, आसनों की आवश्यकता नहीं, रोग जाने पर भूख लगनी चाहिए। शरीर शुद्ध और निर्मल हो जाता है। थोड़ी कमजोरी रहती है जो शरीर स्वस्थ होने पर धीरे–धीरे चली जाती है।

(ब) जीर्ण रोग (Chronic Diseases)

ये बहुत दिनों तक रहते हैं। रोगी चलता–फिरता और साधारण तौर से काम करता हुआ भी दुःखी और लाचार बना रहता है। जैसे– जोड़ों का दर्द, गठिया, दमा, बवासीर, मधुमेह, बहुमूत्र, पथरी आदि के रोग। ये रोग अधिकतर 40 वर्ष की आयु के बाद, जीवन शक्ति के दुर्बल पड़ने पर आते हैं। इन रोगों में एक सप्ताह का उपवास केवल पानी पर या नींबू–शहद–पानी पर या सब्जी व फल के रस पर रखकर फिर तीन सप्ताह तक केवल फल, फल–रस, सलाद और सब्जियों के कच्चे रस पर (जैसे खीरा, लौकी, पालक, गाजर, सफेद पेठा आदि), एक–दो कप दूध या पनीर साथ में लिया जा सकता है। फिर दो मास तक एक समय उबली सब्जी के साथ दो–तीन चपाती और सलाद। बाकी समय फल व फलों का रस, सब्जी का रस तथा थोड़ा दूध। इसी क्रम को जब तक रोग रहे, दोहराया जाना चाहिए।

जीर्ण रोगों के निवारण में लक्ष्य रोग से न लड़कर स्वास्थ्य बढ़ाना होता है। आसन, प्राणायाम व शुद्ध क्रियाओं का सहारा लेकर जीवन शक्ति को बढ़ाना चाहिए और प्रसन्न रहकर नियमित प्रयास करते रहना चाहिए।

(स) मारक रोग (Degenerative Diseases)

कैंसर, हृदय रोग, टी.बी. आदि जीर्ण रोगों के अधिक समय तक बने रहने और दवाइयों के लगातार सेवन से ये रोग मारक बन जाते हैं। ये रोग शरीर को ही खाना आरंभ कर देते हैं। इन रोगों को भी न्यूनतम सात्विक भोजन, जैसा जीर्ण रोग में बताया है, लगातार कई महीनों तक लेने से लाभ लिया जा सकता है। इन रोगों में पूरा उपवास नहीं करना चाहिए, फल–सब्जी के रस से ही शुरू करके थोड़ा–थोड़ा दूध साथ में लिया जा सकता है।

इतना याद रखें कि रोग शरीर के अंदर के विकारों से ही होते हैं और शरीर रोगों से बचाव के लिए अपने को साफ रखने की चेष्टा करता है। तीव्र रोगों को दवाई से न दबाया जाए तो जीर्ण रोग पैदा ही नहीं होगा। जीर्ण रोगों को भी जीवन शक्ति

बढ़ाकर दूर किया जा सकता है। जीवन बनाने वाले मिट्टी, हवा, अग्नि व आकाश तत्वों के सहारे से रोगों को जल्दी भगाया जा सकता है।

टिप्पणी

प्रयास तो यह होना चाहिए कि रोग आए ही नहीं, पर यदि रोग आ जाए तो उससे डरना किसलिए? वह शरीर की सफाई ही करेगा। अच्छा तो यही है कि शरीर में विकार जमा ही न हो, इसके लिए प्राकृतिक जीवन अपनाएं, नित्य प्रति योगाभ्यास करें, षट्कर्म से शरीर को शुद्ध करें, उचित मात्रा में सात्विक भोजन लें, धूप व स्वच्छ वायु का सेवन करें, पूरी नींद लें, अपने को तनाव–मुक्त रखें तो शरीर में विजातीय तत्व इकट्ठा ही नहीं होने पाएगा और आप रोग से परेशान नहीं होंगे।

1.2.2 लक्ष्य और उद्देश्य

स्वास्थ्य और योग का लक्ष्य व्यक्ति को सहज–संतुलित एवं सानंद रखता है। यही इसका उद्देश्य भी है।

आज के वायुमंडल तथा परिस्थितियों में हम अपने को स्वस्थ नहीं रख पा रहे हैं। रोग दिन–प्रतिदिन बढ़ते जा रहे हैं और मानव शारीरिक व मानसिक रूप से अस्वस्थ होता जा रहा है। इसका कारण है कि स्वस्थ रहने के मूल सिद्धांत हमें मालूम नहीं। यदि वे सिद्धांत हमें मालूम हो जाएं और हम उनका पालन करें तो अपने को स्वस्थ रखना कोई कठिन काम नहीं। यह काम 'योग' को पूरी तरह अपनाने से आसान हो जाता है। इसलिए स्वास्थ्य संहिता एवं योग की महत्ता बढ़ जाती है।

स्वास्थ्य का तात्पर्य (स्व + स्थ) है अर्थात अपने में स्थित होना। हमारी शक्ति बाहर की ओर दौड़ रही है, सब कुछ हम बाहर ढूंढ रहे हैं। आज के तनावपूर्ण एवं शोरगुल के वातावरण में हमें कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा है और सारी ऊर्जा (शक्ति) बाहर की ओर बह रही है। स्वास्थ्य की सारी प्रक्रिया अंदर से शुरू होती है और योग हमें अंदर की ओर ले जाने की कला सिखाता है। प्रकृति (परमात्मा) ने शरीर की रचना इस प्रकार की है कि उसमें हर प्रकार की व्यवस्था कर दी है, जिससे हम पूर्ण स्वस्थ रह सकें। शरीर के अंदर के यंत्र शरीर के कार्य को चलाते हैं और उसे स्वस्थ भी रखते हैं।

योग तथा प्राकृतिक चिकित्सा को मानने वाले लोग शरीर में विजातीय द्रव्य (विकार) के रुक जाने को रोगों का कारण मानते हैं। आज जितने भी रोगों के नाम हैं या आने वाले समय में होंगे, उन सबका कारण शरीर के विकार का रुक जाना है। कीटाणु भी वहीं पैदा होंगे या बढ़ेंगे जहां विकार होगा, गंदगी होगी। यदि हम शुरू से थोड़ा बहुत ध्यान रखें और विकार को शरीर में जमा न होने दें, तो हम कभी रोगी हो ही नहीं सकते। आज तक ऐसी कोई दवाई नहीं बनी और न बन पाएगी जो आपको स्वास्थ्य दे सके। अच्छी बात यह है कि स्वस्थ रहने की सारी व्यवस्था आपके अपने हाथ में है। स्वास्थ्य लाभ तो शरीर के अंदर के अंगों के पुष्ट होने से ही संभव है। बार–बार दवाई लेने से अंदर के अंग, जिनसे रोगों का बचाव होता है और स्वास्थ्य लाभ करने में सहायता मिलती है, शक्तिहीन हो जाते हैं, जिससे औषधि का प्रभाव ही समाप्त नहीं होता बल्कि औषधि उल्टा असर डालकर नए रोग भी पैदा कर देती है।

प्राकृतिक चिकित्सा में जब रोग का उपचार करते हैं, भले ही वह योग से हो, प्राकृतिक चिकित्सा से हो या आहार परिवर्तन से तो हमारा एक ही उद्देश्य होता है कि रोगी को शारीरिक व मानसिक रूप से शिथिल कर दिया जाए ताकि शरीर की शक्ति

टिप्पणी

रोग को भगाने में लग जाए। प्राकृतिक चिकित्सा के जितने भी उपचार हैं, तरह–तरह के स्नान, एनिमा, मालिश या गर्म–ठंडे सेक, सभी शरीर को स्वस्थ व मन को शिथिल करते हैं। भोजन के द्वारा भी चाहे हम उपवास करें, फलाहार या रसाहार लें या प्राकृतिक भोजन, सभी से शरीर व मन को शिथिलता मिलती है। इससे शरीर की अपनी व्यवस्था काम करने लग जाती है और रोग स्वतः ही भागना शुरू हो जाता है।

अकसर उपवास से ही बहुत से रोग ठीक हो जाते हैं। उपवास पानी पर या मधु–नींबू, गर्म पानी लेकर हो सकता है या केवल फल व सब्जी के रस पर रहकर किया जा सकता है। एक समय उबली हुई सब्जी, सब्जी के सलाद, फल व फलों के रस पर तीन–चार सप्ताह बिताए जा सकते हैं। आवश्यकता पड़ने पर थोड़ा–सा दूध या लस्सी भी ली जा सकती है। इसके बाद एक समय एक–दो चपाती (चोकर समेत आटे की जिसमें बथुआ, मेथी, पालक कोई भी कच्चा साग पीसकर मिलाया जा सकता है), उबली सब्जी या सलाद के साथ लें। बाकी समय गाजर, लौकी, सफेद पेठा, खीरे का रस, फल या फलों का रस, नींबू, शहद–पानी व थोड़ा–सा दूध लेकर 3–4 माह चलाने से धीरे–धीरे पुराने से पुराना रोग शरीर को छोड़ कर भागने लगता है।

अपनी प्रगति जांचिए

1. स्वास्थ्य का शाब्दिक अर्थ क्या है?

   (क) आरोग्य   (ख) रोग निदान

   (ग) स्वयं में स्थिति   (घ) चिकित्सा एवं परहेज

2. जोड़ों में दर्द, गठिया, दमा, बवासीर कैसे रोग हैं?

   (क) तीव्र रोग   (ख) मारक रोग

   (ग) सामान्य रोग   (घ) जीर्ण रोग

1.3 सर्वांगीण (समग्र) स्वास्थ्य की अवधारणा

सर्वांगीण स्वास्थ्य का अर्थ है तन–मन–मस्तिष्क का समग्र स्वास्थ्य। सभी पक्षों का परस्पर अन्योन्याश्रित संबंध है।

1.3.1 यौगिक साहित्य में समग्र स्वास्थ्य

ईश्वरीय सृष्टि की सर्वोत्तम रचना है मानव शरीर। पृथ्वी, जल, अग्नि, आकाश एवं वायु–पंचभूतों और रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा एवं शुक्र–सप्तधातुओं से निर्मित मानव शरीर पाचन, श्वसन आदि विभिन्न संस्थानों का एक समन्वित रूप है। इसमें भिन्न–भिन्न अंग निरंतर अपना काम सुचारु रूप से करते रहते हैं। शरीरस्थ त्रिदोष–वात, कफ, पित्त के साम्य अवस्था में रहने पर शरीर स्वस्थ रहता है और इनमें विकृति आ जाने से शरीर रोगग्रस्त हो जाता है। रोगी के विकारों का प्रशमन एवं स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा आयुर्वेद का प्रयोजन है। हमें ज्ञात है– 'स्वस्थस्य स्वास्थरक्षणम् आतुरस्य विकारप्रशमनं च।' स्वास्थ्य संबंधी इन दोनों प्रयोजनों की पूर्ति में आयुर्वेद के साथ–साथ योग की भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है।

मनुष्य स्वाभावतः सुखकामी है। सुख–सुविधाओं की भरमार और मनोनुकूल आहार–विहार के कारण शारीरिक एवं मानसिक रोगों की बाढ़ सी आ गई है। आधुनिक चिकित्सा पद्धति ने नित्य नए अनुसंधान कर मृत्यु दर को कम कर दिया, मनुष्य की औसत आयु की सीमा भी बढ़ा दी किंतु इस चिकित्सा–पद्धति के दुष्प्रभावों का कोई निदान सम्मुख नहीं आया। आयुर्वेद एवं योग के प्रवर्तक मनीषियों ने न केवल मानव शरीर एवं उसमें होने वाले रोगों का अध्ययन किया था अपितु उन्होंने मानव–जीवन एवं प्रकृति की भी सूक्ष्म गवेषणा की थी। इसलिए, आयुर्वेद एवं योग मात्र चिकित्सा पद्धति ही नहीं है, यह अपने आप में संपूर्ण जीवन दर्शन है। इन नियमों का यथाविधि पालन करने से प्रायः समस्त प्रकार की आधि–व्याधियां दूर होती हैं और मनुष्य 'सर्वतोभावेन सुखावहा' स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। आधुनिक रहन–सहन एवं चिकित्सा के दुष्परिणामों से त्रस्त मनुष्य आज योग विज्ञान की शरण लेकर आरोग्य लाभ ले रहा है। आयुर्वेद एवं योग विज्ञान के संयोग से असाध्य रोगों की भी सफलतापूर्वक चिकित्सा की जा रही है और शरीर को स्वस्थ रखने के लिए योगासन एवं प्राणायाम एक बार फिर लोक व्यवहार में सम्मिलित हो रहे हैं।

आधुनिक विज्ञान की उन्नति ने हमारे लिए सुख सुविधा के भौतिक संसाधनों के तो अंबार लगा दिए परंतु इसके बदले हमारे जीवन से शांति एवं आनंद छीन लिए। जितनी विज्ञान ने तरक्की की, दवाइयों की खोज की, बीमारियों ने उतना ही शरीर को आक्रांत कर लिया। इन सबके मूल में तनाव है जो आधुनिकता की देन है।

भारतीय संस्कृति के चार पुरुषार्थ बताए गए हैं– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इनको प्राप्त करने के लिए मनुष्य को शारीरिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है। कहा भी गया है कि– 'शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्'।

योग विद्या एक ऐसी विद्या है जो मनुष्य को शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक रूप से स्वस्थ रख सकती है। योग की परिभाषा मन से शुरू होती है–

महर्षि पतञ्जलि के अनुसार–

'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'।

शारीरिक स्वास्थ्य का आधार– आसन–प्राणायाम है

'स्थिर सुखमासमन्'

स्वामी चरणदास के अनुसार–

चौरासी लख आसन जानो योनिन की बैठक पहिचानो।
तिनमें चोरासी चुग लिन्हों दुर्गम भेद सुगम सो किन्हों।।

जितने भी प्रकार के जीव–जंतु हैं उतनी ही आसनों की संख्या है, परंतु उनमें से 84 आसन सुविधानुसार कर सकते हैं।

आसन कई प्रकार के हैं–

- खड़े होकर करने वाले।
- बैठकर करने वाले।
- लेट कर करने वाले।

टिप्पणी

यदि हम आगे झुकने वाले आसन करते हैं तो हमारी पीछे की मांसपेशियों में खिंचाव आता है और आगे वाली मांसपेशियां आराम महसूस करती हैं। यदि पीछे मुड़ने वाले आसन करते हैं तो आगे की मांसपेशियों में खिंचाव आता है और पीछे की मांसपेशियां आराम करती हैं।

जब हम आगे झुकने वाले आसन करते हैं तो साथ ही साथ हमें पीछे मुड़ने वाले आसनों का अभ्यास भी करना चाहिए।

स्वात्माराम के अनुसार– *'कुर्यात्तदासनम् स्थैर्यं आरोग्यं चाङ्गलाधवम्।'*

आसनों के अभ्यास से स्थिरता, आरोग्यता और हल्कापन आता है।

यौगिक क्रियाओं द्वारा आंतरिक शुद्धि

बाह्य शरीर की शुद्धि तो हम स्नान के द्वारा कर लेते हैं, परंतु आंतरिक शरीर का शोधन षट्कर्म द्वारा किया जाता है। षट्कर्म, जैसा कि इसके नाम से स्पष्ट है, संख्या में छह होते हैं। इनका विवरण इस प्रकार है–

1. नेति

नेति से नासिका मार्ग की शुद्धि की जाती है। यदि नासिका मार्ग में कोई अवरोध है तो निश्चित रूप से हम स्वस्थ नहीं हो सकते। पूरी मात्रा में ऑक्सीजन नहीं मिलती, जिससे भोजन का पाचन अच्छी तरह से नहीं होता और एलर्जी शुरू हो जाती है। मौसम के बदलने से, फूलों के पराग से, धूल, धुएं के कणों से या अगरबती की खुशबू से जुकाम रहना शुरू हो जाता है। मन बेचैन रहता है तथा किसी काम में मन नहीं लगता।

नासिका का स्वस्थ रहना नितांत आवश्यक है। इसको स्वस्थ रखने के लिए रबड़ नेति, जल नेति आदि का अभ्यास किया जाता है। स्वामी चरणदास ने इसके बारे में कहा है कि–

आँख नाक कान अरु दांत को रोग न व्यापे कोई।
उज्ज्वल होवे नैनन ही नित नेति करी सोई।।

गले के ऊपर के सभी विकार नेति द्वारा दूर हो जाते हैं। इसके अभ्यास से नेत्र ज्योति बढ़ती है तथा सिर दर्द दूर हो जाता है।

2. धौति

धौति का अर्थ है– To Wash.

अमाशय को धोने की क्रिया को धौति कहते हैं। अपचन होने, एसिडिटी होने या फूड पॉएजनिंग होने पर इस क्रिया को करने से तुरंत राहत मिलती है। यह दो प्रकार की होती है–

1. **वमन धौति**– इस क्रिया को करने के लिए दो से तीन लीटर गर्म जल में नमक मिलाकर पिया जाता है। फिर इस पानी को वापस निकाला जाता है। इस प्रकार पानी के साथ पेट से बढ़ा हुआ अम्ल तथा बचा हुआ खाना (जो पेट में देर से पड़ा रहने पर जहर का काम करता है) बाहर निकल जाता है। इस क्रिया के करने पर पेट को तुरंत राहत मिलती है।
2. **वस्त्र धौति**– इस क्रिया को करने के लिए 22 फुट लंबा 4 अंगुल चौड़ा मलमल का कपड़ा पानी में डुबो कर धीरे–धीरे निगला जाता है। एक फूट कपड़ा बाहर

रखकर फिर इसे धीरे–धीरे बाहर निकाला जाता है। अंदर जाकर यह कपड़ा पेट की दीवारों को छू कर उसको सक्रिय (Activitate) करता है। जिससे पाचक रस (Digestive Juices) ज्यादा मात्रा में निकलने शुरू हो जाते हैं। इससे अपचन जैसी समस्या दूर हो जाती है।

टिप्पणी

सावधानियां

1. अल्सर होने की स्थिति में इस क्रिया का अभ्यास नहीं करना चाहिए।
2. इस क्रिया के करने के बाद आधे घंटे तक कुछ भी नहीं खाना पीना चाहिए।

3. नौलि क्रिया

इस क्रिया को करने के लिए पेट को अंदर सिकौड़ा जाता है। उड्डयान बंध लगाकर आंतों को दाएं से बाएं तथा बाएं से दाएं घुमाया जाता है। इसके अभ्यास से छोटी बड़ी आंत तथा पेनक्रियाज ग्रंथि की कार्यक्षमता बढ़ती है जिससे अपचन तथा मधुमेह जैसे रोग ठीक हो जाते हैं।

4. कपालभाति

यह दो शब्दों के मेल से बना है। कपाल का अर्थ है– मस्तक तथा भाति का अर्थ है– चमक।

चेहरे पर चमक तभी आती है जब व्यक्ति शारीरिक व मानसिक रूप से स्वस्थ हो। इस क्रिया को करने के लिए पेट को अंदर सिकोड़ा जाता है तथा श्वास को बाहर छोड़ा जाता है। इस प्रकार प्रतिदिन 15 से 20 मिनट तक इस क्रिया का अभ्यास करने से व्यक्ति की कार्य क्षमता बढ़ती है। उसका नजला–जुकाम ठीक हो जाता है। उसके शरीर के विकार श्वास द्वारा बाहर निकल जाते हैं। वात–पित्त–कफ का संतुलन बनता है। एसीडिटी जैसे विकार दूर होते हैं। मधुमेह, जोड़ों के दर्द ठीक हो जाते हैं।

5. त्राटक

एकाग्रता के साथ किसी एक निश्चित बिंदु पर लगातार देखने को त्राटक कहा जाता है। इस क्रिया के अभ्यास से आंखों की मांसपेशियां सख्त होकर आंखों से पानी गिरना शुरू हो जाता है। ऐसी स्थिति में धीरे से आंखे बंद कर लेनी चाहिए। इसके अभ्यास से नेत्र ज्योति बढ़ती है और सिर दर्द जैसे विकार दूर हो जाते हैं तथा मानसिक एकाग्रता बढ़ती है।

6. बस्ति

बड़ी आंत की शुद्धि के लिए इस क्रिया का अभ्यास किया जाता है। इसका आधुनिक नाम एनिमा है। इसके अभ्यास से कब्ज तथा पाइल्स जैसे रोग ठीक हो जाते हैं।

जरूरत है योग को जीवन में अपनाने की। जिस समय व्यक्ति योग को अपने जीवन में धारण कर लेता है, उसके जीवन की कमियां स्वयंमेव दूर होना शुरू हो जाती हैं। उसका जीवन गंगाजल की तरह पवित्र और निर्मल हो जाता है। उसकी विचारधारा सकारात्मक होने से वह समाज व राष्ट्र हित के लिए कल्याणकारी कार्य करने लग जाता है और वह योग के उद्देश्य को भी सार्थक करने में सहयोगी बनता है–

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणी पश्यन्तु, मा कश्चित दुःख भागभवेत्।।"

1.3.2 पतंजलि योग–सूत्र

टिप्पणी

योग शब्द युज् धातु से निष्पन्न हुआ है। धातुपाठ में योग शब्द के लिए दो धातुएं होती है– युजिर् योगे और युज् समाधौ। युजिर् धातु से निष्पन्न योग शब्द सामान्य संबंध का वाचक है। इस शब्द की योगसाधना के क्षेत्र में कोई उपयोगिता नहीं। युज् समाधौ धातु से निष्पन्न योग शब्द ही यहां ग्राह्य है जिसका अर्थ है समाधि। व्यास भाष्य में 'योगः समाधिः' कहकर योग को समाधि का पर्याय स्वीकार किया गया है।

महर्षि पतंजलि के अनुसार –

श्रुति, स्मृति, इतिहास, पुराणादि में योग की विभिन्न परिभाषाएं प्राप्त होती हैं किंतु महर्षि पतंजलि ने समस्त शास्त्रों का सारसंग्रह करके योग की जो परिभाषा दी है, वही परिभाषा सबसे अधिक सारगर्भित, दोषरहित और हृदयग्राही प्रतीत होती है। अन्य समस्त परिभाषाएं इसी का अनुवाद और व्याख्या प्रतीत होती हैं। हम उन परिभाषाओं पर भी विचार करेंगे। पहले पतंजलिप्रोक्त परिभाषा का विश्लेषण करते हैं। पतंजलि कहते हैः–

योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः। – योगसूत्र 1/2

अर्थात चित्त की वृत्तियों का निरोध योग कहलाता है। यहां चित्त, उसकी वृत्तियां और उनका निरोध– ये तीन बातें विशेष रूप से ज्ञातव्य हैं। चित्त क्या है? प्रकृति के सत्त्वगुण का विशेष परिणाम चित्त है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है। सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों का सम्मिलित रूप ही प्रकृति है। प्रकृति का लघु और प्रकाशक रूप सत्व है। चंचल रूप रजस् है तथा गुरुत्व और आवरक रूप तमस् है। उनमें लघुता तथा प्रकाश स्वभाव वाला जो सत्त्वगुण है, उसका परिणामविशेष ही चित्त कहलाता है।

यद्यपि चित्त त्रिगुणात्मक है, तथापि प्रकृति का जो ज्ञानरूप सात्त्विक परिणाम है, वह सत्त्व विशिष्ट ही है और वही सत्त्वविशिष्ट परिणाम चित्त नाम से जाना जाता है।

चित्त की पांच वृत्तियां हैं– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। यद्यपि चित्त की वृत्तियां असंख्य हैं फिर भी उक्त पांच रूपों में ही उनका संकलन किया जाता है। जिस अवस्थाविशेष में उक्त वृत्तियां रुक जाती हैं, उस अवस्थाविशेष को योग कहा जाता है।

योग दो प्रकार का है – संप्रज्ञातयोग और असंप्रज्ञातयोग। इन दोनों का संग्रह 'योगः' शब्द से करने के लिए उसे पृथक–पृथक दो प्रत्ययों से निष्पन्न किया जाता है। "युज्यते अनेनेति योगः" इस विग्रह में "करणाधिकरणयोगश्च" इस सूत्र से करण अर्थ में घञ्–प्रत्यय लगाकर जो योग शब्द निष्पन्न होता है, उस योग का अर्थ संप्रज्ञात योग है तथा 'भावे' सूत्र से भाव अर्थ में घञ् प्रत्यय लगाकर जो योग शब्द निष्पन्न होता है, उस योग का अर्थ असंप्रज्ञात योग है। इसका विग्रह होगा– योजनं योगः।'

'युज्यतेऽनेनेति योगः' इसका अर्थ है– जिसके द्वारा समाधि की जाती है, वह योग है। 'योजनः योगः' का अर्थ है– समाधि ही योग है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि संप्रज्ञात योग साधन है और असंप्रज्ञात योग साध्य अर्थात संप्रज्ञात योग से असंप्रज्ञात योग की सिद्धि की जाती है।

संप्रज्ञातयोग भी समाधि है और असंप्रज्ञातयोग भी समाधि है किंतु संप्रज्ञात अंग है और असंप्रज्ञात अंगी है। निष्कर्ष यह हुआ कि योग साधन भी है और साध्य भी।

यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और संप्रज्ञात समाधि– ये सब असंप्रज्ञात रूप समाधि के अंग अर्थात साधन हैं और असंप्रज्ञात समाधि साध्य है। दोनों का ही नाम योग है। चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग कहलाता है। यह योग की परिभाषा है।

टिप्पणी

''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः'' योग का यह लक्षण महर्षि पतंजलि ने बहुत सोच समझकर किया है। वे ''योगः सर्वचित्तवृत्तिनिरोधः'' ऐसा लक्षण भी कर सकते थे अर्थात चित्त की समस्त वृत्तियों का निरोध योग है, ऐसा लक्षण भी किया जा सकता था। किंतु ऐसा लक्षण करने से योग का लक्षण असंप्रज्ञात योग में तो जा सकता था, संप्रज्ञात योग में अव्याप्त रहता जबकि संप्रज्ञात योग भी योग ही है। लक्षण को तो अव्याप्ति, अतिव्याप्ति और असंभव – इन तीनों दोषों से रहित होना चाहिए तभी वह लक्षण निर्दोष कहला सकता है। यदि लक्षण में सर्वचित्तवृत्तिनिरोध को योग कहा जाता तो असंप्रज्ञात योग ही योग कहलाता। उसी अवस्था में समस्त वृत्तियों का निरोध रहता है। अतः संप्रज्ञात योग में भी योग के लक्षण को चरितार्थ करने के लिए चित्तवृत्तिनिरोध को ही योग की संज्ञा दी गई है। असंप्रज्ञात योग की अवस्था में ध्येयाकार सात्विक वृत्ति का भी अभाव रहता है। इसलिए उसे निर्बीज समाधि कहा गया है।

तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः। योगसूत्र 1/51

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार–

महर्षि याज्ञवल्क्य ने योग को इस प्रकार से परिभाषित किया है–

संयोगो योग इत्युक्तो जीवात्मपरमात्मनोः।।

अर्थात जीवात्मा और परमात्मा के समानरूपत्वरूप संयोग का नाम योग है।

इस लक्षण में और पूर्वोक्त चित्तवृत्तिनिरोधरूप योग में कोई अंतर नहीं है। जब तक चित्तवृत्तियों का निरोध नहीं हो जाता, तब तक जीवात्मा और परमात्मा की समानरूपता संभव ही नहीं है। वस्तुतः जीवात्मा और परमात्मा का संयोग योग का लक्षण नहीं है अपितु योग का फल है। कभी–कभी कारण और कार्य में अभेद के कारण से कार्य के स्थान पर कारण का भी प्रयोग कर दिया जाता है। जैसे– 'आयुर्वै घृतम्' इस प्रयोग में घृत को आयु कह दिया गया है। वस्तुतः घृत आयु नहीं है अपितु आयुवृद्धि का कारण है। इसी प्रकार योग का लक्षण तो चित्तवृत्तिनिरोध ही है। चित्त की वृत्तियों का निरोध होने पर जीवात्मा परमात्मा की समानरूपता को प्राप्त हो जाता है। जीवात्मा और परमात्मा में इतना ही भेद है कि जीवात्मा क्लेशकर्मादि से युक्त है, परमात्मा क्लेशादि से सर्वथा रहित है। जब जीवात्मा भी योग के द्वारा क्लेशादि से अत्यंत मुक्त हो जाता है तो वह भी परमात्मा के सदृश हो जाता है। इसलिए याज्ञवल्क्य के लक्षण में और महर्षि पतंजलि के लक्षण में कोई विरोध नहीं है। जैसा कि आगे पतंजलि ने 'तदा द्रष्टुः' स्वरूपेऽवस्थानम्' सूत्र में स्वरूप में अवस्थान को योग का फल कहा है। कभी–कभी कारण और कार्य के अभेद की अवस्था में स्वरूपावस्थान को भी योग कह दिया जाता है।

अग्निपुराण में कहा गया है:–

आत्ममानसप्रत्यक्षा विशिष्टा या मनोगतिः।
तस्या ब्रह्मणि संयोगो योग इत्यभिधीयते।।

अग्निपुराण – 379/25

टिप्पणी

अर्थात योग मन की एक विशिष्ट अवस्था है। जब मन में आत्मा को और स्वयं मन को प्रत्यक्ष करने की योग्यता आ जाती है, तब उसका ब्रह्म के साथ संयोग हो जाता है। संयोग का अर्थ है कि ब्रह्म की समरूपता उसमें आ जाती है। यह समरूपता की स्थिति ही योग है।

अग्निपुराण के इस योगलक्षण में पूर्वोक्त याज्ञवल्क्य स्मृति के योगलक्षण से कोई भिन्नता नहीं है। मन का ब्रह्म के साथ संयोग वृत्तिनिरोध होने पर ही संभव है।

स्कंदपुराण भी उसी बात की पुष्टि करता है जिसे अग्निपुराण और याज्ञवल्क्यस्मृति कहा गया है। स्कंदपुराण में कहा गया है—

यत्समत्वं द्वयोरत्र जीवात्मपरमात्मनोः।
स नष्टसर्वसंकल्पः समाधिरभिधीयते।।
परमात्मात्मनोर्यो ऽयमविभागः परन्तप।।
स एव तु परो योगः समासात्कथितस्तव।।

स्कंदपुराण

यहां जीवात्मा और परमात्मा की समता को समाधि कहा गया है तथा दूसरे श्लोक में परमात्मा और आत्मा की अभिन्नता को परम योग कहा गया है। इसका अर्थ यह है कि समाधि ही योग है। वृत्तिनिरोध की अवस्था में ही जीवात्मा और परमात्मा की यह समता और दोनों का अविभाग हो सकता है। यह बात 'नष्टसर्वसंकल्पः' पद के द्वारा कही गई है।

हठयोगप्रदीपिका के अनुसार—

सलिले सैन्धवं यद्वत् साम्यं भजति योगतः।
तथात्ममनसोरैक्यं समाधिरभिधीयते।।

ह.प्र. 4/5

जिस प्रकार नमक जल में मिलकर जल की समानता को प्राप्त हो जाता है, उसी प्रकार जब मन वृत्तिशून्य होकर आत्मा के साथ ऐक्य को प्राप्त कर लेता है तो मन की उस अवस्था का नाम समाधि है।

यदि हम विचार करें तो यहां भी पूर्वोक्त परिभाषा से कोई अंतर दृष्टिगत नहीं होता। आत्मा और मन की एकता भी समाधि का फल है, उसका लक्षण नहीं है। जैसे जल और नमक की समानता दोनों के संयोग का फल है, संयोग का लक्षण नहीं है। इसी प्रकार मन और आत्मा की एकता योग नहीं है अपितु योग का फल है।

भगवद्गीता के अनुसार—

श्री कृष्ण भगवान ने गीता में प्रसंगवश योग के अनेक लक्षण अर्जुन को कहे हैं, किंतु उन सभी लक्षणों में कहीं भी परस्पर विरोध नहीं है। योग और उसके फल में अभेद मानकर गीता में योग के स्वरूप पर विचार किया गया है। षष्ठ अध्याय में वे कहते हैं:—

तं विद्यात् दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।
स निश्चयेन योक्तव्यो योगोऽनिर्विण्णचेतसा।।

गीता— 6/23

हे अर्जुन! तू उस अवस्था को योग जान, जिसमें स्थित हुआ साधक भारी दुःख से भी विचलित नहीं होता तथा जिसमें संसाररूपी दुःख संबंध का अत्यंत वियोग रहता है। वह योग खेदरहित चित्त से अनुष्ठित होता है।

टिप्पणी

इस श्लोक में भगवान ने दुःख संयोग–वियोग को योग कहा है। वस्तुतः दुःख का वियोग तो योगसाधना का फल है, लक्षण नहीं क्योंकि योग के बिना तो दुःख का वियोग संभव ही नहीं।

इसी प्रकार आगे भगवान उत्तम योगी के आचरण का व्याख्यान करते हुए कहते हैंः–

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।। गीता–6/32

हे अर्जुन! जो पुरुष सर्वत्र अपनी समानता देखता है तथा सुख और दुःख को भी समान भाव से देखता है, वह परम योगी है।

समदर्शन तो वास्तव में सिद्ध योगी का व्यवहार है। जीवनमुक्त पुरुष का आचरण है। यह भी योग का फल ही है, लक्षण नहीं।

सिद्धि और असिद्धि में समान वही रह सकता है जिसने मन के समस्त संकल्पों का त्याग कर दिया है और योग की अंतिम भूमि को प्राप्त कर लिया है।

भगवान अर्जुन से यह कहना चाहते हैं कि तू कर्म का त्याग न कर अपितु योग में स्थिर होकर कर्म कर– 'योगस्थः कुरु कर्माणि।' वह योगस्थिति क्या है? ऐसी जिज्ञासा होने पर वे आगे कहते हैं कि 'संगं त्यक्त्वा' अर्थात फलासक्ति को छोड़कर कर्म करना ही योग में स्थित होना है। किंतु यहां फिर वही प्रश्न उपस्थित होता है कि फलासक्ति का त्याग कैसे किया जाए? योग में स्थिति एवं फलासक्ति का त्याग तथा सिद्धि और असिद्धि में समान रहना, यह सब तो तभी संभव है जब योग सिद्ध हो जाए। वह योग क्या है? इसका उत्तर यही है कि चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है। वृत्तियों का निरोध होने पर फलासक्ति स्वयमेव छूट जाएगी। फिर कार्य सिद्ध हो या न हो, इससे योगी का कोई प्रयोजन ही नहीं रह जाता। भगवान ने आगे जो योग की व्याख्या की है वह इस प्रकार है–

योगः कर्मसु कौशलम्। श्रीमद्भगवद्गीता–2/50

फलासक्ति का त्याग करके कर्म करना ही कर्मकौशल है। कर्म करते हुए यदि कर्ता कर्म में आसक्त हो गया अथवा कर्म ने कर्ता को मोहपाश में जकड़ लिया तो यह कर्मों में कर्ता की कुशलता कहां हुई? यह तो कर्ता का महान अकौशल हुआ। कर्ता की कुशलता तो यह है कि कर्म करके उसको वहीं छोड़ दिया जाए। हानि और लाभ, जय अथवा पराजय, कार्यसिद्धि या असिद्धि के विषय में चिंता ही न की जाए। कर्म करते हुए यदि कर्ता उस कर्म का दास होकर रह गया तो यह कर्ता की परतंत्रता का भाव हुआ। कर्ता तो स्वतंत्र हुआ करता है। यदि कर्म ने कर्ता को पराधीन कर दिया तो यह कर्म की विजय हुई कर्ता की नहीं। कर्ता का स्वातंत्र्य तो तब सिद्ध होता जब कर्ता स्वेच्छा से कर्म का और उसके फल का त्याग कर देता। अतः फलासक्ति का त्याग करके कर्म करना ही कर्मकौशल है। फलासक्ति अर्थात एक प्रकार की चित्तवृत्ति का त्याग ही योग है।

टिप्पणी

चित्त तथा चित्तवृत्ति

महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्तिनिरोध को योग की संज्ञा दी है। समस्त व्यवहार चित्त से ही संपादित होते हैं। चित्त के अतिरिक्त शरीर, इंद्रिय, प्राणादि व्यापार का नियामक कोई तत्व दृष्टिगोचर नहीं होता। तो क्या यह चित्त आत्मा का ही दूसरा नाम है या आत्मा से भिन्न कोई अन्य तत्व है? आत्मा को तो अपरिणामी माना गया है। उसकी वृत्तियां कभी नहीं होती, जबकि चित्त प्रतिक्षण परिणामी है। चित्त का परिणाम ही वृत्ति कहलाती है।

वास्तव में चित्त का स्वरूप बड़ा विलक्षण है। यद्यपि यह आत्मा से भिन्न तत्व है फिर भी आत्मा से पृथक करके इसको देखना अत्यंत कठिन है। यद्यपि अहं प्रत्यय के रूप में आत्मा को प्रत्यक्ष माना गया है किंतु व्यवहार में तो अहं प्रत्यय कठिन है। यद्यपि अहं प्रत्यय के रूप में आत्मा का प्रत्यक्ष माना गया है किंतु व्यवहार में तो अहं प्रत्यय चित्त की ओर ही इंगित करता है। 'अहं कामी, अहं क्रोधी, अहं गच्छामि, अहं पश्यामि' इत्यादि व्यवहारों में जो अहम् की प्रतीति हो रही है, यह स्पष्टतया चित्त का ही धर्म है, आत्मा का नहीं। आत्मा तो निष्क्रिय, कूटस्थ और विभु है। उसमें तो गमन, दर्शन, श्रवण आदि क्रियाएं संभव ही नहीं। किंतु जड़ होने से चित्त में भी ये क्रियाएं हो सकती हैं। इस प्रकार आत्मा और चित्त इन दोनों का कार्य और स्वरूप इतना मिलता–जुलता है कि दोनों को पृथक करके देखना अत्यंत कठिन प्रतीत होता है। फिर भी चित्त पृथक तत्व है और आत्मा पृथक तत्व है।

चित्त प्रकृति का सात्विक परिणाम है। प्रकृति त्रिगुणात्मक है, अतः चित्त भी त्रिगुणात्मक है। त्रिगुणात्मक होते हुए भी इसकी रचना में सत्त्व गुण की प्रधानता होती है। अतः यह प्रकृति का सात्विक परिणाम माना जाता है। चित्त के स्वरूप को जानने से पहले प्रकृति के स्वरूप को जानना आवश्यक है।

सत्त्व, रजस् और तमस् इन तीनों गुणों की साम्यावस्था का नाम प्रकृति है। साम्यावस्था का अर्थ है कि जितनी मात्रा में सत्त्व है, उतनी ही मात्रा में रजोगुण है और उतनी ही मात्रा में तमस है तो यह त्रिगुण की साम्यावस्था कहलाती है। इस साम्यावस्था में प्रकृति से कोई भी तत्व उत्पन्न नहीं होता। यह सृष्टि की प्रलयावस्था कहलाती है। जब पुनः सृष्टि काल आता है तो गुणों में क्षोभ होता है और वैषम्य उपस्थित होता है। सर्वप्रथम तीनों गुणों में सत्त्व गुण बढ़ जाता है और इसी के साथ महत्व का उदय होता है। यह महत्व ही बुद्धि या चित्त कहलाता है।

गुणों के स्वभाव में बहुत भिन्नता है। सत्त्वगुण प्रकाशशील है, रजोगुण क्रियाशील है और तमोगुण आवरणशील है। किसी भी कार्य को करने में इन तीनों की ही न्यूनाधिक उपयोगिता है। चित्त भी त्रिगुणात्मक है।

चित्त के संयोग से बुद्धि चित्त कहलाती है– 'चिद्युक्तं चित्तम्' यही चित्त शब्द की व्युत्पत्ति है। 'चिद्युक्तम्' का अर्थ यह है कि पुरुष के संपर्क से बुद्धि चेतनवत हो जाती है। इसीलिए उसे चित्त कह दिया गया है। चेतनवत होते ही चित्त में कार्य करने की क्षमता आ गई। चित्त के संपर्क से पुरुष में यह परिवर्तन आया कि वह चित्त के किए गए कार्यों को अपने कार्य मान बैठा। जो कर्तृत्व और भोक्तृत्व चित्त का धर्म था, अहंकारवश पुरुष स्वयं को कर्ता और भोक्ता मान बैठा।

टिप्पणी

प्रकृति का प्रथम परिणाम होने के कारण इसमें सबसे अधिक सत्त्व गुण होता है, अतः इसे महत् माना गया है। इसी महत्तत्व से अहंकार, एकादश इंद्रियां, पंचतंमात्रा और पंचमहाभूत उत्पन्न होते हैं। इसी महत्तत्व का नाम बुद्धि भी है, क्योंकि पदार्थों का ज्ञान इसी से होता है। इसी बुद्धि को चेतनवत होने के कारण चित्त कहा जाता है।

यद्यपि चित्त एक है किंतु त्रिगुण का परिणाम अनेकविध होने से यह अनेक प्रकार का प्रतीत होता है। चित्त को अंतःकरण या अंतरिन्द्रिय भी कहा जाता है। योगदर्शन में अंतःकरण के लिए चित्त शब्द का अधिक प्रयोग हुआ है। न्यायदर्शन में अंतःकरण के लिए मन शब्द का अधिक प्रयोग हुआ है। अद्वैत वेदांत में अंतःकरण के चार भेद स्वीकार किए गए हैं— मन, बुद्धि अहंकार और चित्त। संशय, निश्चय, गर्व और स्मरण इनकी वृत्तियां हैं—

मनोबुद्धिरहंकारश्चित्तं करणमान्तरम्।
संशयो निश्चयो गर्वः स्मरणमिति वृत्तयः।।

वेदांत

संशय मन का कार्य है, निश्चय बुद्धि करती है, अभिमान करना अहंकार का कार्य है तथा स्मरण चित्त का धर्म है, ऐसा वेदांती कहते हैं। किंतु योग दर्शन में चित्त शब्द से इन चारों का ही ग्रहण समझना चाहिए। कार्यभेद से चित्त के ही अनेक नाम हो गए हैं।

वृत्ति क्या है?

चित्त का रूपांतरण ही वृत्ति है। चित्त स्फटिक मणि के समान निर्मल तत्व है। उसका अपना कोई आकार नहीं होता। जिस विषय के संपर्क में वह आता है, उसी के आकार को धारण कर लेता है। यह विषयाकारता ही वृत्ति कहलाती है। चित्त को एक नदी ही समझो। जैसे नदी का जल वायु के वेग से प्रकम्पित होकर असंख्य तरंगों के आकार में परिणत हो जाता है, उन तरंगों में फिर गमनादि क्रिया होती है। गमन क्रिया होने पर तरंगें, इधर–उधर भ्रमण करने लगती हैं, जब वायु की गति शांत हो जाती है, तो वे तरंगें अपने प्रवाह में ही लीन हो जाती हैं। इसी प्रकार की क्षोभरूप तरंगें उठा करती हैं तथा वे तरंगें चक्षुरादि इंद्रियों से बाहर निकल कर बाह्य घटादि विषयों के आकार को धारण कर लेती हैं। जब कभी बहिर्मुख नहीं हो पाती तो स्वकारण चित्त में ही काम, क्रोध, मोह, राग, द्वेषादि रूप से परिणत होती रहती हैं। चित्त के इसी विषयाकार परिणाम को वृत्ति कहते हैं। चित्त की वृत्तियों का यह प्रवाह नैसर्गिक और अनादिसिद्ध है। चित्त की वृत्तियों का यह अनादिसिद्ध प्रवाह जब चित्त में ही विलीन होकर रुक जाता है तो यह चित्तवृत्तिनिरोध कहा जाता है।

चित्त की वृत्तियों का यह अनादिसिद्ध प्रवाह सहसा निरुद्ध नहीं किया जा सकता। इसके लिए दृढ़ अभ्यास और वैराग्य की आवश्यकता होती है। अभ्यास से वैराग्य को पुष्ट करना होता है और वैराग्य से अभ्यास में दृढ़ता आती है। इस प्रकार अभ्यास और वैराग्य के सम्मिलित अभ्यास से चित्तवृत्ति का निरोध होता है।

इस चित्तवृत्तिनिरोध के दो फल हैं— क्लेशादि का नाश और अपने स्वरूप में स्थिति। सर्वप्रथम वृत्तिनिरोध से साधक के क्लेश, कर्म और कर्माशय कर्मफल का नाश होता है। कर्मफल के नाश से आगामी जन्मों का नाश हो जाता है और फिर विवेकख्याति के उदय के साथ उसका स्वरूप में अवस्थान होता है। यही कैवल्य की अवस्था है।

टिप्पणी

चित्त की भूमियां

एक साधक की जीवनयात्रा में चित्त जिन–जिन स्तरों पर कार्य करता है अथवा जिन–जिन अवस्थाओं में कार्य कर सकता है, उन अवस्थाओं को चित्त की भूमि कहा जाता है। चित्त की ये भूमियां पांच हैं– क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। चित्त की अनेक अवस्थाएं हो सकती हैं क्योंकि जितने विचार और परिस्थितियां जीवन में उपस्थित होती हैं, उतनी ही चित्त की भूमियां हैं। मुख्य रूप से ये पांच भूमियां हैं–

1. क्षिप्त : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गंध– ये पांच इंद्रियों के विषय हैं। श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण – ये पांच ज्ञानेंद्रियां हैं। दिव्य और अदिव्य के भेद से ये इंद्रियां और विषय दस–दस प्रकार के हो जाते हैं। सुख की आशा में चित्त निरंतर इन विषयों में भ्रमण करता रहता है, किंतु इन विषयों में भ्रमण करते हुए उसे वास्तविक सुख नहीं मिलता, केवल सुख की लालसा ही बढ़ती है। कभी इस विषय में और कभी उस विषय में भ्रमण करते हुए चित्त निरंतर अस्थिर ही बना रहता है। स्थिरता उसमें कभी नहीं आ पाती। ऐसा चित्त क्षिप्त कहलाता है। धन, बल तथा यौवन के मद से मत्त मनुष्य, दैत्य, दानवादि का चित्त प्रायः क्षिप्त ही होता है। विषयासक्त पुरुषों का नितांत अस्थिर चित्त क्षिप्त कहलाता है। इसमें रजोगुण की अधिकता होती है।

2. मूढ़ : तमोगुण की अत्यंत बुद्धि से जन्य क्रोधादि के कारण जब चित्त कर्तव्य–अकर्तव्य का निश्चय करने में असमर्थ हो जाता है, तब वह चित्त मूढ़ कहलाता है। ऐसे चित्त वाला पुरुष शास्त्रविरुद्ध कर्मों का आचरण करता है तथा मादक द्रव्यों का सेवन करने वाले पुरुषों का होता है। क्षिप्त की तुलना में मूढ़ कुछ श्रेष्ठ होता है क्योंकि इसमें अस्थिरता कुछ कम होती है।

3. विक्षिप्त : सत्वगुण की वृद्धि से किसी–किसी समय स्थिरता को प्राप्त होने वाला विक्षिप्त कहलाता है। कभी–कभी प्रियजन की मृत्यु से अथवा शोकवस्तु के आघात से चित्त ईश्वरभक्ति की दिशा में चल पड़ता है, किंतु विषयों के आकर्षण से चंचलित होकर पुनः उस मार्ग को छोड़ देता है। ऐसा क्रम जीवन में कभी–कभी घटित होता है। यह चित्त क्षिप्त और मूढ़ से कुछ श्रेष्ठ होता है। ऐसा चित्त प्रायः देवताओं का तथा प्रथम बार योगभूमिका पर आरूढ़ योगजिज्ञासुओं का होता है।

4. एकाग्र : बाह्य वृत्तियां जब पूर्ण रूप से निरुद्ध हो जाती हैं और ध्येयाकार एक आभ्यंतर वृत्ति ही शेष रहती है, ऐसा चित्त एकाग्र कहलाता है। ऐसा चित्त योगियों का होता है।

5. निरुद्ध : निरंतर अभ्यास से जब योगी की उस ध्येयाकारवृत्ति का भी निरोध हो जाता है तथा जिसमें केवल संस्कार ही शेष रहते हैं, ऐसा चित्त निरुद्ध कहलाता है। ऐसा चित्त सिद्धयोगियों का होता है। यह योगी के चित्त की अंतिम भूमि है, जहां पहुंच कर चित्त कृतकार्य हो जाता है।

उपर्युक्त भूमियों में क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त चित्त योगकोटि में नहीं आता। यद्यपि क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त चित्त में भी यत्किंचित वृत्तिनिरोध होता है। जैसा कि व्यासदेव ने स्वयं कहा है कि– 'स च सार्वभौमश्चित्तस्य धर्मः' अर्थात – निरोध चित्त का सार्वभौम धर्म है, फिर भी क्षिप्त, मूढ़ और विक्षिप्त भूमि वाला चित्त योग के लिए उपादेय नहीं होता। एकाग्रभूमि चित्त ही योग की कोटि में गिना जाता है क्योंकि इसी भूमि में वृत्तियों

का निरोध होता है। एकाग्रचित्त ही संप्रज्ञात योग कहलाता है। पंचम भूमि जो निरुद्ध है, उसमें स्थित चित्त की अवस्था असंप्रज्ञात योग कहलाती है।

अर्थात संप्रज्ञात योग ध्येयस्वरूप का सम्यक साक्षात्कार कराता है, अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन पांच क्लेशों को क्षीण करता है तथा कर्मबंधनों को शिथिल करता है और सर्ववृत्तिनिरोधरूप असंप्रज्ञात योग को निकट लाता है, इसीलिए यह एकाग्रचित संप्रज्ञातयोग कहलाता है।

टिप्पणी

चित्तवृत्ति के भेद

चित्त की जिन वृत्तियों को निरोध योग कहा गया है, वे वृत्तियां पांच प्रकार की हैं– प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। यद्यपि चित्त की वृत्तियां असंख्य हैं किंतु सबका समावेश इन पांच वृत्तियों में ही हो जाता है।

प्रमाण विपर्यय विकल्पनिद्रास्मृतयः। योगसूत्र–1/6

1. प्रमाण वृत्ति

'प्रमीयतेऽनेनेति प्रमाणम्' जिससे प्रमा का ज्ञान होता है, वह प्रमाण कहलाता है अर्थात प्रमा के साधन का नाम प्रमाण है। अतः 'प्रमाकरणं' यह प्रमाण का लक्षण है। योग दर्शन में तीन ही प्रमाण हैं– प्रत्यक्ष, अनुमान और आगम।

(क) प्रत्यक्ष प्रमाण

इंद्रियप्रणालिकया चित्तस्य बाह्यवस्तूपरागात् तद्विषया सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारणप्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाण्।

योगसूत्र (व्यासभाव्य)– 1/7

इंद्रियों के द्वारा चित्त का बाह्य विषयों से संबंध होने से, उनको अपना विषय करने वाली सामान्य विशेषरूप पदार्थ के विशेष अंश को प्रधान रूप से निश्चय करने वाली वृत्ति प्रत्यक्ष प्रमाण कहलाती है।

भाव यह है कि चित्त का बाह्य विषय के साथ साक्षात संबंध नहीं हो सकता तो भी इंद्रिय द्वारा चित्त का विषय के साथ संबंध होता है। इस कथन से क्षणिक विज्ञानवादी बौद्धों के मत का प्रत्याख्यान हो जाता है, जो बाह्यविषय की सत्ता को स्वीकार नहीं करते।

कुछ दार्शनिक कहते हैं कि सामान्य ही पदार्थ है, कुछ कहते हैं कि विशेष ही पदार्थ है और कुछ का मत है कि पदार्थ सामान्य और विशेष से युक्त है। किंतु सांख्य और योग के अनुसार पदार्थ न तो सामान्य रूप है, न विशेष रूप है और न ही विशेष से युक्त है अपितु पदार्थ सामान्य विशेष रूप है। निष्कर्ष यह हुआ कि इंद्रिय द्वारा घटादि विशेष के आकार वाली जो चित्तवृत्ति है, वह प्रत्यक्ष प्रमाण है।

(ख) अनुमानप्रमाण

'अनुमेयस्य तुल्यजातीयेष्वनुवृत्तो भिन्नजातीयेभ्यो व्यावृत्तः संबंधो यस्तद्विषया सामान्यावधारणप्रधाना वृत्तिरनुमानम्।' *योगसूत्र* (व्या. भा.) – 1/7

अग्नि आदि अनुमेय साध्य का, पर्वतादि पक्ष सदृश महानसादि में रहने वाला तथा भिन्नजातीय तड़ागादि में नहीं रहने वाला जो व्याप्तिरूप संबंध है, तद्विषयक सामान्य

अंश का प्रधानरूप से विषय करने वाली जो बुद्धिवृत्ति है, वह अनुमानप्रमाण कहलाती है। जैसे– चंद्र, तारागण गति वाले हैं क्योंकि वे एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाते हैं। जैसे– चैत्र, जो एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जाता। वह गतिमान भी नहीं जाता, जैसे– विन्ध्य पर्वत।

टिप्पणी

(ग) आगमप्रमाण

आप्तेन दृष्टोऽनुमितो वाऽर्थः परत्र स्वबोधसंक्रान्तये शब्देनोपदिश्यते शब्दात् तदर्थविषया वृत्तिः श्रोतुरागमः। योगसूत्र (व्यासभाष्य) – 1/7

आप्तपुरुष के द्वारा प्रत्यक्ष अथवा अनुमान से ज्ञात विषय को दूसरे व्यक्तियों में तद्विषयक ज्ञान उत्पन्न करने के लिए शब्द के द्वारा उपदेश किया जाता है। यहां शब्द से उस अर्थ को विषय करने वाली जो श्रोता की वृत्ति है, वह आगमप्रमाण कहलाती है।

भाव यह है कि जो तत्वज्ञानी हैं, कारूण्यादि से युक्त हैं तथा यथादृष्ट और यथाश्रुत अर्थ का कथन करते हैं, वे पुरुष आप्त कहे जाते हैं। इस आधार पर भ्रमादि दोष से रहित, ईश्वर से उच्चरित वेद आगम प्रमाण माने जाते हैं। मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र यद्यपि ईश्वर से उच्चरित नहीं हैं, तथापि वेदमूलक होने से प्रमाण हैं। चार्वाक शाक्यादि के वचन अप्रमाण हैं क्योंकि वे अनाप्त हैं। यही बात भृगुमुनि ने कही है–

यः कश्चित् कस्यचिद्धर्मो मनुना परिकीर्तितः।

स सर्वोधभिहितो वेदे सर्वज्ञानमयो हि सः।।

भगवान मनु ने वर्णाश्रमधर्म का जो प्रतिपादन किया है, वह सब वेदों में प्रतिपादित है, क्योंकि मनु संपूर्ण वेद के ज्ञाता होने से सर्वज्ञ हैं।

2. विपर्ययवृत्ति

मिथ्याज्ञान को विपर्यय कहते हैं क्योंकि यह पदार्थ के यथार्थ रूप में प्रतिष्ठित नहीं होता। यह लक्षण योगसूत्र ने किया है–

विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम्। योगसूत्र– 1/8

अर्थात निजरूप में स्थित न रहने वाला जो मिथ्याज्ञान है, वह विपर्यय कहलाता है। उदाहरण के लिए शुक्ति में रजत का ज्ञान जैसा वर्तमान काल में भासता है, वैसा उत्तरकाल में शुक्ति की तरह का साक्षात्कार होने पर नहीं भासता अपितु शुक्तिरूप से भासता है। शुक्तिरजतज्ञान मिथ्याज्ञान है, अतः यह विपर्यय कहलाता है। यह विपर्ययवृत्तिरूप मिथ्याज्ञान प्रमाण नहीं।

इस विपर्ययवृत्ति को अविद्या भी कहते हैं। इस अविद्या के पांच भाग हैं, इसलिए इसे पंचपर्वा कहा जाता है। अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश– ये अविद्या के पांच पर्व हैं। इन्हीं का नाम क्लेश भी है।

3. विकल्पवृत्ति

'शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः।' यो.सू. 1/9

वस्तुशून्य होने पर भी शब्दजन्यज्ञान के प्रभाव से जो व्यवहार देखा जाता है, वह विकल्प वृत्ति है। जैसे– 'वन्ध्यापुत्रः आगच्छति' अर्थात वन्ध्या का पुत्र आ रहा है, ऐसा सुनने पर वन्ध्यापुत्र के आकार वाली चित्तवृत्ति बनती है, जबकि वन्ध्यापुत्र नहीं होता।

इसी प्रकार 'चैतन्य पुरुषस्य स्वरूपम्' अर्थात चैतन्य पुरुष का स्वरूप है, यह वाक्य सुनने पर ऐसा प्रतीत होता है जैसे चैतन्य में और पुरुष में भेद हो, जबकि चैतन्य ही पुरुष है। अतः यह भी विकल्प वृत्ति है।

टिप्पणी

इसी प्रकार 'निष्क्रियः पुरुषः' ऐसा सुनने पर पुरुष में क्रिया का अभाव प्रतीत होता है, जबकि अभाव नाम का कोई पदार्थ सांख्ययोगमत में नहीं होता। पुरुष स्वयं ही क्रिया का अभावरूप है। इसी प्रकार 'तिष्ठति बाणः' बाण ठहरता है, ऐसा सुनने पर ऐसी वृत्ति बनती है, मानो बाण कोई चेतन वस्तु हो और उसमें ठहरने की क्रिया हो रही हो। ये सब उदाहरण विकल्पवृत्ति के हैं।

विकल्पवृत्ति का अंतर्भाव प्रमाणवृत्ति में नहीं हो सकता, क्योंकि विकल्प एक आरोपित ज्ञान है। इसका अंतर्भाव विपर्यय में भी संभव नहीं है क्योंकि विपर्यय वृत्ति वस्तुशून्य नहीं होती। दूसरा कारण यह है कि विपर्यय वहां होता है, जहां दोष हो किंतु विकल्प तो दोष के बिना भी साधारण और असाधारण सभी पुरुषों को होता है। अतः विकल्प एक स्वतंत्र वृत्ति है।

शब्दज्ञानानुपाती शब्द से इसका शब्दप्रमाण में अंतर्भाव नहीं समझना चाहिए, क्योंकि शब्द प्रमाण वस्तुशून्य नहीं होता तथा आप्तवाक्य ही शब्दप्रमाण कहलाता है किंतु विकल्प वृत्ति तो आप्त और अनाप्त दोनों की ही बनती है।

4. निद्रावृत्ति

प्रमाण, विपर्यय और विकल्प के समान निद्रा भी एक वृत्ति है, ऐसा सांख्योग का सिद्धांत है। नैयायिक निद्रा को वृत्ति नहीं मानते। उनके मत में निद्रा ज्ञानाभावरूप है। निद्रा का स्वरूप पतंजलि के अनुसार इस प्रकार है–

अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा। योगसूत्र – 1/10

जाग्रत तथा स्वप्न के पदार्थों की वृत्तियों के अभाव का कारणभूत जो सत्त्व, रजस् का आवरक तमोद्रव्यरूप अज्ञान है, उस अज्ञान को विषय करने वाली वृत्ति निद्रा है। इसी चित्तवृत्ति का दूसरा नाम सुषुप्ति है। इसी निद्राविशिष्ट पुरुष को श्रुतियों में सुषुप्त तथा प्राज्ञ कहा गया है।

निद्रा में वृत्तियों का सर्वथा अभाव होता है, सुषुप्ति से जागने पर यह स्मृति होती है कि 'सुखमहमस्वाप्सम्' – मैं सुखपूर्वक सोया। 'दुःखमहमस्वाप्सम्' – मैं कष्ट से सोया, अथवा 'गाढं मूढोऽहमस्वाप्सम्' – मैं गाढ निद्रा में मूढ होकर सोया था। यह स्मृति बताती है कि निद्राकाल में सुखादि की कौन सी वृत्ति विद्यमान थी। यदि वृत्ति न होती तो सुखादि का स्मरण क्यों होता? इसलिए निद्रा भी एक वृत्तिविशेष है। स्वरूपावस्थान के लिए इसका भी निरोध आवश्यक है।

5. स्मृतिवृत्ति

अनुभव किए गए विषयों का फिर से चित्त में आरोहपूर्वक जो अनुभव मात्र विषयक चित्तवृत्ति है, वह स्मृति कहलाती है–

अनुभूतविषयासंप्रमोषः स्मृतिः। योगसूत्र 1/1

यह स्मृति दो प्रकार की होती है– अयथार्थ स्मृति और यथार्थ स्मृति। कल्पित मिथ्यापदार्थ का स्मरण करने वाली स्मृति अयथार्थ है और अकल्पित अर्थात यथार्थ

पदार्थ का स्मरण करने वाली स्मृति यथार्थ होती है। स्वप्नावस्था में जो पदार्थ का ज्ञान है, वह अयथार्थ स्मृति है और जाग्रत अवस्था में जो सत्य पदार्थ का स्मरणरूप ज्ञान है, वह यथार्थ स्मृति है।

टिप्पणी

भाव यह है कि जैसे रज्जुसर्पादि मिथ्यापदार्थ का अनुभव वास्तव में अनुभव नहीं होता अपितु अनुभवाभास होता है, वैसे ही स्वप्न में जो कल्पित विषय वाली स्मृति है, वह स्मृति नहीं किंतु स्मृत्याभास है।

इस प्रकार पूर्वोक्त प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति– ये पांच प्रकार की सभी वृत्तियां निरोद्धव्य हैं क्योंकि ये सुख–दुःख और मोहरूप हैं। सुख–दुःख और मोह तो क्लेशों के ही अंदर परिणित हैं। क्लेशरूप होने से सभी का निरोध आवश्यक है। इन वृत्तियों का निरोध होने पर संप्रज्ञातसमाधि के द्वारा असंप्रज्ञातसमाधि का लाभ योगियों को होता है।

चित्तवृत्ति निरोध के उपाय

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति– इन पांचों ही वृत्तियों का निरोध योग कहा जाता है। ये वृत्तियां क्लेश का भी कारण हैं और अक्लेश का भी कारण होती हैं। जो वृत्तियां साक्षात क्लेश की हेतु नहीं होती, वे भी क्लिष्टवृत्तियों के प्रवाह में पतित होने से क्लेश की ही हेतु मानी गई हैं। इसलिए क्लिष्ट और अक्लिष्ट दोनों ही वृत्तियों का निरोध स्वरूपावस्थान के लिए आवश्यक है।

इन वृत्तियों का निरोध कैसे किया जाए? यह योगदर्शन की एक महत्वपूर्ण समस्या है। महर्षि पतंजलि ने योगसाधकों की योग्यता का ध्यान रखते हुए वृत्तिनिरोध के अनेक उपायों का उल्लेख योगसूत्र में किया है। कुछ योगसाधक शरीर, इंद्रिय और बुद्धि से दृढ़ एवं बलवान होते हैं जो योग के विघ्नों का अतिक्रमण करते हुए भी निरंतर योगमार्ग पर अग्रसर रहते हैं। कुछ साधक योगसाधना की दृढ़ इच्छा तो रखते हैं किंतु वे शरीर, इंद्रिय और बुद्धि से दुर्बल होते हैं। वे योगांतरायों से आहत होकर बीच में ही साधना का त्याग कर सकते हैं। अतः सभी के लिए वृत्तिनिरोध के उपाय एक जैसे नहीं हो सकते। इस दृष्टि से योगसूत्रकार ने विभिन्न उपायों का उल्लेख किया है। अपनी योग्यता के अनुसार साधक कोई भी योगमार्ग चुन सकता है और लक्ष्य प्राप्त कर सकता है।

पंच क्लेश व दुःख

क्रियायोग से परिचित होने के बाद यह जिज्ञासा होती है कि वे कौन से क्लेश हैं जिनका निवारण क्रियायोग से होता है? उसके उत्तर में सूत्रकार कहते हैं कि वे क्लेश पांच हैं– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश।

अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंचक्लेशाः। योगसूत्र 2/3

ये पांच प्रकार के क्लेश वस्तुतः पांच प्रकार का विपर्यय अर्थात मिथ्याज्ञान है। यद्यपि इन पांचों क्लेशों में अविद्या ही एक मिथ्याज्ञान है किंतु अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश इन चारों क्लेशों का मूल कारण भी अविद्या ही है। अतः पांचों क्लेश अविद्या रूप ही हैं। तभी तो सूत्रकार कह रहे हैं– 'अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषाम्' अस्मितादि उत्तर क्लेशों का क्षेत्र अर्थात उत्पत्तिस्थान अविद्या ही है। यह बात पांचों क्लेशों का स्वरूप जानकर स्वतः स्पष्ट हो जाएगी।

टिप्पणी

जब ये क्लेश उदार अवस्था को प्राप्त होते हैं अर्थात जब इनका पूर्ण विकास होता है तो ये सत्त्वादि गुणों के उत्पादनरूप अधिकार को दृढ़ करते हैं, गुणवैषम्यरूप परिणाम द्वारा प्रकृति, महत्, अहंकार और तन्मात्रादि परंपरा का निष्पादन करते हैं तथा जाति, आयु और भोग का हेतु बनते हैं। इस प्रकार समस्त अनर्थपरंपरा का कारण ये क्लेश ही हैं, अतः योगसाधना के द्वारा हेय हैं।

1. अविद्या

विपरीत ज्ञान को अविद्या कहते हैं। वस्तु जैसी है उससे उलटा समझना, यही विपरीत ज्ञान है। उदाहरण के लिए अनित्य वस्तु को नित्य समझना, अपवित्र को पवित्र समझना, दुःख को सुख समझना तथा अनात्म पदार्थों को आत्मरूप से ग्रहण करना, इसी का नाम अविद्या है।

अनित्य में नित्यबुद्धि : जैसे पृथ्वी, अंतरिक्ष, द्युलोक, स्वर्गादि लोक सब अनित्य हैं, नाशवान हैं। एक दिन ये सभी काल के गाल में समा जाएंगे। इनको नित्य अर्थात अनश्वर समझ लेना अविद्या है।

अपवित्र में पवित्रबुद्धि : मनुष्य का शरीर सबसे अधिक अपवित्र वस्तु है। उसे पवित्र समझना अविद्या है। यूं तो प्रत्येक प्राणी का शरीर अपवित्र है किंतु मानवदेह से अधिक कोई शरीर अपवित्र नहीं। इसकी अपवित्रता में भाष्यकार ने छह कारण बताए हैं–

1. **स्थान**– यह शरीर मलमूत्रादि के दुर्गंध से युक्त माता के उदर में रहता है। इसलिए अपवित्र है।
2. **बीज**– माता का रज और वीर्य ही इसका बीज है। यह बहुत अपवित्र है। अपवित्र बीज से उत्पन्न होने के कारण यह शरीर अपवित्र है किंतु फिर भी इस शरीर को पवित्र समझकर अविद्यावान् पुरुष इससे मोह करते हैं।
3. **उपष्टम्भ**– खाये हुए और पिये हुए अन्न जल के परिपाक से जन्य रस रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और वीर्य– ये सात धातु इस शरीर के उपष्टम्भ अर्थात आश्रय हैं। ये आश्रय अपवित्र हैं। अतः शरीर अपवित्र है।
4. **निःस्यन्द**– मल, मूत्र, स्वेद आदि अत्यंत अपवित्र वस्तुओं का इससे स्राव होता है। अतः मानवदेह अपवित्र माना गया है।
5. **निधन**– कितनी ही रक्षा करने पर इसकी मृत्यु अवश्य होती है। मृत देह को छू लेने पर स्नान करना पड़ता है। अतः उसे अपवित्र माना गया है।
6. **शौच का आधान**– मानवदेह इतना अपवित्र है कि प्रतिदिन और प्रतिक्षण इसकी सफाई करनी पड़ती है। जैसे एक कामिनी स्त्री अपने शरीर की अंगराग आदि के द्वारा सुगंधिता की कल्पना करती है वैसे ही प्रत्येक मनुष्य भी स्नान, चंदनानुलेपन, दंतधावन आदि के द्वारा प्रतिदिन इसे स्वच्छ रखने का प्रयास करता है। यदि एक दिन भी इसकी सफाई न करे तो इससे दुर्गंध उठने लगे।

इन उपर्युक्त छह कारणों से शरीर अत्यंत अपवित्र वस्तु है। इसे पवित्र समझना और पवित्र समझकर इससे मोह करना अविद्या है। अपवित्र होते हुए भी कैवल्य का साधन यह देह ही है। इस देह से ही योगसाधना द्वारा कैवल्य की प्राप्ति की जाती है। इसलिए इसकी रक्षा की आवश्यकता है किंतु अपवित्रता में किसी की विप्रतिपत्ति नहीं। फिर भी अविद्या का प्रभाव देखिए कि कामी पुरुष कामिनी के देह को क्या समझ लेता

टिप्पणी

है। वह समझता है कि यह कामिनी कन्या मानो साक्षात चंद्रमा की नई कला ही है, मानो ब्रह्मा जी ने अपने हाथों से मधु और अमृत के अवयवों से इसे बनाया है। मानो चंद्रमंडल से ही निकल कर चली आ रही है। नीलकमल के पत्तों के समान इसकी नीली आंखें हैं, मानो अपने हाव–भावों से जीवलोक के मनुष्यों को यह सांत्वना दे रही है कि तुम लोग डरो नहीं, मैं तुमको सुखी रखूंगी। इस प्रकार अविद्या के प्रभाव से लोगों ने कामिनी के दुर्गंधितयुक्त शरीर में कैसी कल्पना कर डाली। यही है अपवित्र में पवित्र बुद्धिरूप अविद्या।

दुःख से सुखबुद्धि : संसार के समस्त सुख वास्तव में दुःख ही हैं। विषमिश्रित मधु के समान ये परिणाम में दुःख ही प्रदान करते हैं, फिर भी लोग इसे सुख कहते हैं। यही है अविद्या। संसार में सुख तो कुछ है ही नहीं। जिसे लोग सुख समझते हैं वह सुखाभास है। जैसा आगे सूत्रकार स्वयं कहेंगे कि परिणाम ताप और संस्कारों के कारण विवेकी पुरुष के लिए संसार में सब कुछ दुःख ही है। अविवेकी पुरुष ही संसार में सुख देखते हैं–

परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च

दुःखमेव सर्वं विवेकिनः। —योगसूत्र 2/15

अनात्म में आत्मबुद्धि : शरीर इंद्रिय, प्राण, मन, बुद्धि या आत्मा नहीं हैं अपितु ये आत्मा के कोश हैं। इन्हें आत्मा समझना अविद्या है। प्रायः अविवेकी पुरुष शरीरादि को ही आत्मा समझते हैं और कल्याणमार्ग से दूर हो जाते हैं।

इस प्रकार यह चार प्रकार की अविद्या अन्य क्लेशसंतान का मूलकारण है। यद्यपि अविद्या अनंत प्रकार की है फिर भी जन्ममरणादि संसार की बीजभूत जो अविद्या है, वह चार प्रकार की है।

अविद्या भावरूप है अभावरूप नहीं

सांख्य–योग मत में अविद्या को भावरूप तत्व माना गया है अभावरूप नहीं अर्थात विद्या का अभाव अविद्या नहीं अपितु विपरीत ज्ञान या मिथ्याज्ञान का नाम अविद्या है। मिथ्याज्ञान भी एक प्रकार का ज्ञान नहीं है। जैसे अमित्र शब्द का अर्थ मित्र का अभाव नहीं है, न ही मित्र मात्र इसका अर्थ है अपितु मित्र का विरोधी शत्रु अमित्र–शब्द का अर्थ है। इसी प्रकार अगोष्पद का अर्थ गाय के खुर का अभाव नहीं है अपितु गाय के खुर से भिन्न विशाल स्थान इसका अर्थ है। इसी प्रकार अविद्या का अर्थ न तो प्रमाण है न प्रमाणाभाव है अपितु विद्या का विपरीत दूसरा ज्ञान है। यदि विद्या का अभाव ही अविद्या होती तो यह क्लेशरूप संसार का हेतु न बनती तथा न ही चित्त का आच्छादन कर सकती थी। किंतु यह चित्त का आवरण करती है तथा चित्त के माध्यम से आत्मा को दुःख प्रदान करती है।

नैयायिक लोग अविद्या में नञ् तत्पुरुष मानकर विद्या के अभाव को अविद्या कहते हैं। इसी प्रकार वे अंधकार को भी प्रकाश का अभाव कहते हैं।

अद्वैतवेदांती अविद्या को विपर्यय ज्ञान का उपादान कारण कहते हैं। उनका मानना है कि जैसे शुक्ति में रजत विषयक विपर्यय ज्ञान का उपादान कारण साक्षी चेतन में रहने वाली अविद्या है, वैसे ही जगद्विषयक विपर्ययज्ञान का उपादान कारण ब्रह्मनिष्ठ अविद्या है।

टिप्पणी

सांख्य–योग का मत इन दोनों से थोड़ा भिन्न है। अविद्या एक भाव पदार्थ है क्योंकि भावरूप में इसकी प्रतीति आबालवृद्ध सभी को होती है। यह विपर्ययज्ञान का कारण भी है तथा स्वयं भी विपर्ययज्ञान है। इसी बात को भाष्यकार कह रहे हैं–

अविद्या न प्रमाणं न प्रमाणाभावः किंतु

विद्याविपरितं ज्ञानान्तरमविद्येति। — व्यासभाष्य 2/5

2. अस्मिता

बुद्धि और पुरुष में अभिन्नता न रहने पर भी अभिन्नता के जैसी प्रतीति होना अस्मिता है। अविद्यारूप होने से यह भी एक क्लेश है। इसी बात को सूत्रकार ने इस प्रकार कहा है–

दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता। — योगसूत्र 2/6

भाव यह है कि पुरुष दृक्शक्ति है और बुद्धि दर्शनशक्ति है। 'पश्यतीति दृक्' इस व्युत्पत्ति से पुरुष द्रष्टा होने के कारण दृक्शक्ति कहलाता है। दृश्यते इति दर्शनम्– अर्थात जो देखा जाए उसे दर्शन कहते हैं, इस व्युत्पत्ति के अनुसार बुद्धि दर्शनशक्ति अर्थात भोग्य कहलाती है। ये दोनों परस्पर अत्यंत भिन्न हैं, किंतु जब इन दोनों में एकरूपता की प्रतीति होती है तब उसे अस्मिता कहते हैं। इसी का दूसरा नाम भोग है।

अस्मिता का ही दूसरा नाम अहंभाव या अहंकार है। 'मैं हूं', 'मैं सुखी हूं', 'मैं दुःखी हूं', इत्यादि आकार अस्मिता के हैं। इसकी चर्चा भगवान ने गीता में की है–

इदमद्य मया लब्धमिमं प्राप्स्ये मनोरथम्।

इदमस्तीदमपि भविष्यति पुनर्धनम्।।

असौ मया हतः शत्रुर्हनिष्ये चापरानपि।

ईश्वरोऽहमहं भोगी सिद्धोऽहं बलवान् सुखी।।

आढयोऽभिजनवानस्मि कोध्न्योघस्ति सदृशो मया।

यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्य इत्यज्ञानविमोहिताः।। गीता 16/13–15

अस्मिता का स्वरूप है– ''मैंने आज यह पाया है कल दूसरा मनोरथ प्राप्त कर लूंगा, इतना धन आ चुका है कल और भी होगा, इस शत्रु को तो मैंने मार दिया, दूसरों को भी मार दूंगा। मैं ईश्वर हूं, मैं भोगी हूं, बलवान् हूं, सुखी हूं, मैं धनवान हूं, उच्च कुल में उत्पन्न हुआ हूं, मुझ जैसा भला अन्य कौन है, मैं यज्ञ करूंगा, दान करूंगा, आनंद का भोग करूंगा'' इस प्रकार अज्ञान से मोहित लोग कल्पना करते हैं।

यद्यपि अस्मिता और अविद्या में भिन्नता है फिर भी कार्य–कारण में अभेद मानकर अस्मिता को अविद्या कहा गया है। अविद्या कारण है, अस्मिता कार्य है, किंतु यह मिथ्याज्ञान है। अतः क्लेश कहे गए हैं।

इस अस्मिता को श्रुति में हृदय की ग्रंथि कहा गया है जिसका भेदन विवेकेख्यातिरूप विद्या से होता है।

भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः।

क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे।। –मुण्डक 2/2/8

टिप्पणी

3. राग

'सुखानुशयी रागः।' योगसूत्र 2/7

सुख भोगने के पश्चात् अंतःकरण में एक प्रकार की जो अभिलाषा उत्पन्न होती है, उसे राग कहते हैं। जिस पुरुष ने सुख का अनुभव किया है उसे सुख और स्त्री आदि सुख साधनों के प्रति एक लोभ उत्पन्न होता है जिसके प्रभाव से वह पुरुष सदा उसी सुख से और सुखसाधन से पृथक नहीं होना चाहता, वही लोभ राग कहलाता है। यह भी एक प्रकार का क्लेश है।

4. द्वेष

'दुःखानुशयी द्वेषः।' योगसूत्र 2/8

जिस पुरुष ने दुःख का अनुभव किया है उस पुरुष को दुःखस्मृतिपूर्वक दुःख में तथा उसके साधन शत्रु आदि के विषय में जो एक विशेष प्रकार का क्रोध उत्पन्न होता है, वह द्वेष कहलाता है।

रागद्वेष दोनों ही अज्ञानात्मक हैं। सुख में राग और दुःख में द्वेष इसी अज्ञान के कारण होता है क्योंकि रागी और द्वेषी पुरुष यह जानता ही नहीं कि सुख और दुःख का वास्तविक कारण क्या है। वह समझता है कि वास्तविक सुख का कारण बाह्य साधन हैं। बाह्य विषयों और बाह्य साधनों से सुख–दुःख नहीं मिलता। वास्तविक सुख आत्मज्ञान में है और दुःख का कारण हमारे अशुभ कर्म हैं। इसी अज्ञान के कारण राग और द्वेष जन्म लेते हैं। इसलिए ये दोनों ही क्लेश हैं।

5. अभिनिवेश

मृत्यु के भय को अभिनिवेश कहते हैं। सभी प्राणी जीना चाहते हैं। सभी चाहते हैं कि मेरा अभाव कभी न हो, मैं सदा ही विद्यमान रहूं। मृत्यु का भय यह सिद्ध करता है कि यह प्राणी पूर्व जन्मों में मरता आया है क्योंकि जिसने कभी मृत्यु का अनुभव नहीं किया है, वह मृत्यु से भला क्यों डरेगा। इसलिए उक्त मरणभय की स्मृति यह सिद्ध करती है कि पूर्वजन्म में इस प्राणी ने मरणदुःख का अनुभव किया है, क्योंकि अनुभव के बिना स्मृति असंभव है। इसलिए अभिनिवेश को स्वरसवाही कहा गया है। स्वरसवाही का अर्थ है पूर्वजन्म के मरणभय को अनुभव के संस्कारों से स्वभावतः वहन करने वाला। इससे पूर्वजन्म की सिद्धि होती है।

मृत्यु का यह भय मनुष्य को ही नहीं अपितु तत्काल उत्पन्न हुए कृमि, कीट, पतंगादि सभी प्राणियों में समानरूप से व्याप्त है। मनुष्यों में भी केवल विद्वान को ही नहीं अपितु अत्यंत मूढ़ नवजात बालक को भी मृत्यु भय होता है। इसीलिए सूत्रकार ने अभिनिवेश का यह स्वरूप बताया है–

स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढोऽभिनिवेशः। – योगसूत्र 2/9

विद्वान और अविद्वान दोनों को समानरूप से मृत्यु का भय इसलिए है क्योंकि मरणदुःख के अनुभव की वासना दोनों में समान है।

यहां विद्वान का अर्थ शास्त्रों का अध्ययन करने वाले विद्वान् समझना चाहिए। जो विद्वान संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि में सिद्ध हैं उनको मृत्युभय नहीं होता। श्रुति कहती है–

आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् न बिभेति कुतश्चन्।

टिप्पणी

जो विद्वान केवल शास्त्रों का अध्ययन करते हैं, समाधिनिष्ठ नहीं हैं, उन्हें ही मृत्युभय पीड़ित करता है। इस प्रकार यह अभिनिवेश अत्यंत व्यापक क्लेश है। केवल पढ़ने–पढ़ाने से ही यह दूर नहीं होता। इसके लिए तो चित्तवृत्तिनिरोध संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात योग का ही अभ्यास अपेक्षित है।

चित्त विक्षेप के कारण

चित्त विक्षेप के नौ अंतराय हैं – व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रांतिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व और अनवस्थितत्व। उक्त नौ अंतराय ही चित्त को विक्षिप्त करते हैं। अतः ये योगविरोधी हैं। चित्तवृत्तियों के साथ इनका अन्वयव्यतिरेक है। अर्थात इन विक्षेपों के होने पर प्रमाणादि वृत्तियां होती हैं। जब ये नहीं होते तो वृत्तियां ही नहीं होती। वृत्तियों के अभाव में चित्त स्थिर हो जाता है। इस प्रकार नौ अंतराय ही चित्तविक्षेप के कारण हैं।

1. व्याधि (Disease)

धातुरसकरणवैषम्यम् व्याधिः – धातुवैषम्य, रसवैषम्य तथा करणवैषम्य को व्याधि कहते हैं। वात, पित्त और कफ ये तीन धातुएं हैं। इनमें से यदि एक भी कुपित होकर न्यून या अधिक हो जाए तो यह धातुवैषम्य कहलाता है। जब तक देह में वात, पित्त और कफ समान मात्रा में हैं तो इन्हें धातु कहा जाता है। जब इनमें विषमता आ जाती है तब इन्हें दोष कहा जाता है। धातुओं की समता में शरीर स्वस्थ रहता है। विषमता के कारण रोगी हो जाता है।

खाये हुए अन्न का और पिये हुए जल का जब अच्छी तरह से परिपाक नहीं हो पाता तो यह रसवैषम्य कहलाता है। रसवैषम्य शरीर को रोगी बनाता है। ज्ञानेंद्रियों तथा कर्मेंद्रियों की शक्ति का मंद हो जाना करणवैषम्य है। योगसाधना के लिए सशक्त और दृढ़ इंद्रियों की आवश्यकता होती है। धातु, रस तथा करण इन तीनों के वैषम्य को व्याधि कहते हैं। रोगी शरीर से समाधि का अभ्यास संभव नहीं है। अतः व्याधि समाधि का अंतराय है।

व्याधि और आधि में थोड़ा अंतर है। व्याधि दैहिक रोग है। खांसी, दमा, ज्वर, अतिसार, क्षय, अपस्मार आदि व्याधियां कहलाती हैं। मानसिक रोग को आधि कहा जाता है। स्मरणशक्ति का अभाव, उन्माद, अरुचि, घृणा, काम, क्रोधादि का आधिक्य आदि मानसिक रोग आधि कहलाते हैं। व्याधि शब्द में लगा हुआ 'वि' उपसर्ग उसे आधि से पृथक करता है। 'विशेषेण आधीयते अनुभूयते मनसा इति व्याधिः' – चूंकि शारीरिक रोग मन को आधि की तुलना में अधिक कष्टकारक अनुभूत होता है, इसलिए शारीरिक रोग का व्याधि नाम सार्थक सिद्ध होता है। व्याधिग्रस्त शरीर से समाधि का अभ्यास नहीं हो सकता।

2. स्त्यान (Dullness)

'स्त्यानं अकर्मण्यता चित्तस्या'– चित्त की अकर्मण्यता को स्त्यान कहते हैं। समाधि का अभ्यास करने की इच्छा तो चित्त में होती है किंतु वैसा सामर्थ्य उसमें नहीं होता। केवल इच्छा से योग सिद्ध नहीं होता, अपितु उसमें योगाभ्यास की शक्ति होनी चाहिए। कामादि दोष चित्त को इतना दुर्बल बना देते हैं कि इच्छा होने पर भी वह योग की दिशा में उन्मुख नहीं हो सकता। पत्नी का मोह, पुत्रों की आसक्ति, विषयभोग की लालसाएं

तथा जीविकोपार्जन के व्यापार चित्त को उलझाए रखते हैं कि चित्त अकर्मण्यता अनुभव करता है। अकर्मण्यता समाधि में अंतराय है।

टिप्पणी

3. संशय (Doubt)

'उभयकोटिस्पृग् विज्ञानं संशयः।' – उभयकोटिविषयक ज्ञान संशय कहलाता है। ऐसा भी हो सकता है, ऐसा नहीं भी हो सकता है, इस प्रकार का ज्ञान संशय है। योग के विषय में जब साधक को कभी–कभी यह संशय होता है कि मैं योग का अभ्यास कर सकूंगा या नहीं? क्या मुझे सफलता मिलेगी? क्या समाधि से कैवल्य प्राप्त हो सकेगा? हो सकता है मेरा परिश्रम व्यर्थ चला जाए? तब यह संशयात्मक ज्ञान योग का विघ्न बन जाता है। योग के लिए तो निश्चयात्मक दृढ़ ज्ञान ही अपेक्षित है। तत्वज्ञान का एक मात्र साधन समाधि है। समाधि से ही कैवल्य प्राप्त होता है। मैं एक दिन अवश्य ही सफलता प्राप्त करूंगा, जब तक ऐसा दृढ़ विश्वास नहीं होगा तब तक समाधि की सिद्धि संभव नहीं। संशय समाधि का अंतराय है।

4. प्रमाद (Procrastination)

'समाधिसाधनानामभावनम् प्रमादः।' – समाधि के साधनों में उत्साहपूर्वक प्रवृत्ति न होना प्रमाद कहलाता है। समाधि का अभ्यास प्रारंभ कर देने पर उसमें वैसा ही उत्साह और दृढ़ता निरंतर बनी रहनी चाहिए जैसा उत्साह प्रारंभ में था। प्रायः युवावस्था का मद, धन और प्रभुत्व का दर्प तथा शारीरिक सामर्थ्य का मद साधक के उत्साह को शिथिल कर देता है। अतः प्रमाद समाधि का अंतराय है।

5. आलस्य (Laziness)

'आलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरुत्वादप्रवृत्तिः।'– काम के आधिक्य से शरीर तथा तमोगुण के आधिक्य से चित्त भारीपन का अनुभव करता है। शरीर और चित्त के भारी होने से समाधि के साधनों में प्रवृत्ति नहीं होती। इसी का नाम आलस्य है। प्रमाद और आलस्य में बहुत अंतर है। प्रमाद प्रायः अविवेक से उत्पन्न होता है। आलस्य में अविवेक तो नहीं होता किंतु गरिष्ठ भोजन के सेवन से शरीर और चित्त भारी हो जाता है। ज्ञानवान पुरुष भी आलसी हो सकते हैं किंतु ज्ञानवान पुरुष प्रमादी नहीं होते। प्रमाद में यौवन, धन और प्रभुत्व का दर्प हेतु होता है जबकि आलस्य का कारण तमोगुण तथा गरिष्ठ और कफकारक भोजन है। यह आलस्य योग का अंतराय है। निद्रा का वेग मनुष्य को आलसी बना देता है। प्रातःकाल में स्नान, ध्यान, जप, तप, स्वाध्याय आदि के लिए शरीर और चित्त का हलका होना अनिवार्य है। आलसी व्यक्ति समाधि का अभ्यास नहीं कर सकता।

6. अविरति (Worldly mindedness)

'चित्तस्य विषयसंप्रयोगात्मा गर्धः अविरतिः।'– शब्दादि विषयों के भोग से तृष्णा उत्पन्न होती है। तृष्णा वैराग्य की शत्रु है। समाधि के लिए वैराग्य प्रमुखतम साधन है। अतः वैराग्याभाव का न होना योग का अंतराय है। कामिनी का अप्रतिम रूपसौंदर्य कभी–कभी ज्ञानवान् पुरुषों को भी रागी बना देता है। पत्नी के कोमल वचन, उनके अंगों का मोहक स्पर्श, पुष्पादि की गंध तथा स्वादिष्ट भोज्य पेय पदार्थ आदि व्यंजनों का रस कभी–कभी तत्वज्ञान को भी आवृत्त करके साधक को संसार में आसक्त बना देता है। विषयों के प्रति यह आसक्ति ही अविरति है। यह अविरति योग का महान विघ्न है।

टिप्पणी

7. भ्रांतिदर्शन (Illusion)

'भ्रांतिदर्शनं विपर्ययज्ञानम्।' – अर्थात मिथ्याज्ञान को भ्रांतिदर्शन कहते हैं। एक वस्तु में अन्य वस्तु का ज्ञान ही मिथ्याज्ञान है। जब साधक योग के साधनों को असाधन और असाधनों को साधन समझने लगता है तो यह भ्रांतिदर्शन योग का विघ्न बन जाता है।

भ्रांतिदर्शन और संशय में यह अंतर है कि संशय में निश्चय का अभाव होता है। यह ऐसा है या ऐसा नहीं है, यह अनिश्चयात्मक ज्ञान संशय है। भ्रांतिदर्शन में निश्चय होता है। अविवेकी पुरुष वस्तु को अवस्तु और अवस्तु को निश्चित रूप से वस्तु मान बैठता है। यही दोनों में अंतर है।

8. अलब्धभूमिकत्व (Inability to find any stage of yoga)

'अलब्धभूमिकत्वं समाधिभूमेरलाभः।'– समाधि की किसी भी भूमि की प्राप्ति न होना भी योग में विघ्न है। समाधि की चार भूमियां हैं– सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार और निर्विचार। इन्हीं का नाम क्रमशः मधुमती, मधुप्रतीका, विशोका तथा संस्कारशेषा है। योगाभ्यास जैसे–जैसे आगे बढ़ता जाता है वैसे–वैसे योगी को इन भूमियों की प्राप्ति होती जाती है। जब प्रथम भूमि की प्राप्ति हो जाती है तो योगी का उत्साह बढ़ जाता है। वह सोचता है कि जब प्रथम भूमि प्राप्त हो गई है तो अन्य भूमियां भी अवश्य ही प्राप्त होंगी। यह सोचकर वह दुगने उत्साह से साधना में लीन हो जाता है। किंतु निरंतर अभ्यास करते रहने पर भी जब साधक को प्रथम भूमि भी प्राप्त नहीं होती तो उसका उत्साह शिथिल पड़ जाता है। वह सोचता है कि जब इतना प्रयास करने पर भी अभी तक समाधि की प्रथम भूमि भी प्राप्त नहीं हुई तो भविष्य में भी संभवतः प्राप्त न हो। ऐसा सोचकर वह साधना को बीच में ही छोड़ देता है। अतः योग की भूमियों की प्राप्ति साधक को अवश्य होनी चाहिए तभी वह आगे की साधना को निरंतर रखने के लिए उत्साहपूर्वक लगा रहेगा। अतः अलब्धभूमिकत्व भी योग का अंतराय है।

9. अनवस्थितत्व (Instability)

'लब्धायां भूमौ चित्तस्याप्रतिष्ठा अनवस्थितत्वम्।' यदि किसी प्रकार मधुमती आदि भूमियों में से किसी एक की प्राप्ति हो जाए किंतु उसमें निरंतर चित्त की स्थिति न हो तो यह अनवस्थितत्व कहलाता है। बार–बार चित्त उस भूमि का स्पर्श करके लौट आता है, उसमें कुछ काल तक स्थिर नहीं हो पाता तो भी योगसाधक का उत्साह कम हो सकता है। उपलब्ध भूमि में कुछ काल तक चित्त का स्थिर रहना अवश्य ही अपेक्षित है। अंतिम भूमि का लाभ होने पर ही द्रष्टा को अपने स्वरूप की स्थिति प्राप्त होती है।

इस प्रकार ये नौ चित्तविक्षेप योग के अंतराय कहलाते हैं। इन्हीं को चित्त के मल अथवा योगप्रतिपक्ष भी कहा जाता है।

उपर्युक्त नौ अंतरायों के अतिरिक्त पांच विघ्न (दुःख, दौर्मनस्य, संगकम्पन, श्वास और प्रश्वास) भी हैं जो व्याधि आदि चित्तविक्षेपों के साथ ही होते हैं अर्थात जब–जब व्याधि आदि की उपस्थिति होती है तब–तब इनकी उपस्थिति भी अनिवार्य रूप से होती है। इसलिए इन्हें विक्षेपों का सहभू (साथी) कहा गया है।

1.3.3 हठयोग, भक्तियोग एवं कर्मयोग

(क) हठयोग : सामान्यतया हठयोग का अर्थ सामान्य जन जबरदस्ती किए जाने वाले अर्थात शरीर की शक्ति के विपरीत बल लगाकर किए जाने वाले योग के अर्थ में लेते

हैं, परंतु यह उचित नहीं है। 'हठ' शब्द का अर्थ शास्त्रों में प्रतीकात्मक रूप से लिया गया है। हठयोग की परिभाषा देते हुए योग ग्रंथों में कहा गया है—

टिप्पणी

हकारः कीर्तितः सूर्यष्ठकारश्चन्द्र उच्यते।
सूर्याचन्द्रमसौर्योगाद्धठयोगो निगद्यते।।

हठ शब्द 'ह' और 'ठ' इन दो अक्षरों से मिलकर बना है। इनमें 'हकार' का अर्थ सूर्य स्वर या पिंगला नाड़ी से है और 'ठकार' का अर्थ चंद्र स्वर या इड़ा नाड़ी से लिया गया है। इन सूर्य और चंद्र के मिलन से वायु सुषुम्ना में चलने लगता है, जिससे मूलाधार में सोई हुई कुंडलिनी शक्ति जाग्रत होकर सुषुम्ना नाड़ी में प्रवेश कर ऊपर की ओर चलने लगती है तथा षट्चक्रों का भेदन करती हुई ब्रह्म रंध्र में पहुंचकर ब्रह्म के साथ एकत्व को प्राप्त होती है। यही आत्म और परमात्म तत्व का मिलन है। इस मिलन से साधक के अज्ञान का नाश होकर ज्ञान का उदय होता है। दुःख की आत्यंतिक निवृत्ति होती है। इसीलिए इस मिलन की अवस्था को 'योग' कहा गया है। यही 'हठयोग' का वास्तविक अर्थ है।

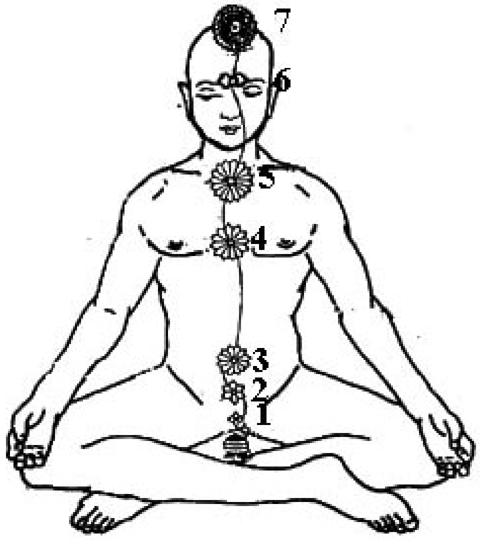

शरीर, मन व प्राण को वश में करना हठयोग का लक्ष्य है, क्योंकि शरीर और मन की साधना किए बिना आध्यात्मिक लाभ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

हठयोग में इस मिलन को प्राप्त करने के लिए आसन, प्राणायाम, मुद्रा, नादानुसंधान आदि अंगों का वर्णन किया गया है। 'हठयोग प्रदीपिका' में मुख्य रूप से चार अंगों का वर्णन किया गया है, जो इस प्रकार हैं— 1. आसन, 2. प्राणायाम, 3. मुद्रा, 4. नादानुसंधान।

घेरण्ड संहिता में हठयोग के साधनों का वर्णन करते हुए कहा गया है—

शोधनं दृढ़ता चैव स्थैर्यं धैर्यं च लाघवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्य सप्तसाधनम्।।

शरीर रूपी घट को शुद्ध करने के लिए योगाभ्यासी पुरुष को सात साधनों का अभ्यास करना चाहिए जिनका वर्णन निम्न प्रकार से है—

1. शरीर की शुद्धि करना, 2. शरीर को दृढ़ करना, 3. शरीर में स्थिरता लाना, 4. धैर्य की प्राप्ति करना, 5. शरीर को हलका करना, 6. प्रत्यक्ष करना और 7. निर्लिप्तता।

ये सात साधन किनसे प्राप्त होते हैं, इसका वर्णन करते हुए 'घेरण्ड संहिता' में कहा गया है–

टिप्पणी

षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद् दृढम्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायामाल्लाघवं च ध्यानात् प्रत्यक्षमात्मनः।
समाधिना निर्लिप्तं च मुक्तिरेव न संशयः।।

षट्कर्मों के द्वारा शरीर की शुद्धि होती है, आसनों से शरीर दृढ़ होता है, मुद्राओं से शरीर में स्थिरता आती है, प्रत्याहार से धैर्य की प्राप्ति होती है, प्राणायाम के द्वारा शरीर लघुता को प्राप्त होता है तथा समाधि से चित्त निर्लिप्त होता है, जिससे अवश्य ही मुक्ति हो जाती है। इसमें कोई संशय नहीं है।

हठयोग के साधन

षट्कर्म– शरीर की शुद्धि की छह क्रियाएं हठयोग में वर्णित की गई हैं। इनसे शरीर की आंतरिक शुद्धि होती है। इनसे शरीर के तीन दोष (वात, पित्त, कफ) सम अवस्था में आ जाते हैं। शरीर के विभिन्न रोग षट्कर्मों के द्वारा दूर हो जाते हैं। ये षट्कर्म हैं– धौति, नेति, बस्ति, नौलि, त्राटक और कपालभाति।

1. **धौति** – धौति के चार भेद घेरण्ड संहिता में दिए गए हैं, जो इस प्रकार हैं– 1. अंतः धौति, 2. दंत धौति, 3. हृद धौति, 4. मूलशोधन धौति।

   1. अंतः धौति के पुनः भेद हैं–

      क) वातसार, ख) वारिसार, ग) बहिव्सार, घ) बहिष्कृत

   2. दंत धौति के भी चार भेद हैं–

      क) दंत मूल, ख) जिह्वामूल, ग) कर्ण रंध्र, घ) कपाल रंध्र

   3. हृद धौति के तीन भेद हैं–

      क) दंड धौति, ख) वमन धौति, ग) वस्त्र धौति

   4. मूलशोधन धौति (गणेश क्रिया) में

      क) अश्विनी मुद्रा करते हैं।

      ख) अंगुली डाल कर गुदा की सफाई करते हैं।

2. **नेति**– नेति क्रिया के मुख्य रूप से जल नेति और सूत्र नेति दो प्रकार हैं। इसके अतिरिक्त दुग्ध और घृत नेति आदि का भी वर्णन प्राप्त होता है।
3. **वस्ति** – वस्ति क्रिया के दो भेद हैं– 1. जल वस्ति, 2. पवन वस्ति (स्थल वस्ति)।
4. **नौलि** – नौलि के दो प्रकार हैं – 1. दक्षिण नौलि, 2. वाम नौलि।
5. **त्राटक** – त्राटक के भी मुख्यतः दो भेद हैं – 1. बाह्य, 2. अंतरोधक।
6. **कपालभाति** – कपालभाति के तीन भेद हैं– 1. वातक्रम, 2. व्युत्क्रम, 3. शीत क्रम

षट्कर्मों का अभ्यास प्रत्येक साधक के लिए अनिवार्य है, अर्थात जिनकी आंतरिक शुद्धि नहीं है, जिनके त्रिदोष वात, पित्त और कफ साम्यावस्था में नहीं है, जिनकी धातुएं शुद्ध रूप में शरीर में नहीं बन रही हैं, उनके लिए षट्कर्म आवश्यक है। इससे आंतरिक शुद्धि हो जाती है।

टिप्पणी

आसनों का वर्णन करते हुए कहा जाता है कि पुराणों में वर्णित 84 लाख योनियों के आधार पर इतने ही आसन हो सकते हैं, किंतु यह तर्कसंगत नहीं है। साधना के लिए शास्त्रों में लगभग 84 आसनों का वर्णन किया गया है। घेरण्ड संहिता में केवल 32 आसनों का उल्लेख किया गया है, जिनमें पद्मासन, सिद्धासन को साधना के लिए सर्वोत्तम आसन माना गया है, क्योंकि इनके अभ्यास से साधक को अनेक सिद्धियां प्राप्त हो जाती हैं, काम आदि विकार शांत होते हैं और साधक आध्यात्मिक क्षेत्र में निरंतर उन्नति करता है।

मुद्राओं में शारीरिक एवं मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है। मुद्रा शरीर की एक विशेष स्थिति का नाम है। वैसे तो अनेकों मुद्राएं वर्णित की गई हैं। हठयोग प्रदीपिका में दस मुद्राओं का वर्णन प्राप्त होता है। घेरण्ड संहिता में 25 मुद्राओं का वर्णन मिलता है। इनमें महामुद्रा, महाबंध, खेचरी, उड्डियान, मूलबंध, जालंधर बंध, विपरीतकरणी, वज्रोली, शक्तिचालिनी आदि मुख्य मुद्राएं हैं। हठयोग में कुंडलिनी शक्ति के जागरण के लिए मुद्राओं का अभ्यास किया जाता है।

हठयोग के ग्रंथ 'हठ प्रदीपिका' में अष्टविध प्राणायामों का उल्लेख मिलता है। ये 8 प्राणायाम हैं– 1. सूर्य भेदन, 2. उज्जायी, 3. भस्त्रिका, 4. भ्रामरी, 5. शीतली, 6. सीत्कारी, 7. मूर्छा, 8. प्लाविनी।

प्राणायाम से शरीर हल्का हो जाता है। शरीर की नस–नाड़ियां विकार रहित हो जाती हैं तथा चित्त की चंचलता दूर होती है।

प्रत्याहार इंद्रियों पर संयम का नाम है। इससे साधक में धैर्य की उत्पत्ति होती है तथा सांसारिक विषयों के प्रति आसक्ति भाव का नाश होता है।

ध्यान से आत्मसाक्षात्कार होता है। हठयोग में पदस्थ, पिंडस्थ, रूपस्मक एवं रूपातीत चार प्रकार के ध्यानों का वर्णन मिलता है। अन्य दो प्रकार के सगुण व निर्गुण ध्यान का उल्लेख भी प्राप्त होता है। ध्यान से साक्षात्कार के पश्चात जब साधक निरंतर अभ्यास करता है तो उसका चित्त पूर्णतया निर्लिप्त हो जाता है। यही समाधि की अवस्था है। इसके पश्चात साधक को मुक्ति की प्राप्ति होती है। समाधि की अवस्था प्राप्त करना ही हठयोग का उद्देश्य है।

हठयोग प्रदीपिका में स्वात्माराम जी योगी ने कहा भी है–

केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।। (1/2)

राजयोग अर्थात समाधि की अवस्था प्राप्त करने के उद्देश्य से ही हठयोग विद्या का उपदेश किया जा रहा है।

हठयोग प्रदीपिका के चतुर्थ उपदेश के 103 वें श्लोक में कहा गया है–

सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये। (4/403)

हठ और लय की सभी प्रक्रियाएं राजयोग की प्राप्ति के लिए होती हैं। इस प्रकार हठयोग की पूर्णता समाधि में ही है। समाधि के बिना हठयोग पूर्ण नहीं होता। यह शरीर और मन को वश में करने की विद्या है जिसमें आत्मसाक्षात्कार संभव होता है।

हठयोग साधना के अंग एवं लक्षण

1. **आरोग्य प्राप्ति**– धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों को सिद्ध करने के लिए शरीर का स्वस्थ होना नितांत आवश्यक है। इसी संदर्भ में हठयोगियों ने मोक्ष के साधनार्थ आरोग्य प्राप्ति हेतु हठयोग की साधना को विकसित किया।

2. **राजयोग की तैयारी हेतु**– हठयोग साधना का अभ्यास राजयोग मार्ग पर अग्रसर होने के लिए तथा अतंतः राजयोग पद प्राप्ति हेतु किया जाता है। कहा गया है–

टिप्पणी

विभ्राजते प्रोन्नतराजयोगमारोढुमिच्छोरधिरोहिणीव

(ह.प्र.–1/1)

अर्थात हठविद्या राजयोग के उच्चतम शिखर पर चढ़ने की इच्छा रखने वाले अभ्यासियों के लिए सीढ़ी के समान है।

केवलं राजयोगाय हठविद्योपदिश्यते।

(ह.प्र.–1/2)

अर्थात राजयोग की प्राप्ति हेतु ही योगी स्वात्माराम हठविद्या का उपदेश देते हैं।

सर्वे हठलयोपाया राजयोगस्य सिद्धये।

(ह.प्र.–4/103)

अर्थात आसन, कुंभक, मुद्रा आदि हठयोग के उपाय तथा नादानुसंधान, शांभवी मुद्रा आदि लय के उपाय ये सभी मन के सर्ववृत्ति निरोध हेतु राजयोग की सिद्धि के लिए बताए गए हैं।

सर्वाण्यपि हठाभ्यासे राजयोग फलावधिः।

(ह.प्र.–1/67)

अर्थात विविध आसन, कुंभक, उत्कृष्ट मुद्राएं ये सब हठयोग के अभ्यास राजयोग में सफल होने तक करने चाहिए।

राजयोगं बिना पृथ्वी, राजयोगं बिना निशा।
राजयोगं बिना मुद्रा, विचित्रापि न शोभते।।

अर्थात जैसे राजा के बिना पृथ्वी, चंद्रमा के बिना रात्रि, राजचिह्न के बिना मुद्रा निरर्थक है, उसी प्रकार 'राजयोग के बिना आसन, कुंभक व मुद्राओं का अभ्यास भी निरर्थक है। निष्कर्ष यह है कि हठयोग साधना की विभिन्न क्रियाएं राजयोग की साधना में सफलता प्राप्ति हेतु ही की जाती हैं।

3. **शरीर सौष्ठव हेतु**– योगतत्वोपनिषद् के अनुसार हठयोग साधना का उद्देश्य शरीर का सौष्ठव प्राप्त करना है जिससे आरोग्य प्राप्ति के पश्चात् भी शरीर में विभिन्न विघ्नों को सहने की शक्ति बनी रहे।

हठयोग साधना के अंग

हठप्रदीपिका के अनुसार आसन, प्राणायाम, मुद्राएं व नादानुसंधान हठयोग के प्रमुख अभ्यास माने गए हैं। हठप्रदीपिका के दूसरे अध्याय में प्राणायाम साधना की तैयारी हेतु षट्कर्मों का उल्लेख है जिसके अन्तर्गत धौति, बस्ति, नेति, नौलि, त्राटक तथा कपालभाति का वर्णन किया गया है। नादानुसंधान के अन्तर्गत समाधि का वर्णन विवेचित है। शक्तिचालिनी मुद्रा के प्रसंग में कुंडलिनी का वर्णन तथा कुंडलिनी जागरण की विधि पर प्रकाश डाला गया है। हठयोग के अन्य प्रमुख ग्रंथ घेरण्ड संहिता के अनुसार हठयोग साधना के सात अंग बताए गए हैं–

शोधनं दृढता चैव स्थैर्य धैर्य च लाघवम्।
प्रत्यक्षं च निर्लिप्तं च घटस्य सप्तसाधनम्।। (1/9–11)

टिप्पणी

शोधन हेतु षट्कर्म, दृढ़ता हेतु आसन, स्थिरता हेतु मुद्राएं, धीरता हेतु प्रत्याहार, लाघव हेतु प्राणायाम, आत्मा की प्रत्यक्षता हेतु ध्यान व आत्म–निर्लिप्तिता हेतु समाधि का अभ्यास करना चाहिए।

गोरक्ष पद्धति के अनुसार–

आसनं प्राणसंरोधः प्रत्याहारश्च धारणा।
ध्यानं समाधिरेतानि योगाङ्गानि वदन्ति षट्।।

आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि हठयोग के छह अंग हैं।

हठयोग सिद्धि के लक्षण

वपुःकृशत्वं वदने प्रसन्नता नादः स्फुटत्वं नयने सुनिर्मले।
अरोगता इन्द्रजयोऽग्निदीपनं नाडीविशुद्धिर्हठयोगलक्षणम्।।

(ह.प्र.–2/78)

हठयोग साधना में सिद्धि प्राप्त होने पर निम्नलिखित लक्षण उत्पन्न होते हैं, जिससे साधक अपनी साधना विधि के उचित व अनुचित होने का निश्चय कर सकता है, जैसे– शरीर का हल्कापन, मुख पर प्रसन्नता, स्वर में सौष्ठव, नयनों में तेजस्विता, रोग का अभाव, बिंदु पर नियंत्रण, नाड़ियों की विशुद्धता, जठराग्नि की प्रदीप्ति आदि। ये सब हठ सिद्धि के लक्षण हैं।

हठयोग के उपलब्ध ग्रंथ

हठयोग के निम्न ग्रंथ सुलभता से उपलब्ध हैं जैसे– हठयोग प्रदीपिका, घेरण्ड संहिता, गोरक्ष संहिता, शिवसंहिता, गोरक्ष पद्धति, गोरक्ष शतक आदि। इन ग्रन्थों के अतिरिक्त कुछ योग के उपनिषद् भी हठयोग की मान्यताओं को प्रकट करते हैं।

(ख) भक्तियोग

साधना जगत में भक्तियोग का विशिष्ट स्थान है। भगवान के साथ संबंध जोड़ने के कारण इसे योग कहा गया है। यह योग की विभिन्न शाखाओं में से एक है। इसको

टिप्पणी

उत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम माना गया है, क्योंकि यह सबसे सरल एवं सुगम है। इसका अधिकारी कोई भी बन सकता है इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं है।

हमारी भारतीय संस्कृति में भक्ति का इतिहास ऐसे स्वर्णिम अक्षरों में लिखा हुआ है जिसे सुनने व पढ़ने मात्र से ही आत्मा तृप्त हो जाती है। श्री रामकृष्ण परमहंस ने भक्तिमार्ग को ही कलिकाल का युगधर्म बताया था और सामान्य लोगों के लिए इहलोक में सुख, शांति तथा परलोक में सद्गति प्राप्त करने के लिए इसी योग को अपनाने की सलाह दी थी।

भक्ति के माध्यम से भक्त उस भक्तवत्सल भगवान को अपने वश में कर लेता है, जिस प्रकार त्रेतायुग में भीलनी ने तथा द्वापर युग में द्रोपदी ने अपनी पुकार से अपने प्रभु को अपने सामने आने के लिए विवश कर दिया था। ईश्वर स्वयं अपने भक्तों की करुण पुकार पर अपने भक्त के समक्ष आने को तत्पर रहता है तथा आपत्ति के समय में अपने भक्त की रक्षा हेतु अस्त्र–शस्त्र धारण करके रणभूमि में भी पहुंच जाता है।

मानव चेतना जैसे–जैस उत्कर्ष की ओर बढ़ती है उसी अनुपात में उसकी आत्मीयता का विस्तार हो जाता है। भक्ति शब्द भज् सेवायाम् धातु में क्तिन् प्रत्यय लगाकर बनता है जिसका अर्थ है सेवा, पूजा, उपासना और संगतिकरण आदि। भावना के आधार पर अपनी आत्मीयता का इतना विस्तार करना कि वह सम्पूर्ण विश्व – ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो जाए यही भक्ति योग है। भगवान के प्रति उत्कृष्ट प्रेम विशेष का नाम ही भक्ति है। यथा–

''भक्ति नाम प्रेम विशेषः''

भक्ति के सम्बन्ध में स्वामी विवेकानन्द जी का कहना है–

''सच्चे व निष्कपट भाव से ईश्वर की खोज करना भक्ति योग है।''

भक्त प्रहलाद भक्ति का एक अनुपम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं यथा–

''हे ईश्वर! अज्ञानी जनों की जैसी गाढ़ी प्रीति इन्द्रियों के भोगों व नाशवान पदार्थों में रहती है, उसी प्रकार की प्रीति मेरी तुझमें हो और तेरा स्मरण करते हुए मेरे हृदय से वह कभी दूर न होवे'' ऐसी ही प्रबल प्रीति जो ईश्वर के प्रति होती है वही भक्ति कहलाती है।

शांडिल्योपनिषद् के अनुसार – ''सा परानुरक्तिरीश्वरे'' अर्थात ईश्वर में परम अनुरक्ति रखना ही भक्ति है।"

नारद भक्ति सूत्र के अनुसार–

1. ''सा तस्मिन् परम प्रेमरूपा'' अर्थात भगवान के प्रति परम प्रेम ही भक्ति है।
2. ''पूजादिश्वरानुरागः इति परशर्यः'' अर्थात परशरनन्दन व्यास जी के अनुसार भगवान की पूजा अर्चना तथा उपासनादि में विशेष अनुराग का होना ही भक्ति है।

भक्ति या प्रेम एक ऐसा तत्व है जो परमात्मा के गुणों का अंतःकरण में तत्काल सहज प्रकटीकरण कर देता है। यह क्रमशः चेतना का रूपान्तरण करता जाता है एवं चरम स्थिति में प्रेमपात्र के अस्तित्व में लीन कर देता है।

टिप्पणी

1. भक्त के हृदय में अनन्त प्रेम की अजस्र धारा बहा करती है। वह प्रेम पात्र के लिए आत्मोत्सर्ग हेतु तैयार रहता है। वास्तविक प्रेम में प्रत्याशा का लेशमात्र भी नहीं रहता है। केवल सम्पूर्ण त्याग की भावना हृदय में समाहित रहती है।
2. स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार– भक्ति किसी वस्तु का संहार नहीं करती, वरन् यह हमें सिखाती है कि हमें जो–जो शक्तियां दी गई हैं, उनमें से कोई भी निरर्थक नहीं है बल्कि उन्हीं में से होकर हमारी मुक्ति का स्वाभाविक मार्ग है।
3. भक्ति न तो किसी वस्तु का निषेध करती है और न ही प्रकृति के विरुद्ध चलाती है। भक्ति तो हमारी प्रकृति को ऊंचा उठाती है। जब इन्द्रिय भोग्य पदार्थों की अनुरक्ति वहां से हटकर भगवान में लग जाती है तो उसका नाम भक्ति कहलाता है।
4. प्रेम या भक्ति का एक विशेष गुण यह है कि इसमें प्रतिद्वंद्विता नहीं रहती। यहां जो भी अन्य, प्रेम पात्र से जुड़ता है वह भी अपना हो जाता है।
5. आचार्य श्री राम शर्मा जी के अनुसार–

   ''प्रेम परमात्मा का स्वरूप होता है जिसके हृदय में प्रेम का जितने अंशों में वास होता है समझना चाहिए कि सच्चिदानंद परमात्मा उतने अंशों में उस हृदय में वास करता है।''

श्रीमद्भवगद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं ज्ञानयोग एवं कर्मयोग की अपेक्षा भक्तियोग को ही अत्यंत महत्व दिया है। आधुनिक युग में भक्तियोग को ही मोक्षकारक बताया गया है। भक्तियोग के विषय में अनेक विद्वानों ने अपने भिन्न–भिन्न मत प्रकट किए हैं, जो निम्नलिखित हैं–

आचार्य गर्ग के अनुसार–

कथादिविश्वति गर्गः।

– नारद भक्ति सूत्र, 17

भगवान के दिव्य गुण कथन के श्रवणादि में अनुराग का होना ही भक्ति है।

महर्षि शांडिल्य के मतानुसार–

आत्मरत्यविरोधेनेति शांडिल्यः।

– नारद भक्ति सूत्र, 18

आत्मप्रेम के अविरोधी साधनों में अनुराग का होना ही भक्ति है अर्थात आत्मप्रेम ही भक्ति है।

नारद जी के मतानुसार–

नारदस्तुतदर्पिताखिलाचारता तद्विस्मरणे परमव्याकुलं तेति।

– नारद भक्ति सूत्र, 19

अपने समस्त कर्मों को भगवान में अर्पित कर देना तथा भगवान का थोड़ा सा भी विस्मरण होने पर जो नितांत व्याकुल हो जाता है वही पराभक्ति है।

भक्ति के उद्देश्य एवं प्रकार

भक्तियोग के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य ईश्वर को प्राप्त करना अर्थात मोक्ष प्राप्त करना है और ईश्वर भक्त के लिए इस संसार में भक्तियोग ही एकमात्र श्रेष्ठतम उपाय है।
2. भक्तियोग का उद्देश्य ईश्वर को प्राप्त करने का द्वार है। इसमें श्रद्धापूर्वक प्रवेश किया जाता है।

भक्ति के प्रकार

भक्तिमस्तु द्विविधा प्रोक्ता परापरेति संज्ञिता।
एकधात्र पराप्रोक्ता त्वपरा नवधास्मृता।।

भक्ति मुख्य रूप से दो प्रकार की होती है – पहली परा भक्ति एवं दूसरी अपरा भक्ति। इन दोनों में से परा भक्ति एक ही प्रकार की होती है और अपरा भक्ति नौ प्रकार की होती है अर्थात परा और अपरा के भेद से भक्ति दो प्रकार की होती है। अपरा भक्ति का ही नाम गौणी भक्ति है।

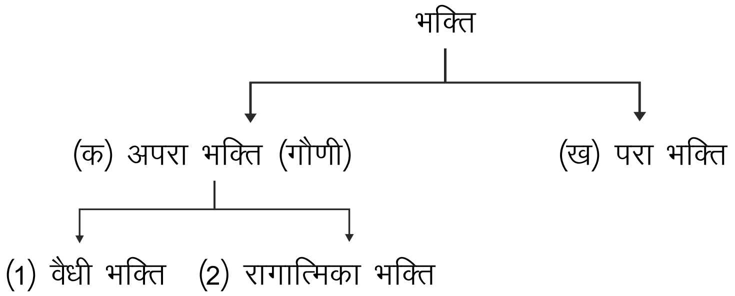

(क) अपरा भक्ति– आरंभिक अभ्यासी को गौणी भक्ति का आसरा लेना पड़ता है। आरंभिक अभ्यासी अपनी निर्बल चेतना द्वारा ईश्वर के महान, सर्वशक्तिमान स्वरूप का चिंतन करने में समर्थ नहीं होते इसलिए उन्हें ईश्वर की प्रतिमा का सहारा लेना पड़ता है, यह प्रतिमा मनुष्याकार भी हो सकती है।

मूर्ति, आरती, नमाज, भजन, पूजन, जप, कीर्तन आदि साधनों के द्वारा अपना प्रेम ईश्वर के निमित्त प्रेरित किया जाता है यही गौणी भक्ति है। गौणी भक्ति दो प्रकार की होती है– (1) वैधी भक्ति, (2) रागात्मिका भक्ति।

(1) वैधी भक्ति– वैधी भक्ति को नवधा भक्ति भी कहते हैं। नवधा का अर्थ है नौ प्रकार की भक्ति अर्थात वैधी भक्ति नौ प्रकार की होती है। भक्ति के नौ भेद निम्न हैं–

1. **श्रवण भक्ति**– श्रवण का अर्थ है – सुनना अर्थात भगवान के दिव्य गुणों, लीला एवं यश के विषय में शांत चित्त होकर श्रद्धा–विश्वास और भक्तिपूर्वक सुनना ही भक्ति है। जिसके श्रवण से भगवान के प्रति उत्कट प्रेम व श्रद्धा बढ़े वही श्रवण भक्ति कहलाती है।
2. **कीर्तन भक्ति**– कीर्तन से तात्पर्य है– कीर्ति का गुणगान करना, अर्थात भगवान की लीला, प्रसंग व दिव्य गुणों को शरीर के द्वारा प्रकट करना। जैसे – गायन, वादन एवं नृत्य आदि कीर्तन भक्ति कहलाती है। कीर्तन भक्ति में मीराबाई का नाम सर्वोपरि माना जाता है।
3. **स्मरण भक्ति**– भगवान को हर पल, हर क्षण याद करना, हर समय प्रभु की याद में बिताना, उनके यश, गुणों व कीर्ति को आत्मानुभव करना ही

टिप्पणी

स्मरण भक्ति है। भक्त प्रहलाद की भक्ति स्मरण भक्ति है। उसे प्रत्येक वस्तु में हरि के दर्शन होते हैं।

4. **पादसेवन** – पादसेवन से तात्पर्य है – ईश्वर के चरणों का आश्रय लेना और भक्तिपूर्वक सतत ध्यान करना।
5. **अर्चन भक्ति**– अर्चन का तात्पर्य है– पूजन। अतः भगवान का विधिपूर्वक विशेष या सामान्य रूप में पूजन करने का नाम अर्चन भक्ति है।
6. **वंदन भक्ति**– वैदिक मंत्रों के द्वारा तथा उत्तम स्रोतों के द्वारा भगवान की स्तुति अथवा प्रार्थना करना वंदन भक्ति है।
7. **दास्य भक्ति**– दास्य का अर्थ है– सेवक। भगवान के प्रति सेवक भाव या उपासक भाव बनाए रखना ही दास्य भक्ति है, जैसे हनुमान जी भगवान श्रीराम के प्रति रखते हैं।
8. **साख्य भाव**– भगवान के प्रति मित्रभाव रखकर उनकी भक्ति करना साख्य भक्ति है। श्रीकृष्ण और सुदामा की भक्ति इसी श्रेणी में मानी जाती है।
9. **आत्मनिवेदन भक्ति**– भगवान को अपना समस्त अस्तित्व सौंप देना, अपने को ईश्वर पर न्योछावर कर देना ही आत्मनिवेदन भक्ति है।

यह भक्ति की विशेष चरम अवस्था कही जा सकती है।

(2) रागात्मिका भक्ति– रागात्मिका भक्ति वह है जब नवधा भक्ति की चरम अवस्था को पार कर लिया जाए और हृदय में एक अलौकिक भगवत् प्रेम भाव अबाध गति से प्रवाहित होने लगे। इसे अनुभव भक्ति भी कहते हैं। इसमें साधक को भगवान की झलक सर्वत्र मिल जाती है।

(ख) परा भक्ति– पहली सीढ़ी पर चढ़ जाने के पश्चात दूसरी सीढ़ी पर चढ़ने की तैयारी करनी चाहिए। गौणी भक्ति या अपरा भक्ति के पश्चात 'परा भक्ति' अत्यंत महत्वपूर्ण है। यह समस्त विश्व भगवान का ही विराट रूप है और परा भक्ति में मनुष्य चैतन्य प्राणियों के अंदर जगमगाती हुई अखंड ज्योति में अपने प्रेम को नियोजित करता है। भगवान के परम विराट स्वरूप को अर्जुन ने देखा था।

भक्त के चार प्रकार

'भजनं भक्ति'– इस न्याय से भजन अर्थात सेवन को भक्ति कहा गया है और जो भगवान् का भजन–उपासना (जप–ध्यान) करता हो वही भक्त है। मनुष्य किसी न किसी प्रयोजन से भगवत् भजन करता है और सबका प्रयोजन भिन्न–भिन्न होता है। प्रयोजन भिन्न–भिन्न होने के कारण साधक–भक्तों में भी भिन्नता का होना स्वाभाविक ही है। इन भगवत् भक्तों को चार विभागों में विभक्त किया गया है। इसलिए भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा भी है। यथा–

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।
आर्तोजिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ'।।

(गीता 7/16)

हे भरतवंशी अर्जुन! चार प्रकार के पुण्यशाली मनुष्य मेरा भजन करते हैं यानी उपासना करते हैं। वे हैं आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी। इनका पृथक–पृथक वर्णन नीचे दिया गया है–

टिप्पणी

(1) **आर्त**– चार प्रकार के भक्तों में से प्रथम आर्त भक्त हैं। आर्तभक्त वे हैं– जब भक्त जागतिक भयानक विपदाओं से घिर जाते हैं, भयंकर संकट में फंस जाते हैं तब वे भगवान की शरण में जाते हैं और उनकी भक्ति करने लगते हैं, जैसे– गजराज तथा द्रौपदी।

(2) **जिज्ञासु**– ब्रह्मतत्व को यथार्थ रूप में जानने की इच्छा से भजने वाले जिज्ञासु भक्त होते हैं, जैसे– राजा जनक, मुचुकुन्द तथा उद्धवादि।

(3) **अर्थार्थी**– सांसारिक वस्तु जैसे– स्त्री, पुरुष, धन, वैभव, मान एवं प्रतिष्ठा आदि की प्राप्ति की इच्छा से भजने वाले भक्तराज ध्रुव से लेकर विश्व के सभी मानव तथा दानव इसी कोटि में आ जाते हैं।

(4) **ज्ञानी**– ज्ञानी भक्त वे हैं जो सदा ब्रह्म की ध्यान–समाधि में ही रत रहते हैं। इसीलिए भगवान् श्री कृष्ण ने गीता में कहा है कि–'ज्ञानी त्वात्मैव में मतम्'। ज्ञानी भक्त तो मेरा स्वरूप ही है ऐसा मेरा मत है।' अतः इस भगवत् उक्ति से स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि ज्ञानी भक्त ही सबसे उत्तम और श्रेष्ठ है।

(स) कर्मयोग

प्रत्येक व्यक्ति कर्मों के बंधन में जकड़ा हुआ है। वह उनसे मुक्ति नहीं पा सकता। कर्मों से ही व्यक्ति के प्रारब्ध बनते हैं, अतः क्यों न ऐसे कर्म किए जाएं जो हमें पुण्य के भागीदार बनाएं व जीवन–मरण के इस बंधन से भी मुक्त कराएं।

कर्म अर्थात हमारे द्वारा किया जाने वाला कार्य। हमारे भारतीय ग्रंथों में से एक मूल ग्रंथ है 'श्रीमद्भगवद्गीता'। इसमें भगवान श्रीकृष्ण ने संपूर्ण विश्व को जो ज्ञान दिया है वह 'कर्मयोग' है।

कर्म शब्द 'कृ' धातु से बना है, जिसका अर्थ है– करना। जो हमारे द्वारा किया जाता है वह कर्म है। ऐसा कोई भी नहीं है जो बिना कर्म किए रहे। लेकिन वही कार्य कर्म कहलाता है जिसके करने के कुछ परिणाम निकले। जो हमें योग के मार्ग पर बढ़ाए, वही कर्म है।

संसार में देखने में आता है कि एक ही माता–पिता के पुत्रों में से कोई तो बहुत सुखी दिखाई देता है और कोई निर्धन तथा नितान्त दुःखी दिखाई पड़ता है। ऐसा क्यों?

टिप्पणी

इस वैषम्यता का कारण क्या है? इस वैषम्यता का कारण समझने के लिए हमें पुनर्जन्मवाद को स्वीकार कर लेना होगा। पुनर्जन्मवाद कर्मवाद पर आधारित है अर्थात कर्मवाद पर टिका हुआ है। एक साधारण व्यक्ति भी इस बात को जानता है कि मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही उसका फलभोग करता है, यह निश्चित है। यही इस वैषम्यता का कारण है। यह भी निश्चित है कि कर्म संस्कारों के विद्यमान रहते हुए मनुष्य को किसी भी प्रकार से मुक्ति अथवा मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है।

'सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः'।।

(योगसूत्र 2/13)

किसी भी योनि में जाकर मनुष्य जन्म, जाति, आयु व भोग प्राप्त करते हैं और कर्म–संस्कारों के अनुसार ही जीव सुख दुःखादि क्लेश प्राप्त करते रहते हैं। श्रुति में ऐसा कहा गया है कि–

'न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेन अमृतत्वमानष्नुते'।।

अर्थात न कर्म से न प्रजा (पुत्र–परिवार आदि) से और न धनादि वित्त–वैभव आदि से ही अमृतत्व (ब्रह्म) की प्राप्ति होती है, किन्तु इन सबकी अपेक्षा बुद्धि से या त्याग से ही उस परम तत्व की प्राप्ति होती है।

स्वकर्म को स्वधर्म समझना ही कर्मयोग है। वह कार्य जिसमें संपूर्ण राष्ट्र का विकास हो, कर्मयोग है। जिसमें अहंकार की भावना न हो, बल्कि परमार्थ की भावना से किया गया हो वही कर्मयोग है।

कर्मयोग की परिभाषा

श्रीमद्भगवद्गीता में कर्म के बारे में कहा गया है कि सफलता और असफलता की भावना न रखते हुए कर्म करना ही कर्मयोग है। फल की चिंता किए बिना कर्म का पालन करना ही कर्मयोग है।

स्वामी विवेकानंद के अनुसार– "कर्मयोग का अर्थ है– मौत के मुंह में बिना तर्क–वितर्क किए सबकी सहायता करना, भले ही तुम लाख बार ठगे जाओ पर मुंह से एक बात न निकालो और तुम जो कुछ भला कार्य कर रहे हो उसके संबंध में सोचो तक नहीं।"

अर्थात निर्धन के प्रति किए गए उपकार पर गर्व मत करो न उससे कृतज्ञता की आशा ही रखो बल्कि उलटे तुम्हीं उनके कृतज्ञ बन जाओ।

पं. श्रीराम शर्मा आचार्य जी कर्मयोग की परिभाषा इस प्रकार देते हैं–"कर्मयोग इसी कुशलता का नाम है जो इस प्रकार कलापूर्ण कार्य करना जानता है कि किए हुए कार्य का उलटा फल न निकले, वह कर्मयोगी है।"

वैदिक ग्रंथों में कर्म के दो प्रकार बताए गए हैं– 1. विहित कर्म, 2. निषिद्ध कर्म।

1. **विहित कर्म** – वह कार्य जो करने योग्य है जिसमें अच्छाईयां निहित हैं। इसके चार भेद बताए गए हैं–

   (क) नित्य कर्म, (ख) नैमित्तिक कर्म, (ग) काम्य कर्म, (घ) प्रायश्चित कर्म।

   (क) नित्य कर्म– वे कार्य जो नित्यप्रति अनुष्ठान के रूप में किए जाते हैं, नित्य कर्म कहलाते हैं, जैसे– दिनचर्या के सारे कार्य।

टिप्पणी

(ख) नैमित्तिक कर्म– किसी उद्देश्य के लिए किए गए कर्मों को नैमित्तिक कर्म कहते हैं, जैसे– जन्मदिन, दाह संस्कार, मुंडन संस्कार आदि कर्म।

(ग) काम्य कर्म– वह कर्म जो किसी कामना या इच्छा की पूर्ति के लिए किया जाए, काम्य कर्म कहलाता है।

(घ) प्रायश्चित कर्म– वह कर्म जो किसी पाप कर्म के बदले में किया जाए या गलत कार्यों के परिणाम से मुक्ति पाने के लिए किया जाए, प्रायश्चित कर्म कहलाता है।

2. **निषिद्ध कर्म**– जिस कार्य को नहीं करना चाहिए। निषिद्ध कर्म को दुष्कृत या पाप कर्म कहते हैं। ऐसे कर्म जो शास्त्रों के अनुसार अनुचित हों उन्हें निषिद्ध कर्म कहते हैं। उपनिषद् में तीन प्रकार के कर्म बताए गए हैं–

(क) संचित कर्म, (ख) क्रियमाण कर्म, (ग) प्रारम्भिक कर्म।

(क) संचित कर्म – वे कर्म जो हमारे पूर्व जन्मों की क्रिया कलापों के द्वारा संचित रहते हैं, इकठ्ठे रहते हैं, संचित कर्म कहलाते हैं।

(ख) क्रियमाण कर्म– वे कर्म जिनके द्वारा हम अपने जीवन–क्रम को चलाते रहते हैं, क्रियमाण कर्म कहलाते हैं।

(ग) प्रारब्ध कर्म– संचित कर्म या परिणाम प्रारब्ध कर्म हैं। प्रारब्ध यानी पिछले जन्म के संस्कार, जो बलवान बनकर सामने आते हैं, उन्हें ही प्रारब्ध कर्म कहते हैं।

गीता में तीन प्रकार के कर्म बताए गए हैं–

(क) कर्म, (ख) अकर्म, (ग) विकर्म।

1. **कर्म**– कर्म यानी शास्त्रों में वर्णित कर्मों को करना। योग में आगे बढ़ने के लिए यही कर्म किए जाते हैं।
2. **अकर्म** – इसमें हर तरह के कर्म आते हैं। जो अनासक्त भाव से किए जाएं, चाहे वे शास्त्र के विरुद्ध ही क्यों न हो।
3. **विकर्म** – इन्हें पाप कर्म कहा गया है।

योग शास्त्र में 'पातंजल योगसूत्र' के अनुसार सामान्य व्यक्ति द्वारा किए गए कर्म तीन प्रकार के होते हैं–

1. शुक्ल कर्म अर्थात पुण्य कर्म।
2. कृष्ण कर्म अर्थात पाप कर्म।
3. शुक्ल–कृष्ण कर्म अर्थात पाप पुण्य मिश्रित कर्म।

योगियों के कर्म इन तीनों से भिन्न होते हैं, क्योंकि उनका चित्त कर्म संस्कारों से शून्य होता है। इसलिए उन कर्मों को अशुक्ल और अकृष्ण कहते हैं।

कर्मयोग साधना

हम जो भी कर्म करते हैं उन सभी कर्मों को योग का साधन बनाने की विधि को कर्म योग साधना कहा जाता है। साधक अपने स्वधर्म, स्वकर्म का पालन करते हुए अपने चित्त को शुद्ध कर योग को प्राप्त कर सकता है। कर्मयोग साधना, कर्म से विमुख होना और

कर्म से पलायन करके एकान्तवासी साधक बनने का संदेश नहीं है। हमारे सभी कर्म कैसे दिव्य, श्रेष्ठ, निष्काम बनें जो हमें योग की प्राप्ति कराने में समर्थ हों। इस विषय में गीता में निरूपित कर्मयोग साधना की चर्चा से जाना जा सकता है–

टिप्पणी

1. **निष्काम कर्म व आसक्ति रहित कर्म** – जब कोई कर्ता पूर्णतः निष्काम भाव से कर्म व कर्म फल में अनासक्त होकर कर्म करता है वह कर्म उसे योग की ओर अग्रसर करता है। जहां कर्म के पीछे मोह, कामना, वासना इच्छा आदि जुड़े रहते हैं उसका परिणाम घोर बन्धनकारी होता है। यही कर्म बंधन है। जो कर्म निष्काम भाव से किए जाते हैं उनके बीज व परिणाम कर्ता के चित्त में संचित नहीं होते। फलस्वरूप साधक का चित्त निर्मल होता जाता है और अन्ततः उसे योग की स्थिति प्राप्त होती है। इस पर गीता का उद्घोष है–

   तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर।
   असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पुरुषः।।

   गीता 3/11

   इसलिए हे अर्जुन! तू निरंतर आसक्ति से रहित होकर सदा कर्तव्य कर्म को भली भांति करता रह क्योंकि आसक्ति से रहित होकर कर्म करता हुआ मनुष्य परमात्मा को प्राप्त हो जाता है। गीता में अन्य स्थान (3/7,5/10) पर भी आसक्ति रहित कर्म के माध्यम से योग के लक्ष्य की प्राप्ति पर व्याख्या मिलती है।

2. **कर्तापन का त्याग**– कोई भी व्यक्ति जब 'मैं कर रहा हूं या मैं ही कर्ता हूं' ऐसा मानकर कर्म करता है तो वह अवश्यमेव कर्मबंधन से बंध जाता है। अभिमान, कर्तापन का भाव तथा अहंकार ये कर्मयोग के बाधक हैं। साधक जब कर्तापन या अभिमान का त्याग करके अपने को एक निमित्त साधन मानकर कर्म करने लगता है उसके लिए योग रूपि ग्रन्थ कठिन नहीं रहता। ऐसा मानना चाहिए कि 'मैं नहीं कर रहा हूं जो कुछ हो रहा है यह प्रकृति करा रही है', यही कर्ता का त्याग है।

   वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा किए जाते हैं, तो भी जिसका अन्तःकरण अहंकार से भरा हुआ हो, ऐसा अज्ञानी 'मैं कर्ता हूं' ऐसा मानता है परन्तु हे महाबाहो! गुणविभाग और कर्मविभाग के तत्व को जानने वाला ज्ञानयोगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे हैं ऐसा समझकर अन्त में आसक्त नहीं होता।

3. **कर्मफल का त्याग**– ऐसे कर्म जो फल व परिणाम त्याग कर किए जाते हैं योग प्रदायक माने जाते हैं। कर्मयोग साधना में साधक निरन्तर यह प्रयत्न करता रहे कि वह विहित व कर्तव्य कर्म करता रहे किन्तु उनके फल के प्रति उदासीन हो। गीता इस सुन्दर तथ्य को इस प्रकार उजागर करती है–

   कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
   मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा सङ्गोऽस्त्वकर्मणि।

   गीता 2/49

अर्थात तेरा कर्म करने में ही अधिकार है, उसके फलों में कभी नहीं। इसलिए तू कर्मों के फल का हेतु मत बन तथा तेरी कर्म न करने में भी आसक्ति न हो। कर्मयोग साधना में साधक किस प्रकार कर्म फल का त्याग करे इस विषय में गीता में एक अन्य स्थान पर कहा गया है–

टिप्पणी

त्यक्त्वा कर्मफलासङ्गं नित्यतृप्तो निराश्रयः।
कर्मण्यभिप्रवृत्तोऽति नैव किंचित्करोति सः।।

– गीता 4/20

जो पुरुष समस्त कर्मों में और उनके फलों में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके संसार के आश्रय से रहित हो गया है और परमात्मा में नित्य तृप्त है, वह कर्मों में भली भांति प्रवृत्त होता हुआ भी वास्तव में कुछ नहीं करता।

4. **कर्म तथा कर्मफल का ईश्वरार्पण**– कर्मयोग साधना में प्रवृत्त कर्मयोगी के लिए गीता में श्रीकृष्ण का निर्देश है कि साधक अपने समस्त कर्म और उनके फलों को मुझमें अर्पित करे। यह एक विशिष्ट साधना विधान है। मनुष्य जब कर्म करने वाला कर्ता भी स्वयं को मानता है और कर्मफल का अधिकारी भी स्वयं को समझता है तब वह कर्म के घोर चक्र में फंस जाता है, किन्तु कर्मसाधना करने वालों को अपने सभी कर्म ईश्वर के चरणों में अर्पित कर देने चाहिए। जैसा गीता में कहा गया है–

शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।
संन्यासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि।। गीता 9/27

संन्यास योग से युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फलस्वरूप कर्म बन्धनों से मुक्त हो जाएगा और उनसे मुक्त होकर मुझको प्राप्त होगा।

5. **यज्ञ कर्म**– कर्मयोग साधना में इस कर्म का भी समावेश किया गया है। निरन्तर रूप से स्वधर्म तथा कर्तव्य का पालन परमार्थ भाव से करते रहना यज्ञ है। गीता में विभिन्न प्रकार के यज्ञ की चर्चा की गई है। जो साधक यज्ञ कर्म का सम्पादन करते हुए कर्म साधना में निमग्न रहता है, उसका अन्तःकरण निर्मल होता है और उसे परमात्मा की प्राप्ति होती है। इस यथार्थ को प्रकाशित करती हुई गीता कहती है–

यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः।
तदर्थं कर्म कौन्तेय मुक्तसङ्गः समाचर।।

– गीता 3/9

यज्ञ के निमित्त किए जाने वाले कर्मों के अतिरिक्त दूसरे कर्मों में लगा हुआ यह मनुष्य समुदाय कर्मों से बंधता है, इसलिए हे अर्जुन! तू आसक्ति से रहित होकर उस यज्ञ के निमित्त ही भलीभांति कर्तव्य कर्म कर।

स्वधर्म पालन, कर्तव्य सम्पादन, विहित कर्म, अपने गुण, कर्म और स्वभाव के अनुरूप शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म तथा स्वधर्म का अनवरत पालन भी कर्मयोग साधना है। ऐसे कर्मों का परिणाम अन्ततः साधक को योगमार्ग में प्रेरित करता

है। किस व्यक्ति का क्या कर्तव्य तथा स्वधर्म है, इसका निर्धारण गीता तथा अन्य शास्त्रों में वर्ण व्यवस्था के रूप में उपलब्ध है। कर्तव्य कर्म किस प्रकार किया जाए, गीता का उद्‌घोष है–

टिप्पणी

नियतं कुरु कर्म त्वं कर्म ज्यायो ह्यकर्मणः।
शरीरयात्रापि च ते न प्रसिद्ध्येदकर्मणः।।

– गीता 3/8

तू शास्त्रविहित कर्तव्य कर्म कर, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से तेरे शरीर का निर्वाह भी सिद्ध नहीं होगा। गीता में स्वधर्म के पालन को योग साधना का एक अंग बताते हुए कहा गया है–

श्रेयान्स्वधर्मो विगुणः परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः।।

– गीता 3/35

अच्छी प्रकार आचरण में लाए हुए दूसरे के धर्म से ग्रहणरहित भी अपना धर्म अति उत्तम है। अपने धर्म में तो मरना भी कल्याण कारक है, दूसरे का धर्म भय को देने वाला होता है।

कर्मयोग की फलश्रुतियां (परिणाम) धारणाएं एवं मुख्य बिंदु

जिस प्रकार कर्म का कोई न कोई फल होता है उसी प्रकार कर्मयोग साधना का भी सुनिश्चित परिणाम होता है। जो साधक अपने प्रत्येक कर्म को परिष्कृत कर दिव्य, अनासक्त, निष्काम बनाता है, उसका परिणाम चित्त शुद्धि के रुप में उसे हस्तगत होता है। इससे उसका कर्मबंधन छूट जाता है। अन्ततः कर्मयोग की निरंतर साधना उसे परमात्मा प्राप्ति तक पहुंचाती है। कर्मयोग की इन फलश्रुतियों की चर्चा निम्नानुसार की जा सकती है–

1. **कर्म बन्धन से मुक्ति**– कर्मयोग की साधना जब परिपक्व हो जाती है, फलीभूत होने लगती है, उसके परिणामस्वरूप साधक कर्म बन्धन से मुक्त हो जाता है। कर्मयोगी को किसी प्रकार के कर्म नहीं बांधते।

   वह सभी प्रकार के कर्म बंधन से छूट जाता है। सब कुछ करते हुए भी वह कुछ नहीं करता। कर्मयोग के इस परिणाम पर गीता में कहा गया है–

   योगसन्नयस्तकर्माणं ज्ञानसञ्छिन्नसंशयम्।
   आत्मवन्तं न कर्माणि निबघ्नन्ति धनंजय।।

   – गीता 4/41

   हे धनंजय! जिसने कर्मयोग की विधि से समस्त कर्मों को परमात्मा में अर्पण कर दिया है और जिसने विवेक द्वारा समस्त संशयों का नाश कर दिया है, ऐसे वश में किए हुए अन्तःकरण वाले पुरुष को कर्म नहीं बांधते।

2. **परमात्मा की प्राप्ति**– कर्मयोग साधना का दूसरा परिणाम है– परमात्मा की प्राप्ति। कर्मयोग साधना से साधक का चित्त निर्मल होने लगता है। चित्त निर्मल होने पर वह अन्तः परमात्मा को प्राप्त कर लेता है। गीता का संदेश है कि निरंतर निरासक्त होकर कर्म करने से मनुष्य परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

टिप्पणी

3. **सच्चिदानन्द की प्राप्ति**– सच्चिदानन्द की प्राप्ति कर्मयोग करने वालों के लिए एक सुनिश्चित परिणाम है। सच्चिदानन्द अर्थात सबसे उत्तम आनन्द, दिव्य परम आनन्द की स्थिति। इस स्थिति में साधक सभी विषयों से निवृत्त होकर केवल परमात्मरस सच्चिदानन्द में लीन हो जाता है।

सर्वकर्माणि मनसा सन्न्यस्यास्ते सुखं वशी।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन्।।

– गीता 5/13

अन्तःकरण को वश में करने वाला ऐसा पुरुष न करता हुआ और न करवाता हुआ ही नव द्वारों वाले शरीर रूपी घर में सब कर्मों को मन से त्यागकर आनन्द पूर्वक सच्चिदानन्द परमात्मा के स्वरूप में स्थित रहता है।

4. **जन्मरूप भवबन्धन से मुक्ति**– कर्मयोग साधक अन्ततः बार–बार जन्म–मरण रूपी चक्र से भी उन्मुक्त हो जाता है। उसे अपने कर्मों के परिणामस्वरूप फिर जन्म लेना और मरना नहीं पड़ता। वह परम पद को प्राप्त करके सदा आनन्द में लीन रहता है, जैसा कि गीता में कहा गया है–

कर्मजं बुद्धियुक्ता हि फलं त्यक्त्वा मनीषिणः।
जन्मबन्धविनिर्मुक्ताः पदं गच्छन्त्यनामयम्।।

– गीता 2/52

समबुद्धि से युक्त ज्ञानीजन कर्मों से उत्पन्न होने वाले फल को त्यागकर जन्मरूप बंधन से छूटकर निर्विकार परमपद को प्राप्त हो जाते हैं।

कर्मयोग की मुख्य धारणाएं, मुख्य बिंदु

1. कोई भी मनुष्य बिना कर्म के एक पल भी जीवित नहीं रह सकता।
2. कर्म सृष्टि का मूल है।
3. कर्म की गति बहुत गहरी है। इसे कोई नहीं पहचान सकता।
4. कर्म के बिना कोई स्वतंत्र लाभ प्राप्त नहीं कर सकता।
5. समाज की रक्षा के लिए अर्थात लोक संग्रह के लिए कर्म आवश्यक है।
6. यदि कोई कर्म न करे तो न समाज श्रेष्ठ रहेगा न कोई व्यक्ति।
7. जिसने आत्मलाभ प्राप्त कर लिया हो उसके लिए कर्म और अकर्म में कोई फर्क नहीं, उसके लिए प्रत्येक कर्म ही योग है।

इस तरह निष्काम कर्म ही कर्म है। मनुष्य के अंदर कर्म करने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। गीता में कहा गया है कि कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षण मात्र भी कर्म किए बिना नहीं रह सकता क्योंकि समस्त मनुष्य समुदाय प्रकृति जनित गुणों के द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य किया जाता है।

इस प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु तक मनुष्य प्रकृति के गुणों के अधीनस्थ होकर कर्म में रत रहता है। कर्म ही मनुष्य के बंधन का कारण है।

इससे विदित होता है कि कर्म बंधन का कारण होते हैं और उन्हें किए बिना रहा भी नहीं जा सकता। जिस प्रकार कर्म बंधन का कारण बनते हैं, उसी प्रकार कर्म मुक्ति का कारण भी होते हैं।

इसमें दो प्रश्न विचारणीय हैं–

1. वे कौन से कर्म हैं जो मुक्तिदायक हैं?
2. उन कर्मों की विधि क्या है?

टिप्पणी

इनके उत्तर में गीता में कहा गया है कि कौन सा कार्य करना चाहिए और कौन सा कार्य नहीं करना चाहिए, इसका निर्णय करने के लिए तुम्हारे पास शास्त्र प्रमाण हैं। इस विषय में शास्त्रों की आज्ञा मानकर उन्हीं का अनुसरण करना चाहिए। शास्त्रों में सभी वर्गों के लिए कर्म नियत किए गए हैं जिसका जो कर्तव्य है उसे वही कर्म करना चाहिए।

कर्मों को फल की आसक्ति से रहित होकर निमित्त भाव से ही करना चाहिए। केवल कर्तव्य भावना रखते हुए कर्म करने से वह बंधन के कारण नहीं बनते हैं। हमें कर्म को प्रिय या अप्रिय मानकर फल की आशा से नहीं करना चाहिए। फल में आसक्ति रहित होकर कर्म करना ही कर्मयोग है।

कर्म और उनके फलों में आसक्ति से व्यक्ति कर्मों के बंधन में बंधता है। कार्य में बाधा उत्पन्न होने पर उसे कष्ट होता है क्योंकि उसकी फलों में आसक्ति है परन्तु साधक जब कर्म फलों की आसक्ति त्याग देता है तो वह आसक्ति रहित कर्म करने वाला हो जाता है। इस विषय का वर्णन करते हुए गीता के 3/12 वें श्लोक में कहा गया है कि कर्मयोगी ही कर्मों के फलों का त्याग कर भगवद् प्राप्ति रूप शांति को प्राप्त होता है और सकाम पुरुष कामना की प्रेरणा से फल में आसक्त होकर बंधता है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' किस ग्रंथ का सूत्र है?

   (क) चरक संहिता (ख) पंतजलि योगसूत्र

   (ग) नारद भक्तिसूत्र (घ) भगवद्गीता

4. इनमें से क्या मानव देह के अपवित्रत्व से संबंधित नहीं है?

   (क) रज–वीर्य (ख) निःस्पंद

   (ग) प्राणायाम (घ) शौच

1.4 आत्म नियंत्रण एवं ध्यान

आत्म नियंत्रण एवं ध्यान के लिए भारतीय दर्शन योग का विधान करता है। योग का आधारभूत ग्रंथ पंतजलि योग सूत्र है।

1.4.1 पतंजलि का अष्टांग योग (यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि)

उत्तम कोटि के योगसाधकों के लिए मुख्य उपाय हैं– अभ्यास और वैराग्य। केवल अभ्यास से और केवल वैराग्य से चित्त की वृत्तियों का निरोध संभव नहीं है अपितु दोनों के सम्मिलित आचरण से ही वृत्तिनिरोध होता है–

अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः। योगसूत्र – 1/12

टिप्पणी

चित्त एक नदी के समान है जो पाप और पुण्य दोनों ही दिशाओं में बहती है। इसकी दो धाराएं हैं– एक धारा से इसमें विषयों का आगमन होता है, और दूसरी धारा से इसमें विवेक आता है, किंतु विषयों की धारा के वेग के कारण विवेक की धारा प्रायः बंद रहती है। वैराग्य के द्वारा विषयों का स्रोत बंद कर दिया जाता है और अभ्यास के द्वारा विवेक का स्रोत खोल दिया जाता है। इस प्रकार दोनों के अनुष्ठान से वृत्तिनिरोध पूर्ण रूप से हो जाता है।

(क) अभ्यास

अभ्यास क्या है? स्थिति विशेष को बार–बार दोहराने के प्रयत्न का नाम अभ्यास है

तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः। योगसूत्र – 1/13

स्थिति का अर्थ है – वृत्तिहीन चित्त की एकाग्रता और यत्न का अर्थ है– उस एकाग्रता के लिए मानसिक उत्साह तथा दृढ़तापूर्वक यमनियमादि योगांगों का अनुष्ठान। इस प्रकार वृत्तिहीन चित्त की एकाग्रता रूप जो स्थिति है, उसके लिए मानसिक उत्साह और दृढ़ता के साथ यमनियमादि का अनुष्ठान करना अभ्यास कहलाता है। योगांगों के अनुष्ठान के लिए श्रद्धा, वीर्य, स्मृति, समाधि और प्रज्ञा – इन पांच मानसिक भावों का अनुष्ठान किया जाता है।

चित्तवृत्तियां अनादिकाल से चली आ रही अपनी चंचलता का त्याग करके किसी भी प्रकार निरुद्ध हो सकती हैं? तो इसका समाधान यह है कि अभ्यास में एक अद्भुत शक्ति है, वह दु:साध्य को भी सुसाध्य बना देती है। विष एक मारक द्रव्य है किंतु कुछ लोग, उसको भी थोड़ा–थोड़ा खाते रहने से उसके अभ्यस्त हो जाते हैं। इसी प्रकार नित्य निरंतर विवेक का अभ्यास करके चित्त भी अपनी वृत्तियों का त्याग करके एक दिन स्थिरता को प्राप्त कर लेता है। चंचलता चित्त का आगंतुक धर्म है, नैसर्गिक नहीं। स्थिरता उसका नैसर्गिक धर्म है। नैसर्गिक धर्म आगंतुक से बलवान होता है। अतः अभ्यास से वृत्तियों का निरोध दुष्कर नहीं है।

अभ्यास से चित्त की वृत्तियों का निरोध तभी संभव है जब अभ्यास की दृढ़भूमि हो। दुर्बल अभ्यास से चित्त को स्थिर नहीं किया जा सकता। अभ्यास की दृढ़ता के लिए तीन बातें आवश्यक हैं – दीर्घकाल, नैरन्तर्य और सत्कार–

स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः। योगसूत्र – 1/14

दीर्घकाल का अर्थ है कि बहुत समय तक लगातार अभ्यास किया जाए। दो चार दिन अथवा दो चार वर्ष के अभ्यास से वांछित सफलता नहीं मिलती। कभी–कभी अनेक जन्म भी लग जाते हैं। दीर्घकाल तक अभ्यास करने का सामर्थ्य चित्त में होना चाहिए।

अभ्यास में नैरंतर्य भी होना चाहिए। तैलधारावत् अविच्छिन्नरूप से किया गया अभ्यास ही फलवान होता है। विषय वासनाओं के झंझावात से अभ्यास में जब व्यवधान आ जाता है, तब अभ्यास दृढ़भूमि नहीं हो पाता।

अभ्यास की दृढ़ता के लिए उसका सत्कारपूर्वक सेवन भी आवश्यक है। सत्कार का अर्थ है– तप, ब्रह्मचर्य और श्रद्धा के साथ अभ्यास करना। शीत, उष्ण आदि तत्वों को सहन करना तप है। इंद्रियों का निग्रह बह्मचर्य कहलाता है। ओंकार आदि भगवान के नामों का जप विद्या है और गुरुवाक्य तथा शास्त्रों पर विश्वास करना श्रद्धा कहलाता है।

इस प्रकार दीर्घकालपर्यन्त, व्यवधानरहित रूप से तप, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा रूप सत्कार के साथ जब अभ्यास किया जाता है, तब वह अभ्यास दृढ़ता को प्राप्त होकर वृत्तिनिरोध का उपाय बनता है।

टिप्पणी

(ख) वैराग्य

लौकिक और वैदिक दोनों प्रकार के विषयों में चित्त का तृष्णारहित हो जाना वैराग्य कहलाता है–

दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञावैराग्यम्। योगसूत्र 1/15

चंदन, वनिता, अन्नपानादि लौकिक विषय हैं तथा वेदबोधित अर्थात पारलौकिक स्वर्गादि के अमृतपान आदि आनुश्रविक विषय हैं। इन दोनों प्रकार के विषयों में मुमुक्षु के चित्त का तृष्णारहित हो जाना ही वैराग्य है। इस वैराग्य को वशीकार (अपर) वैराग्य भी कहते हैं।

वस्तु के गुणदोष का विचार करने पर ऐहिक तथा पारलौकिक विषय नीरस, नश्वर तथा दुःखरूप प्रतीत होने लगते हैं। उन विषयों के प्रति मुमुक्षु के चित्त की जो उपेक्षारूप हेयोपादेयशून्य स्थिति है, वह वशीकार कहलाती है और वही वैराग्य है। इस प्रकार वैराग्य चित्त की ही एक अवस्था विशेष है।

यथाभिमत ध्यान

जिस साधक को जो स्वरूप अभीष्ट हो, उसमें ध्यान करने से चित्त अतिशीघ्र स्थिरता को प्राप्त करता है। अनभिमत विषय में चित्त कठिनता से स्थिर होता है। इसलिए शिव, शक्ति, गणपति, विष्णु तथा सूर्यादि देवताओं में से किसी एक में यदि विशेष रुचि हो तो उसी का ध्यान करना चाहिए। उसमें स्थिर हुआ चित्त निर्गुण निराकार परमेश्वर में भी स्थिरता को प्राप्त कर लेता है।

यथाभिमतध्यानाद्वा। योगसूत्र – 1/39

इस प्रकार महर्षि पतंजलि ने चित्तवृत्तिनिरोध के ये नौ उपाय बताए हैं। अपनी योग्यता के अनुसार साधक इनमें से किसी एक उपाय का भी अवलंब अथवा आश्रय लेकर वृत्तियों का निरोध कर सकता है।

अष्टांग योग और उसके प्रकार

अष्टांग योग महर्षि पतंजलि द्वारा रचित व प्रयोगात्मक सिद्धांतों पर आधारित योग के परमलक्ष्य की प्राप्ति हेतु एक साधना पद्धति है। महर्षि पतंजलि से भी पूर्व योग का सैद्धांतिक एवं क्रियात्मक पक्ष विभिन्न ग्रंथों में उपलब्ध था परंतु उसका स्वरूप बिखरा हुआ था। बिखरे हुए योग के ज्ञान को सूत्रों में एक करने का कार्य महर्षि पतंजलि द्वारा ही किया गया है। कहा गया है–

योगेन चित्तस्य पदेन वाचां मलं शरीरस्य न वैद्यकेन।
योऽपाकरोत्तंप्रवरं मुनीनां पतंजलिं प्राञ्जलिरानतोऽस्मि।।

अर्थात चित्त की मलिनता योग शास्त्र के द्वारा, वाणी की मलिनता व्याकरण शास्त्र के द्वारा और शरीर की मलिनता वैद्यक शास्त्र के द्वारा जो दूर करता है, उस मुनिश्रेष्ठ पतंजलि को मैं अजंलि रूप से प्रणाम करता हूं।

टिप्पणी

महर्षि पतंजलि ने अपने योगसूत्र नामक ग्रंथ में तीन प्रकार की योग साधनाओं का वर्णन किया है। प्रथम साधना उत्तम कोटि के साधकों के लिए है जिन्हें केवल अभ्यास और वैराग्य के माध्यम से ही समाधि की अवस्था प्राप्त हो जाती है। अतः सूत्र का कथन है–

अभ्यासवैराग्याभ्याम् तन्निरोधः। (योग–सूत्र 1–12)

उत्तमकोटि के साधक ईश्वरप्रणिधान द्वारा भी साधना करके समाधि भाव की प्राप्ति के पश्चात परम लक्ष्य को सुगमता से प्राप्त कर सकते हैं। इसी आधार पर सूत्र में कथन है–

''ईश्वरप्रणिधानाद्वा'' (योग–सूत्र 1–23)

मध्यम कोटि के साधकों के लिए महर्षि पतंजलि ने दूसरे अध्याय में क्रियायोग का वर्णन किया है। क्रियायोग का अर्थ बताते हुए कहा गया है–

तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः। (योग सू. 2/1)

अर्थात तप, स्वाध्याय तथा ईश्वरप्रणिधान की संयुक्त साधना क्रियायोग कहलाती है, जिसका उद्देश्य समाधि भाव को प्राप्त करना व क्लेशों को क्षीण करना है।

समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च। (योग–सूत्र 2/2)

तृतीय प्रकार की साधना सामान्य कोटि के साधकों के लिए है जिनका न तो शरीर शुद्ध है और न ही मन। ऐसे साधकों को प्रारंभ से ही साधनारत रहते हुए महर्षि पतंजलि द्वारा प्रस्तुत अष्टांग योग का आश्रय लेना चाहिए।

अष्टांग योग का शाब्दिक अर्थ

अष्टांग शब्द दो शब्दों के मेल से बना है– अष्ट + अंग, जिसका अर्थ है आठ अंगों वाला। अतः अष्टांगयोग वह साधना मार्ग है जिसमें आठ साधनों का वर्णन मिलता है जिससे साधक शरीर व मन की शुद्धि करके परिणामस्वरूप एकाग्रता के भाव को प्राप्त कर समाधिस्थ हो जाता है।

अष्टांग योग का उद्देश्य

महर्षि पतंजलि के अनुसार–

योगाङ्गनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः। (योग–सूत्र 2/28)

अर्थात योग के आठ अंगों का अनुष्ठान करके व उनको आचरण में लाने से चित्त के मल का अभाव होकर वह सर्वथा निर्मल हो जाता है। उस समय योगी के ज्ञान का प्रकाश विवेकख्याति तक हो जाता है अर्थात उसे आत्मा का स्वरूप बुद्धि, अहंकार और इंद्रियों से सर्वथा भिन्न दिखाई देता है।

योग के आठ अंग संपूर्ण मानव जीवन के अंतःशुद्धिकरण के लिए विशेष महत्वपूर्ण हैं। इनके द्वारा शारीरिक और मानसिक दोषों का जिस प्रकार निराकरण होकर निर्मल भाव उत्पन्न होता है वही वास्तव में मानव जीवन के उच्चादर्शों का द्योतक है।

अष्टांगयोग–साधना विधि

योग के आठ अंग हैं। इन आठ अंगों के विषय में महर्षि पतंजलि का कथन निम्न प्रकार है–

यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोष्टावंगानि।

—योगसूत्र 2/29

टिप्पणी

अर्थात यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि— ये योग के आठ अंग हैं। इन आठ अंगों को साधना के आधार पर दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है— बहिरंग साधन, अंतरंग साधन।

ऊपर बताए हुए आठ अंगों में से पहले पांच को बहिरंग साधन कहते हैं तथा अन्य तीन अंगों को अंतरंग साधन कहते हैं। बहिरंग साधनों की विशेषता यह है कि ये साधन बाहरी क्रियाओं से संबंध रखते हैं तथा अंतरंग साधन अंतःकरण से संबंधित होने के कारण अंतरंग साधन कहलाते हैं।

अष्टांग योग आधारित बहिरंग तथा अंतरंग साधनों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित हैः—

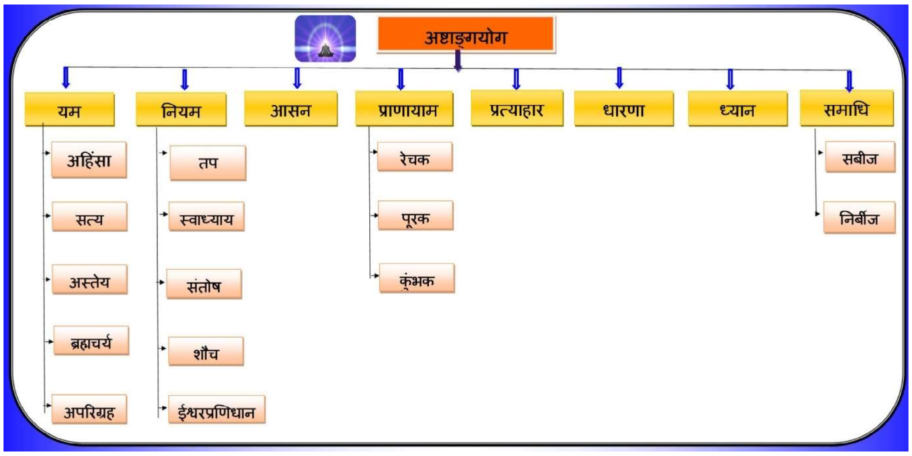

1. यम

अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। (योगसूत्र 2/30)

अर्थात अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन पांचों का नाम 'यम' है।

(क) किसी भी प्राणी को मन, वाणी तथा शरीर द्वारा कभी किसी प्रकार से किंचित मात्र भी कष्ट न पहुंचाने का नाम 'अहिंसा' है।

(ख) अंतःकरण और इंद्रियों द्वारा जैसा निश्चय किया हो, हित की भावना से कपटरहित होकर प्रिय शब्दों में वैसा का वैसा ही प्रकट करने का नाम सत्य है।

(ग) मन, वाणी, शरीर द्वारा किसी प्रकार से भी किसी के अधिकार को न चुराना, न लेना और न छीनना अस्तेय है।

(घ) मन, इंद्रिय और शरीर द्वारा होने वाले काम विकार के सर्वथा अभाव का नाम ब्रह्मचर्य है।

(ड) शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध आदि किसी भी भोग सामग्री का संग्रह न करना 'अपरिग्रह' है।

इन पांचों यमों का सब जाति, सब देश और सब काल में पालन होने से एवं किसी भी निमित्त से इनके विपरीत हिंसादि दोषों के न होने से इनकी संज्ञा महाव्रत हो जाती है, यथा–

जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्।। (योगसूत्र 2/31)

टिप्पणी

अर्थात जाति, देश, काल और निमित्त से अविच्छिन्न यमों का सार्वभौम पालन महाव्रत होता है।

2. नियम

''शौचसन्तोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः' (योग–सूत्र 2/32)

अर्थात पवित्रता, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रणिधान ये पांच नियम हैं।

(क) पवित्रता दो प्रकार की होती है, बाहरी और भीतरी। जल मिट्टी से शरीर की, स्वार्थ त्याग से व्यवहार और आचरण की तथा न्यायोपार्जित द्रव्य से प्राप्त सात्विक पदार्थों के पवित्रतापूर्वक सेवन से आहार की, ईर्ष्या, भय, काम, क्रोधादि भीतरी दुर्गुणों के त्याग से भीतरी पवित्रता होती है।

(ख) सुख–दुःख, लाभ–हानि, यश–अपयश, सिद्धि–असिद्धि, अनुकूलता– प्रतिकूलता आदि के प्राप्त होने पर सदा सर्वदा संतुष्ट प्रसन्नचित्त रहने का नाम संतोष है।

(ग) मन और इंद्रियों के संयम रूप धर्म का पालन करने के लिए कष्ट सहने का और तितिक्षा एवं व्रतादि का नाम तप है।

(घ) मोक्ष शास्त्रों का अध्ययन और प्रणव का जप 'स्वाध्याय' है।

(ड) ईश्वर की भक्ति अर्थात मन, वाणी और शरीर द्वारा ईश्वर के लिए व ईश्वर के अनुकूल ही चेष्टा करने का नाम ईश्वरप्रणिधान है।

उपर्युक्त यम और नियमों के पालन में बाधक हिंसा आदि विपरीत वृत्तियों के नाश के लिए महर्षि पतंजलि उपाय बताते हैं–

वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्। (योग–सूत्र 2/33)

अर्थात हिंसादि वितर्कों से बाधा होने पर प्रतिपक्ष का चिंतन करना चाहिए। यथा–

वितर्का हिंसादयः कृतकारितानुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम्।

(योग–सूत्र 2/34)

अर्थात कृत, कारित और अनुमोदित भेद से, लोभ, क्रोध और मोह के हेतु से, मृदु, मध्य और अधिमात्र स्वरूप से ये हिंसादि वितर्क अनंत दुःख और अज्ञानरूपी फल के देने वाले हैं। इसके विपरीत भावना को धारण करने का नाम प्रतिपक्षभावना है।

3. आसन

स्थिरसुखमासनम् (योग–सूत्र 2/46)

शरीर की वह विशेष स्थिति, जिसे शरीर के विभिन्न अंगों के संधि स्थलों व मांसपेशियों के संयुक्त प्रयास से प्राप्त किया जाता है तथा जिसके नियमित अभ्यास से शारीरिक व मानसिक स्थिरता प्राप्त होती है, जो शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक व आध यात्मिक सुख की भावना प्रदान करती हो, उसे आसन कहते हैं।

टिप्पणी

योगदर्शन के अनुसार आसन करने के दो मुख्य सिद्धांत हैं। इन सिद्धांतों के लिए योगदर्शन में वर्णन है कि–

प्रयत्नशैथिल्य अनन्तसमापत्तिभ्याम् (योग–सूत्र 2/47)

अर्थात योग साधक के द्वारा योगासन में पहुंचने के लिए, रुकने के लिए तथा वापस आने के लिए जो प्रयत्न किए जाते हैं, वह शिथिलतापूर्वक होने चाहिए। दूसरे आसन बनाए रखने की स्थिति में चित्त को किसी अनंत पदार्थ जैसे साधक की श्वास की क्रिया, नीलाकाश, हरे–भरे खेत व समुद्र का नीला जल आदि पर एकाग्र करना चाहिए।

आसनों के अभ्यास से शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक आदि द्वंद्वो का निराकरण होकर साधक इन्हें सहन करने योग्य हो जाता है। अतः कहा गया है–

ततो द्वन्द्वानभिघातः। (योग–सूत्र 2/48)

अर्थात आसनों की सिद्धि से शीत–उष्ण, भूख–प्यास आदि द्वंद्वों का निराकरण हो जाता है।

4. प्राणायाम

तस्मिन् सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः। (योग–सूत्र 2/49)

अर्थात आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास–प्रश्वास की गति के नियंत्रण को प्राणायाम कहते हैं। योग दर्शन में प्राणायाम के प्रकार बताते हुए कहा गया है कि यह चार प्रकार का है–

1. बाह्यवृत्ति प्राणायाम
2. आभ्यंतरवृत्ति प्राणायाम
3. स्तंभवृत्ति प्राणायाम
4. बाह्याभ्यंतर विषयाक्षेपी प्राणायाम

बाह्यवृत्ति प्राणायाम में कुंभक–रेचक क्रिया के बाद, आभ्यंतरवृत्ति प्राणायाम में कुंभक पूरक क्रिया करने के बाद, स्तंभवृत्ति प्राणायाम में पूरक–रेचक क्रिया के मध्यावधि में कुंभक लगाया जाता है। चौथे प्रकार के प्राणायाम में साधक बिना पूरक व रेचक की क्रिया किए सामान्य रूप से चलती श्वास–प्रश्वास क्रिया के दौरान इच्छानुसार दीर्घकालावधि के लिए कुंभक लगाने में समर्थ होता है।

5. प्रत्याहार

स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः।

(योग–सूत्र 2/54)

अर्थात अपने विषयों के साथ इंद्रियों का संबंध न होने पर इंद्रियों का चित्त के स्वरूप में तदाकार सा हो जाना प्रत्याहार कहलाता है। इस प्रत्याहार के अभ्यास से साधक अपनी इंद्रियों को अत्यंत वश में करने योग्य हो जाता है।

6. धारणा

देशबन्धश्चित्तस्य धारणा। (योग–सूत्र 3/1)

प्रत्याहार की सफलता के बाद जब साधक अपने चित्त को ध्येय वस्तु के सीमित क्षेत्र में लगाने की साधना करता है, साधना की इस प्रक्रिया को धारणा कहा जाता है। यह ध्यान की तैयारी की अवस्था है।

टिप्पणी

7. ध्यान

तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम्। (योग–सूत्र 3/2)

अर्थात धारणा के अभ्यास की क्रिया के दौरान जब साधक अपने चित्त को ध्येय वस्तु पर बिना किसी अन्य विचारों की बाधा के एकाग्र करने में सफल हो जाता है, चित्त की ऐसी अवस्था को ही ध्यान कहते हैं।

8. समाधि

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः। (योग–सूत्र 3/3)

अर्थात ध्यान की वह उच्चावस्था जिसमें साधक कर्ताभाव व ध्यान के क्रियाभाव के प्रति शून्यता को प्राप्त होकर केवल ध्येय वस्तु पर ही चित्त एकाग्र कर लेता है, ऐसी अवस्था को समाधि की संज्ञा दी जाती है। इस अवस्था में ध्याता, ध्यान और ध्येय इन तीनों की एकता की स्थिति प्राप्त होती है।

यम – यम के प्रकार

'यम उपरमे' धातु से उत्पन्न यम शब्द का अर्थ है निवृत्त होना। यमयन्ति निवर्तयन्ति इति यमाः। इस व्युत्पत्ति के अनुसार भी यम की साधना निवृत्ति मूलक है। यम का शाब्दिक अर्थ है–संयम करना, नियंत्रित करना, दमन करना। यम में– प्रतिबंधित करना, रोकना, अवरोध करना।

मल्लिनाथ की टीका 'शिशुपाल वध' के अनुसार, शरीर की साधना जिनमें अपेक्षित है, वे नित्यकर्म अहिंसादि यम हैं। संभवतः मल्लिनाथ ने अमरकोष की ही व्याख्या को उद्धृत किया है। अमरकोष में भी यम का स्वरूप 'शिशुपाल वध' के अनुसार ही मिलता है। किरातार्जुनीयम् के अनुसार– बिना देश काल आदि की अपेक्षा किए हुए शरीर की शुद्धि के लिए किए जाने वाले अहिंसादि कर्म यम हैं। त्रिशिखिब्राह्मणोपनिषद् के अनुसार –यह संपूर्ण विश्व ब्रह्मरूप है– इस प्रकार का ज्ञान कराने वाली पांच ज्ञानेंद्रियों और पांच कर्मेंद्रियों का संयम यम है।

यमों का प्रमुख उद्देश्य साधक को हिंसादि कर्मों में प्रवृत्त होने से रोकना है। यमों से व्यवहार की शुद्धि तथा स्थूल क्लेश कर्मों की निवृत्ति होती है।

यम–अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः। (योग सूत्र 2/30)

1. अहिंसा

यमों में अहिंसा का मुख्य स्थान है। सत्य, अस्तेयादि अन्य यम उसी की पुष्टि के लिए हैं।

अहिंसा का अर्थ 'याज्ञवल्क्य स्मृति' में इस प्रकार किया गया है–

मनसा कर्मणा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा।
अक्लेशजननं प्रोक्तमहिंसात्वेन योगिभिः।।

अर्थात मन, वचन और कर्म से किसी भी प्राणी को मानसिक या शारीरिक पीड़ा अथवा हानि न पहुंचाना और उनके प्रति द्रोहभाव न रखना ही अहिंसा है। मन में किसी का अनिष्ट चिंतन करना, बदला लेने की भावना या हानि पहुंचाने अथवा मारने का विचार लाना मानसिक हिंसा है।

टिप्पणी

वाणी से किसी के मर्मस्थल को आहत करना, कठोर वचन बोलना, मारने की धमकी देना वाचिक हिंसा है।

शरीर से किसी निरपराध प्राणी को दुःख देना, चोट पहुंचाना और मार डालना कायिक हिंसा कहलाती है।

हिंसा की उत्पत्ति

भय, दुर्बलता, अज्ञान, क्रोध, लोभ और मोह से हिंसा का प्रादुर्भाव होता है। किसी ने हमारा अहित किया तो उसके कारण हमारे सुख की हानि हुई। फलस्वरूप हमारे मन में क्रोध का भाव उत्पन्न हो गया। हमने बदले में उसको दंड देने या वैसा ही व्यवहार करने का निश्चय किया और हम हिंसा में प्रवृत्त हो गए।

किसी ने हमें दुर्बल समझकर हमारे ऊपर अत्याचार किया। इसका बदला लेने की भावना भी हिंसा में प्रवृत्त करा देती है। यही बात भय का निवारण करते समय होती है। जिससे हम भयभीत होते हैं, उसे समूल नष्ट करने या हानि पहुंचाने की भावना हिंसा में प्रवृत्त करा देती है। इस सबके मूल में क्रोध का निवास है।

मांस, चमड़ा, अस्थि इत्यादि का लोभ, धन–संपत्ति, जमीन–जायदाद का अधिकार करने की लालसा के कारण भी व्यक्ति हिंसा की ओर प्रवृत होता है। इसी प्रकार देवी–देवताओं को प्रसन्न करने, कामनाओं की पूर्ति करने, मनौती मांगने, खुदा के नाम पर अज्ञान या मोह के वशीभूत होकर पशुबलि या नरबलि देना भी हिंसा का एक रूप है।

हिंसा तीन प्रकार की कही गई है–

कृत– स्वयं की हुई।

कारित– दूसरों द्वारा कराई हुई।

अनुमोदित– दूसरों द्वारा की गई हिंसा का समर्थन करना या प्रसन्न होना।

'मनुस्मृति' में आठ प्रकार के व्यक्ति बधिक (कसाई) बताए गए हैं। प्राणी को मारने की स्वीकृति देने वाला, मारने वाला, मृतक के अंगों को काटने वाला, बेचने वाला, खरीदने वाला, पकाने वाला, परोसने वाला, और खाने वाला–ये सभी प्राणी हिंसा के भागीदार और अपराधी हैं।

हिंसा–निवृत्ति के उपाय– लोभ, क्रोध या मोह के वशीभूत होकर स्वयं या दूसरों से करवाए गए हिंसादि कर्म दुःखरूप अनंत फलों को देने वाले हैं– यह विचार कर इनसे निवृत्त होने का उपाय करना चाहिए।

किसी ने वैरभाव से हमारा अपकार किया, यह जानकर बदले में उसके साथ वैसा ही व्यवहार करना समझदारी का कार्य नहीं है। 'खून का बदला खून' या कांटे से कांटा निकलता है' इस बात को मन से निकाल दें–

टिप्पणी

न हि वैरेण वैराणि, शाम्यन्तीह कदाचन।
अवैरेण च शाग्यन्ति, एषो धर्मः सनातनः।।

अर्थात किसी के द्वारा वैर–विरोध या हमारा अपकार करने पर बदले में वैर, अपकार या प्रतिशोध की भावना रखने से वैर कदापि शांत नहीं होता, अपितु वैर–भावना को मन से निकाल देना ही एकमात्र उपाय है।

सृष्टिकर्त्ता ने सभी प्राणियों को उनके कर्मों के अनुसार शरीर दिए हैं। उसकी रचना को बिगाड़ने या मिटा देने का हमें अधिकार नहीं है। सभी प्राणियों को जीने का अधिकार है। जब हमारे शरीर में कांटा लग जाने पर ही इतनी पीड़ा और कष्ट होता है तो अपनी जिह्वा के स्वाद के लिए बेजबान, बेकसूर प्राणियों को मारना कहां की बुद्धिमत्ता है।

मनु जी कहते हैं– जो निरपराध, निरीह जीवों का आत्मसुख के लिए वध करता है, वह न तो इस जीवन में सुख पाता है और न ही मरने के बाद।

मांस–भक्षण के संदर्भ में महर्षि यास्क ने कहा है– भक्षयिता को मांस मानो कह रहा है कि जो मुझे खाता है, आगे जाकर मैं भी उसे खाने वाला हूं।

परंतु राग–द्वेष और क्रोधादि के वशीभूत न होकर किसी के सुधार के लिए ताड़ना करना या दंड देना हिंसा नहीं है। इसी भांति शल्य–चिकित्सकों द्वारा की जाने वाली चीर–फाड़ भी रोगी के हित को ध्यान में रखकर किए जाने के कारण हिंसा की कोटि में नहीं आती। ऐसे ही राजधर्म का पालन करते हुए चोर, उचक्के, आततायी और दुष्टजनों को कारावास, शारीरिक पीड़ा या मृत्युदंड भी देना पड़े अथवा शत्रु–पक्ष के सैनिकों का युद्ध में संहार करना पड़े तो वह कर्म हिंसा न होकर कर्तव्यपालन ही कहा जाएगा। एक दुष्ट व्यक्ति को कारागार में डालने या मृत्युदंड देने से अन्य बहुत से सज्जन लोग सुख से जीवन व्यतीत करेंगे। बहुत से लोग इस भयंकर दंड को देख कर पाप–कर्म में लिप्त होने से बचने का प्रयत्न करेंगें। जिसे दंड दिया गया है वह भी भविष्य में पाप कर्म करने से बचेगा। इस प्रकार अनेकविध होने वाली हिंसा को रोकने के संदर्भ में यह कर्म अहिंसा में ही गिना जाएगा। इसी भांति माता–पिता या गुरुजनों द्वारा दुर्गुणों के निवारणार्थ दिया गया शारीरिक दंड या वाचिक भर्त्सना भी छात्र या संतान की भलाई के लिए ही होता है। सीमातीत लाड़–प्यार से बच्चों के बिगड़ने की ही संभावना रहती है।

अहिंसा का फल– अहिंसा की पूर्ण प्रतिष्ठा हो जाने पर व्यक्ति का सब प्राणियों के प्रति वैरभाव छूट जाता है और उसके संपर्क में आने से अन्य प्राणी भी वैरभाव को त्याग देते हैं।

2. सत्य

जैसा देखा, जैसा सुना और जैसा अपने मन में हो, उसको वैसा ही कहना, करना और मानना सत्य कहलाता है परंतु वह सत्य मधुर और परोपकारक होना चाहिए। शास्त्रों में कहा गया है– 'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्'– सदा सत्य बोलें, प्रिय बोलें। अप्रिय सत्य न बोलें। जैसे अंधे व्यक्ति को 'ओ अंधे', लंगड़े को 'ऐ लंगड़े', काने को 'ओ काने' इत्यादि कहकर बुलाना कटु सत्य होने से त्याज्य है। इस प्रकार बोलने से

उस व्यक्ति के मर्मस्थल पर आघात पहुंचता है तथा अपना भी कोई विशेष प्रयोजन सिद्ध नहीं होता।

टिप्पणी

इसलिए सत्य बात भी मधुर शब्दों में कहने पर ही सुख देती है। महाभारत के शांतिपर्व में आया है– 'सत्य का बोलना अच्छा है, परंतु हितकारी वचन बोलना सत्य से भी श्रेष्ठ है। जिससे प्राणियों का वास्तविक हित या भलाई होती हो, वही सत्य है।'

जिस सत्य के बोलने से किसी निरपराध प्राणी को कष्ट या उसे अपने प्राणों से हाथ धोना पड़े, वह सत्य न होकर पाप ही माना गया है। यदि आपके सत्य बोलने से किसी व्यक्ति का उपकार न होता हो तो उसे न बोलना ही अच्छा है। यह आवश्यक नहीं है कि बिना अवसर के सत्य को सबके सामने प्रकट किया जाए।

इसी भांति असत्य–भाषण करना भी महापाप है। परमात्मा ने मनुष्य को सार्थक वाणी दी है। असत्य बोलकर उसका दुरुपयोग करना पाप है। उपनिषद् में ऋषि कहते हैं– 'जो झूठ बोलता है वह मूल सहित सूख (नष्ट) जाता है।

वाणी के चार पाप

असंबद्ध अर्थात बिना मतलब के बोलना या बकना, कठोर भाषण करना चुगली या निंदा करना तथा झूठ बोलना– ये वाणी से किए जाने वाले चार प्रकार के पाप हैं। इनके निवारण के लिए मौन रहना, विचार करके बोलना, मधुर भाषण, दूसरों के गुणों की प्रशंसा करना और सत्य भाषण का अभ्यास यत्नपूर्वक करना चाहिए।

सत्य की पहचान

सत्य सदा सरल होता है। सत्य भाषण में किसी प्रकार का छल–कपट और कुटिल व्यवहार नहीं होता। जिस बात को कहने से मन में निर्भीकता बनी रहे, मन में संकोच, भय, लज्जा के भाव नहीं आएं और उत्साह बना रहे, वह सत्य है। परमात्मा ने सत्य में श्रद्धा और झूठ में अश्रद्धा को स्थापित किया है। परमेश्वर सत्य की सदा रक्षा करता है। सत्यवादी को किसी प्रकार का भय नहीं होता। इसके विपरीत, झूठ बोलने वाले व्यक्ति के मन में भय बना रहता है। वह एक झूठ को छिपाने के लिए अनेक झूठ बोलता है। आत्मा की आवाज को दबाकर सत्य के स्थान पर असत्य बोलना महापाप है।

सत्य की साधना

'मौन' वाणी का भूषण है। जितनी आवश्यकता हो, उतना ही बोलो। मौन रहकर सत्य स्वरूप परमात्मा का चिंतन करो। किसी बात को कहने से पहले उस पर विचार करके बोलो। जिससे जैसी प्रतिज्ञा की हो, उसको पूरा करना तथा मन–वचन–कर्म में सत्य का आचरण अर्थात जैसा मन में हो वैसा ही वाणी से कहना और जैसा कहा हो उसके अनुसार आचरण करने से सत्य की सिद्धि होती है।

सत्य का फल

मन, वचन और कर्म में सत्य की पूर्ण प्रतिष्ठा होने पर व्यक्ति जो कुछ वाणी से कह देता है, उसका वह वचन पूरा होता है। किसी को यह कह दिया– तू धार्मिक बन जा, तो उसके सत्य वचन के प्रभाव से वह व्यक्ति धार्मिक बन जाता है। एक ओर अश्वमेध तथा यज्ञों के फल को तराजू के पलड़े में रखें और दूसरी ओर सत्य को रखने पर, सत्य का पलड़ा ही भारी रहेगा।

3. अस्तेय

लोभ के वशीभूत होकर, शास्त्रों की मर्यादा को तोड़कर, अन्याय द्वारा दूसरों के पदार्थों को बलपूर्वक या छल–कपट से ग्रहण करना स्तेय (चोरी) है। इसका त्याग करना अर्थात चोरी को छोड़ना, अस्तेय कहलाता है।

मन, वचन, कर्म से दूसरे के द्रव्य की इच्छा न करने को ही तत्वदर्शी ऋषियों ने अस्तेय कहा है। बिना आज्ञा के दूसरे की वस्तु को लेना, बिना परिश्रम के धन की प्राप्ति, अन्याय से दूसरे के धन पर अधिकार– ये सब कर्म चोरी के अंतर्गत आते हैं। इसके अतिरिक्त किसी से न्यायोचित अधिकार छीनना, आजीविका या वेतन का हरण करना, रिश्वत लेना, कम तोलना, उचित से अधिक मूल्य लेना, अपने कर्तव्य का पालन न करके भी वेतन ग्रहण करना, कार्य में लापरवाही बरतना– ये सभी कार्य चोरी के अंतर्गत ही आते हैं।

अस्तेय साधना

अस्तेय के साधक को विचार करना चाहिए कि परमात्मा जड़ और चेतन सभी में व्याप्त है। यह सारा धन उसी का दिया हुआ है। इसलिए पुरुषार्थ करने के अनंतर जो कुछ प्राप्त हो, उसी से प्रसन्न रहें, अन्य किसी के धन की लालसा नहीं करें। लोभ और मोह को संतोष से वश में करें। भोगों को भोगने के पश्चात उनसे होने वाली वासना को 'राग' कहते हैं, जिसके वशीभूत होकर व्यक्ति अनुचित साधनों से भी धन–संचय में प्रवृत्त होता है। इसका निवारण विवेक एवं वैराग्य द्वारा करना चाहिए।

अस्तेय का फल

जब साधक मन, वचन, कर्म से चोरी का सर्वथा त्याग कर देता है तो वह सबका विश्वास पात्र बन जाता है। सब उत्तम पदार्थ उसे स्वतः ही प्राप्त होने लगते हैं।

4. ब्रह्मचर्य

योगदर्शन के व्यास भाष्य में ब्रह्मचर्य का अर्थ प्रजननेंद्रिय का संयम बताया गया है, जिसका अभिप्राय वीर्य–रक्षा है। सुरक्षित वीर्य पुनः शरीर का भाग बनकर शरीर में बल, हृदय में धैर्य, उदारता, मन में उत्साह और आत्मा को परमात्मा के दर्शन की योग्यता प्रदान करता है।

ब्रह्मचर्य साधना

1. प्रातःकाल जागरण से लेकर रात्रि तक सारे समय को विभिन्न कार्यों के लिए निश्चित करके उसके अनुसार चलना चाहिए। कभी खाली नहीं बैठें, क्योंकि खाली मन ही शैतान का घर होता है।
2. प्रतिदिन व्यायाम के लिए कुछ समय अवश्य निकालिए। व्यायाम से शरीर की शक्ति का पुनः शरीर में अवशोषण होकर वह शरीर को स्फूर्ति, कांति, बल, तेज प्रदान करती है। बिना व्यायाम के ब्रह्मचर्य– पालन की कल्पना भी नहीं की जा सकती।
3. भोजन सात्विक होना चाहिए। भोजन में मिर्च, मसाले, तेज, खटाई तथा अभक्ष्य पदार्थों का परित्याग करें। इसी भांति शराब, भांग, गांजा, अफीम, हेरोइन इत्यादि मादक वस्तुओं से भी बचना चाहिए।

टिप्पणी

4. मन को विक्षिप्त करने वाले दृश्य, चलचित्र, नृत्य–गीत, उपन्यास, कथा–कहानी को देखना और पढ़ना छोड़ दें।
5. ब्रह्मचर्य–रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का संग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकांत–सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक रहकर उत्तम शिक्षा को प्राप्त होवें (सत्यार्थ प्रकाश)
6. कुसंगति से बचें। यदि कोई चरित्रवान साथी नहीं मिलता तो अपने माता–पिता के साथ ही रहें। किसी महापुरुष का जीवन–चरित अथवा चरित्र को ऊंचा उठाने वाले ग्रंथों का स्वाध्याय करें।
7. जहां तक हो सके, एकांत में न रहें। हर समय काम में लगे रहें और अपने जीवन का लक्ष्य बनाकर उसकी प्राप्ति के लिए अहर्निश प्रयत्न करें।
8. सादगी का जीवन व्यतीत करें। फैशन, शृंगार तथा अन्य विलासिता की वस्तुएं ब्रह्मचर्य में बाधक हैं। एक विचारक का कथन है– "सादगी सदाचार की जननी है तथा शृंगार व्यभिचार का दूत है।"
9. 18 वर्ष से पूर्व विवाह न करें। यदि घरवाले करना चाहें तो उन्हें भी विनम्रता से समझा दें कि ब्रह्मचर्य का नाश करने वाला जितना बाल–विवाह है, उतना अन्य नहीं।
10. प्रतिदिन संध्या, आसन, प्राणायाम और ईश्वर भक्ति में मन को लगाएं। ईश्वर चिंतन ही ब्रह्मचर्य का वास्तविक अर्थ है। जब भी मन में बुरे विचार आएं, श्वास को बाहर निकालकर उसे बलपूर्वक बाहर ही रोकें और मन में ईश्वर से सहायता करने के लिए प्रार्थना करें। ऐसे दो–चार बार प्राणायाम करने से मन शांत होकर सुविचारों में लग जाता है।

ब्रह्मचर्य का फल

मन, वचन, कर्म से ब्रह्मचर्य का पालन करने पर बल, वीर्य, ओज, तेज की प्राप्ति होती है।

5. अपरिग्रह

परिग्रह का अर्थ सब ओर से संग्रह करना होता है। उसका त्याग ही अपरिग्रह कहलाता है अर्थात आवश्यकता से अधिक धन, संपत्ति और साधनों का संग्रह न करना अपरिग्रह है।

विषयों का उपभोग करने के पश्चात उनकी वासना पुनः उन्हीं विषयों के लिए प्रेरित करती है। इस वासना के वशीभूत हुआ व्यक्ति विषय–भोग के साधनों को एकत्रित करने के लिए प्रवृत्त होता है तथा अन्य लोगों की आवश्यकताओं की ओर ध्यान न देकर, निजी सुखोपभोग के लिए साधनों को एकत्रित करने लगता है। परिग्रह का अर्थ है, सब उचित–अनुचित साधनों से धन–संपत्ति का संग्रह करना। इसी का दूसरा नाम पूंजीवाद भी है। जब कभी देश में किसी पदार्थ की कुछ कमी हुई या कृत्रिम अभाव उत्पन्न किया गया, उसी समय मूल्यों में वृद्धि होकर वस्तुएं मिलनी दुर्लभ हो जाती हैं, अथवा काला बाजार में अधिक मूल्य से उन्हें लेना पड़ता है।

टिप्पणी

धन का संचय करना राष्ट्र की गति को ही रोक देता है। जैसे नदी–नालों का पानी गतिशील होने के कारण निर्मल बना रहता है और जोहड़–तालाब का जल गतिशील न होकर एक स्थान में दूषित होता रहता है– कालांतर में वह जल दुर्गंधित होने लगता है, उसी भांति आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह करने पर उसकी दान, भोग या नाश– ये तीन गतियां होती हैं। अच्छा तो यह है कि अपने आवश्यकता से अधिक धन को राष्ट्रहित के कार्य, विद्यालय, औषधालय या निर्धनों की सहायतार्थ व्यय कर दिया जाए अथवा उसका स्वयं उपभोग किया जाए। जो व्यक्ति न तो दान देता है और न ही अपने कार्य में खर्च करता है, उसके धन की तृतीय गति (नाश) होती है।

सुखोपभोग के साधनों को एकत्र करने के लिए बहुत सा समय, बुद्धि और श्रम लगाना पड़ता है। जब वे साधन इकट्ठे हो जाते हैं, तब उनकी रक्षा करने की चिंता हो जाती है। यदि किसी कारणवश ये साधन छिन गए या नष्ट हो गए तो फिर दुःख का पारावार ही नहीं रहता। किसी कवि ने ठीक ही कहा है–

अर्थानामर्जनेदुःखम्अर्जितानां च रक्षणे।

आये दुःखं व्यये दुःखं धिगर्थाः कष्टसंश्रयाः।।

अर्थात धन के कमाने में भी दुःख उठाने पड़ते हैं और रक्षण में भी। जब कमाने में भी दुःख और खर्चने में भी दुःख होता है तो दुःखों से भरे ऐसे धन पर धिक्कार है।

हमारी प्राचीन संस्कृति में धन कमाने का अधिकार केवल गृहस्थाश्रम में रहने वालों को ही होता था। शेष ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ और संन्यासी लोग अपनी आवश्यकता को सीमित रखते हुए त्यागमय जीवन व्यतीत करते थे। आज सभी लोग धन कमाने में जुट गए हैं, फिर भी उनकी इच्छाओं की पूर्ति नहीं होती। इसका कारण व्यक्ति की भोग विलास की इच्छा में वृद्धि होना ही है।

सुखोपभोग के जितने साधन होंगे, उतने ही रोगों की संभावना बढ़ जाएगी। भर्तृहरि ने कहा है– भोगेरोगभयम्। पहले हृदयाघात या कैंसर जैसे रोगों से इतने व्यक्ति पीड़ित नहीं होते थे। एड्स जैसे भयंकर रोग का तो नामो निशान भी नहीं था। इन विविध घातक रोगों की उत्पत्ति के पीछे असंयम, शारीरिक श्रम का अभाव और धन के लिए लालसा ही मुख्य कारण है।

सभी के लिए सुखोपभोग के साधन जुटाए भी नहीं जा सकते। यदि किसी विधि से ये साधन प्राप्त कर लिए जाएं, तब भी व्यक्ति संतुष्ट नहीं हो सकेगा। उसे कई और साधनों के प्राप्त करने की लालसा बनी रहेगी। मानव की कभी भौतिक संपत्ति से तृप्ति होगी ही नहीं, अतः ज्ञानपूर्वक इनका परित्याग करना ही उचित है।

आज के मानव की स्थिति उस व्यक्ति के समान है जो समुद्र में गोता लगाकर मोती प्राप्त करने के स्थान पर, किनारे पड़ी सीप और कौड़ियों को चुनकर ही प्रसन्न हो रहा है। मानव–जीवन प्राप्त होना दुर्लभ है। इस जन्म को प्राप्त करके यदि हम अपने अंतिम लक्ष्य 'मोक्ष' को प्राप्त नहीं कर सके, तो फिर यह जन्म व्यर्थ ही गया जानो। संसार के विषयों को अन्य योनियों में भी भोगा जा सकता है, परंतु ईश्वर भक्ति तो केवल मनुष्य जीवन में ही संभव है। हमें यह मानव शरीर नौका के समान संसार सागर से पार होने के लिए मिला है। इसकी उतनी ही रक्षा करना प्र्याप्त है जिससे कि यह स्वस्थ रहकर हमें अपने लक्ष्य तक निर्विघ्न पहुंचा सके।

अपरिग्रह साधना

टिप्पणी

संसार की सभी धन–संपत्ति और साधन परमेश्वर के दिए हुए हैं। जैसे वायु, जल, सूर्य का प्रकाश, भूमि आदि सभी के लिए हैं, ऐसे ही अन्न, धन आदि पर भी सभी का अधिकार है। अपनी आवश्यकता से अधिक संग्रह करना अन्य लोगों को उसके उपभोग से वंचित कर देना है। इस शरीर को चाहे जितने आराम से रखा जाए, अंत में इसे जीर्ण होना ही है। हम देखते हैं कि हरिण 'शब्द' हाथी 'स्पर्श' पतंग 'रूप' भौरा 'गंध' और मछली 'स्वाद' के वशीभूत होकर अपने प्राण देते हैं। इन प्राणियों की केवल एक–एक विषय में आसक्ति के कारण दुर्गति होती है। जो व्यक्ति पांचों इंद्रियों के विषयों में आसक्त होकर विलासिता का जीवन व्यतीत कर रहा है, वह क्यों न मारा जाएगा? जैसे चमड़े से बने पात्र में एक भी छिद्र हो जाए तो उसमें रखा हुआ सारा जल बाहर निकल जाता है, इसी प्रकार जो व्यक्ति एक भी इंद्रिय का दास है, उसकी प्रज्ञा नष्ट हो जाती है। यह विचारकर मन और इंद्रियों पर संयम रखकर त्यागमय जीवन व्यतीत करना चाहिए।

अपरिग्रह का फल

अपरिग्रह की साधना करने पर साधक के मन में 'मैं कौन हूं, कहां से आया हूं, मेरा इस संसार में आने का क्या प्रयोजन है, मेरे साथ क्या जाएगा' इत्यादि शुभ विचारों का उदय होता है और वह सांसारिक पदार्थों के संग्रह से विरक्त होकर प्रतिदिन ईश्वर–भक्ति में लीन होता जाता है।

नियम – नियम के प्रकार

साधक व समाज के नैतिक स्तर को उच्च बनाए रखने के लिए यमों के महत्त्व का विस्तारपर्वूक वर्णन करने के बाद अब साधक की आत्मशुद्धि के लिए नियमों का वर्णन किया जा रहा है – 'नियमयन्ति प्रेरयन्ति इति नियमाः'। इस व्युत्पति के अनुसार नियम प्रवृत्ति मूलक होते हैं। नियम का शाब्दिक अर्थ है– रोक लगाना, अवरोध करना, वशीकरण करना, सीमित करना, व्रत, प्रतिज्ञा, आत्म निग्रह, धार्मिक अनुष्ठान, निश्चय के अनुकूल नियंत्रण आदि।

याज्ञवल्क्य स्मृति के अनुसार–स्नान, मौन रहना, उपवास, देवपूजन, स्वाध्याय, लिंग निग्रह, गुरु की सेवा, पवित्रता, क्रोध और प्रमाद का त्याग, ये सभी नियम कहलाते हैं। इनकी संख्या भी पांच है। व्यक्तिगत जीवन के लिए इनका पालन आवश्यक है।

1. शौच

व्यक्तिगत जीवन को पवित्र और अनुशासित करने के लिए अष्टांग योग में पांच नियमों का विधान किया गया है, जिनमें पहला नियम शौच अर्थात शुद्धि करना है। इसके दो भेद हैं– आभ्यंतर शुद्धि और बाह्य शुद्धि। इसमें 'मनुस्मृति' का प्रमाण है–

अद्‌भिर्गात्राणि शुध्यन्ति, मनः सत्येन शुध्यति।
विद्या तपोभ्यां भूतात्मा, बुद्धिर्ज्ञानेन शुध्यति।।

अर्थात जल और मृत्तिकादि से शरीर के बाह्य अंगों की शुद्धि होती है। सत्य के आचरण से मन की शुद्धि होती है। विद्या और तपश्चर्या से जीवात्मा निर्मल होती है और ज्ञान–विज्ञान से बुद्धि के मैल दूर होते हैं।

टिप्पणी

शरीर की शुद्धि के लिए शीत ऋतु में प्रातः समय और ग्रीष्म ऋतु में प्रातः–सायं दोनों समय स्वच्छ–शीतल जल से स्नान करना चाहिए। स्नान से शरीर के रोमकूपों का मल दूर होकर वे खुल जाते हैं। आलस्य की निवृत्ति होने से मन भी शांत हो जाता है। इसी भांति साधना करते समय श्वेतवर्ण के वस्त्र, शुद्ध ढीले और खद्दर के होने चाहिए जिनको पहनकर बैठने में किसी प्रकार की असुविधा न हो। स्वच्छ वस्त्रों को पहनकर साधना करने से मन पर अच्छा प्रभाव पड़ता है।

शरीर के आभ्यंतरिक मलों के निष्कासन के लिए शुद्धिक्रिया, कपालभाति, नाड़ी–शुद्धि, प्राणायाम तथा नेति, धौति और शंखप्रक्षालन का अभ्यास कभी–कभी करना ठीक रहता है। केवल प्राणायाम भी सब मलों को दूर करने में समर्थ है। जैसे सुवर्णादि धातुओं के दोष अग्नि में तपाने से भस्म हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम के अभ्यास से इंद्रियों के दोष दूर होकर मन भी शांत और स्थिर होकर एकाग्र होने लगता है। इसी भांति सात्विक भोजन से शरीरस्थ दोष कुपित नहीं होते तथा मन–बुद्धि भी अपनी स्वाभाविक अवस्था में बने रहते हैं।

मन की शुद्धि

शरीर के शोधन के साथ मन की शुद्धि की ओर ध्यान देना भी आवश्यक है। केवल बाह्यशुद्धि से ही कार्य सिद्धि नहीं होती।

न्हाए धोए क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदा जल में रहे, धोए गन्ध न जाय।

काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, ईर्ष्यादि चित्त के मल हैं जिनकी निवृत्ति निम्न विधि से करनी चाहिए–

काम– यह 'संकल्प' से उत्पन्न होता है, 'सेवन' से वृद्धि को प्राप्त होता है और 'त्याग' (वैराग्य) से नष्ट होता है।

क्रोध– यह लोभ से उत्पन्न होता है, दूसरों के दोष देखने से बढ़ता है तथा क्षमा करने से निवृत्त हो जाता है।

मद– अपने उत्तम कुल, विद्या, धन–संपत्ति और ऐश्वर्य से व्यक्ति मदमस्त हो जाता है, चाटुकार लोगों द्वारा स्तुति करने से यह और बढ़ता है परंतु जब व्यक्ति इन क्षणभंगुर भोग के साधनों पर विचार करता है तो इनके स्थायी न होने से उसका मद तत्काल चूर हो जाता है।

लोभ– अज्ञान के कारण भोगों को भोगने के प्रलोभन की भावना उत्पन्न होती है। जब इन भोगों की क्षणभंगुरता का ज्ञान होता है तथा भोगों को भोगने में इंद्रियां समर्थ नहीं रहतीं, तब उसकी निवृत्ति होती है।

मोह– यह 'अज्ञान' से उत्पन्न होता है, पाप का 'आचरण' करने से बढ़ता है और 'विद्वानों का संग' करने से नष्ट होता है।

ईर्ष्या– अपनी कामना पूर्ण न होने और दूसरों की सुख–समृद्धि एवं सफलता देखकर जलना ही ईर्ष्या है, सात्विक बुद्धि (विवेक) से इसका नाश होता है।

शोक– अपने प्रिय व्यक्ति या प्राणी के बिछुड़ जाने या मर जाने पर शोक उत्पन्न होता है। जब व्यक्ति यह समझ ले कि जो होना था सो हो गया, जिसे जाना

था वह चला गया, अब उसका आना कभी भी संभव नहीं है, उसके लिए चिंता या शोक करने का भी कोई लाभ नहीं है, तब जाकर शोक की निवृत्ति होती है।

टिप्पणी

मात्सर्य— सत्य के त्याग और दुष्ट लोगों की संगति करने से 'मात्सर्य' दोष की उत्पत्ति होती है। श्रेष्ठ पुरुष की सेवा और सत्संगति से उनका नाश होता है।

निंदा— समाज से बहिष्कृत नीच मनुष्यों के द्वेषपूर्ण तथा अप्रामाणिक वचनों को सुनकर भ्रम में पड़ जाने से निन्दा करने की आदत पड़ जाती है। इसका परित्याग करने के लिए नीच व्यक्ति की संगति को छोड़ श्रेष्ठ पुरुष का संग करना चाहिए तथा दूसरों के गुणों को देखने का स्वभाव बनाना उचित है।

परासुता— (दूसरों को मारने की इच्छा)— क्रोध, लोभ तथा अभ्यास से हिंसा की प्रवृत्ति होती है। सब प्राणियों के प्रति दयाभाव और वैराग्य से इसकी निवृत्ति होती है।

बुद्धि की शुद्धि

सात्विक भोजन, निष्काम कर्म, सत्संग, स्वाध्याय, प्राणायाम तथा ज्ञान विज्ञान से बुद्धि की शुद्धि होती है। पाप की कमाई, तामसिक भोजन तथा मादक वस्तुओं के सेवन से बुद्धि मलिन होकर सत्य और असत्य का निर्णय नहीं कर पाती।

इंद्रियों की शुद्धि

तप से इंद्रियों की शुद्धि होती है। शरीर की आभ्यंतर और बाह्य शुद्धि से साधक को अपने शरीर से घृणा हो जाती है। वह देखता है कि मेरे शरीर के प्रत्येक द्वार से मलों का उत्सर्जन हो रहा है। वस्तुतः यह शरीर मल, मूत्र, रुधिर, मांसादि का एक पिंड मात्र है जब मैं इसे प्रतिदिन शुद्ध करने का प्रयत्न कर रहा हूं, तब भी यह शुद्ध नहीं होता, तो अन्य स्त्री आदि के शरीर तो और भी मलिन हैं। मैं नाली का कीड़ा बनकर दुःख पंक में गिरने के स्थान पर उससे निकलने का प्रयत्न क्यों न करूं? ऐसा चिंतन करने से उसकी अपने तथा अन्यों के प्रति भी आसक्ति हट जाती है।

आभ्यंतर शौच से मन, बुद्धि और इंद्रियों के मैल दूर होकर मन प्रसन्न, बुद्धि निर्मल तथा इंद्रियां अपने वश में हो जाती है, जिसमें आत्मसाक्षात्कार की योग्यता प्राप्त होती है।

2. संतोष

पुरुषार्थ करने के पश्चात जो कुछ द्रव्य अपने को मिले उसी में प्रसन्न रहना, किसी पदार्थ को प्राप्त करने की लालसा को छोड़ देना संतोष कहलाता है। यदि सारे संसार की धन–संपत्ति एक व्यक्ति को मिल जाए तब भी उसकी संतुष्टि नहीं हो सकेगी। इसीलिए उपनिषद में कहा गया है— 'न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः'। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य की इच्छाओं की पूर्ति धन से कभी भी नहीं हो सकती। इसलिए संतोष ही सबसे बड़ा सुख का साधन है।

गोधन गजधन वाजिधन, और रत्नधन खान।
जब आवे सन्तोष धन सब धन धूलि समान।।

जिसकी जितनी बड़ी तृष्णा, वासना या इच्छा है, जो हर समय यह सोचता रहता है कि मुझे यह मिले, मुझे वह मिले, वास्तव में वही निर्धन है। जैसे अग्नि में घृत डालने

से वह और बढ़ती है, वैसे ही भोगों को भोगते हुए इंद्रियां शिथिल, परंतु और भी चंचल होकर अन्य भोगों की मांग करने लगती हैं। मानव इन भोगों को जुटाने के लिए अशांत होकर भटकता रहता है।

टिप्पणी

संतोष साधना– साधक को यह चिंतन करना चाहिए कि धन–संपत्ति, स्त्री, पुत्रादि व्यक्ति को पूर्वजन्म तथा इस जन्म के कर्मानुसार प्राप्त होते हैं। जितना पुरुषार्थ मैं कर रहा हूं, उतना मुझे मिल ही रहा है। संसार में जितना भोगों को भोगने का उपक्रम बनाया जाएगा, उतना ही रोगों का आक्रमण होगा। कहा भी गया है– 'भोगे रोगभयम्।' भोग भोगने के पश्चात उनके संस्कार व्यक्ति को पुनः उसी ओर प्रेरित करते हैं। हमने अनेक योनियों में न जाने कितने भोगों को भोगा है। हमारे पुण्य–कर्मों के फलस्वरूप ही हमें यह दुर्लभ मानव शरीर मिला है। इसे प्राप्त करके भी हमने यदि प्रभु का भजन नहीं किया तो ये सांसारिक कार्य ऐसे ही सिद्ध होंगे जैसे किसी ने समुद्र में गोता लगाकर मोतियों के स्थान पर कौड़ियां ही एकत्रित की हों। हम इस संसार में खाली हाथ आए थे। यह धन–ऐश्वर्य हमारे साथ जाने वाला नहीं है। फिर क्यों व्यर्थ में इन अनावश्यक ईंट–पत्थर और चंद धातु के टुकड़ों के लिए अपना अमूल्य जीवन नष्ट करें?

तीन वस्तुओं में संतोष करें:–

अपनी पत्नी में, जो भोजन मिले उसमें, धन में।

तीन कार्यों में संतोष न करें–

दान देने, तप करने और विद्या ग्रहण करने में।

संतोष मन के सत्त्वगुणी होने का लक्षण है। यह मन की तामसिक अवस्था या आलस्य का प्रतीक नहीं है। आलसी बनकर पुरुषार्थ न करना, दरिद्रता का प्रतीक है। इसलिए वेदादि सच्छास्त्र, ज्ञान, विज्ञान, स्वाध्याय, ईश्वरभक्ति, दान तथा परोपकार के कार्यों में संतोष न करके उन्हें सदैव अधिकाधिक करते रहने का प्रयत्न करना चाहिए।

संतोष का फल– मन में सत्त्वगुण का उदय होकर जब संतोष में स्थिरता हो जाती है, तब तृष्णा का क्षय हो जाने से अनुपम सुख की प्राप्ति होती है।

3. तप

योगसाधना में उपस्थित होने वाले विक्षेप, सर्दी–गर्मी, भूख–प्यास, मान–अपमान, सुख–दुःख, हर्ष–शोक इत्यादि द्वंद्वों को सहन करते हुए अपने पथ पर आगे बढ़ते जाना ही तप है। जैसे कुशल सारथि चंचल घोड़ों को ऊबड़–खाबड़, ऊंची नीची भूमि पर चलाता हुआ रथ को अपने गंतव्य स्थल तक पहुंचाने में सफल होता है, उसी भांति साधक को अपने जीवन में आने वाले सभी अवरोधों को पार करते हुए निरंतर अपने कर्तव्य पथ पर अडिग रहकर आगे ही बढ़ते जाना चाहिए। उसे अपने मन, वाणी और शरीर को सभी प्रकार के द्वंद्वों को सहन करने का अभ्यस्त बनाना चाहिए। जो तपस्वी नहीं है, उसका योग सिद्ध नहीं होता। अनादि काल से कर्मों की वासना से वासित चित्त, तप के बिना शुद्ध नहीं होता। वेद में तप की महिमा बताते हुए कहा गया है– अतप्ततनूर्न तदामोऽश्नुते अर्थात जिसने तप द्वारा अपने शरीर को तपाकर कष्टों को

सहन करने योग्य नहीं बनाया वह कच्चा है। जैसे कच्चे घड़े में पानी नहीं ठहरता, उसी भांति बिना तप के परमात्मा की प्राप्ति संभव नहीं। रजोगुण और तमोगुण की निवृत्ति तप द्वारा ही संभव है। इसीलिए महर्षि पतंजलि ने असमाहित चित्तवाले साधकों के लिए क्रियायोग का विधान किया, जिसमें सबसे पहले तप को ही लिया है। तप से शरीर, इंद्रिय और मन निर्मल हो जाने से योग–साधना में मन लगने लगता है। गीता में तप के तीन भेद बताए गए हैं–

मानसिक तप

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः।

भावसंशुद्धिरित्येतत् तपो मानसमुच्यते।।

अर्थात 'मन की शांति, मन को अपवित्र विचारों से पृथक रखना, सत्य का आचरण, कुटिलता का त्याग, सौम्य विचार, वृत्तियों का निरोध, छल–कपट को छोड़कर शुद्ध व्यवहार करना मानसिक तप है।

वाचिक तप

अनुद्वेगकरं वाक्यं, सत्यं प्रियहितं च यत्।

स्वाध्यायाभ्यसनं चैव, वाङ्मयं तप उच्यते।।

'किसी के मन में क्षोभ, क्रोध, द्वेष और बदला लेने की भावना उत्पन्न करने वाले वचनों के स्थान पर सत्य, मधुर और हितकारी वचन बोलना और नित्य सद्ग्रंथों का स्वाध्याय करना वाणी का तप है। ऐसे ही मौन रहना और मितभाषण करना भी तप है।

शारीरिक तप

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम्।

ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते।।

'विद्वान, द्विज, गुरु एवं बुद्धिमान व्यक्तियों का सत्कार, सेवा सूश्रूषा करना, शुद्ध, स्वच्छ रहना, कुटिलता को त्याग कर सरल व्यवहार करना, ब्रह्मचर्य और अहिंसा का पालन करना शारीरिक तप कहलाता है।'

माता–पिता और गुरु की सेवा करना परम तप है। माता–पिता अपनी संतान के पालन–पोषण में जितना कष्ट सहन करते हैं, उनके ऋण से उऋण कैसे हुआ जा सकता है। ऐसे ही गुरु तथा आचार्य लोग विद्यादान देकर पशुता से छुड़ाते हैं और सन्मार्ग दिखाते हैं। उनका उपकार मानते हुए उनकी सेवा और सम्मान अवश्य ही करना चाहिए।

अच्छे कार्य में यदि किसी प्रकार की बाधा आ जाए तो उसकी ओर ध्यान न देकर अपने कर्तव्य पथ से विचलित न होकर, आगे ही बढ़ते रहना चाहिए। इसे ही तप कहते हैं।

कैसा तप नहीं करें– शास्त्रों में तामसिक और राजसी तप का निषेध किया गया है। जिस तप के करने से शरीर की धातुओं में विषमता आकर रोगों की उत्पत्ति हो, वह हठधर्मितापूर्वक किया गया तप तामसिक है। शरीर को अनावश्यक पीड़ा देना, जैसे– एक हाथ को ऊपर उठा लेना, एक पैर के ऊपर बहुत समय तक खड़े रहना आदि कार्य तामसिक तप ही कहे जाते हैं। ऐसे ही दूसरे को हानि पहुंचाने की दृष्टि

से किया गया तप भी तामसिक होता है। जो तप अपना सत्कार, मान–सम्मान या पूजा कराने के उद्देश्य से किया जाता है तथा मुझ जैसा तपस्वी और कोई नहीं, आदि दंभ पूर्वक किया गया तप राजसी है।

टिप्पणी

इसके विपरीत फल की इच्छा किए बिना श्रद्धा सहित, चित्त की शुद्धि के लिए किया गया तप सात्त्विक कहलाता है।

तप का फल– तप से शरीर और इंद्रियों की शुद्धि होकर अणिमादि सिद्धियों की प्राप्ति होती है।

4. स्वाध्याय

प्रणव (ओंकार) का जप और मोक्ष–संबंधी शास्त्रों का अध्ययन चिंतन और मनन करना स्वाध्याय कहलाता है। इसके दो अर्थ हैं– स्व+अध्याय अर्थात आत्म चिंतन या आत्म निरीक्षण करना। सु+आ+अध्याय अर्थात सद्ग्रंथों का अध्ययन करना। स्मृति ग्रंथों में कहा गया है–

यह चिंतन भी करना चाहिए– 'मैं कौन हूं? मेरा जन्म किसलिए हुआ है? मैं जो कार्य कर रहा हूं क्या उनसे मेरी आत्मिक संतुष्टि हो रही है? जिन द्रव्यों का मैं संग्रह कर रहा हूं क्या वे मेरे साथ जाएंगे?, इत्यादि विधि से आत्मचिंतन करके दुर्गुणों का परित्याग और सद्गुणों को धारण करना स्वाध्याय कहलाता है।

दूसरा अर्थ– ओ३म, गायत्री एवं अन्य अभीष्ट मंत्र का जप करना तथा आत्मा–परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करने वाले शास्त्रों का अध्ययन और उनका मनन करना स्वाध्याय है।

जप के चार भेद

वाचिक तप– ओंकार का दीर्घ उच्चारण करके जप करना अथवा गायत्री मंत्र या अन्य मंत्र का जप बोलकर करना वाचिक जप कहलाता है। यह जप स्थूलबुद्धि वालों के लिए है अथवा जिन्होंने अभी साधना का प्रारंभ किया है वे मंत्र बोलकर जप करें। इससे उच्चारण की शुद्धि होगी तथा चित्त पर उसके संस्कार भी बनेंगे।

उपांशु जप– जिस जप में ओष्ठ तथा जिह्वा तो चलते रहें, परंतु दूसरों को सुनाई न दे, इस विधि से जप करना 'उपांशु जप' कहा गया है। यह वाचिक जप से अधिक उपयोगी है।

मानसिक जप– इसमें ओष्ठ तथा जिह्वा भी नहीं हिलते। केवल मन को एकाग्र करके जप करना और अर्थ चिंतन करते जाना मानसिक जप कहा गया है। जैसे मन में ओ३म का जप करना और उसके अर्थ रक्षक या व्यापक परमात्मा तथा उसके अन्य गुणों का चिंतन भी साथ ही करते रहना चाहिए।

अजपा जप– इसमें किसी भी प्रकार का प्रयत्न नहीं करना पड़ता। मानसिक जप का अभ्यास होने पर यह स्वयं ही होने लगता है। उदाहरण के लिए श्वास लेते समय 'ओ–ो–ो–ो–ो' तथा छोड़ते समय 'अम्' या 'म्' का उच्चारण करते रहने से, आगे जाकर श्वास–प्रश्वास के साथ वह स्वयं ही होने लगता है।

वाचिक से उपांशु, उपांशु से मानसिक और मानसिक से अजपा जप उत्तरोत्तर अधिक लाभदायक है।

जप से वृत्तियों का सतत प्रवाह बनकर मन एकाग्र हो जाता है। अन्य सांसारिक विचारों का प्रवाह रुक जाता है तथा अर्थ सहित जप करने से परमात्मा के प्रति भक्ति बढ़ती ही जाती है।

टिप्पणी

वेद, दर्शन, उपनिषद् तथा अन्य आत्मा–परमात्मा के स्वरूप का वर्णन करने वाले सद्ग्रंथों का अध्ययन करना भी स्वाध्याय है। ऋषि–महर्षियों ने परमेश्वर का साक्षात्कार करके ईश्वर के गुण–कर्म–स्वभाव, ईश्वर प्राप्ति का मार्ग, इस मार्ग में आनेवाली बाधाएं तथा उन्हें दूर करने के उपाय अपने ग्रंथों में बताए हैं, जिन्हें पढ़कर इस मार्ग के पथिक का मार्ग प्रशस्त होता जाता है। योग–साधना के मार्ग पर पथिक को अकेला ही चलना होता है। इस एकाकी पथ में आने वाली बाधाओं को दूर करने के उपाय जानकर साधक की श्रद्धा और भी बढ़ जाती है और वह अधिक उत्साह से योगाभ्यास में लग जाता है।

व्यक्ति अपने विचारों से बनता है। दिनभर जैसा वह चिंतन करता है, ध्यान के समय वे ही विचार उसके सामने आने लगते हैं। इसके निवारणार्थ पहले दिन कुछ समय तक स्वाध्याय करना चाहिए, अथवा सोने से पहले स्वाध्याय करें। ध्यान के समय जिन बातों का स्वाध्याय किया है, उनको क्रियात्मक रूप में परिणत करने का विचार बना रहेगा। इसीलिए व्यास भाष्य में कहा गया है– स्वाध्याय में पढ़ी हुई बातों का साक्षात् अनुभव योगाभ्यास द्वारा करें और योग में जो अनुभव हुए हैं, उनको स्वाध्याय द्वारा जानने का प्रयत्न करें कि ये अनुभव योग–मार्ग के साधक हैं या नहीं। इस प्रकार नित्यप्रति स्वाध्याय और योगसाधना द्वारा परमात्मा के स्वरूप का दर्शन होता है।

स्वाध्याय का फल– स्वाध्याय से इष्टदेव परमेश्वर का दर्शन होता है।

5. ईश्वरप्रणिधान

ईश्वर प्रणिधान का अर्थ है– अपना सर्वस्व ईश्वर को अर्पित कर देना। शरीर, इंद्रिय और अंतःकरण से होने वाले कर्म और उनके फल अर्थात सर्वात्मना अपने आपको ईश्वर को समर्पित कर देना ईश्वर प्रणिधान है। जैसे छोटा बच्चा माता की गोद में बैठकर सब ओर से निर्भय और निश्चिंत हो जाता है, उसी भांति साधक को 'मैं कर्त्ता हूं' इस अहंकार भाव को त्यागकर अपने सब क्रियाकलापों को उस परमस्नेहमयी जगज्जनी को समर्पित करके निश्चिंत हो जाना चाहिए। जब तक 'मैं' का भाव रहता है, तब तक सकाम कर्म ही किए जाते हैं। यह सकाम कर्म ही जन्म मरणरूप श्रृंखला में बांधने वाले हैं। जब कामनाओं को छोड़कर कर्तव्य भाव और परमात्मा की प्रीत्यर्थ कर्म किए जाते हैं, तभी चित्त की शुद्धि होकर परमात्मा का दर्शन होता है।

जब मैं था तब तू नहीं, जब तू है मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, ता में दो न समाहिं।।

श्रीकृष्ण जी अर्जुन को यही बात समझाते हुए कहते हैं–

यत्करोषि यदश्नासि, यज्जुहोषि ददासि यत्।
यत्तपस्यसि कौन्तैय, तत् कुरुष्व मदर्पणम्।।

हे अर्जुन! तुम जो भी कार्य भोजन, यज्ञ, दान और तप आदि करो, सब परमेश्वर को ही अर्पण करते जाओ। तुम्हारा अधिकार केवल कर्म करने में ही है, उसका फल देना ईश्वराधीन है।

टिप्पणी

यहां पर प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या सभी अच्छे–बुरे कर्म परमेश्वर को समर्पित कर देने चाहिए? यदि ऐसा है तो ईश्वर या खुदा का नाम लेकर जो चोर चोरी करते या पशुओं का गला काटते हैं, वे दोषी क्यों होंगे? क्योंकि उन्होंने तो ये कार्य ईश्वर का नाम लेकर ही किए थे?

इसका समाधान यह है कि जब कोई बालक सर्वात्मना अपनी माता के आश्रय में रहता हुआ उन्हीं कार्यों को करता है जिससे उसकी माता प्रसन्न होती है, जिन कर्मों के करने को वह मना करती है, उन कार्यों को बच्चा नहीं करता क्योंकि उसकी सब क्रियाएं माता के अधीन हैं, ठीक इसी प्रकार जब साधक अपने तन, मन, धन को सर्वथा ईश्वर को समर्पित कर देता है, तब उसकी अपनी इच्छा रह ही कहां जाएगी? क्योंकि उसका अहंभाव समाप्त हो गया है। ईश्वर कभी भी बुरे कार्यों को करने की प्रेरणा नहीं देता। जब सामान्य व्यक्तियों को भी बुरे कार्यों के करने में भय, शंका, लज्जा होती है जो कि परमात्मा की ओर से उन्हें इन कार्यों को न करने का संकेत है, तो फिर जिस व्यक्ति ने सर्वात्मना ईश्वर को समर्पण किया है, वह बुरे कार्यों में प्रवृत क्यों होगा? वह तो परोपकारादि के उन कार्यों को ही करेगा जिनके करने का ईश्वर ने वेदों में विधान किया है।

ईश्वर प्रणिधान भक्तियोग का मूलमंत्र है। परमेश्वर के गुणों में प्रीति, उसके गुणों का कीर्तन–स्तुति तथा अपने को सर्वथा ईश्वर के अधीन मानकर समस्त कर्म और उनका फल भगवान को समर्पित कर देना, ईश्वर के प्रत्येक विधान में संतुष्ट रहना तथा निरंतर उसके नाम का स्मरण करते रहना ही भक्तियोग है। भक्ति ईश्वर के प्रति तीव्र अनुराग और दिव्य प्रेम का स्वरूप है। लौकिक प्रेम स्वार्थ के लिए किया जाता है, परंतु भक्त का भगवान के साथ दिव्य प्रेम कुछ मांगने के लिए नहीं होता। उसका उच्च आदर्श है। भक्ति ईश्वर से कुछ मांगने के लिए नहीं की जाती, अपितु वह स्वयं सब इच्छाओं का विरोध करती है। भक्त वह है जो अपना सर्वस्व ईश्वर को अर्पण कर देता है। उसे अपने–पराए के स्थान पर सभी ओर परमात्मा ही दृष्टिगोचर होता है। संसार के सभी प्राणियों में–जड़ में, चेतन में, सर्वत्र वही दिखाई देता है।

ईश्वरप्रणिधान का फल है कि स्वयं को सर्वात्मना ईश्वर को समर्पित कर देने से बहुत शीघ्र समाधि की प्राप्ति होती है।

आसन स्थिरसुखमासनम्।

स्थिरता और सुखपूर्वक बैठना जिससे ध्यानादि क्रियाएं निर्विघ्न की जा सकें।

- **प्राणायाम**

तस्मिन् सतिश्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः।

आसन के स्थिर हो जाने पर श्वास और प्रश्वास की गति को रोकना प्राणायाम है।

प्राणायाम का महत्व

प्राणायाम 'प्राणस्य आयाम' प्राण और आयाम इन दो पदों से बना है। 'प्राण' का एक सामान्य अर्थ है प्राण वायु, जो श्वास के द्वारा शरीर में प्रविष्ट होती है एवं प्रश्वास द्वारा शरीर से निकल जाती है। 'आयाम' का अर्थ है उस प्राण वायु का विस्तार करना या उसे नियंत्रित करना।

टिप्पणी

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार प्राणायाम के पूर्व की स्थिति को इस प्रकार व्यक्त किया गया है कि आसन का अभ्यास हो जाने पर इंद्रियों को नियंत्रण में रखकर तथा उपयुक्त और परिमित आहार लेते हुए साधक को गुरु द्वारा निर्देशित मार्ग द्वारा प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

महर्षि वसिष्ठ ने प्राण और अपान के उचित संयोग को प्राणायाम कहा है। पूरक, रेचक और कुंभक इन तीनों से प्राणायाम बनता है।

प्राणायाम अष्टांग योग का एक प्रमुख अंग है। राजयोग में भी आसनों के उपरांत ही प्राणायाम का वर्णन किया गया है। व्यास का मत है कि आसनों के सिद्ध होने पर ही प्राणायाम का अभ्यास किया जाना चाहिए। प्राणायाम का अभ्यास करने के लिए साधक को निश्चित आसन में बैठना चाहिए तभी वह प्राणायाम का अभ्यास करने में सफलता प्राप्त कर सकता है।

राजयोग में प्राणायाम की परिभाषा इस प्रकार से दी गई है– "श्वास और प्रश्वास की गति का विच्छेद अर्थात अभाव ही प्राणायाम है।" व्यास ने इसकी व्याख्या इस प्रकार से की है– "आसन के सिद्ध होने पर अर्थात किसी ध्यानात्मक आसन में बैठकर बाहरी वायु का अंदर प्रवेश करना श्वास है और कोष्ठ स्थित अर्थात उदर स्थित वायु का बाहर निकलना प्रश्वास है।" इन दोनों की गति का विच्छेद (अभाव) ही प्राणायाम कहा जाता है। पतंजलि के अनुसार प्राणायाम बाह्यवृत्ति, आभ्यंतर वृत्ति तथा स्तंभवृत्ति के भेद से तीन प्रकार का है। इन तीनों के अभ्यास द्वारा परीक्षित तथा परिवर्धित होता हुआ प्राणायाम दीर्घ और सूक्ष्म हो जाता है। व्यास ने इस सूत्र की विशद व्याख्या इस प्रकार से की है–

बाह्य प्राणायाम– जिस प्राणायाम में प्रश्वास द्वारा प्राण की स्वाभाविक गति का अभाव होता है, वह बाह्य (रेचक) प्राणायाम कहा जाता है।

आभ्यंतर प्राणायाम– जिस प्राणायाम में श्वास पूर्वक अर्थात श्वास द्वारा प्राण की स्वाभाविक गति का अभाव होता है वह आभ्यंतर (पूरक) प्राणायाम कहा जाता है।

स्तंभवृत्ति– जिस प्राणायाम में एक ही बार के विधारक प्रयत्न से बाह्याभ्यांतर उभय प्रकार के स्वाभाविक प्राण की गति का अभाव होता है वह तृतीय स्तंभवृत्ति (कुंभक प्राणायाम) कहा जाता है। कुंभक प्राणायाम दो प्रकार का है– एक बाह्याभ्यंतर (रेचक, पूरक) के मध्य होने से उसकी अपेक्षा करने वाला और दूसरा उसकी अपेक्षा न करने वाला। जो अपेक्षा करने वाला है वह सहित कुंभक है। सहित कुंभक देश, काल, संख्या सहित होने से स्वल्प काल स्थायी है और केवल कुंभक योगी की इच्छा से सहस्रों संवत्सर दीर्घकाल पर्यंत स्थायी है।

सहित कुंभक तीसरे प्रकार का है और चौथे कुंभक से अभिप्राय केवल कुंभक से है। प्राणायाम के दो प्रयोजन हैं– मल निवृत्ति और स्थिरता। इनमें मल निवृत्ति स्थिरता के लिए उपयोगी होने से अवांतर प्रयोजन है और स्थिरता मुख्य प्रयोजन है।

हठयोग के अनुसार प्राणायाम

प्राणायाम से पूर्व स्वात्माराम, वसिष्ठ और चरणदास ने नाड़ी शोधन के बारे में वर्णन किया है। यदि नाड़ियां मल से भरी हुई होंगी तो वायु मध्य मार्ग सुषुम्ना नाड़ी से नहीं

चल सकती। जब तक शरीर में वायु विद्यमान है, तब तक जीवन है। उस वायु का शरीर से निकल जाना ही मृत्यु है। अतः साधक को नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास अवश्य करना चाहिए।

टिप्पणी

मलों से व्याप्त नाड़ियां जब निर्मल हो जाती हैं तब साधक समुचित रूप से प्राण वायु को नियंत्रित करने में समर्थ होता है। इसलिए प्रतिदिन सात्विक बुद्धि से नाड़ी शोधन प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। घेरण्ड संहिता के अनुसार कुशासन, मृगछाला, सिंह छाला, कंबल अथवा स्थल में किसी प्रकार के आसन पर पूर्व या उत्तर की ओर मुख करके, नाड़ी शुद्ध होने तक प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए।

अनुलोम–विलोम प्राणायाम (नाड़ी शोधन प्राणायाम)

चंद्रस्वर (बाईं नासिका) से 8 गिनते हुए श्वास को लीजिए।

पूरक के पश्चात जालंधरबंध लगाएं। दोनों स्वरों को अंगूठे और कनिष्ठा तथा अनामिका से बंद कर लीजिए। नासिका द्वारों को प्रारंभ में बंद करना चाहिए। 32 संख्या गिनते हुए कुंभक (श्वास को भीतर रोकना) करना चाहिए।

सूर्यस्वर से 16 गिनते हुए श्वास छोड़िए। यह आधा चक्र पूरा हुआ। इसी प्रकार सूर्यस्वर से श्वास भरकर उसे रोकें और बायें से बाहर निकाल दें। यह एक चक्र पूरा हुआ। ऐसे 12 चक्र प्रतिदिन करने चाहिए। इस प्रकार अभ्यास करने से शरीर में स्थित 72000 नाड़ियों की शुद्धि होती है। तीन मास तक प्रातः, माध्यन्दिन, सायं और अर्धरात्रि में अभ्यास करने से शरीर में लघुता, जठराग्नि–प्रदीप्ति, मुख पर कांति और दिव्यनाद श्रवण इत्यादि लक्षण प्रकट होते हैं।

कुंभक (प्राणायाम)

हठप्रदीपिका में कुंभक के आठ भेदों का वर्णन किया गया है–

सूर्यभेदनभुज्जायी सीत्कारी शीतली तथा

भस्त्रिका भ्रामरी मूर्च्छा प्लाविनीत्यष्ट कुंभकाः।। ह. प्र. 2.44

सूर्यभेदन

दाहिने स्वर से 8 गिनते हुए श्वास को भीतर लीजिए। जालंधरबंध लगाकर 32 गिनने तक कुंभक कीजिए। बाएं स्वर से 16 गिनते हुए रेचक कीजिए। यह एक चक्र पूरा हुआ। ऐसे 3 चक्र करने चाहिए।

इस प्राणायाम के अभ्यास से जठराग्नि की वृद्धि होती है। कफ एवं वात के रोग, गले के विकार और उदर के कृमि दूर होते हैं।

यह प्राणायाम उष्णता बढ़ाने वाला है, अतः पित्तप्रकृत्ति वालों को और दूसरों को भी ग्रीष्म ऋतु में इसका 3 चक्र से अधिक अभ्यास नहीं करना चाहिए।

उज्जायी

कंठ को आंशिक रूप से आकुंचन करते हुए श्वास को भीतर लेना चाहिए। श्वास हृदय तक जाता हुआ अनुभव होना चाहिए। कंठ के संकोच से श्वास लेने पर सिसकने, हलके खर्राटे या सूं–सूं जैसी ध्वनि निकलेगी। वक्षस्थल को फुलाना और उदर को संकुचित करना चाहिए।

टिप्पणी

पूरा श्वास भरने के पश्चात जालंधरबंध लगाकर श्वास को भीतर रोकना चाहिए। बाएं स्वर से उसी प्रकार की संकुचित श्वास को बाहर निकालना चाहिए।

इसके अभ्यास से सभी नाड़ियों एवं धातुओं का शुद्धिकरण होता है। स्वर, कफ, गले के विकार दूर होते हैं। यह दमा के लिए बहुत लाभकारी है। इसके अभ्यास से थायरॉइड ग्रंथि का असंतुलन, टांसिल की सूजन तथा श्वसन नली में आया अवरोध दूर होता है। हृदय रोगों में भी यह उपयोगी है।

सीत्कारी

दांतों को बंद करके जिह्वा नीचे की दंतपंक्ति के मूल में लगाइए। दांत बंद किए हुए ही मुख द्वारा भीतर श्वास लीजिए। इसमें श्वास भीतर खींचते समय सी–सी की ध्वनि निकलती है। कुंभक करके नाक द्वारा धीरे–धीरे रेचक कीजिए।

शीतली

जिह्वा को बाहर निकालकर उसे दोनों ओर से मोड़कर गोल कीजिए। ओष्ठों की आकृति अंग्रेजी के अक्षर O जैसी बनाने से जिह्वा के दोनों किनारे मुड़कर नालीयुक्त बन जाते हैं। इसी चंचु जैसी बनी जीभ से वायु को भीतर खींचिए। कुंभक करके नासिका मार्ग से प्रश्वास छोड़िए।

सीत्कारी और शीतली दोनों ही प्राणायाम शरीर को शीतलता पहुंचाते हैं। इससे चर्मरोग एवं पित्त के विकार शांत होते हैं। स्वरतंतु स्वस्थ होकर वाणी सुरीली बनती है। ग्रीष्मऋतु में प्यास लगने पर जल के अभाव में शीतली से प्यास को शांत किया जा सकता है। जिन्हें सूर्यभेदन या अन्य प्राणायाम के पश्चात उष्णता या खुश्की प्रतीत हो उन्हें शीतली प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। कफप्रकृति वाले व्यक्ति को शीत ऋतु में इसका अभ्यास नहीं करना चाहिए।

भस्त्रिका

लोहार की धौंकनी के समान श्वास–प्रश्वास की क्रिया होने से इसे भस्त्रिका प्राणायाम कहते हैं।

बलपूर्वक श्वास को भीतर लीजिए और उसी प्रकार बाहर निकालिए। श्वास की क्रिया में छाती, कंधे, पसलियां विकसित तथा संकुचित होते हैं। श्वास निकालते समय आगे की ओर झुकना मना है। मुख की आकृति भी नहीं बिगड़नी चाहिए।

इसी प्रकार 10 से 30 बार श्वास को बाहर अंदर लीजिए। रेचक और पूरक दोनों सक्रिय रहने चाहिए।

अंतिम बार श्वास के पश्चात दाहिने स्वर से पूरक करके कुंभक करें। कुंभक के पश्चात बाएं स्वर से रेचक द्वारा श्वास को निकाल दें। यह 1 चक्र पूरा हुआ, ऐसे 3 चक्र करने उचित हैं।

यह त्रिदोषनाशक और जठराग्निवर्धक है। इससे नजला, जुकाम, गले तथा अन्य कफ रोगों की निवृत्ति होती है। यह सुषुम्ना नाड़ी के मुख पर स्थित कफ को हटाकर कुण्डलिनी जाग्रत करता है। भस्त्रिका के अभ्यास से डायफ्राम, की टोन सुधार होने पर श्वास–प्रश्वास लंबा और गहरा होने लगता है।

टिप्पणी

20–30 बार भस्त्रिका करने के बाद पूरक करके दोनों हाथों की अंगुलियों से आंख, नाक, मुख तथा अंगूठों से कान दबाकर कुंभक कीजिए। श्वास छोड़कर पुनः इसी प्रकार 2 चक्र का अभ्यास करें। इसे षण्मुखी कुंभक कहते हैं। इस प्राणायाम से अनाहत नाद का श्रवण और ज्योति का आविर्भाव होगा तथा इसके अभ्यास से मन शांत होता है।

भ्रामरी

श्वास भीतर लेते समय कंठकूप के समीपवाले प्रदेश से भ्रमर के समान शब्द करते हुए पूरक करें।

अल्पकाल के कुंभक के पश्चात या बिना कुंभक किए ही श्वास को भ्रामरी के जैसा ऊं–ऊं–ऊं का स्वर गुंजाते हुए धीरे–धीरे छोड़िए। इस सारी प्रक्रिया में मुख को बंद करके नासिका से स्वर निकलेगा।

इसके अभ्यास से अत्यंत चंचल मन भी शांत हो जाता है। स्वरयंत्र ठीक होता है तथा मानसिक तनाव दूर होता है।

मूर्च्छा

पूरक करके कुंभक कीजिए। जालंधरबंध दृढ़ता से लगाकर श्वास छोड़िए। गर्दन सीधी करके पुनः पूरक, कुंभक और जालंधरबंध लगाकर रेचन कीजिए।

इस प्राणायाम से कैरोटिड साइनस (विज्ञाननाड़ी) पर दबाव पड़ने से मूर्च्छा जैसी स्थिति हो जाती है। इसलिए इसे मूर्च्छा प्राणायाम कहते हैं।

प्लाविनी

मुख को खोलकर आमाशय में वायु भरिए या श्वास लेकर जिस प्रकार पानी की घूंट भरते हैं उसी प्रकार वायु की घूंट भरकर उसे अन्ननली में धकेलिए। इसमें वायु अभ्यास द्वारा ही आमाशय में भरी जाएगी।

इसी प्रकार घूंट भर–भरकर वायु को आमाशय में भरते जाइए। इससे ट्यूब की भांति पेट फूल जाएगा। हाथ से बजाने पर उससे ध्वनि निकलेगी।

पेट में यथाशक्ति वायु भरने के पश्चात श्वास फेफड़ो में भरकर कुंभक करें।

रेचक करें, परंतु पेट में वायु भरी ही रहेगी। इसी प्रकार जितने कुंभक करने हों पूरे करें।

पेट में कुछ और वायु लेकर पेट को दबाते हुए मुख द्वारा वायु को बाहर निकालिए।

इस प्राणायाम से पेट में वायु भरकर पानी में बिना हाथ–पैर चलाए सीधा लेटा जा सकता है। इसीलिए इसे प्लाविनी कहते हैं। हमारे शरीर में भी 80–85 प्रतिशत पानी है। मनुष्य के शरीर का घनत्व पानी से कुछ ही अधिक होता है। पेट में वायु भरने के फलस्वरूप शरीर का आयतन बढ़ने से व्यक्ति पानी में बिना हाथ पैर चलाए घंटों स्थिर रह सकता है।

इसका अभ्यास होने पर वातसार क्रिया की जाती है। इस क्रिया में वायु के ग्रास निगलकर शंख प्रक्षालन की भांति आंतों में घुमाकर गुदा द्वारा बाहर निकाला जाता है।

इस क्रिया द्वारा आंतों को शुद्ध वायु मिलती है। शल्यचिकित्सक कई बार उदर के यक्ष्मा में उदर को खोलकर और थोड़ी देर शुद्ध वायु में रखकर पुनः सी देते हैं। वातसार क्रिया से यह लाभ बिना शल्यचिकित्सा के प्राप्त किया जा सकता है।

टिप्पणी

वातसार एवं प्लाविनी में वायु आंतों में जाकर उद्दीपन कार्य करती है। इससे उनकी आकुंचन गति बढ़कर मलबद्धता दूर होती है। शंख–प्रक्षालन करते समय भी पानी के साथ वायु के कुछ घूंट भरने चाहिए। इससे आंतशुद्धि शीघ्रता से होगी।

कई बार पेट में भरी हुई वायु के बाहर निकलने में कठिनाई होने के कारण उदर में पीड़ा होती है। ऐसे समय में विपरीतकरणी या पवनमुक्तासन का अभ्यास करना चाहिए। भोजन या उष्णपेय के पश्चात वायु मलद्वार से स्वतः ही निकल जाती है।

प्राणायाम का फल

प्राणायाम के फल के बारे में वर्णन किया गया है– 'ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्।' तब प्राणायाम करने के बाद प्रकाश का आवरण नष्ट हो जाता है। प्राणायाम के प्रयोजन से प्रकाश स्वरूप विवेक ख्याति का आवरण करने वाली अविद्या तथा अविद्या जनित क्लेश व क्लेश जन्य पाप क्षीण हो जाते हैं।

इंद्रजाल के समान महामोह रूप अविद्या से प्रकाश स्वरूप चित्त सत्व को आच्छादित करके वही आवरण हिंसादि पापकर्म में नियुक्त करता है और वह प्रकाश का आवरण कर्म जो संसार का बंधन करने वाला है, प्राणायाम के अभ्यास से प्रतिक्षण क्षीण होता है। पंचशिखाचार्य भी इसमें सहमति दिखाते हैं कि– प्राणायाम से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है। इससे मलों की शुद्धि होती है और तत्व ज्ञान की दीप्ति होती है। इसी बात को ब्रह्मलीन मुनि ने इस प्रकार समझाया है कि क्षीयते का अर्थ नाश होता है, दुर्बल होना नहीं, तथापि क्लेश तथा पाप के नाश का कारण तप है। अतः क्षीयते का अर्थ दुर्बलता को प्राप्त होने से लेना चाहिए। ऐसा प्रतीत होता है कि संसार का कारण जो पापकर्म है, वह प्राणायाम के अभ्यास से दुर्बल भी होता है और धीरे–धीरे नष्ट भी हो जाता है। भाष्यकार व्यास के अनुसार– प्राणायाम का अभ्यास करने वाले योगी के प्रकाश स्वरूप विवेक ज्ञान का आवरण अविद्यादि क्लेश तथा तज्जन्य पाप कर्म भी क्षीण होते हैं। यद्यपि व्यास ने सामान्यतः कर्म का ही उल्लेख किया है क्लेश का नहीं। क्लेश की क्षीणता के बिना तज्जन्य कर्म की क्षीणता होना असंभव है। प्राणायाम के अभ्यास से रोगादि क्लेश का क्षीण होना अनुभव सिद्ध है। अतः प्राणायाम के अभ्यास से क्लेशों की भी क्षीणता होती है। कर्म शब्द से केवल पापकर्म का ही ग्रहण है पुण्य कर्म का नहीं, क्योंकि अविद्यादि क्लेश जन्य विशेषतः पाप ही हैं पुण्य नहीं। अविद्या पहले विवेक और ज्ञान को आच्छादित करती है तत्पश्चात पापकर्म में नियुक्त करती है। इस बात का समर्थन व्यास ने पंचशिखाचार्य के मत से किया है। यह प्रकाशशील विवेक ज्ञान का आच्छादक तथा संसार का कारण है और अविद्या जन्य पापरूप कर्म है। योगी द्वारा प्राणायाम के अभ्यास से यह प्रतिक्षण दुर्बल होता है। जैसे–जैसे प्राणायाम का अभ्यास बढ़ता जाता है वैसे–वैसे, अविद्यादि क्लेश तथा तज्जनित पापकर्म दुर्बलता को प्राप्त होते हुए एक समय आने पर समूल नष्ट हो जाते हैं। प्राणायाम से श्रेष्ठ कोई तप नहीं है क्योंकि प्राणायाम से अविद्यादि क्लेश तथा

तज्जन्य पाप रूपी मलों की निवृत्ति होती है और ज्ञान की दीप्ति अर्थात अभिव्यक्ति होती है।

टिप्पणी

अब प्राणायाम का पापक्षय रूप अवांतर फल प्रतिपादित करके पतंजलि ने मन की स्थिरता रूप मुख्य फल में प्रतिपादित किया है। प्राणायाम के अभ्यास से मन की धारणाओं में योग्यता प्राप्त होती है। प्राणायाम मन को स्थिर करके धारणा विषयक सामर्थ्य वाला बना देता है।

हठयोग के अनुसार प्राणायाम का फल

चरणदास के अनुसार प्राणायाम से बढ़कर कोई तप नहीं और प्राणायाम से बढ़कर कोई बल नहीं। इसमें प्राणवायु वश में होती है तथा मन की चंचलता समाप्त होकर मन शांत होता है। इससे योगी दीर्घायु होता है तथा शरीर के रोग नष्ट हो जाते हैं। इससे ज्ञान का प्रकाश होता है तथा अविद्या का नाश होता है। पापवृत्ति भस्म होती है, मल निर्मल होता है। यह योग के साधनों का मूल है। इसे आधार बनाकर योग मार्ग में आगे बढ़ना चाहिए।

श्वेताश्वतर उपनिषद में प्राणायाम के फल का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि जब अभ्यास का प्रभाव होने लगता है तब पहले यह रूप दिखाई देते हैं—कुहरा, धूप, सूर्य, वायु, अग्नि, विद्युत, जुगनू, बिल्लौर और चंद्र। जब ये रूप दिखाई देने के पश्चात शांत हो जाते हैं तब ब्रह्म का प्रकाश होता है। प्राणायाम के अभ्यास से शरीर हल्का हो जाता है, आरोग्य प्राप्त होता है, विषयों की लालसा मिट जाती है। शरीर की कांति बढ़ जाती है, स्वर मधुर हो जाता है, गंध शुद्ध होती है और मल—मूत्र थोड़ा होता है।

स्मृतियों में कहा गया है कि जिस प्रकार धातुओं को दग्ध करने पर उनके समस्त मल नष्ट हो जाते हैं उसी प्रकार प्राणों के अभ्यास से इंद्रिय संबंधी सभी दोष दूर हो जाते हैं। याज्ञवल्क्य स्मृति में कहा गया है कि समग्र पापों का नाश करने के लिए साधक को प्राणायाम करना चाहिए।

हठयोग में बताया गया है कि प्राणायाम का आरंभ कैसे करें और उत्तरोत्तर उसमें कैसे सफलता प्राप्त करें। प्राणायाम का अभ्यास किस समय करना चाहिए, कहां बैठ कर करना चाहिए, कितने समय तक करना चाहिए। कैसा भोजन करना चाहिए, कितना भोजन करना चाहिए आदि। अतः राजयोग के प्राणायाम में उसी साधक को सफलता मिलती है जिसने पहले हठयोग के प्राणायाम में सफलता प्राप्त कर ली हो अथवा चरणदास की ये कहावत चरितार्थ हो सकती है:—

पोथी माही देखि करि, करै जू कोई योग।
तन छीजै सिद्धि ना भवे, देही आवै रोग।।

सर्वदा गुरु को देखकर, उसकी अनुमति लेकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए ताकि सिद्धि मिले और कोई विघ्न खड़ा न हो। योग तपों में सबसे बड़ा तप है, इससे ईश्वर का सान्निध्य मिलता है और साधक जन्म—मरण के बंधन से मुक्त हो जाता है।

टिप्पणी

- **प्रत्याहार**

इंद्रियों के विषयों से हटकर चित्त के अनुकूल हो जाने को प्रत्याहार कहते हैं। जैसे तीसरे प्रहर में सूर्य अपनी प्रभा को समेटने लगता है, ऐसे ही योगी मन के विकारों को प्रत्याहार द्वारा नियंत्रित करता है। वह कछुए के समान अपनी इंद्रियों को संकुचित कर उन्हें आत्मोन्मुख करने का प्रयत्न करता है। जिस प्रकार गोपालक वन में विचरण करती हुई गायों को लेकर सांयकाल वापिस गांव की ओर लौटता है, उसी भांति विषय रूपी वनों में संलिप्त इंद्रियों को वहां से हटाकर उन्हें अंतर्मुख करने का नाम प्रत्याहार है। जैसे मधु मक्खियां रानी मक्खी के बैठने पर बैठती हैं और उसके उड़ने पर उड़ने लगती हैं वैसे ही इंद्रियां चित्त के अधीन होकर कार्य करती हैं। चित्त जब यम, नियम, आसन, प्राणायाम के अभ्यास से बाहर के विषयों से विरक्त होकर समाहित होने लगता है तब उसका अनुकरण करती हुई इंद्रियां भी अपने व्यापार को रोक देती हैं। चित्त की एकाग्रता के कारण इंद्रियों की अपने विषयों में प्रवृत्ति न होना ही इंद्रिय जय है।

इंद्रियां एवं उनके स्वामी मन को विषयों से हटाने का यही उपाय है कि उन्हें अंतर्मुख होने का कोई कार्यक्रम दिया जाए। जैसे रोते हुए बालक को उसकी माता खिलौना देकर अथवा बातों में लगाकर उसका ध्यान परिवर्तित कर देती है, जिससे बालक रोना बंद कर दूसरी ओर लग जाता है, ठीक वैसे ही प्रत्याहार तथा धारणा में चित्तवृत्तियों को एक कार्यक्रम में संलग्न कर उन्हें एक स्थान पर एकाग्र करने का प्रयत्न किया जाता है। वसिष्ठ संहिता, शांडिल्योपनिषद्, सिद्ध–सिद्धांत पद्धति, योगमार्तण्ड में प्रत्याहार साधना की कुछ विधियां दी गई हैं जिनके अनुसार अभ्यास करने में साधक को सरलता रहेगी। वैसे प्राणायाम से ही इंद्रियां अपने विषयों से पराङ्मुख हो जाती हैं, परंतु उसका प्रभाव थोड़े समय तक ही रहता है। इसके लिए ज्ञानपूर्वक उन्हें विषयों से हटाने का प्रयत्न करना चाहिए।

1. जब इंद्रियां अपने विषयों में विचरण कर रहीं हों तो विषयों के दोष देखकर अर्थात उनके अंतिम परिणाम का विचार कर उन्हें वहां से पृथक करने का प्रयत्न करें। यदि तब भी सफलता न मिले तो साक्षी भाव से तटस्थ होकर इंद्रियों एवं विषयों के खेल को देखते रहें, उनमें रस नहीं लें। थोड़ी देर में कटी पतंग की भांति इंद्रियां विषयों से उपरत हो जाएंगी।
2. जिस किसी वस्तु को देखें, उसे आत्मभाव अर्थात मैं ही इसमें अवस्थित हूं, यह वस्तु मुझ से भिन्न नहीं है– इस भाव से देखें। अथवा इसके माध्यम से इसका रचयिता परमेश्वर ही देख रहा है, इस भाव से देखने का नाम प्रत्याहार है। सब वस्तुओं में उस परम तत्व को विद्यमान जानने से मन उनमें आसक्त नहीं होगा और जिज्ञासा समाप्त हो जाएगी।
3. अपने शुभाशुभ सभी कर्म ब्रह्मर्पण करते हुए करें, परंतु इसका यह अभिप्राय नहीं है कि अशुभ कर्मों का दायित्व भी ब्रह्म पर थोप दिया जाए। जब सभी स्थानों में ब्रह्म की सत्ता मान ली गई तो फिर अशुभ कर्म होंगे ही नहीं क्योंकि प्रायः ऐसे कार्य एकांत में ही किए जाते हैं। वह परमात्मा मेरे सभी कर्मों को देख रहा है, मेरी एक–एक बात को जानता है, यहां तक कि वह मेरे पलक झपकने को

टिप्पणी

भी अंकित कर रहा है– यह भाव सदैव बना रहना चाहिए। साधकों के लिए यह सर्वोत्तम उपाय है।

4. सभी कर्मों को फल प्राप्ति की इच्छा से रहित होकर केवल परमात्मा की प्रीति के लिए करना अर्थात परमात्मा ने सौ वर्ष तक कर्म करने की आज्ञा दी है, उसकी आज्ञा का पालन निष्काम भाव से करना प्रत्याहार है।

   उपर्युक्त विधियों का अभिप्राय यही है कि जैसे कमल का पत्ता जल में रहते हुए भी उससे अलिप्त रहता है उसी भांति कर्तव्य कर्मों को निष्काम भाव और ब्रह्मार्पित होकर करने से अहं भाव छूटकर साधक अंतर्मुख होता चला जाएगा। इसका अभ्यास हर समय करना चाहिए।

5. शरीर के अठारह मर्म स्थल– पैरों के अंगूठे, पैर, टखना, पिंडली, पिंडली का ऊपरी भाग, घुटना, जांघ, गुदा, मूत्रेंद्रिय, नाभि, हृदय, कंठकूप, तालु, नासिकाग्र, नेत्र, भृकुटि, ललाट और मूर्धा में ऊपर से नीचे तक और नीचे से ऊपर प्राण को धारण करना भी प्रत्याहार है। प्राण के स्थिर होने पर मन भी स्थिर हो जाता है।

अष्टादशसु यद्वायोर्मर्म स्थानेषु धारणम्।

स्थानात् स्थानात् समाकृष्य प्रत्याहार च चोत्तमः।।

विधि–किसी ध्यान के आसन में बैठ जाएं। ध्यान को नासिका के अग्र भाग पर केंद्रित कीजिए। श्वास को भीतर जाते और बाहर निकलते हुए देखिए। आंखें बंद रहेंगी। श्वास नासिका के अग्रभाग में स्थिर हो गया है। उसे दायें से बायें तीन से सात बार घुमाएं और फिर बाहर निकाल दें। इसी प्रकार 3–7 चक्र श्वास–प्रश्वास के करें। अब ध्यान को भृकुटि में ले आइए। श्वास दोनों नथुनों से होता हुआ भृकुटि में जाकर स्थिर हो गया है तथा प्राण शक्ति भी वहीं पर केंद्रित हो गई है। पूर्ववत श्वास को घुमाकर धीरे से बाहर निकाल दीजिए। इसी प्रकार दोनों नेत्र, तालु प्रदेश और सहस्रार चक्र में श्वास को ले जाकर वहां रोक लें और उसे घुमाकर निकाल दें। सहस्रार चक्र के पश्चात ध्यान को कंठकूप में लगाकर श्वास–प्रश्वास करें। सारे मस्तिष्क की प्राणशक्ति श्वास के साथ कंठकूप में केंद्रित हो गई है और मस्तिष्क दबाव अथवा तनाव से मुक्त होकर बहुत हलका हो गया है।

अब ध्यान हृदय प्रदेश (अनाहत चक्र) में ले आइए। श्वास के साथ प्राण शक्ति कंठकूप से हृदय प्रदेश में जाकर वहीं स्थिर हो गई है। कुछ समय तक श्वास वहां पर रुकता है और फिर वह वापिस बाहर लौट रहा है।

ध्यान को नाभि में ले आइए। श्वास के साथ प्राण शक्ति हृदय से नाभि में केंद्रित हो गई है। श्वास को नाभि में घुमाकर बाहर निकाल दीजिए।

ध्यान को मूलाधार में टिका दीजिए। श्वास नासिका, भृकुटि, मस्तिष्क में होता हुआ सुषुम्ना मार्ग से मूलाधार तक जा रहा है और उसके साथ प्राणशक्ति नाभि से सरकती हुई मूलाधार चक्र में केंद्रित हो गई है।

अब ध्यान को दोनों कूल्हों के जोड़ो में केंद्रित कीजिए। श्वास का सूक्ष्म प्रवाह सुषुम्ना के मार्ग से मूलाधार और वहां से दो भागों में विभक्त होकर दोनों कूल्हों में जाकर स्थिर हो गया है तथा प्राण शक्ति भी वहां केंद्रित हो गई है। शेष क्रिया पूर्ववत्।

इसी प्रकार श्वास एवं प्राण शक्ति दोनों जांघों, घुटनों, पिंडली टखनों में केंद्रित कीजिए।

टिप्पणी

ध्यान को दाहिने पैर के अंगूठे पर ले आइए। श्वास का सूक्ष्म प्रवाह और प्राण शक्ति सुषुम्ना के मार्ग से मूलाधार और वहां से दोनों ओर कूल्हों के जोड़, जांघों, घुटनों, पिंडली, टखनों में प्रवाहित होते हुए दाहिने पैर के अंगूठे पर केंद्रित हो गई है। सारे शरीर की चेतना वहीं पर आ गई है। शेष सारा शरीर जड़वत हो गया है। दाहिने पैर के अंगूठे पर ध्यान को टिकाए रखिए। मन को आगे जाने का स्थान न मिलने से वह वहीं पर आपका अनुचर बन कर ठहर गया है। दाहिने पैर के अंगूठे पर ध्यान को बनाए रखिए। मन में किसी प्रकार का चिंतन नहीं रहेगा। श्वास चलता है तो चलने दीजिए। यदि श्वास रुकता है तो उधर ध्यान नहीं दीजिए। निर्विकार होकर ध्यान को दाहिने पैर के अंगूठे पर टिकाए रखिए।

कुछ समय वहां रहने के पश्चात जिस क्रम से आए थे उसी क्रम से वापिस लौट कर अंत में ध्यान को भृकुटि पर लाकर छोड़ दीजिए। यदि मन एकदम शांत हो गया है तो उसे सीधा भृकुटि पर ले आइए। जैसे बालक को माता अपनी गोद में थपकी देकर सुला देती है और उसके सो जाने पर धीरे से उसे बिस्तर पर लिटा देती है, वैसी ही क्रिया इस प्रत्याहार विधि में करनी होती है। मन को बाह्य विषयों से हटाकर उसे भीतर की ओर केंद्रित करने में प्रत्याहार की यह विधि बहुत ही उपयोगी सिद्ध हुई है।

प्रत्याहार का फल

ततः परमावश्यतेन्द्रियाणाम्

प्रत्याहार की स्थिति के बाद जो इंद्रियों की स्वाधीनता अर्थात, इंद्रिय जय हो जाता है, ऐसा साधक जितेंद्रिय होकर अपने मन को जहां ठहराना या चलाना चाहे वहीं पर ठहरा और चला सकता है।

- **धारणा**

धारणा शब्द की व्युत्पत्ति धृ धातु में स्त्री प्रत्यांत णिच् और युच् (टाप्) प्रत्यय के लगाने से हुई है। धृ धातु का अर्थ है धारण करना। वह शक्ति जिसमें कोई बात मन में धारण की जाती है, वह धारणा कहलाती है।

पतंजलि के अनुसार किसी भी देश–विशेष में चित्त को बांधने अथवा स्थिर करने को धारणा कहते हैं। बांधने से तात्पर्य है उस देश विशेष में चित्त का संबंध स्थापित करना। भाष्यकार व्यास तथा भोज दोनों ने ही देश विशेष का अर्थ शरीर के बाह्य अथवा आभ्यांतर अंग किया है।

प्रत्याहार द्वारा विषयों से रोके गए चित्त को शरीर के विभिन्न प्रदेशों में लगातार स्थिर किया जाता है, यही धारणा कहलाती है। इसी प्रसंग में पतंजलि ने सूर्य चंद्र तथा ध्रुव में सयंम करने की बात कही है। प्रसंग को देखकर यह कहा जा सकता है कि पतंजलि का अभिप्राय बाह्य सूर्य आदि में संयम न होकर शरीर के अंगों में (अवयवों में) संयम करना ही है। इसलिए व्यास ने सूर्य का अर्थ सूर्य द्वार किया है।

योग भाष्य के व्याख्याकार हरिदरानंदारण्य के अनुसार सूर्य द्वार का अर्थ सुषुम्ना द्वार तथा चंद्र द्वार का अर्थ चंद्र द्वार किया है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि चित्त की धारणा के लिए निर्धारित देश विशेष ही शरीर के अवयव हैं, अन्य नहीं।

टिप्पणी

मंडल ब्राह्मणोपनिषद के अनुसार विषयों से हटाते हुए चित्त को चैतन्य में स्थिर करना धारणा कहलाती है। धारणा के द्वारा मन को स्थिरता मिलती है। अग्नि पुराण के अनुसार ध्यान के योग्य इष्ट देव में मन की जो संस्थिति है वह धारणा कही गई है। यह द्वादश आयाम वाली धारणा होती है और द्वादश आयाम वाली धारणा ही ध्यान का रूप हो जाती है।

हठयोग के अंतर्गत धारणा का वर्णन राजयोग से भिन्न प्रकार से किया गया है। हठयोग में धारणा को तत्वों की धारणा के रूप में लिया गया है और उसका विशद् वर्णन भी किया है। तत्वों की धारणा में उन्होंने पृथक–पृथक नाम तथा स्थान का भी वर्णन किया है। योगतत्वोपनिषद् में पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश– ये पांच धारणा के स्थल कहे गए हैं किंतु यहां पर पृथ्वी आदि का अभिप्राय शरीर के ही विभिन्न अंग मानते हुए कहा गया है कि पैरों से जानु पर्यंत भाग को पृथ्वी कहते हैं। जानु से पायु पर्यंत भाग जलस्थान कहलाता है। पायु से हृदय तक का भाग अग्नि स्थान कहलाता है। हृदय से भ्रूमध्य तक का भाग वायु स्थान तथा भ्रू के प्रारंम्भ से भ्रू के अंत तक का भाग आकाश कहलाता है। इन स्थानों में धारणा करने से पृथ्वी, जल, अग्नि तथा वायु के संयोग से योगी की मृत्यु नहीं होती तथा वह आकाशगमिता की सिद्धि को प्राप्त हो जाता है।

जाबालदर्शनोपनिषद् में भी पांच प्रकार की धारणा का वर्णन मिलता है। पृथ्वी आदि पांच तत्वों में योगी को धारणा करनी चाहिए। इसके अतिरिक्त सर्वकारक अव्यक्त परमेश्वर की आत्मा में धारणा करनी चाहिए तथा इंद्रियों को विषयों से हटा कर मन में लगाना चाहिए। यह धारणा कहलाती है। शांडिल्योपनिषद् में तीन प्रकार की धारणा का वर्णन मिलता है। यथा– आत्म में मन को लगाना दहराकाश में बाह्यकाश को लगाना तथा पृथ्वी आदि पंचभूतों व पंचमूर्ति की धारणा करना। दत्तात्रेय योगशास्त्र, वसिष्ठसंहिता, गोरक्षशतक चरणदास के अष्टयोग में योगतत्वोपनिषद् के समान ही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश आदि के भेद से पांच प्रकार की धारणा का वर्णन लगभग समान रूप से ही मिलता है। यथा–

थम्बिनी धारणा

पैरों से जानु पर्यंत भाग पृथ्वी का स्थान माना जाता है। इसका रंग स्वर्ण के समान पीला और आकार चतुष्कोण है। ब्रह्मा यहां के देवता हैं। पृथ्वी तत्व में योगी लकार वर्ण की धारणा करें। यहां पर चित्त को पांच घड़ी तक स्थिर करना चाहिए। इस प्रकार जब चित्त स्थिर हो जाए तब पृथ्वी तत्व को वश में करना चाहिए। इस धारणा का तब तक अभ्यास करना चाहिए जब तक पृथ्वी तत्व वश में न हो जाए। पृथ्वी तत्व वश में होने पर मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है।

द्रवणी धारणा

जानु से लेकर गुदा तक जल का स्थान कहा गया है। इसका आकार अर्धचंद्राकार है तथा रंग सफेद है। विष्णु यहां के देवता हैं। 'बकार' इस तत्व की ध्वनि है। यहां पर भी चित्त को पांच घड़ी तक लगाकर रखना चाहिए। जल तत्व के सिद्ध होने पर शरीर पर किसी भी प्रकार के विष का प्रभाव नहीं पड़ता। इसे वारूणी धारणा भी कहते है। गोरक्ष शतक, वसिष्ठ संहिता और चरणदास के अष्टांग योग में जल की धारणा के संदर्भ में पाठ भेद मिलता है। वसिष्ठ संहिता ने जल तत्व का स्थान जानु

से लेकर गुदा तक माना है जबकि चरणदास ने जल तत्व का स्थान हृदय से ऊपर कंठ तक माना है।

दहनी धारणा

टिप्पणी

वसिष्ठ संहिता के अनुसार गुदा से लेकर हृदय पर्यंत तक अग्नि का स्थान है। रकार् यहां की ध्वनि है। योगतत्वोपनिषद में भी वसिष्ठ संहिता के अनुसार ही दहनी धारणा का वर्णन मिलता है। इस धारणा के सिद्ध होने पर योगी को अग्नि तत्व से भय नहीं लगता। यदि योगी अग्नि मंडल में प्रवेश कर जाए तो अग्नि उसे नहीं जलाती।

गोरक्ष संहिता और चरणदास के अनुसार कंठ से ऊपर तालु तक अग्नि तत्व का स्थान है। इसका आकार त्रिकोण व रंग लाल है। इस तत्व की ध्वनि रकार् है। रुद्र यहां के देवता है। यहां पर तालु में पांच घड़ी तक प्राण को समाहित करना चाहिए। यह अग्नि धारणा है। इसके सिद्ध होने पर अग्नि तत्व का भय समाप्त हो जाता है। इसे वैश्वानरी धारणा भी कहते हैं।

यहां पर भी पाठ भेद मिलता है। वसिष्ठ संहिता और योगतत्वोपनिषद् में गुदा से लेकर हृदय पर्यंत तक के स्थान को तेज का स्थान माना है जबकि गोरक्ष संहिता और चरणदास ने कंठ से ऊपर तालु तक के स्थान को अग्नि तत्व का स्थान माना है।

भ्रामिनी धारणा

हृदय से लेकर भ्रूमध्य पर्यंत प्रदेश में गोलाकार में प्रवहण शील वायु तत्व का स्थान माना गया है। यह अञ्जन के सदृश नील वर्ण का है। यह ईश की निवास भूमि है। यहां यकार वर्ण है। इस प्रकार के प्रदेश में विशिष्ट वायु तत्व विषयक चित्त की स्थिरता भ्रामिनी धारणा है।

गोरक्ष संहिता के अनुसार हृदय के मध्य से लेकर भौहों के मध्य तक वायु तत्व का स्थान माना गया है। इसका स्थान भ्रूमध्य है। इसका रंग बादलों के रंग के समान है तथा इसका आकार छः कोण वाला है। ईश्वर यहां के देवता हैं। मकार यहां की ध्वनि है। यहां पर प्राणों को पांच घड़ी तक रोक कर रखना चाहिए। वायु धारणा के सिद्ध होने पर योगी को पक्षी की तरह आकाश में उड़ने की सिद्धि प्राप्त होती है। तथा परम पद की प्राप्ति होती है।

योगतत्वोपनिषद के अनुसार वायु की धारणा में धीरे–धीरे शरीर में कंपन होती है और अधिक अभ्यास बढ़ जाने पर योगी के शरीर में दुर्दरी पसीना उत्पन्न होता है। इसके बाद योगी ऊपर कूदने लगता है और अभ्यास के बढ़ जाने पर योगी पद्मासन में ही ऊपर उठने लगता है तथा अतिमानुष जैसी चेष्टाएं करने लगता है।

सांखिनी धारणा

ब्रह्मरंध्र पर आकाश तत्व है। यह सब तत्वों से बड़ा है। जिसका रंग श्याम है तथा ब्रह्मा यहां के देवता है। हकार यहां की ध्वनि है। यहां पर प्राणों को पांच घड़ी तक समाहित करना चाहिए। इसके धारण करने पर साधक जन्म मरण के चक्र से छूट जाता है। इस व्योम तत्व की धारणा में न छावं है और न धूप है।

गोरखनाथ के अनुसार, यदि साधक स्वच्छ जल के समान वर्ण वर्तुलाकार हकार बीज युक्त आकाश तत्व अधिष्ठातृदेव सदा शिव के सहित चिंतन करे और मन सहित

स्वयं भी लीन हो जाए तो पांच घड़ी बितने पर यह धारणा सिद्ध हो जाती है। इसके प्रभाव से मोक्ष के बंद कपाट खुल जाते है। साधक को मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है।

मन, वचन, कर्म से इन पांचों दुर्लभ धारणाओं का अभ्यास होने पर सभी दुःखों से छुटकारा प्राप्त हो जाता है। जब योगी पांच प्रकार की धारणाओं को सिद्ध कर लेता है, तब इन पंच महाभूतों से किसी प्रकार का भय नहीं रहता। शिव संहिता में चक्रों की धारणा का वर्णन मिलता है जो इस प्रकार है–

मूलाधार चक्र में वायु की पांच घड़ी अर्थात दो घंटे तक धारणा करनी चाहिए। स्वाधिष्ठान चक्र में वायु दो घंटे धारण करनी चाहिए। इसी प्रकार मणिपूर चक्र और अनाहत चक्र में भी दो–दो घंटे वायु धारण करनी चाहिए। इसके बाद विशुद्ध चक्र और आज्ञा चक्र में भी पांच–पांच घड़ी या दो–दो घंटे तक वायु धारण करनी चाहिए। इस प्रकार गुदा, पेडू, नाभि, ह्रदय, कंठ और भ्रूमध्य में, षटचक्रों में वायु धारणा करके सिद्ध होने पर पंच महाभूतों का भय नहीं रहता। इस प्रकार पंचभूतों पर विजय प्राप्त होने पर साधक सौ ब्रह्माणों के मृत्युकाल पूर्ण होने पर भी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता।

द्वितीय धारणा

द्वितीय परमात्मा की धारणा है, जो संसार के बंधनों को तोड़कर मुक्ति देने वाली है। इस धारणा में मन को सब ओर से संकुचित करके मन में दृढ़ता लानी चाहिए।

तृतीय धारणा

तृतीय धारणा से साधक परमात्मा को जान लेता है। यदि साधक प्राण वायु पर नियंत्रण कर लेता है तो स्वयं ब्रह्ममय हो जाता है। प्राण वायु को अंदर लेते समय बारह मात्रा का समय लगाना चाहिए। इस स्थिति पर पहुंचने के लिए धीरे–धीरे अभ्यास को बढ़ाना चाहिए। ध्यान करते समय प्राण वायु को दुगुने समय तक ठहराना चाहिए। समाधि भी ध्यान की ही श्रेणी है। यहां पर प्राण वायु को रोकने का समय पांच हजार एक सौ चौरासी मात्रा होना चाहिए।

इस प्रकार राजयोग में धारणा क्या है, इसके स्वरूप का वर्णन मिलता है। हठयोग धारणा के स्वरूप के साथ–साथ साधक धारणा को व्यवहारिक रूप से अपना कर कैसे उसमें सफलता प्राप्त करें, इसका वर्णन मिलता है। हठयोग की धारणा में सफलता मिलने के बाद ही राजयोग की धारणा साधक कर सकता है। राजयोग की धारणा को धारणा का सैद्धांतिक पक्ष और हठयोग की धारणा को धारणा का व्यवहारिक पक्ष कहा जाता है।

• ध्यान

ध्यान ध्यै धातु में ल्युट् प्रत्यय लगने से बना है। ''ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते''– ध्यान में निरत होने के कारण आत्मा विस्मृति को ध्यान कहते हैं।

पौर्वापर्य क्रम में पतंजलि धारणा के पश्चात ध्यान को लेते हैं। उनके अनुसार ह्रदयादि देश रूप विषय हैं उनमें जो ध्येयाकार चित्तवृत्ति की एकाग्रता है वह ध्यान है अर्थात धारणाकाल में जिस नाभि चक्रादि देश में चित्तवृत्ति को लगाया हो उसी देश में चित्तवृत्ति की एकाग्रता को प्राप्त हो जाना ध्यान कहा जाता है। कहने का अभिप्राय है कि ध्यान काल में चित्त ध्येय विषय में इतना लीन हो जाता है कि चित्त में अन्य वृत्तियां

उदित नहीं होती। एक मात्र ध्येय विषयक वृत्ति ही आविर्भूत और तिरोभूत होती रहती है, दूसरा ज्ञान बीच में नहीं आता।

टिप्पणी

वसिष्ठ के मत में आत्मतत्व का चिंतन ही ध्यान है। ध्यान के अभ्यास के लिए साधक का मर्म स्थान, नाड़ी और वायु से परिचित होना आवश्यक है।

ध्यान के प्रकार

स्थूल रूप से वसिष्ठ ने दो प्रकार का ध्यान माना है– सगुण और निर्गुण। निर्गुण ध्यान प्रकार अथवा आकार रहित है। यहां पर सगुण ध्यान के प्रकारों को बताया जा रहा है–

प्रथम– सगुण ध्यान

वसिष्ठ ने पांच प्रकार का सगुण ध्यान कहा है। प्रथम प्रकार के ध्यान में कंद से उठा हुआ प्राणायाम से विकसित बारह अंगुल नालवाला, चार अंगुल विस्तार वाला अष्टदल युक्त तथा केसर युक्त कर्णिका वाला हृदय कमल है। उसमें वासुदेव जगन्नाथ नारायण विशुद्ध चतुर्भुज प्रशस्त अंग वाले, शंखचक्र, गदाधारी, किरीट तथा केयुरधारी, कमल के पत्ते के समान नेत्र वाले, श्रीवत्स से चिह्नित वक्षवाले, पूर्ण चंद्र के समान मुखवाले, विष्णु कमलदल के समान अरुण ओष्ठ वाले, अत्यंत प्रसन्न, निर्मल, स्फटिक के समान कांतिमान, पवित्र मुस्कुराहट वाले, पीतवस्त्रधारी, अच्युत कमल की कांति के सदृश्य चरणद्वय वाले परमात्मा चारों तरफ से आवृत रूप वाले ईश्वर की मन से कल्पना कर– सब प्राणियों के हृदय में स्थित वह देवेश मैं ही हूं– ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने को सगुण ध्यान कहते हैं।

द्वितीय– सगुण ध्यान

मूल प्रकृति रूपी, कर्णिका वाले, आठ ऐश्वर्य रूपी दल वाले, अध्यात्म विद्यारूपी केशवाले, हृदय कमल के मध्य में ज्ञान रूपी नाल वाले, महत तत्व रूपी कंदवाले, प्राणायाम के अभ्यास से प्रबोधित, अखिल ज्योति स्वरूप जगत का कारण, ज्योति शिखा रूप, पांव से मस्तक तक अपने शरीर को देदीप्यमान करने वाले ईश्वर की, निर्वात दीप के समान प्रकाशित अग्नि की कल्पना कर, उसकी शिखा के मध्य में परमात्मा परमेश्वर को नीले मेघ के अंदर चमकती हुई बिजली के समान, नीवारतंतु के समान पीतवर्ण सभी का मूल वह अग्नि देव मैं ही हूं, ऐसी निष्ठा करने को योगी लोग सगुण ध्यानों में इसे उत्तम कहते हैं।

तृतीय– सगुण ध्यान

भौहों के मध्य में कांति स्वरूप, देहमध्य से मस्तक तक स्थाणु निश्चल स्तंभ के समान उठा हुआ सभी का मूल, आत्मा का जगत कारण, महाप्रतापी, देदीप्यमान, अव्यक्त, मन से ऐसी कल्पना कि मैं वही हूं– इस प्रकार का ध्यान भी उत्तम है।

चतुर्थ– सगुण ध्यान

सोममंडल के मध्य में कर्णिका तथा केशर से युक्त आठ दल वाले विकसित हृदय कमल में बालरूप अपने को अव्यय भोक्तारूप से और अमृत की वर्षा करती चंद्र किरणों से घिरे हुए सोलह कंद वाले, अधोमुख शिरकमल से चारों तरफ बरसती हुई हजारों अमृत की धारा से प्लावित पुरुष की कल्पना कर, एकाग्रचित्त से चिंतन कर, उस अमृत से परिपूर्ण सांगोपांग शरीर वाला मैं अव्यय परमात्मा और मैं ही परब्रह्म हूं– इस प्रकार की निष्ठा को भी सगुण ध्यान कहते हैं। इस प्रकार अमृत रूपी ध्यान को करते हुए

योगी छः मास में ही मृत्यु को जीतने वाला हो जाता है और एक वर्ष में जीवन धारण करते हुए भी वह मुक्त है। जीवन–मुक्त को कभी भी कहीं से दुःख का स्पर्श नहीं होता।

टिप्पणी

पंचम– सगुण ध्यान

देदीप्यमान, सूर्यमंडल में, संपूर्ण जगत के आत्मरूप, सुवर्ण रूप पुरुष को सुवर्ण रूप दाढ़ी और केशवाले, सुवर्ण नख वाले, कल्पांत दृश्य जगत की लय को समाहित करने वाले, अग्नि के समान कर्णवाले, सृजन, पालन और संहार करने वाले, हरि पद्मासन में स्थित, सौम्य विकसित, कमल के समान मुख वाले, कमल मध्य की आभा के समान आंख वाले, सभी प्राणियों को अभय देने वाले, सदैव सभी वस्तुओं को जानने वाले, धार्मिक को उठाने वाले, सभी रत्नों से व्याप्त, मुकुट आदि से विभूषित संपूर्ण जगत को प्रकाशित करने वाले ऐसे एकमात्र लोक साक्षी को मन से देखकर, मैं वही हूं, ऐसी ही निष्ठा ध्यान में प्रशस्त मानी गई है। ध्यान ही मोक्ष के लिए राजपथ है। इसी सूर्यात्मक ध्यान से विद्वान लोग इस संसार में मोक्ष मार्ग को जाते हैं।

नारायण तीर्थ ने भी ध्यान के दो रूप– सगुण और निर्गुण माने हैं। उनका सगुण ध्यान वसिष्ठ के समान ही है किंतु निर्गुण ध्यान के विषय में उनका कथन है कि ओऽम् का जप करने वाले साधक को अकार् से ब्रह्मा, मकार् से महादेव तथा उकार् से हरि के अर्थ की भावना करनी चाहिए। फिर तीनों देवों में ऐक्य बुद्धि करने से साधक के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

घेरंड ने तीन प्रकार के ध्यान का वर्णन किया है, स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान। स्थूल ध्यान मूर्तिमय इष्ट देव का ध्यान है, ज्योतिमर्य ध्यान तेजोमय ज्योतिरूप ब्रह्म का चिंतन है तथा सूक्ष्म ध्यान में बिंदुरूप ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का चिंतन किया जाता है।

स्थूल ध्यान

नेत्रों को बंद करके हृदय में अमृत के समान सागर का ध्यान करें कि उसमें रत्नमयद्वीप है और उस दीप की शोभा रत्नामयी बालुका से हो रही है। उसके चारों ओर कदंब के वृक्षों की शोभा हो रही है और ये वृक्ष पुष्पों के खिलने से सुशोभित हो रहे हैं। उस कदंब बन के चारों ओर मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चंपा, पारिजात और कमल से इस द्वीप में खाई बनी हुई है और उन पुष्पों की सुगंध से सभी दिशाएं सुगंधित हो रही हैं। योगी को यह ध्यान करना चाहिए कि उस वन के मध्य में वेद रूपी चार शाखाओं वाला एक कल्पवृक्ष है। वे सब नित्य पुण्य फलों से शोभित है। उन पर भौंरें गुंजार कर रहे हैं। कोयल अपने कूहू–कूहू शब्द द्वारा मन को लुभा रही है। उस कल्पवृक्ष के नीचे महामाणिक्य निर्मित एक मंडप है, जिसमें मनोहर पर्यंक बिछा हुआ है और उस पर इष्ट देवता विराजमान है। फिर गुरु ने जैसा आदेश दिया हो उसी के अनुसार योगी को उस देवता के भूषण वाहनादि का ध्यान करना चाहिए। विद्वानों ने इसे स्थूल ध्यान कहा है।

ज्योतिर्मय ध्यान

ज्योतिर्मय ध्यान से योग की सिद्धि और आत्मा का प्रत्यक्ष होता है। मूलाधार में सर्पाकार कुंडलिनी है। यहीं पर दीप कलिका के आकार में जीवात्मा विद्यमान रहता है। यहां

तेजोमय ब्रह्म का ध्यान करना ही तेजोध्यान अर्थात ज्योतिर्मय ध्यान है। भौहों के मध्य में और मन के ऊर्ध्व भाग में जो प्रणवात्मक ज्योति है उस ज्वाला युक्त ज्योति का ध्यान ही ज्योतिर्ध्यान कहलाता है।

टिप्पणी

सूक्ष्म ध्यान

तेजो ध्यान ज्योतिर्ध्यान के बाद सूक्ष्म ध्यान आता है। योगी का बहुत भाग्य से ही कुंडलिनी जागरण होता है। वह आत्मा के साथ संयुक्त होकर नेत्र रंध्रों से निर्गत होकर ऊर्ध्व भाग में स्थित राजमार्ग नामक स्थान में विचरण करती है। परंतु सूक्ष्मत्व और चंचलत्व के कारण वह दिखाई नहीं देती। शांभवी मुद्रा का अभ्यास करता हुआ योगी कुंडलिनी का ध्यान करे, यही सूक्ष्म ध्यान कहलाता है। यह ध्यान अत्यंत गोपनीय और देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। स्थूल ध्यान से ज्योतिर्ध्यान सौ गुणा श्रेष्ठ है और ज्योतिर्ध्यान से सूक्ष्म ध्यान लाख गुणा विशिष्ट है। इस सूक्ष्म ध्यान की सिद्धि होने पर आत्मा का साक्षात्कार होता है।

हठयोग के एक अन्य आचार्य चरणदास ने चार प्रकार के ध्यान का वर्णन किया है जो इस प्रकार है– पदस्थ ध्यान, पिंडस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान, रूपातित ध्यान।

पदस्थ ध्यान

पदस्थ ध्यान में अपने हृदय में प्रभु के चरण रूपी कमल का ध्यान करें। तत्पश्चात प्रभु के सारे शरीर का ध्यान करें, पैर के नाखून से सिर तक की उनकी छवि का ध्यान करके उनके चरणों में ध्यान लगाना चाहिए। उस समय कुंभक करें या ओंकार का जाप करें। इसके करने से मन स्थिर होता है तथा शरीर के दैहिक, दैविक व भौतिक दुःख दूर होते हैं। इसे पदस्थ ध्यान कहते हैं। जो इसे करता है वह उसके रहस्य को समझ लेता है।

पिंडस्थ ध्यान

यह शरीर पिंड ब्रह्म ही है, वह इसी जीवात्मा में निवास करता है। कमल के देवता विष्णु के यही दर्शन होते हैं। यह सभी चक्रों को शुद्ध करता है। अतः चक्रों पर ध्यान लगाना चाहिए। चक्रों को धीरे–धीरे भेदता हुआ ध्यान भ्रूमध्य में आ जाता है। यहां पर ईड़ा, पिंगला व सुषुम्ना का मिलन होता है। यहां पर ज्योति के दर्शन होते हैं। जब ध्यान चित्त को एकाग्र करके किया जाता है तो पूर्व के सात जन्मों का स्मरण हो जाता है।

इससे आगे सहस्र दल कमल पर अपने गुरु का ध्यान करना चाहिए, वहां पर अमृत का सागर बह रहा है, यहीं पर जीव स्नान करता है। यहीं पर आत्मा को आनंद की प्राप्ति होती है। इसके ऊपर इतना प्रकाश पुंज है जैसे सैकड़ों सूर्यों का प्रकाश हो। उसके ऊपर शून्य पर्वत है, जहां पर योगी विश्राम करते हैं।

रूपस्थ ध्यान

तृतीय रूपस्थ ध्यान है जहां पर अपने मन को ठहराना चाहिए। अपनी दृष्टि भ्रूमध्य में लगा कर मन से एकटक होकर देखना चाहिए। जहां पर पहले ध्यान किया था, वहां पर छोटे–छोटे अग्नि कण जैसे दिखाई देते हैं। उसके कई दिनों बाद वहां पर एक द्वीप की लौ जैसी ज्योति प्रकट होती है। धीरे–धीरे यह अवस्था होने पर दीपों की

टिप्पणी

माला जैसे जल रही हो, ऐसा दिखाई देता है। उसके पश्चात सितारों की माला ऐसे चमक रही होती है जैसे बिजली कौंधती है। ऐसा लगता है कि बहुत से चांद तथा सूर्य आकाश में दिखाई दे रहे हों अथवा ऐसा लगता है कि अपने दोनों हाथों में करोड़ों अणु लिए चमक रहे हों। ऐसा लगता है जैसे सारा संसार झिल–मिल, झिल–मिल होकर प्रकाशमान हो रहा है। यह देखकर शरीर तथा मन में आनंद की अनुभूति होकर सुख प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे गहरे पानी में डुबकी लगाकर पुनः देखते हैं तो चारों तरफ पानी ही पानी दृष्टिगत होता है। इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी को प्रत्यक्ष ध्यान भी कहते हैं, जिसकी प्राप्ति गुरु की कृपा से होती है।

रूपातीत ध्यान

रूपातीत ध्यान शून्य के ऊपर को कहते हैं। शून्य को परब्रह्म समझना चाहिए। भृकुटी भ्रूमध्य के ऊपर जो स्थान है वही शून्य का स्थान है। यहीं पर निर्वाण की प्राप्ति होती है। उसी आनंद को ह्रदय में लाना चाहिए। उसी में अपने मन को लगाना चाहिए। यहां पर साधक को अपना चित्त आठ पहर तक लगाना चाहिए। चित्त के लगाने से साधक को लय की प्राप्ति होती है। जिस तरह से पक्षी आकाश में उड़ते समय धीरे–धीरे दृष्टि से दूर ओझल हो जाता है, फिर अचानक दिखाई दे जाता है। ध्यान करने वाले साधक की भी यही स्थिति होती है। शून्य का ध्यान सबसे ऊंचा ध्यान है। इससे परमतत्व की प्राप्ति होती है। इससे समाधि लग जाती है, जिसे योग निद्रा कहते हैं। ध्यान करने वाला यहां समाहित हो जाता है तथा उसे ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय की त्रिपुटी का ज्ञान नहीं रहता।

यद्यपि ध्यान समाधि की पूर्वावस्था है किंतु गोरख संहिता में इसके कुछ लाभ भी बताए गए है। हठयोग की अन्य पुस्तकों में यथा घेरण्ड संहिता, वसिष्ठ संहिता आदि में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

ध्यान से पाप निवारण

गोरक्ष संहिता के अनुसार सुखासन लगाकर मूलाधारादि चक्रों में मन को लगाकर सम्यक प्रकार से नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि लगाकर ध्येय का ध्यान करना चाहिए। जिससे सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। ध्यान योग्य स्थानों में प्रथम स्वर्ण आभा वाला चार दल कमल का मूलाधार चक्र है। इसका कुण्डलिनी सहित ध्यान करने से सभी पापों से छुटकारा हो जाता है। दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है जो कि छः दल कमल और माणिक्य के समान लाल वर्ण का है। नासाग्र दृष्टि से उस चक्र के साथ आत्मा का ध्यान करने से योगी सुखी होता है।

ध्यान से सामर्थ्य प्राप्ति

मणिपुर चक्र तरुण सूर्य के समान है। नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर इस चक्र में ध्यान करने वाला योगी जगत को क्षुब्ध करने में समर्थ होता है। ह्रदयाकाश में स्थित अनाहत चक्र प्रचंड सूर्य के समान तेजस्वी है। उसका नासाग्र दृष्टि से ध्यान करने पर साधक ब्रह्ममय हो जाता है। प्राणायाम के भेद से विद्युत के समान ह्रदय कमल में नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि रखकर जो योगी ध्यान करता है, वह साधक भी ब्रह्मय हो जाता है।

टिप्पणी

आत्म ध्यान से अमरत्व की प्राप्ति

कंठ स्थान में दीप ज्योति के समान आभा वाले विशुद्ध चक्र में नासाग्र दृष्टि रखकर आत्मा का ध्यान करने से साधक आनंदमय हो जाता है। भौंहों के मध्य में मणि की शिखा के समान आत्मा में नासाग्र दृष्टि करने से साधक को आनंद की प्राप्ति होती है। वहीं नीलाभ परमेश्वर शिव का भौहों में नित्य ध्यान करता हुआ योगी प्राण को जीत कर जीव और ब्रह्म की एकता स्थापित करता है। नासिका के अग्र भाग में निर्गुण, शांत, विश्वतोमुख आकाश के समान व्यापक शिव का ध्यान करने वाला योगी स्वयं भी एकाकी ब्रह्ममय हो जाता है।

ध्यान से कैवल्य प्राप्ति

जहां नाद का प्रकाट्य होता है, वह आकाश मन का स्थान है, उसी को आज्ञा चक्र कहते हैं, वहीं आत्मा में शिव का ध्यान करके योगी मोक्ष को प्राप्त होता है। वह निर्मल व्योमकार मरीचिजल के साधन एवं सर्वव्यापक आत्मा का ध्यान करके योगी मोक्ष को प्राप्त होता है।

ध्यान से अष्ट सिद्धि लाभ

हठयोगियों ने ध्यान के लिए नौ स्थान उपयुक्त कहे हैं– गुदा (मूलाधार चक्र), पेडू (स्वाधिष्ठान चक्र), नाभि (मणिपूर चक्र), हृदयकमल (अनाहत चक्र), उससे ऊपर घटिका स्थान, भौहों के मध्य का स्थान और नभोबिल। ये नौ स्थान ध्यान के योग्य माने गए हैं। इसमें उपाधि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पांच तत्वों को सम्मिलित करके ध्यान करने से अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इन स्थानों में तेजोमय, ब्रह्ममात्मक श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप शिव का ध्यान करके और उन्हें जानकर योगी मुक्त हो जाता है।

ध्यान की श्रेष्ठता

ध्यान योग के बराबर कोई अन्य साधना नहीं है। बड़े से बड़ा यज्ञ भी इसकी तुलना नहीं कर सकता। जब साधक मन के द्वारा यथार्थ के विचार में समर्थ हो जाता है और निरंतर उसी विचार में स्थिर रहता है तो वह अवस्था ध्यान की होती है। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ का फल भी अकेले ध्यान योग के सोलहवें अंश के समान नहीं हो सकता।

राजयोग में ध्यान क्या है, इसके बारे में बताया गया है। इस ध्यान को कैसे करें इस बारे में कुछ नहीं कहा गया। इससे प्रतीत होता है कि जिसने पहले हठयोग का अभ्यास कर लिया हो वही ध्यान का अभ्यास कर सकता है। अतः हठयोग के आचार्यों ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है कि साधक ध्यान का अभ्यास कैसे करें।

• समाधि

समाधि शब्द की व्युत्पति सम् व आ उपसर्ग पूर्वक धा धातु से कित् प्रत्यय के लगने पर हुई है। समाधि का अर्थ है आत्मा के साथ परमात्मा का मिलन।

महर्षि पतंजलि ने राजयोग में ध्यान– साध्य समाधि का लक्षण इस प्रकार से किया है – ''ध्यान जब ध्येय स्वरूप मात्र का प्रकाशक अपने ध्यानाकार रूप से रहित के जैसा हो जाता है, वह अवस्था समाधि कही जाती है।'' दूसरे शब्दों में ध्यानकाल में चित्त, चित्तवृत्ति तथा चित्तवृत्ति का विषय, इन तीनों के समुदाय रूपी त्रिपुटी जिसे

टिप्पणी

क्रमशः ध्याता, ध्यान तथा ध्येय कहते हैं, का ज्ञान होता है परंतु जब वही ध्यान अभ्यास वश अपनी ध्यानाकारता को त्याग कर केवल ध्येय रूप से स्थित होता हुआ भी, ध्येय रूप हो जाने से ध्यान रूप से न भासकर केवल ध्येय रूप से ही भासता है तो वह समाधि है। यदि समाधि काल में ध्यान की विद्यमानता स्वीकार न की जाए तो ध्येय का प्रकाश कौन करेगा? ध्येय का प्रकाश ध्यान ही करता है। इस बात को सूत्रकार ने 'इव' पद से व्यक्त किया है, अर्थात समाधि काल में ध्यान विद्यमान होते हुए भी उसकी प्रतीति न होने के स्वरूप शून्य के समान है। मात्र पद का उपादान करने से समाधि का लक्षण ध्यान में अति व्याप्त नहीं होता, क्योंकि ध्यान काल में त्रिपुटी का भान होने से उसके अंतर्गत ध्येय का भी भान होता ही है। मात्र पद को उपादान करने से यह अर्थ होता है कि केवल ध्येय रूप अर्थ का ही जिसमें भान होता हो, उससे अधिक ध्यानादि का भान नहीं होता, उसका नाम समाधि है।

व्यास के अनुसार, जिस काल में ध्यान केवल ध्येयाकर रूप से निरंतर भासमान एवं ध्येय का स्वरूप हो जाने से चित्त वृत्यात्मक ध्यान स्वरूप से शून्य के समान हो जाता है, उस काल में वही पूर्वोक्त ध्यान समाधि नाम से व्यवहृत होता है, अर्थात ध्यान की परिपक्व अवस्था ही समाधि कही जाती है।

विष्णु पुराण में भी समाधि का ऐसा ही लक्षण किया गया है। बलदेव मिश्र के अनुसार समाधि का यह लक्षण ध्यान के द्वादश काल पर्यंत अभ्यास करने पर सिद्ध होता है। अपने मत के समर्थन में उन्होंने स्कंद पुराण एवं गरुड पुराण के वाक्य भी उद्धृत किए हैं।

नारायण तीर्थ के अनुसार समाधि काल में ध्यान का विषय प्रत्यक्ष गोचर न होकर स्वरूप शून्य के समान प्रतीत होता है वास्तव में यह स्वरूप शून्य नहीं होता क्योंकि अनुमान से उसका ज्ञान होता रहता है।

समाधि का यह लक्षण अष्टांग योग के अंतर्गत उपदिष्ट अंग समाधि के लिए प्रयुक्त हुआ है, अंगी समाधि के लिए नहीं। योग संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात भेद से दो प्रकार का है तथा यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि ये योग के आठ अंग संप्रज्ञात समाधि के अंग है।

अंग समाधि ध्यान रूप वृत्ति की ही अवस्था विशेष है, इसे एक दृष्टांत द्वारा इस प्रकार बताया गया है– ''अहं चिंतयामि देवम्''। इस ध्यान रूप वृत्ति के ध्याता, ध्यान तथा ध्येय रूप त्रिपुटी विषय है और अंग समाधि का केवल ध्येय विषय है, इतना ही इन दोनों में अंतर है।

अतएव यह अंग समाधि ध्यान की ही अवस्था विशेष होने से तथा मुख्य संप्रज्ञात समाधि का अंग होने से इसकी समाधि की कोटि में गणना नहीं होती। इस प्रकार समाधि दो प्रकार की मानी गई है– संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात।

अंग समाधि और अंगी भूत संप्रज्ञात समाधि में इतना अंतर है कि अंग समाधि ध्यान वृत्ति रूप केवल समाधि मात्र ही है। वह स्वरूप शून्य के जैसा होने से उसमें ध्येय के अतिरिक्त कोई पदार्थ भासता नहीं है, क्योंकि वह ज्ञानात्मक प्रकाश रूप नहीं है, ध्यानात्मक है और अंगीभूत संप्रज्ञात समाधि काल में ज्ञानात्मक प्रकाश रूप साक्षात्कार के उदय होने से साधक को चिंतन मात्र से सकल पदार्थ का ज्ञान हो जाता है।

इसी प्रकार संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात समाधि में इतना अंतर है कि संप्रज्ञात समाधि में निखिल चित्त वृत्तियों का निरोध नहीं होता, किंतु अनात्मविषयक अनर्थकारिणी

वृत्तियों का ही निरोध होता है और असंप्रज्ञात समाधि में निखिल चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाता है।

टिप्पणी

धारणा, ध्यान एवं समाधि जब एक विषय विषयक हों तो संयम संज्ञा से अभिहित किए जाते हैं। इन तीनों की तांत्रिक परिभाषा संयम है।

जैसे–जैसे साधक संयम पर विजय प्राप्त करता जाता है वैसे–वैसे समाधि प्रज्ञा का आलोक होता जाता है।

अभ्यास के बल से धारणा, ध्यान तथा समाधि का दृढ़ परिपाक हो जाना 'संयम जय'' कहा जाता है और विजातीय प्रत्यय के अभाव पूर्वक केवल ध्येय विषय में शुद्ध सात्विक प्रवाह रूप से बुद्धि का स्थिर होना ''प्रज्ञालोक'' कहा जाता है।

जब उक्त प्रकार का संयम जय हो जाता है तब उसका फल, उक्त प्रकार का प्रज्ञालोक योगी को प्राप्त हो जाता है। इसके प्रभाव से योगी को संशय–विपर्ययादि मूल शून्य ध्येय तत्व का यथार्थ साक्षात्कार होता है। हठयोग में समाधि का स्वरूप राजयोग से कुछ भिन्न प्रकार से बताया गया है।

हठयोग के अनुसार समाधि के प्रकार

स्वात्माराम के अनुसार जैसे नमक पानी में मिल जाने से उसके साथ एकरूप हो जाता है वैसे ही आत्मा और मन की एकरूपता समाधि कही गई है। जब प्राण क्षीण, मंद होकर चित्त में लीन हो जाता है तब दोनों की एकरूपता हो जाने को समाधि कहा जाता है। जीवात्मा और परमात्मा दोनों की एक रूपता और समता हो जाने पर इच्छामात्र का अभाव हो जाता है। उसे ही समाधि कहा गया है।

वसिष्ठ संहिता में भी यही बात कही गई है किंतु उसको किंचिद विस्तार से लिया गया है– जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकाकार हो जाना समाधि कहा गया है। जैसे– जैसे ध्यान चलता रहेगा वैसे– वैसे समाधि बढ़ती रहेगी। ध्यान को ही आत्मा में लगाना चाहिए जिससे वह पृथक न हो। सत्य ज्ञान, अनंत और आनंद रूप निर्गुण ब्रह्म का आत्मा में चिंतन करने से समाधि लाभ होता है। हृदय कमल के अंदर आत्मा में शरीराकार वासुदेव परमात्मा का ध्यान करने पर समाधि का लाभ होता है। हृदय कमल के मध्य में स्थित शिखा स्वरूप ईश्वर का ज्योतिर्मय ध्यान करने से समाधि हो जाती है। हृदय कमल में स्थित अमृत से प्लावित देह के स्वामी आत्मा का पुरुषाकार ध्यान करने पर भी समाधि लग जाती है।

भौंहों के मध्य अधिष्ठित स्वर्ण के समान पीतवर्ण ईश्वर का भी आत्मा में ध्यान करना चाहिए तथा सूर्यमंडल स्वरूप सुवर्णमय शरीर देवता का भी आत्मा में ध्यान करने से समाधि लग लाती है।

गोरक्षनाथ के अनुसार जब तक कर्णादि पांच ज्ञानेन्द्रियों में उनके शब्दादि विषयों का किंचिद भी अंश विद्यमान रहता है तब तक साधक की ध्यानावस्था रहती है और जैसे ही पांचों इंद्रियों की वृत्तियां निःशेष भाव से आत्मा में लीन हो जाती हैं, तब समाधि अवस्था हो जाती है।

प्राण वायु में पांच घड़ी तक अवरोध करना अर्थात धारणा, साठ घड़ी तक चित्त को एकाग्र रखना ध्यान और बारह दिनों तक निरंतर संयम करना ही समाधि है। सभी

द्वंद्वों का अंतररूपी ऐक्य अर्थात जीवात्मा और परमात्मा का ऐक्य जानकर सभी संकल्पों को नष्ट करता हुआ साधक ध्येय में ही लीन हो जाए, उसी अवस्था को समाधि कहते हैं। गोरक्ष संहिता में लगभग उसी प्रकार का श्लोक मिलता है जैसा हठ प्रदीपिका में है। गोरक्षनाथ में समाधि से होने वाले कुछ लाभों का भी वर्णन किया है।

टिप्पणी

समाधि में वस्तु ज्ञान का अभाव

जो योगी समाधि में लीन हो जाता है उसे रूप, रस, गंध, शब्द, स्पर्श इन पांच विषयों का तथा अपने–पराये का ज्ञान नहीं रहता। समाधि युक्त योगी शस्त्रों के द्वारा छेदा नहीं जा सकता। वह किसी शरीरधारी द्वारा मारा नहीं जा सकता। उस पर मंत्र, यंत्र आदि का प्रयोग भी प्रभावकारी नहीं होता। वह काल के द्वारा बाधित नहीं होता और न कर्मों में ही लिप्त होता है। जो योगी समाधि में लीन हो जाता है, उसे कोई किसी प्रकार भी वश में नहीं कर सकता। समाधि में स्थित हुआ योगी आदि–अंत से रहित, अवलंब और प्रपंच से रहित, विशुद्ध आश्रय और आकार से हीन तत्व को जान लेता है। निर्मल, निश्चल, नित्य, निष्क्रिय, निर्गुण, महान, व्योमरूप, विज्ञानरूप और आनंद स्वरूप ब्रह्म को जो विद्वान जान लेता है, वही ब्रह्मवेता होता है। हेतु और दृष्टान्त से विमुक्त मन और बुद्धि द्वारा विज्ञान और आनंद स्वरूप उस तत्व को जो योगी जानता है, वही तत्ववेत्ता है।

ध्यान योग की समाधि

इसमें शाम्भवी मुद्रा करके प्रथम आत्म प्रत्यक्ष और फिर बिंदुमय ब्रह्म का साक्षात्कार करते हुए मन को बिंदु में लगा दें। तत्पश्चात् मस्तक में विद्यमान ब्रह्मलोक मय आकाश के मध्य में आत्मा को ले जाएं। जीवात्मा में आकाश को लीन करने से तथा परमात्मा में जीवात्मा को लीन करने से योगी सदानन्दमय एवं समाधिस्थ हो जाता है।

नादयोग समाधि

खेचरी मुद्रा का अभ्यास करते हुए जिह्वा को ऊपर रखें। जिह्वा का ब्रह्मरंध्र में पहुंचने का अभ्यास अनेक वर्षों में हो पाता है। इसके पश्चात जिह्वा धीरे–धीरे ब्रह्मरंध्र को भी पार कर जाती है। इससे साधारण क्रियाओं से हट कर जो समाधि सिद्ध होती है वह नादयोग समाधि है।

रसानंदयोग समाधि

भ्रामरी कुंभक करके श्वास मंद वेग से बाहर निकाल दें। इस अभ्यास के समय शरीर में भौरों के समान गुंजार होती है, यह नाद जहां पर हो वहीं पर मन को लगा दो। यह रसानंद योग समाधि कहलाती है। इससे 'सोऽहं' ज्ञान होकर योगी सदा आनंदित रहता है।

लयसिद्धियोग समाधि

योनि मुद्रा की साधना करके योगी स्वयं में शक्ति की भावना और परमात्मा में पुरुष की भावना करे। फिर इस भावना के साथ विहार करता हुआ चित्त को लय कर दे। इसके बाद आनंदमय ऐक्य स्थापित करता हुआ यह चिंतन करे कि मैं अद्वैत ब्रह्म हूं। इससे जो समाधि होती है उसे लय सिद्धि योग समाधि कहते हैं।

टिप्पणी

भक्तियोग समाधि

अपने हृदय में परम आह्लाद सहित भक्ति योग के द्वारा इष्टदेव के स्वरूप का चिंतन करना चाहिए। इससे आनंद के आंसू बहने लगते हैं और शरीर पुलकायमान होता है तथा मन में अचैतन्यता और एकाग्रता आकर ब्रह्म से साक्षात्कार होता है। यह भक्ति योग समाधि कहलाती है।

राजयोग के अनुसार

मनोमूर्च्छा कुंभक करता हुआ योगी मन को एकाग्र करके आज्ञा चक्र में लगावे। आज्ञा चक्र दोनों भोंहों के मध्य स्थित है। वहीं पर रुद्र ग्रंथि है। इस प्रकार परमात्मा के साथ समायोग होने को राजयोग समाधि कहते हैं।

समाधि योग की महत्ता

उन्मनी सहजावस्था होने पर जो उपलब्धियां हों वे सब राजयोग समाधि ही हैं। उन्मनी सहजावस्था में चित्त वृत्तियां पूर्ण रूपेण विलय हो जाती हैं और योग शास्त्र के अनुसार चित्तवृत्तियों का विलय नाद् रूपी ब्रह्म में सहज ही हो जाता है।

एक अन्य हठयोगी चरणदास ने समाधि का वर्णन इस प्रकार से किया है; जब समाधि लगती है तब योगी को आनंद की प्राप्ति होती है। तब ऐसा समझना चाहिए कि योग सिद्ध हो गया है। इस स्थिति में मन की सारी क्रियाएं शून्य हो जाती हैं।

इस अवस्था में ध्याता और ध्यान एक हो जाते हैं। यहां पर द्वैत का भान नहीं रहता, इन सबसे मुक्ति मिल जाती है। इस स्थान के विषय में कोई भी संज्ञा नहीं दी जा सकती, न इसके विषय में कोई विवाद हो सकता है। यहां पर क्रिया, संदेह तथा अच्छे बुरे का कोई स्थान नहीं है।

समाधि की अवस्था का विस्तार से वर्णन कर चरणदास ने तीन प्रकार की समाधि का वर्णन किया है। भक्ति समाधि, योग समाधि, ज्ञान समाधि।

भक्ति समाधि

सब इंद्रियों को रोककर भगवान का ध्यान करना चाहिए। यदि बुद्धि और स्मृति का अस्तित्व रहे तो उस अवस्था को समाधि नहीं समझना चाहिए। जब साधक ध्यान में समाहित हो जाए और ध्यान ध्येय में एकाकार हो जाए, बुद्धि व स्मृत्ति भी लीन हो जाएं तब वह अवस्था भक्ति समाधि की समझनी चाहिए।

योग समाधि

आसन और प्राणायाम करके जब वायु सुषुम्ना में प्रवेश कर जाए, फिर छः चक्रों को भेद कर, साधक का ध्यान निराकार में लगा दे, स्वयं ध्यान में जब समाहित हो जाए, जहां न स्मृति रहे और न नाद सुनाई दे तथा चित्त की अवस्था वृत्ति से रहित होकर निरोध की अवस्था में आ जाए, उसे योग समाधि कहते हैं। राजयोग में महर्षि पतंजलि ने ''योगश्चित्तवृतिनिरोधः' कह कर योग समाधि की परिभाषा की है। अतः हठयोग और राजयोग–दोनों की योग समाधि में साम्य की प्रतीति होती है।

ज्ञान समाधि

बुद्धि के द्वारा तत्वों का विचार करके द्वैत और अद्वैत का विचार करते हुए ब्रह्म को खोजने का विचार जब तक बना रहता है तब तक वह अवस्था ध्यान की होती है। 'मैं'

और तू की स्वभाववश जो भावना बनी रहती है उस मेरे और तेरे की भावना को अलग करना चाहिए तभी ज्ञान की समाधि सिद्ध होती है। समाधि में ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की भावना नहीं रहती है। यह समाधि लगने पर टूटती नहीं है।

टिप्पणी

कैवल्य का स्वरूप

योगदर्शन के अनुसार आत्मा का स्वरूप में अवस्थान ही कैवल्य कहलाता है। असंप्रज्ञातसमाधि काल में पुरुष स्वरूप में अवस्थित होता है। शांत तथा मूढधर्मों से रहित निर्विषय चैतन्यमात्र ही पुरुष का स्वरूप है। जैसे जपाकुसुम के हट जाने से स्फटिक अपने स्वच्छ शुद्ध स्वरूप में अवस्थित होता है, वैसे ही वृत्ति के हट जाने से वृत्ति के प्रतिबिंब से रहित पुरुष अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। उस समय वह स्वयं को सुखी–दुःखी और अज्ञानी नहीं मानता है।

भाव यह है कि चित्त त्रिगुणात्मक है। त्रिगुणात्मक होने से शांत, घोर तथा मूढ़रूप है। उसके साथ पुरुष को तादात्म्य का अभिमान होने से पुरुष में भी औपाधिक शांत, घोर और मूढ़रूप धर्म भासने लगते हैं। जब वृत्तिसहित चित्त अपने कारण रूप प्रकृति में लीन हो जाता है तो पुरुष में जो शांत, घोरादि धर्म भासते थे, वे नहीं भासते हैं। पुरुष का यह स्वरूप में अवस्थित होना ही कैवल्य की दशा कहलाती है।

वृत्तिदशा में पुरुष स्वरूप में अवस्थित नहीं होता अपितु वृत्तिस्वरूप ही होता है। यही बात सूत्रकार ने –

'तदा द्रष्टः स्वरूपेवस्थानम्' तथा 'वृत्तिसारूप्यमितरत्र।'

इन दो सूत्रों में कही है। अर्थात व्युत्थानकाल में आत्मा या पुरुष निजरूप से न भासकर बुद्धि के दिए हुए शांति आदि वृत्तियों से युक्त होकर भासता है।

यहां शंका हो सकती है कि यदि व्युत्थानकाल में पुरुष स्वरूप में प्रतिष्ठित नहीं होता और निरुद्ध अवस्था में वह स्वरूप में अवस्थित हो। यह तो एक प्रकार का परिणाम है। इस परिणाम से चितिशक्ति पुरुष भी परिणामी हो जाएगा। यदि व्युत्थानकाल में भी पुरुष की स्वरूप में प्रतिष्ठा मानेंगे तो व्युत्थान और निरुद्ध अवस्था में क्या अंतर रह जाएगा ?

उक्त शंका का उत्तर यह है कि व्युत्थानकाल में यद्यपि पुरुष रहता तो पूर्ववत ही है किंतु वैसा प्रतीत नहीं होता है। अतः व्युत्थान और निरुद्ध दशा में अंतर है।

बंधन और मोक्ष

योगदर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष का संयोग ही बंधन है और इन दोनों का वियोग ही मोक्ष है। प्रकृति और पुरुष का संयोग अनादि है। यह संयोग अविद्या के कारण होता है। जब विवेकज्ञान से अविद्या का अभाव हो जाता है तो प्रकृति और पुरुष के संयोग का भी अभाव हो जाता है। यही मोक्ष या कैवल्य है। सूत्रकार कहते हैं–

तदभावात् संयोगभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम्।

प्रकृति के दो प्रयोजन हैं – भोग और मोक्ष। बुद्धि के माध्यम से प्रकृति सर्वप्रथम पुरुष के लिए भोग प्रदान करती है और पुनः मोक्ष प्रदान करती है। जब उसके ये दोनों प्रयोजन सिद्ध हो जाते हैं तो प्रकृति पुरुष का साथ छोड़ देती है। चित्त भी अपने कारणरूप प्रकृति में लीन हो जाता है। सूत्रकार कहते हैं –

पुरुषार्थशून्यानां गुणां प्रतिप्रसवः कैवल्यं

स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति।

टिप्पणी

अर्थात बुद्धि आदि के रूप में परिणत गुणों का जब भोग और अपवर्गरूप प्रयोजन सिद्ध हो जाता है तो वे अपने–अपने कारणों में लीन हो जाते हैं। यह प्रकृति का कैवल्य है तथा चितिशक्तिरूप पुरुष वृत्तिसारूप्य की निवृति होने पर स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। यह पुरुष का कैवल्य है।

इस प्रकार कैवल्य दो प्रकार का हुआ – गुणों का प्रकृति में लय होना और पुरुष का स्वरूप में अवस्थित होना। प्रथम मोक्ष प्रकृति को होता है और दूसरा मोक्ष पुरुष को होता है। प्रकृति पुरुषार्थ से मुक्त हो गई और पुरुष गुणों से मुक्त हुआ। चितिशक्तिरूप पुरुष का सर्वदा उसी प्रकार से अवस्थित रहना ही पुरुष का कैवल्य है।

कैवल्य का उपाय

असंप्रज्ञातसमाधि में प्राप्त सत्वपुरुषान्यतायातिरूप विवेकज्ञान ही कैवल्य का एकमात्र उपाय है। यद्यपि अविद्या की निवृत्ति ही मोक्ष का हेतु है किंतु अविद्या की निवृत्ति विवेकज्ञान द्वारा होती है। अतः विवेकज्ञान ही कैवल्य का उपाय है। सूत्रकार कहते हैं–

विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः

अर्थात मिथ्याज्ञानरूप विप्लव से रहित विवेकख्याति ही अविद्या की निवृत्ति का तथा कैवल्य का हेतु है। शास्त्रजन्यज्ञान से अविद्या की निवृत्ति नहीं होती क्योंकि वह परोक्षज्ञान है। विवेकख्याति अपरोक्षज्ञान है। इसी से अविद्या की निवृत्ति होती है।

यहां यह शंका होती है कि जब विवेकज्ञान द्वारा पुरुष स्वरूप में अवस्थित हो जाता है, उस समय दृश्यजगत तथा उसका कारणभूत प्रकृति रहती है या नष्ट हो जाती है ?

इसका उत्तर सूत्रकार देते हैं कि विवेकज्ञान से युक्त मुक्तपुरुष के प्रति वह दृश्य प्रकृति आदि नष्ट होकर भी अन्य विवेकी पुरुषों के प्रति विद्यमान रहता है, उसका नाश नहीं होता है। यही बात सूत्रकार कह रहे हैं –

कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्

जैसे लोक में यदि कोई अंधा हो जाए तो वह रूप को नहीं देख पाता, लेकिन इससे रूप का नाश नहीं माना जाता। जो अंधे नहीं हैं उनके लिए रूप विद्यमान है। वैसे ही जिसको विवेकज्ञान हो गया है वह दृश्य को नहीं देखता है। इससे ऐसा नहीं माना जाता कि दृश्य नष्ट हो गया। जो विवेकज्ञान से युक्त नहीं है वे दृश्य को देखते ही हैं। यह बात श्रुति कह रही है –

अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां वह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः।

अजो ह्येको जुषमाणों नुशेते जहात्येनां भुक्त भोगामजोन्यः।।

अर्थात सत्व, रजस् और तमस रूप त्रिगुणात्मक प्रकृति अजन्मा है। यह त्रिगुणात्मक प्रजाओं को उत्पन्न करती है। उस प्रकृति को एक अजन्मा, बद्धपुरुष तो भोगता हुआ, अनुताप करता है और दूसरा अजन्मा, मुक्तपुरुष भोग और मोक्ष लेकर कृतकार्य हुई प्रकृति को छोड़ देता है।

टिप्पणी

कैवल्य के भेद

यह कैवल्य या मुक्ति दो प्रकार की है – जीवन मुक्ति तथा विदेहमुक्ति या आत्यंतिक मुक्ति। जीवनकाल में तत्वज्ञान होने पर पुरुष का जो स्वरूपावस्थान होता है वह जीवनमुक्ति है और मृत्यु के पश्चात देहपात होने पर विदेह मुक्ति होती है।

तत्वज्ञान होने पर भी आयु के शेष रहते हुए शरीर संस्कारवश चलता रहता है। वह काल जीवन मुक्ति काल कहलाता है। उस काल में योगी जो कर्म करता है वे कर्म न तो शुक्ल होते हैं और न कृष्ण। क्योंकि उन कर्मों से संस्कार नहीं बनते। संस्कार उन्हीं कर्मों से बनते हैं जिनके साथ मन का संबंध होता है। योगी के कर्म मन से नहीं किए जाते, वे तो पूर्व अभ्यास के कारण स्वचालित यंत्र के समान स्वयंमेव होते रहते हैं। जैसे कुंभकार का चक्र दंड हटा लेने पर भी पूर्वगति के संस्कार के कारण कुछ देर तक चलता रहता है। गति का संस्कार समाप्त होते ही चक्र स्वयंमेव रुक जाता है। जीवन मुक्त पुरुष की भी यही दशा है। वह भी पूर्व संस्कारवश देह से जीवित रहता है। आयु समाप्त होते ही वह देहमुक्त हो जाता है और वह फिर जन्म–मरण के चक्ररूप इस संसार में नहीं आता। यही विदेह मुक्ति अथवा आत्यांतिक मुक्ति है।

1.4.2 नैतिक मूल्य और व्यक्तित्व विकास

निःसंदेह व्यक्ति का विकास का आधार नैतिक मूल्य है। यूं तो प्रत्येक संस्कृति में नैतिकता वहां के सामाजिक संगठनों द्वारा बनाए गए नियमों से निर्धारित होती है, परंतु अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि नैतिकता की जड़ें व्यक्ति के मनोवैज्ञानिक पहलुओं में भी होती हैं। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि नैतिक विकास के तीन तत्व या विमाएं होती हैं, जो निम्नांकित हैं-

(अ) सांवेगिक विमा या तत्व

नैतिक विकास में एक प्रमुख तत्व सांवेगिक तत्व होता है क्योंकि व्यक्ति में मौजूद भाव या संवेग ही व्यक्ति को दूसरों को दुःख में देखकर उसे भी दुःखी होने का अहसास कराता है या उस दुःख का कारण यदि वह स्वयं को समझता है, तो उसमें दोष-भाव उत्पन्न होता है। मनोवैश्लेषिक सिद्धांत द्वारा नैतिक विकास में सांवेगिक तत्व पर बल डाला गया है। इस सिद्धांत के प्रतिपादक फ्रायड के अनुसार बच्चे लिंग-प्रधानावस्था के दौरान अपने ही यौन के माता-पिता के साथ तादात्म्य स्थापित कर नैतिक नियमों को सीखते हैं। इस तरह के नियम को सीखने से बच्चों में पराह का विकास होता है जो व्यक्तित्व का नैतिक कमांडर होता है। पराह के दो भाग या हिस्सा होते हैं– अंतःकरण तथा अहं-आदर्श। अंतकरण सचमुच में वैसे व्यवहारों या कार्यों की एक सूची होती है जिसमें सन्निहित कार्यों को अच्छी लड़की या अच्छा लड़का नहीं करते हैं या उन्हें नहीं करना चाहिए। जैसे झूठ बोलना, चोरी करना आदि। अहं आदर्श सचमुच में वैसे व्यवहारों या कार्यों की सूची हेती है जिसे एक उत्तम लड़का या लड़की करते हैं या उन्हें करना चाहिए। जैसे माता-पिता, शिक्षकों का आज्ञापालन करना आदि। जब कोई बच्चा अपने अंतःकरण की अवहेलना करता है, तो उसमें दोष-भाव उत्पन्न होता है और जब वह अहं-आदर्श के आदर्शों की अवहेलना करता है तो उसमें लज्जा उत्पन्न होती है। फ्रायड का मत है कि बच्चे अपने अंतःकरण तथा अहं-आदर्श के नियमों के अनुरूप व्यवहार करना सीख लेते हैं ताकि उनमें कष्टकर भाव तथा संवेग उत्पन्न हो।

टिप्पणी

फ्रायड के अनुरूप इरिक्सन ने भी बच्चे के नैतिक विकास की व्याख्या में सांवेगिक तत्व पर बल डाला है। अंतर इतना ही है कि इरिक्सन के अनुसार बच्चे माता और पिता दोनों से ही नैतिक नियमों को सीखते हैं। इरिक्सन ने यह भी बतलाया कि दोष एवं लज्जा के समान ही बच्चों में नैतिक विकास के लिए आत्माभिमान एक जरूरी तत्व है। जैसे, यदि कोई भूखा बच्चा दुकान में चॉकलेट को देखकर उसे चुराने की बात सोचता है परंतु उसका पराह उसे ऐसा कार्य करने से मना कर देता है क्योंकि चोरी करना नैतिकता के विरुद्ध है। चॉकलेट चोरी करने के विचार से उसमें दोष भाव उत्पन्न होगा। इससे उसमें द्वंद्व की स्थिति उत्पन्न होगी। अगर वह चॉकलेट की चोरी करता है, तो उसमें दोष-भाव उत्पन्न होगा और यदि वह चोरी नहीं करता है तो भूखा रहेगा। फ्रायड के अनुसार एक स्वस्थ व्यक्तित्व वाला बच्चा अपने पराह की आज्ञा को मानेगा, चाहे उसे भूखा ही क्यों न रहना पड़े। इरिक्सन का मत है कि यदि बच्चा चॉकलेट नहीं लेने का निर्णय करता है, तो वह न सिर्फ अपने-आपकों दोष-भाव से बचा पाएगा बल्कि उसे लालच में पड़ने से अपने-आपको रोकने की क्षमता पर आत्माभिमान भी महसूस होगा। फ्रायड तथा इरिक्सन ने यह भी स्पष्ट किया कि बच्चों में दोष-भाव, लज्जा तथा आत्माभिमान 6 साल की आयु से पहले ही विकसित होती है। ये सभी सांवेगिक तत्व नैतिकता की मुख्य विमाएं हैं।

(ब) व्यवहारात्मक तत्व या विमा

नैतिक विकास की दूसरी महत्वपूर्ण विमा व्यवहार का परिणाम होता है। दूसरे शब्दों में, बच्चों द्वारा किए गए व्यवहार का परिणाम ही बच्चों को नैतिक नियम सीखने की प्रेरणा देता है। इस विमा पर सामाजिक अधिगम सिद्धांत द्वारा अधिक बल डाला गया है। इस संदर्भ में स्कीन्नर तथा बैण्डुरा के विचार उल्लेखनीय हैं। स्कीन्नर का मत है कि वयस्क बच्चों के नैतिक रूप से स्वीकार्य व्यवहार की प्रशंसा करके उन्हें पुरस्कृत करते हैं तथा नैतिक रूप से अस्वीकार्य व्यवहार को अस्वीकार करके उन्हें दंडित करते हैं। इसका पारणाम यह होता है कि बच्चों में नैतिक रूप से स्वीकार्य व्यवहार मजबूत होता है तथा नैतिक रूप से अस्वीकार्य व्यवहार कमजोर पड़ जाता है। उम्र बीतने के साथ बच्चे नैतिक व्यवहार को करना सीख लेते हैं तथा अनैतिक व्यवहार को न करना सीख लेते हैं।

अध्ययनों में यह स्पष्ट हुआ है कि नैतिक व्यवहार करने के बाद मिला पुरस्कार निश्चित रूप से नैतिक विकास में तेजी लाता है परंतु दंड से वास्तव में नैतिक विकास में बाधा पहुंचती है। जैसे, बच्चा को दुकान में चॉकलेट चुराने के बाद यदि माता-पिता द्वारा वहीं पर काफी डांटा-फटकारा जाता है तो माता-पिता को ऐसा विश्वास होता है कि डांट-फटकार से वह सीख जाएगा कि चोरी नहीं करनी चाहिए। परंतु, संभव है कि बच्चा सिर्फ यह सीख पाए कि माता-पिता के साथ रहने पर उसे चोरी नहीं करनी चाहिए।

उसी तरह से यदि किसी व्यवहार के लिए दिया गया दंड काफी गंभीर है या जिससे बालक को लज्जित होना पड़ता है, तो वह उस व्यवहार एवं दंड के बीच संबंध स्थापित करने की ओर से हटकर अपना पूरा ध्यान उत्पन्न संवेग, जैसे क्रोध पर देता है। फलत: वह ऐसा सोच सकता है कि उसके अमुक व्यवहार से (जैसे, चोरी करने से) उसे डांट मिली है। मशहूर सामाजिक अधिगम सिद्धांतवादी बैंडुरा का दावा है कि बच्चे पुरस्कार या दंड की अपेक्षा दूसरों के व्यवहार का प्रेक्षण करके नैतिक व्यवहार को अधिक सीखते हैं। जैसे जब बच्चा किसी अन्य व्यक्ति को कोई व्यवहार करने पर पुरस्कार मिलता देखता

टिप्पणी

है तो वह भी वैसा ही व्यवहार करने को ठान लेता है। ठीक उसी तरह, जब वह किसी मॉडल या दूसरे व्यक्ति को अमुक व्यवहार करने पर दंडित होते देखता है, तो वह वैसा व्यवहार न करने की कोशिश करता है। जैसे यदि बच्चा अपने माता-पिता से एक ऐसी कहानी सुनता है जिसमें वह यह सुनता है कि जब कोई बच्चा लालच या प्रलोभन पर नियंत्रण रखता है, तो उसे शिक्षक द्वारा काफी प्रशंसा की जाती है तथा उसे काफी अधिक पुरस्कार भी दिया जाता है, तो वह बच्चा भी लालच पर नियंत्रण करना सीख लेता है। उसी तरह से जब उसे ऐसी कहानी सुनाई जाती है जिससे बच्चा चोरी भी करता है और पकड़ा भी नहीं जाता है, तो वह यह सीख लेता है कि बिना पकड़ाए हुए चोरी की जा सकती है।

(स) संज्ञानात्मक तत्व

नैतिक विकास की एक अन्य महत्वपूर्ण विमा संज्ञानात्मक तत्व है। वैसे बच्चे जिनमें सामाजिक समझ या बोध विकसित होती है, वे सही या गलत व्यवहार के बारे में अधिक स्पष्ट एवं उपयुक्त निर्णय लेते हैं। इस तत्व पर नैतिक विकास के संज्ञानात्मक-विकासात्मक सिद्धांत द्वारा अधिक बल डाला गया है। इस सिद्धांत के अनुसार संज्ञानात्मक परिपक्वता तथा सामाजिक अनुभूति से नैतिक व्यवहार मजबूत होता है। जैसे-जैसे, बच्चों में सामाजिक सहयोग का भाव मजबूत होता जाता है एवं फैलता जाता है, बच्चों में यह विचार कि जब व्यक्ति की आवश्यकता तथा इच्छा में द्वंद्व उत्पन्न होता है तो उसे क्या करना चाहिए, में परिवर्तन हो जाता है और यह परिवर्तन प्राय नैतिक समस्याओं के एक उचित एवं संतुलित समाधान की ओर उन्मुख होता है। इससे उनमें नैतिक विकास होता है। पियाजे, कोह्लबर्ग तथा महिला मनोवैज्ञानिक कैरोल गिल्लिगन की विचारधाराओं में संज्ञानात्मक-विकासात्मक सिद्धांत के उक्त तथ्यों की अभिव्यक्ति होती है।

स्पष्ट हुआ कि नैतिक विकास की तीन विमाएं हैं जिन पर तीन अलग-अलग सिद्धांतों द्वारा बल डाला गया है। आधुनिक समय में किए गए कई शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि नैतिक विकास की ये तीनों विमाएं अंत:बांधित हैं। हालांकि नैतिक विकास के मुख्य सिद्धांतों में इस बात की असहमति आज भी बरकरार है कि इनमें से कौन सर्वाधिक प्रमुख है।

शिक्षक विद्यार्थियों को समाज के प्रति उनके कर्तव्य का बोध भी कराएं। उन्हें सचेत करें कि वह अपने घर के आस-पास गंदगी न फैलने दें। यदि सफाई नहीं रहती तो संबंधित अधिकारियों को पत्र लिखें और जितनी भी जनसुविधाएं उपलब्ध हों सकें, उन्हें दिलवाने का प्रयत्न करें।

विद्यार्थियों को इसके लिए भी प्रेरित करें कि उनके घर में काम करने वाला या घर के आस-पास यदि कोई अनपढ़ है तो उसे वे कम-से-कम कुछ पढ़ना-लिखना तो सिखा दें। यदि सभी विद्यार्थी यह कार्य करने लगेंगे तो देश से निश्चय ही निरक्षरता समाप्त हो जाएगी। विद्यार्थियों को चाहिए कि समाज में रहते हुए वह गांधी जी के तीन बंदरों को कभी न भूलें। अपने मुंह से किसी की बुराई न करें, गाली-गलौच या अभद्र भाषा का प्रयोग कभी भी न करें। अपने कानों से किसी की बुराई, चुगली या लड़ाई-झगड़े की बात ना सुनें और न ही अपनी आंखों से बुरा देखें अर्थात किसी की बुराई पर ध्यान न दें, अपितु उसमें यदि कोई अच्छाई है तो उसको अवश्य ग्रहण करें।

टिप्पणी

विद्यार्थियों को देश-सेवा के लिए भी निरंतर प्रेरित करना शिक्षक का कर्तव्य है। यदि कोई विद्यार्थी अपने आस-पास किसी एक अति निर्धन और असहाय व्यक्ति की मदद या सेवा करता है तो यह उसकी देशभक्ति की सबसे बड़ी पहचान है। विद्यार्थी अपने घर के पास किसी भी हस्पताल या स्वास्थ्य केंद्र में जाकर जरूरतमंदों की सेवा कर सकता है। निर्धन रोगियों को खाना या फल आदि बांट सकता है। वह यह काम अपने जन्मदिन पर या विभिन्न त्योहारों के अवसर पर करके देश-सेवा का पुनीत कार्य कर सकता है।

शिक्षक विद्यार्थियों को पर्यावरण की रक्षा हेतु प्रेरणा दे। उन्हें प्रेरित करे कि प्रत्येक विद्यार्थी वर्ष में कम-से-कम एक बार अपने जन्मदिन पर किसी सार्वजनिक जगह पर नीम, पीपल, जामुन, अमलतास इत्यादि का एक पेड़ अपने हाथों से अवश्य लगाए और वर्ष भर उसकी देखभाल करता रहे ताकि सुंदर पर्यावरण का निरंतर निर्माण होता रहे। विद्यार्थी को चाहिए कि वह ध्वनि (शोर) के पर्यावरण का भी ध्यान रखें और अपना स्टीरियो, रेडियो, टी.वी. बहुत कम, जितनी कि सुनने के लिए पर्याप्त हो उतनी आवाज में बजाएं। स्वास्थ्य और पर्यावरण की रक्षा हेतु सिगरेट-बीड़ी न पिएं। पान मसाला, तंबाकू का कभी सेवन न करें। उन्हें समझाएं कि कागज भी पेड़ों से बनता है, अतः जितनी आवश्यकता हो, उतना ही कागज का प्रयोग करें और बिना कारण इसे बरबाद न करें। बिजली, पानी, पेट्रोल इत्यादि का भी उतना ही प्रयोग करें जितनी आवश्यकता हो। किसी भी वस्तु का दुरुपयोग न करने से पर्यावरण सुरक्षित रहता है। ऐसा ज्ञान प्रत्येक शिक्षक को अपने विद्यार्थी को देना चाहिए।

शिक्षक विद्यार्थी को यह अच्छी तरह समझा दें कि जल्दी सोना और जल्दी उठना स्वास्थ्य के लिए हितकर है। अतः देर रात तक नहीं जागना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से अगले दिन की दिनचर्या पर बहुत बुरा असर पड़ता है। अतः विद्यार्थी को रात्रि दस बजे तक सो जाना चाहिए।

सोने से पहले माता-पिता की चरण वंदना करना दिन में अपने द्वारा किए गए सभी कार्यों का आकलन करना और दिन-भर में जहां कहीं भी कोई गलती हुई हो, उसका अपने आप निरीक्षण करना और उसको फिर दुबारा ना दोहराने का संकल्प लेकर ईश्वर को स्मरण करते हुए सो जाना। शिक्षक विद्यार्थी को बताएं कि कभी भी मुंह ढककर नहीं सोना चाहिए और सोते समय नाक से ही सांस लेना चाहिए।

उपर्युक्त सामान्य ज्ञान की बातों को विद्यालय के सबसे छोटे बच्चों को यदि छोटी-छोटी कविताओं, गीतों और कहानियों के माध्यम से पढ़ाया जाए तो वह इन्हें प्रसन्नता व तीव्र गति से सीखते हैं। अतः शिक्षक को पढ़ाई में इनका भरपूर प्रयोग करना चाहिए।

नैतिक व्यवहार संदर्भित कारक

नैतिक व्यवहार परिस्थिति के अनुसार विभिन्न व्यक्तियों के बीच तथा एक ही व्यक्ति में परिवर्तित होते रहता है। मनोवैज्ञानिकों द्वारा किए गए शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि कुछ ऐसे व्यक्तिगत तथा पारिस्थितिजन्य कारक हैं, जो नैतिक व्यवहार से संबंधित होते हैं। ऐसे कारकों में निम्नांकित प्रमुख हैं–

बुद्धि

कुछ मनोवैज्ञानिकों, जैसे कीजी तथा लिकोना ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि नैतिक तर्कणा के विभिन्न पहलुओं में जो परिपक्वता होती है, वे बुद्धिलब्धि के साथ

धनात्मक रूप से सहसंबंधित होती है। साथ ही, कुछ अध्ययनों में बुद्धिलब्धि तथा बेईमानी के बीच ऋणात्मक सहसंबंध पाया गया, परंतु इस ढंग का ऋणात्मक सहसंबंध शैक्षिक प्रकार के परीक्षणों तक ही सीमित रहता है। ऐसा प्रतीत होता है कि निम्न बुद्धि के बच्चों तथा निम्न उपलब्धि वाले बच्चों का स्कूल में असफलताओं के साथ जो अनुभूतियां होती है, उसके आधार पर वे प्रवचन के माध्यम से अपनी मौलिक उपलब्धि को उन्नत बनाने की कोशिश करते हैं। बुर्टोन ने अपने अध्ययन के आधार पर यह बतलाया है कि जब परिस्थिति अशैक्षिक होती है या जब बच्चों में प्रवंचन से पकड़े जाने की संभावना कम होती है तो बुद्धिलब्धि तथा ईमानदारी के बीच का संबंध समाप्त हो जाता है। इन तथ्यों के, आधार पर तब यह पता चलता है कि तीक्ष्ण होना तथा नैतिक होना एक ही चीज नहीं है। उत्तम नैतिक चिंतन के लिए बुद्धि आवश्यक है परंतु अपने-आपसे यह नैतिक व्यवहार को सुनिश्चित करने के लिए आवश्यक नहीं है।

टिप्पणी

उम्र

अध्ययनों से यह स्पष्ट हुआ है कि बच्चों में उम्र बीतने के साथ नैतिक आचरण अधिक मजबूत होते चला जाता है। जैसे तुलनात्मक रूप से अधिक उम्र के बच्चों में कम उम्र के बच्चों की अपेक्षा उम्र एवं ईमानदारी में सहसंबंध अधिक होता है। परंतु यह अन्य चरों, जैसे संबंधित जोखिम में अवगत होने तथा बिना छल-बल अपनाए ही कार्य को निष्पादित करने की क्षमता से भी प्रभावित होता है।

यौन अंतर

नैतिक आचरण पर यौन का भी अंतर पड़ता है। सामान्यत: यह देखा गया है कि लड़कियां लड़कों की तुलना में अधिक उत्तम नैतिक आचरण दिखलाती हैं। परतु प्रयोगात्मक अध्ययनों से इस तथ्य की सतत संपुष्टि नहीं हो पाई है। लड़का तथा लड़की में नैतिक आचरण में जो अंतर होता है, वह परिस्थिति तथा विभिन्न तरह के परीक्षण जिसके माध्यम से नैतिक आचरण की जांच होती है से जुड़ा होता है।

समूह मानक

नैतिक आचरण पर समूह मानक का भी प्रभाव पड़ता है। जब वर्ग के छात्रों का एक समय तक लगातार अध्ययन किया गया तो देखा गया कि उनका छल-कपट व्यवहार लगभग एक समान था। इसका मतलब यह हुआ कि समूह के सामाजिक मानक का प्रभाव ऐसे व्यवहारों पर पड़ता है। ऐश ने भी अपने अध्ययन से इस तथ्य की संपुष्टि की है कि समूह के मानक व्यक्ति व्यवहारों को निर्धारित करने में अहम भूमिका निभाते हैं। समूह के मानक के अनुरूप व्यक्ति में ईमानदारी तथा बेईमानी जैसी प्रवृत्तियों को बढ़ावा मिलता है।

अभिप्रेरणात्मक व्यवहार

बच्चों में प्रवंचन जैसा व्यवहार कुछ अभिप्रेरणात्मक कारकों में भी प्रभावित होता है। कुछ बच्चे ऐसे होते हैं जिनमें उपलब्धि आवश्यकता उच्च होती है, परंतु असफलता का डर भी पर्याप्त होता है। ऐसे बच्चे उस परिस्थिति में अधिक प्रवंचन का व्यवहार करते हैं जब वे यह महसूस करने लगते हैं कि उनका निष्पादन उनके साथियों की तुलना में अच्छा नहीं हो रहा है। प्रवंचन करते समय पकड़े जाने का खतरा से भी इस तरह का व्यवहार प्रभावित होता है। जब इस तरह का डर उनमें कम होता है तो वे अधिक प्रवंचन करते हैं, परंतु जब उनमें इस ढंग का डर अधिक होता है तो वे कम प्रवंचन करते हैं।

टिप्पणी

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि नैतिक व्यवहार या आचरण का संबंध कई कारकों से होता है। ऐसे व्यवहार पर इन कारकों का सार्थक प्रभाव भी पड़ता है।

नैतिक प्रशिक्षण

सबसे पहले विद्यार्थियों को शिष्टाचार, लोकाचार या अंग्रेजी में जिसे हम ऐटीकेट्स और उर्दू में अदब या तमीज कहते हैं, सिखाना चाहिए। उनको समय-प्रबंधन के नियमों की जानकारी दें और जीवन में इन नियमों को पालन करने का अभ्यस्त बनाएं, क्योंकि यह एक सफल जीवन के आधारभूत गुण होते हैं। शिक्षक अपने विवेक के अनुसार बच्चों के स्तर और योग्यता को ध्यान में रखकर उन्हें पढ़ाएं और सिखाएं।

प्रकृति से साक्षात्कार

विद्यालय में सबसे छोटे बच्चों को उनके चारों ओर जो कुछ भी दिखाई देता है, उससे उन्हें अवगत कराएं। जैसे–आकाश, सूरज, चांद, तारे, बादल, वर्षा, पशु (कुत्ता, बिल्ली, बंदर, चूहा, खरगोश, गिलहरी, गाय, भैंस, घोड़ा, हाथी, भालू बकरी), पक्षी (तोता, चिड़िया, तितली, कौआ, मोर, कोयल, कबूतर), जलचर (मेंढक, मछली, मगरमच्छ), पेड़-पौधें, फूल, खेत, पहाड़, नदी, तालाब, नाव इत्यादि और बताएं कि यह सब ईश्वर ने बनाए हैं। इसके लिए इससे संबंधित छोटी–छोटी कविताओं गीतों और कहानियों को भी माध्यम बनाया जा सकता है।

खाने-पीने की वस्तुओं का ज्ञान

एक बार प्रकृति से साक्षात्कार हो जाने के बाद इन्हीं बच्चों को शिक्षक उन वस्तुओं का ज्ञान करवाए, जो ये बच्चे रोज खाते-पीते हैं। जैसे–रोटी, डबल रोटी, सब्जी, दाल, सलाद, फल, दूध, पानी, शरबत और उन्हें बताएं कि यह सब उनको ईश्वर देता है। छोटे-छोटे गीतों के माध्यम से, चित्रों और खिलौनों के प्रयोग द्वारा रोचकता लाते हुए शिक्षक बच्चों को इन वस्तुओं का परिचय दे सकते हैं।

कपड़ा, मकान और विद्यालय का ज्ञान

छोटे बच्चे जब खाने-पीने की वस्तुओं से अच्छी तरह परिचित हो जाएं तो ऋतुओं के अनुसार जो कपड़े वह पहनते हैं, उनकी पूरी जानकारी शिक्षक को उन्हें देनी चाहिए, ताकि उन्हें सर्दी, गर्मी, वर्षा, बसंत, पतझड़, बहार से भी अवगत कराया जा सके। जिस मकान में बच्चे रहते हैं, उसके घर के कमरों, पाकशाला, स्नानागार, शौचालय, आंगन एवं छत की विस्तार से जानकारी देते हुए उन्हें उनके परिवार के सदस्यों का भी परिचय अच्छी प्रकार कराएं। बच्चे विद्यालय में पढ़ते हैं, उसका ज्ञान बच्चों को देना अत्यंत आवश्यक है। विद्यालय, प्रधानाचार्य एवं शिक्षक का नाम, उनकी कक्षा, पुस्तकालय तथा विद्यालय संबंधी पूरी जानकारी दें।

दिनचर्या की चर्चा

शिक्षक विद्यार्थियों को उनकी दिनचर्या के बारे में विस्तार से बताएं और समझाएं कि उनको कब क्या करना चाहिए और अपने दिन को उन्हें किस तरह समय-प्रबंधन के सिद्धांतों के अनुसार व्यतीत करना चाहिए।

प्रातः सूर्योदय से पूर्व उठना, उठते ही अपनी शय्या पर बैठकर ईश्वर का स्मरण करना, अपना पहला कदम शय्या से नीचे रखते हुए पुनः ईश्वर को स्मरण करना, फिर दादा-दादी, नाना-नानी, माता-पिता के चरणस्पर्श करना, अपने भाई-बहनों को व घर में

अन्य लोगों को आयु के अनुसार, चरणस्पर्श या 'नमस्ते जी' कहना। उसके उपरांत शौच जाना और शौच के बाद हाथ-मुंह धोना व ताजा पानी पीना इत्यादि।

टिप्पणी

शरीर की सफाई

बच्चों को उनके शरीर का ज्ञान देना और शरीर को साफ-सुथरा रखने की आवश्यकता पर जोर देना। उन्हें मुंह और दांतों की सफाई के बारे में विस्तार से बताना, कुल्ला करना, दांतों को दातुन, हाथ से मंजन अथवा ब्रश से पेस्ट इत्यादि लगाकर कैसे साफ करना है यह सिखाना चाहिए। उन्हें चॉकलेट से दांतों को होने वाले नुकसान से भी अवश्य अवगत कराना चाहिए, क्योंकि इस आयु में माता-पिता के लाड़-प्यार से बच्चे चॉकलेट खूब खाते हैं, जो उनके दांतों को बहुत नुकसान पहुंचाता है। शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों को नीम की दातुन, हाथों की अंगुली से मंजन करने और अंगुली से मसूड़ों की मालिश करने के लाभ व पेस्ट व ब्रश के गलत प्रयोग से होने वाली हानि से भी अवगत करवाएं और दांतों पर कम से कम पेस्ट का प्रयोग करने की सलाह दें।

सुबह की सैर व कसरत करना

शिक्षक को चाहिए कि वह बच्चों को सुबह की सैर, तीव्र गति से चलने और दौड़ने के बारे में विस्तार से बताएं कि यह सब उनके शरीर को कैसे स्वस्थ व प्रसन्न रखते हैं। कसरत में दंड-बैठक, विभिन्न योग के आसन, व्यायाम इत्यादि की पूरी जानकारी देते हुए बच्चों का मार्गदर्शन करना चाहिए। उन्हें लोहे के डबल, भार उठाने के व्यायाम और आधुनिक जिम के बारे में भी बताएं और उनसे होने वाले लाभ और हानि की चर्चा भी अवश्य करें। शरीर की तेल से मालिश या हाथों से सूखी मालिश के लाभ भी कहें बताएं।

नहाना

शरीर की सफाई के क्रम में विद्यार्थी को प्रतिदिन नहाने का निर्देश देना और उससे होने वाले लाभ से अवगत करवाना। नहाने का सही तरीका क्या है, कौन से साबुन से नहाना और कितना साबुन लगाना, बालों को कैसे और किससे धोना शैंपू इत्यादि और अप्राकृतिक सौंदर्य प्रसाधनों से होने वाले नुकसान और प्राकृतिक सौंदर्य प्रसाधन से लाभ बतलाना। स्नानागार में नल या फव्वारे के नीचे या बाल्टी से नहाने में पानी को बरबाद न करके कम-से-कम पानी के प्रयोग का निर्देश देना, ताकि पानी सबके लिए प्राप्त हो सके और शरीर को अधिक-से-अधिक मल-मलकर नहाने से लाभ भी बताना कि इससे पूरे शरीर की मालिश हो जाती है, जो अच्छी त्वचा और अच्छे स्वास्थ्य के लिए बहुत जरूरी है। शहरों में नहाने के लिए स्नानागार हैं तो गांवों में कुआं और तालाब होता है, जिसके पानी से नहाया जाता है। नहाने के बाद तौलिए का प्रयोग भी सिखाना चाहिए कि किस तरह शरीर को अच्छी तरह से रगड़कर पोंछना चाहिए।

कपड़े पहनना

बच्चों को कपड़ों के चयन के बारे में भी विस्तार से बताना चाहिए। गर्मियों में वे कैसे वस्त्र पहनें, सर्दियों में किन वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिए और वर्षा-ऋतु के लिए कौन से वस्त्र पहनने उचित रहते हैं? उन्हें खादी, सूती रेशमी और सिंथेटिक कपड़ों की जानकारी व विभिन्न प्रकार के कपड़ों के प्रयोग से होने वाले लाभ तथा हानि की पूरी जानकारी दें।

टिप्पणी

खाना

सुबह के नाश्ते में दूध, फल, अंकुरित एवं उबले हुए चने, मूंग साबुत और मौठ या अन्य पौष्टिक आहार लेने चाहिए। डबल रोटी या परांठा इत्यादि भी कभी-कभी खा सकते हैं। दोपहर और रात के भोजन में रोटी, सब्जियों, दालों और सलाद इत्यादि खाने की प्रेरणा देते हुए उनसे शाकाहारी भोजन के लाभ और मांसाहारी भोजन से होने वाली हानियों की विस्तार से चर्चा करनी चाहिए। बच्चों को फास्ट फूड और मैदे से बनी नूडल्स इत्यादि से परहेज करने से भी अवगत कराएं। उन्हें अच्छी तरह से यह बता देना चाहिए कि क्योंकि मैदा, मेदे (पेट) को खराब करता है, अतः ऐसी चीजों को कभी-कभी तो ले सकते हैं, लेकिन नियमित भोजन में इनको लेना स्वास्थ्य के लिए बड़ा हानिकारक होता है।

बच्चों को समय पर खाना, बासी खाना न खाने, न ज्यादा गर्म न ज्यादा ठंडा खाना, खूब चबा-चबाकर खाना और खाने के बाद कुल्ला करके हाथ-मुंह धोने की पूरी प्रक्रिया उन्हें विस्तार से समझानी चाहिए। नीचे बैठकर खाने और मेज-कुर्सी पर बैठकर खाने व पार्टियों में खाने के नियमों और तरीकों पर भी रोशनी डालनी चाहिए ताकि बच्चे प्रत्येक दृष्टिकोण से खानपान के संबध में उचित व अनुचित का भेद ठीक से समझ सकें।

बच्चों को ठंडे-पेयों—कोका कोला, पेप्सी, लिम्का, थम्स-अप इत्यादि से होने वाली हानियों से भी अवगत करवा देना चाहिए। उन्हें विज्ञान की प्रयोगशाला में ले जाकर इन ठंडे पेयों की पी.एच. वैल्यू निकालकर दिखाएं और तेजाब व फिनायल की पी.एच. वैल्यू निकालकर तुलना करें, जो लगभग एक ही आएगी इससे उनको यह भली-भांति समझ में आ जाएगा कि उनके लिए क्या पीना ठीक है और क्या गलत? ऐसे ठंडे पेय के स्थान पर बच्चों को ताजे फलों और सब्जियों के रस, दूध, लस्सी, छाछ, नींबू-पानी, सत्तू इत्यादि को पीने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए, जो उनके शरीर व स्वास्थ्य के लिए अत्यंत उपयोगी है।

विद्यालय की उपयोगिता

विद्यार्थियों को प्रसन्नता से विद्यालय में जाने के लिए उत्साहित करना चाहिए। शिक्षा की उपयोगिता उन्हें समझाते हुए उनमें निरंतर सीखने की ललक पैदा करना शिक्षक का परम कर्तव्य है। उदाहरण के लिए बच्चों को उन महापुरुषों की कहानियां सुनानी चाहिए जिन्होंने विद्याप्राप्ति के लिए घोर प्रयत्न, तप व साधना की थी। भारत के दूसरे प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की कहानियां इस संदर्भ में बहुत प्रेरक हैं।

स्वतंत्र भारत के दूसरे प्रधानमंत्री श्री लाल बहादुर शास्त्री जी बड़े गरीब परिवार से थे। उनका विद्यालय नदी के उस पार था और नाव में बैठकर उस पार विद्यालय में जाने के लिए नाविक को देने के लिए उनके पास किराए के पैसे नहीं होते थे, इसलिए वह अपना बस्ता पीठ पर बांधकर रोज तैरकर नदी पार करते थे और इस प्रकार वे अपने विद्यालय पहुंचते थे।

इसी प्रकार की अन्य कहानियों से प्रेरित करके विद्यार्थियों का उत्साह बढ़ाना, उनका प्रसन्नता से विद्यालय में आना व उनमें एक नया जोश पैदा करना-शिक्षक का कर्तव्य है, ताकि शिक्षा-ग्रहण करके विद्यार्थी अपने विद्यार्थी जीवन में ही समाज और देश के लिए कुछ कर दिखाने की प्रेरणा ग्रहण कर लें।

टिप्पणी

शिक्षक को विद्यालय जाते हुए व विद्यालय से घर वापस आते हुए सामान्य व्यवहार के निर्देश विद्यार्थी को देने चाहिए, जिसमें सड़क पर देख-भालकर चलना, सड़क पर पड़ी वस्तुओं को ठोकर मारकर न चलना, अपने बाईं ओर चलना, साइकिल, स्कूटर, मोटरसाइकिल या कार को सीमित गति से चलाना। सिर पर हेलमेट का प्रयोग करना, रास्ते पर सीधा चलना, टेढ़े चलने की आदत से बचना, शांति से चलना, दौड़कर सड़क पार न करना रास्ते में बतियाते या शोर मचाते हुए न चलना, आते-जाते किसी प्रकार की छेड़खानी न करना, घर से सीधा विद्यालय और विद्यालय से सीधा घर वापस जाना इत्यादि बातें विद्यार्थियों को विस्तार से समझा देनी चाहिए।

पाठशाला में जाकर अध्यापकों और साथियों को हाथ जोड़कर 'नमस्ते जी' कहना और 'चरणस्पर्श' करने का तरीका भी बताना चाहिए। आमतौर पर बच्चों को जब उन्हें कोई पुरस्कार मिलता है तो वह पुरस्कार देने वाले के पैरों को छूने के लिए झुकते तो हैं, लेकिन ऐसा आमतौर पर देखा गया है कि वह उसके घुटनों तक ही पहुंचकर रह जाते हैं। अत: शिक्षक को हाथ जोड़कर 'नमस्ते जी' कहने का और 'चरणस्पर्श' करने का तरीका व महत्व बच्चों को अच्छी तरह से समझाना चाहिए।

विद्यालय में अध्ययन

विद्यार्थियों को कक्षा में चुपचाप अनुशासन में बैठने का अभ्यास भी शिक्षक को करवाना चाहिए। केवल बार-बार चिल्लाकर यह कहना कि 'चुप हो जाओ' अच्छे शिक्षक की पहचान नहीं है। शिक्षक विद्यार्थियों को निर्देश दें कि वह विद्यालय में कभी भी ऊंचे स्वर में या चिल्लाकर न बोलें। हमेशा संयम में रहते हुए शांत स्वर में बातचीत किया करें। विद्यार्थी नीचे तट पर, डेस्क पर या मेज-कुर्सी पर कैसे बैठे? उसे सीधा बैठने का सही तरीका बताना चाहिए। उन्हें रीढ़ की हड्डी व गरदन सीधी रखकर बैठना व जितना उचित हो उतना गरदन झुकाकर लिखना भी शिक्षक को सिखाना चाहिए। विद्यार्थी को लिखने-पढ़ने की जैसी आदत इस आयु में पड़ जाती है वह जीवनपर्यंत वैसे ही करता रहता है। अत: शिक्षक को अपने विवेक द्वारा उन्हें निर्देशित करना चाहिए। जब शिक्षक पढ़ा रहा हो तो सभी विद्यार्थी मन लगाकर पढ़ें, ऐसा शिक्षक को सुनिश्चित करना चाहिए। उसके लिए शिक्षक को उन्हें सुनने की कला से भी अवगत करवाना चाहिए कि किस प्रकार विद्यार्थी को अपने कान, मन, बुद्धि और आत्मा को पूरी तरह से शिक्षक के पाठ की ओर लगाना है और यदि कुछ समझ में ना आए तो उसको पूछने में उन्हें झिझकना नहीं चाहिए और ना ही आलस्य करना चाहिए। शिक्षक को बच्चों के श्रुतलेख की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। आमतौर पर शिक्षक कॉपी में इतना भर लिख देते हैं कि 'श्रुतलेख सुधारो' और इसी से अपने कर्तव्य की इतिश्री समझ लेते हैं। लेकिन उनको सही तरीके से वर्णमाला के प्रत्येक अक्षर का लिखकर अभ्यास करवाना चाहिए और जहां कहीं, कभी भी विद्यार्थी द्वारा ठीक नहीं लिखा जाता तो उस विशेष अक्षर को बार-बार उससे लिखवाकर उसका लेखन ठीक करवाना चाहिए।

विद्यार्थी को एकांत में पढ़ने और स्मरण करने कि विधि बतानी अत्यंत आवश्यक है। वैसे तो विषय को अच्छी तरह समझकर व स्वयं लिखकर स्मरण करना ही इसका सबसे बढ़िया तरीका है। लेकिन पाठ को बार-बार दोहराकर और उसे लिखकर भी स्मरण किया जा सकता है।

टिप्पणी

खेलना

शिक्षक को चाहिए कि वह खेल-कूद के विविध विषयों का ज्ञान विद्यार्थियों को कराएं, खेलों की पहचान करवानी चाहिए जिसमें फुटबॉल, क्रिकेट, हॉकी, लॉन टेनिस, टेबल टेनिस, बैडमिंटन, खो-खो, तैराकी, एथलेटिक्स व कुश्ती इत्यादि शामिल हों। उन्हें विश्व-स्तर पर होने वाले ओलपिंक, एशियाई, एफ्रो-एशियाइ कॉमनवेल्थ आदि खेल-प्रतियोगिताओं की पूरी जानकारी देकर यह भी बताएं कि भारत ने तैराकी व एथलेटिक्स में आज तक कोई स्वर्ण पदक नहीं जीता। बच्चों को प्रेरणा दें कि वह प्रतिदिन शाम को खेलने अवश्य जाएं। यदि वह तेज दौड़ने, कूदने का निरंतर अभ्यास करें तो हो सकता है कि एक दिन वह विश्व स्तर की प्रतिस्पद्धाओं में भाग लेकर देश का नाम रोशन करें।

विद्यार्थियों को खेलते समय केवल मुंह से ही नहीं, अपितु नाक से भी सांस लेने का अभ्यास करवाना चाहिए। खेलते समय सदैव रुमाल अपने पास रखना चाहिए, ताकि पसीना आने पर, उसे शरीर से साफ किया जा सके।

शिक्षक को खेल-भावना के बारे में विद्यार्थियों को विस्तार से बताना चाहिए। उन्हें जीतने पर ज्यादा खुशी या अहंकार नहीं होना चाहिए और हारने पर दुखी या हतोत्साहित भी नहीं होना चाहिए, बल्कि हारने पर उन्हें और अधिक मेहनत करके अगली बार जीतने का प्रयास करना चाहिए। खेल-भावना के अंतर्गत खेलते समय कोई बेईमानी नहीं करनी चाहिए और खेल के किसी नियम का उल्लंघन भी नहीं करना चाहिए। यदि किसी कारणवश आपसे या निर्णायकों से कोई भूल हो गई हो और वह बात आपकी जानकारी में आ जाए तो तुरंत अपनी भूल को स्वीकार करके भूल-सुधारकर लेना चाहिए। खेल में कोई भी जीते या हारे लेकिन खेल-भावना की सदैव विजय होनी चाहिए। इस प्रकार की शिक्षा विद्यार्थियों के मन में अच्छी तरह बैठा दें।

घर वापस जाना

शिक्षक को चाहिए कि वह विद्यार्थियों को अपने घर में जो व्यवहार उन्हें करना है, उसके बारे में भी बताएं। जब विद्यार्थी विद्यालय से घर वापस जाएं तो माता-पिता सहित घर में सभी का अभिवादन करें। घर के विभिन्न कार्यों में यथाशक्ति सहयोग करें। यदि माता-पिता या घर का कोई भी सदस्य कोई काम कहता है तो उसे सहर्ष करने को उद्धत रहें। ना-नुकर या बहानेबाजी कभी न करें। घर में कोई बीमार हो जाए तो उसका विशेष ध्यान रखें और जितना संभव हो सके तन-मन से उसकी सेवा करें। घर में माता-पिता की सेवा करना और उनकी आज्ञानुसार कार्य करना ही उनकी भक्ति है।

मनोरंजन

आज कल घर में मनोरंजन का अर्थ रेडियो, टेप रिकॉर्डर सुनना या टी.वी. देखना मात्र ही रह गया है। शिक्षकों को चाहिए कि वह टी.वी. कार्यक्रमों को देखने में विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करें। विद्यार्थियों को कितना और क्या देखना चाहिए और क्या नहीं देखना चाहिए, उसकी पूरी जानकारी उनको समय-समय पर देते रहना चाहिए। शिक्षक उन्हें प्रेरित करें कि वह अपने खाली समय में अपनी रुचि के अनुसार ड्राइंग, पेंटिंग, क्ले मॉडलिग, किसी संगीत वाद्य यंत्र को बजाने, भजन व गीत गाने और कविता-कहानी लिखने का निरंतर अभ्यास करते रहें, ताकि मनोरंजन के साथ-साथ कुछ सृजनशील और रचनात्मक कार्य भी वे कर सके, क्योंकि यह उनके व्यक्तित्व में चार चांद लगा देगा।

नैतिक निर्णय और नैतिक कार्रवाई

टिप्पणी

हॉफ्फमैन के अनुसार ऐतिहासिक तौर पर बच्चों में नैतिक विकास से संबंधित तीन प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत है। एक सिद्धांत जिसका समर्थन मशहूर धर्मविज्ञानी संत ऑगस्टाइन द्वारा किया गया है, को मौलिक पाप का सिद्धांत कहा जाता है, जिसके अनुसार बच्चे संभवत: दोषी प्रकृति के होते हैं। अत: वयस्कों के ज्ञानकृत तथा दंडात्मक हस्तक्षेप के माध्यम से उन्हें क्षतिपूरण की आवश्यकता होती है। दूसरे तरह के सिद्धांत के समर्थक जॉन लॉके (1632-1704) हैं जिनका मत है कि बच्चा नैतिक रूप से तटस्थ होता है अर्थात टैबुला राजा होता है और उन्हें जेसा शिक्षण-प्रशिक्षण मिलता है उसके अनुरूप या तो वे नेक या दोषी बन जाते हैं। तीसरे सिद्धांत के प्रवर्तक जीन जेक्स रूसो हैं जिनका मत है कि बच्चों में जन्मजात शुद्धता होती है तथा अनैतिक व्यवहार मूलत वयस्कों के दोषपूर्ण प्रभाव से उत्पन्न होते हैं।

इन तीनों क्लासिकी विचारधाराओं की अभिव्यक्ति नैतिक विकास के तीन आधुनिक मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के रूप में होती है। पहली विचारधारा अपने परिवर्तित रूप में सिगमंड फ्रायड के मनोवैश्लेषिक सिद्धांत के रूप में, दूसरी विचारधारा सामाजिक अधिगम सिद्धांत जो नैतिक विकास को अनुबंधन तथा मॉडलिंग अनुभूतियों का परिणाम मानता है, के रूप में तथा तीसरी विचारधारा जीन पियाजे तथा लॉरेंस कोह्लबर्ग के नैतिक विकास के संज्ञानात्मक-विकासात्मक सिद्धांत के रूप में अभिव्यक्त होता है।

- **मनोवैश्लेषिक निर्णय**

सचमुच में नैतिक विकास का सबसे पहला पूर्णत: विकसित नैतिक निर्णय एवं नैतिक कार्रवाई है, जिसका प्रतिपादन सिगमंड फ्रायड द्वारा किया गया है। फ्रायड का मत है कि बच्चे में नैतिक विकास का उदय पराह के कारण होता है। उन्होंने पराह को व्यक्ति का नैतिक कमांडर कहा है। फ्रायड का मत है कि बच्चों में विभिन्न तरह के जन्मजात अंतर्नोद अर्थात मौलिक लैंगिक तथा आक्रामक मूल प्रवृत्ति जिसे उपाहं (पक) कहा जाता है, होता है। समाज के मानक के अनुरूप उन्हें समाजीकृत करने में माता-पिता इन प्रणोदों को कुंठित कर देते हैं, इससे बच्चों में अपने माता-पिता के प्रति ईर्ष्या उत्पन्न होती है। परंतु, चूंकि बच्चों में इस तरह की ईर्ष्या की खुलेआम अभिव्यक्ति करने से उनमें माता-पिता का प्यार खोने तथा उनके प्रतिशोध का डर रहता है, इसलिए वे अपनी इस ईर्ष्या को दमित कर देते हैं तथा माता-पिता के मनाही या निषेध को स्वीकार कर लेते हैं। इसे फ्रायड ने आंतरीकरण की संज्ञा दी है।

माता-पिता के मानकों तथा विचारों को स्वीकार कर लेने से बच्चे नैतिकतापूर्ण ढंग से व्यवहार करना सीख लेते हैं क्योंकि इससे वे आत्म-दंड, चिंता तथा दोष से भी बच जाते हैं। अब बच्चे ऐसे व्यवहार करने लगते हैं, मानो पराह के पराक्रम से बच्चे अपने आपमें माता-पिता हो गए हों। बाह्य दंड आत्म-दंड में बदल जाता है तथा बाह्य नियंत्रण आत्म-नियंत्रण में बदल जाता है। इस तरह से बच्चे अपने माता-पिता द्वारा उनके किए गए व्यवहारों के मूल्यांकन को स्वीकार करके समाज के नैतिक मानकों को अपने में शामिल कर लेते हैं।

स्पष्ट हुआ कि मनोवैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार बच्चों के नैतिक विकास में माता-पिता की भूमिका अहम होती है।

टिप्पणी

सामाजिक–अधिगम निर्णय

नैतिक विकास का यह सिद्धांत कुछ मनोवैज्ञानिकों, जैसे अलबर्ट बैंदुरा तथा वाल्टर मिसकेल के शोधों का प्रतिफल है। इन मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि बच्चे नैतिक व्यवहार को ठीक उसी ढंग से सीखते हैं जैसे अन्य व्यवहारों को सीखते हैं। मनोवैश्लेषिक सिद्धांत के विपरीत अपना मत जाहिर करते हुए सामाजिक-अधिगम सिद्धांतवादियों ने यह कहा है कि नैतिक व्यवहार किसी एक विशेष इकाई अर्थात पराह से उत्पन्न नहीं होता है तथा साथ-ही-साथ इस बात से भी इनकार करते हैं कि नैतिक व्यवहार में सिर्फ ईमानदारी ही सम्मिलित होती है। सामाजिक-अधिगम सिद्धांतवादियों का मत है कि सामाजिक व्यवहार परिवर्त्य होता है तथा परिस्थितिजन्य संदर्भ पर निर्भर करता है। मिसकेल तथा मिसकेल का यह मत है कि चूंकि अधिकतर व्यवहारों से कुछ परिस्थितियों में धनात्मक परिणाम मिलते हैं, परंतु कुछ अन्य परिस्थितियों में नहीं, व्यक्तियों में कुछ खास एवं विभेदी अनुक्रिया करने की आदत पड़ जाती है परंतु इन्हें जीवन के सभी तरह की परिस्थितियों में सामान्यीकृत भी नहीं किया जा सकता है।

सामाजिक-अधिगम सिद्धांतवादियों का मत है कि नैतिक व्यवहार को सीखने का मुख्य आधार प्रेक्षण होता है। बच्चा जब किसी मॉडल (या, अन्य व्यक्ति) को कोई व्यवहार करते देखना है तथा उस व्यवहार का धनात्मक परिणाम मॉडल को प्राप्त करते देखता है तो वह भी वैसा ही व्यवहार करना सीख लेता है। बच्चा यदि मॉडल को नैतिकतापूर्ण व्यवहार करते देखता है तो वह भी उस नैतिकतापूर्ण व्यवहार को करना सीख लेता है। इस सिलसिले में बैंदुरा, रॉस एवं रॉस तथा वाल्टर्स, लीट तथा मेजी ने कुछ महत्वपूर्ण प्रयोग किए हैं। उदाहरण के रूप में वाल्टर्स, लीट तथा मेजी के प्रयोग को उद्धृत किया जा रहा है। इस प्रयोग में तीन समूह थे–दो प्रयोगात्मक समूह तथा एक नियंत्रित समूह। लड़कों का पहला प्रयोगात्मक समूह ऐसा था जिसमें उन लोगों को एक ऐसा फिल्म दिखाया गया जिसमें एक बच्चा को मां द्वारा इसलिए दंडित किया गया क्योंकि वह उस खिलौने के साथ खेल रहा था जिसके साथ खेलने के लिए मना किया गया था। लड़कों का दूसरा समूह उसी फिल्म के दूसरा वर्तनी को देखा, जिसमें उसी व्यवहार के लिए बच्चा को मां द्वारा पुरस्कृत किया गया। बच्चों का तीसरा समृह एक नियंत्रित समूह था जिसे कोई फिल्म नहीं दिखलाया गया। प्रयोगकर्ता द्वारा तीनों समूह के बच्चों को एक अलग कमरा में ले जाया गया और खिलौनों के साथ नहीं खेलने की हिदायत दी गई। इसके बाद प्रयोगकर्ता कमरा से बाहर चला गया।

इस प्रयोग के परिणाम में देखा गया कि जिन बच्चों ने फिल्म में यह देखा था कि मां मेघ की आज्ञा का न पालन करने से बच्चा को पुरस्कार मिलता था, (दूसरा समूह) द्वारा अन्य दोनों समूहों के बच्चों की अपेक्षा प्रयोगकर्ता द्वारा दिए गए हिदायत को न मानने की प्रवृत्ति पाई गई। जिन बच्चों ने यह फिल्म देखा था कि मॉडल (बच्चा) को मां द्वारा दंडित किया गया था (पहला समूह) उनमें प्रयोगकर्ता द्वारा दिए गए हिदायत को न मानने की अनिच्छा काफी अधिक थी। इस प्रयोग के परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है कि दूसरों के व्यवहार को प्रेक्षण करने से सामाजिक नियमों के प्रति आशापालन तथा आशापालनहीनता का भाव विकसित होता है। कुछ अध्ययनों, जैसे रोजनकोएट्टर तथा रॉस द्वारा किए गए अध्ययनों से, यह स्पष्ट हुआ है कि बेईमान तथा विसामान्य मॉडल द्वारा किए गए व्यवहारों

का प्रभाव बच्चों के ईमानदार तथा अविसामान्य मॉडल की अपेक्षा अस्बिक प्रभाव डालने में सक्षम होता है।

टिप्पणी

निष्कर्षत: यह कहा जा सकता है कि सामाजिक-अधिगम सिद्धांत के अनुसार बच्चों में नैतिक विकास नैतिक व्यवहार को सीखने के फलस्वरूप होता है। बच्चे अन्य व्यवहार के समान नैतिक व्यवहार को प्रेक्षण के आधार पर सीखते हैं।

संज्ञानात्मक–विकासात्मक निर्णय

नैतिक विकास सचमुच में एक संचयी प्रक्रिया है जो बिना किसी अचानक परिवर्तन के लगातार धीरे-धीरे होते रहती है। परंतु ठीक इसके विपरीत संज्ञानात्मक-विकासात्मक सिद्धांतवादियों का मत है कि नैतिक विकास सतत न होकर विभिन्न चरणों या अवस्थाओं में होता है। विद्वानों का मत है कि नैतिक विकास चरणों में होता है और उन चरणों के बीच स्पष्ट रूप से परिवर्तन होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि एक चरण या अवस्था में बच्चों में हुआ नैतिक विकास उसके पहले या बाद की अवस्था में हुए नैतिक विकास से भिन्न भी होता है।

(1) जीन पियाजे का सिद्धांत

(2) लॉरेंस कोहबर्ग का सिद्धांत

जीन पियाजे का नैतिक विकास का सिद्धांत

जीन पियाजे, जो स्वीट्जरलैंड के एक मनोविज्ञानी थे, ने नैतिक विकास का वैज्ञानिक अध्ययन 1926 से प्रारंभ किया। 1932 में उनकी मशहूर पुस्तक 'दी मोरल जजमेंट ऑफ दी चाइल्ड' का प्रकाशन हुआ। पियाजे का मत था कि बच्चों के नैतिक निर्णय के विकास में एक निश्चित क्रम एवं तार्किक पैटर्न होता है। यह विकास क्रमिक परिवर्तन जो बच्चों के बौद्धिक विकास से संबद्ध होते हैं, पर आधारित होते हैं।

पियाजे ने बच्चों को अपने नैतिक विकास में एक सक्रिय सहभागी पाया है। वे इस सिलसिले में वातावरण के साथ बच्चों में होने वाले गतिशील अंत:क्रिया पर अधिक बल डालते थे। उनका मत था कि जैसे-जैसे बच्चे अपने को वातावरण के साथ अंत:क्रिया करते हैं, उन्हें परिवर्तित करते हैं तथा उनमें कुछ परिमार्जन लाने हैं उनमे नैतिक विकास होता है। जब वे वातावरण के साथ अंत:क्रिया करते हैं तथा उन्हें परिवर्तित करने की कोशिश करते हैं वे भी अपने द्वारा किए गए व्यवहार के परिणामस्वरूप परिवर्तित हो जाते हैं। इस तरह से पियाजे ने नैतिक विकास में बच्चों को एक सक्रिय सहभागी माना है और उनका यह विचार सामाजिक-अधिगम सिद्धांत के नैतिक विकास में बच्चों को पर्यावरणी बलों का निष्क्रिय प्रापक माना गया है, जो उन बलों के प्रभावों से प्रभावित होकर अपने में पर्याप्त परिवर्तन लाकर नैतिक विकास की ओर उन्मुख होता है। पियाजे का यह सिद्धांत नैतिक समस्याओं से संबंधित बच्चों के सामने उपस्थित किए गए युग्मित लघु कथाओं के विश्लेषण पर आधारित था।

पियाजे के नैतिक विकास के सिद्धांत में दो निम्नांकित अवस्थाएं होती हैं–

(i) परायत्त नैतिकता की अवस्था

इस अवस्था को नैतिक वास्तविकता की अवस्था भी कहा जाता है। नैतिक विकास की यह पहली अवस्था होती है जिससे होकर प्राय: सभी बच्चे गुजरते हैं। यह अवस्था लगभग दो

टिप्पणी

वर्ष से आठ वर्ष की आयु की होती है। पियाजे ने यह स्पष्ट किया है कि इस अवस्था की शुरुआत बच्चों एवं वयस्कों में असमान अंत:क्रिया से होती है। इस अवस्था में प्राक्-स्कूली अवस्था तथा आरंभिक स्कूली साल दोनों ही सम्मिलित होता है। इस अवस्था में बच्चे सत्तावादी वातावरण में डूबे हुए होते हैं जिसमें उनका स्थान निश्चित रूप से वयस्क से घटिया या नीचे होता है। इस अवस्था में बच्चों में नैतिक नियम का जो संप्रत्यय विकसित होता है वह निरपेक्ष, अपरिवर्तनशील तथा दृढ़ होता है। शायद यही कारण है इस अवस्था को नैतिक वास्तविकता की अवस्था या दबाव की नैतिकता की अवस्था कहा जाता है। इस अवस्था में बच्चे यह समझते हैं कोई भी बाह्य प्राधिकार, जैसे माता-पिता की ओर से आते हैं जिसे हर हालत में उन्हें स्वीकार करना है और वे निर्विवाद होते हैं तथा वे समय वे साथ परिवर्तनशील नहीं हैं अर्थात वे आज भी रहेंगे और कल भी रहेंगे। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है इस अवस्था में पूर्णरूपेण नैतिक निरपेक्षवाद बना रहता है। यह भी समझते हैं कि इन नियमों से किसी भी तरह के विचलन से उन्हें सख्त-से-सख्त दंड दिया जाएगा।

(ii) स्वायत्त नैतिकता की अवस्था

यह अवस्था बड़े बच्चों में 9 से 11 साल की आयु में प्रारंभ होती है। जहां परायत्त नैतिकता बच्चों तथा वयस्कों के बीच असमान संबंध से उत्पन्न होती है, वहीं स्वायत्त नैतिकता बच्चे के समान स्तर के लोगों अर्थात साथी-संगी के बीच के संबंधों से उपजती है। इस ढंग का संबंध जब सामान्य बौद्धिक वर्द्धन्, वयस्कों के दबाव में कमी के साथ संयोजित हो जाता है तो इससे बच्चों में एक विशेष तरह की नैतिकता विकसित होती है जिसमें अन्य बातों के अलावा तर्कसंगतता, लचीलापन तथा सामाजिक चेतना की विशेषताएं होती हैं। अपने साथी-संगी के संबंधों के माध्यम से बच्चों में न्याय का ऐसा ज्ञान विकसित होता है, जिसमें दूसरों के अधिकारों के लिए चिंता तथा मानव संबंध में समानता तथा पारम्पारिकता आदि दिखलाई जाती है। सचमुच में पियाजे स्वायत्त नैतिकता को एक प्रजातंत्रात्मक तथा समतावादी मानते हैं जो पारस्परिक आदर तथा सहयोग पर आधृत होती है।

इस अवस्था में बच्चा अब यह समझने लगता है सामाजिक नियम एक मनमाना अनुबंध होता है जिसके बारे में प्रश्न उठाया जा सकता है तथा जिसमें परिवर्तन संभव है। प्राधिकार के प्रति अनुपालन दिखलाना न तो आवश्यक है और न ही हमेशा वांछनीय है। बच्चे दूसरों के भावों एव विचारधाराओं को उनके व्यवहार का मूल्यांकन करने में उन पर ध्यान देता है। वे स्पष्टत: यह कहते हैं कि जब भी किसी को दंडित जाना है तो गलत करने वाले व्यक्ति का इरादा को भी ध्यान में रखा जाना चाहिए तथा उनके द्वारा किए गए अतिक्रमण को भी ध्यान में रखना चाहिए। दंड का स्वरूप क्षतिपूर्ति के रूप में होना चाहिए ताकि गए हानि की पूर्ति हो सके। व्यक्ति को शिक्षित भी किया जाना चाहिए ताकि वह दोबारा ऐसी गलती न करे। इस अवस्था में बच्चे समतावादी नियमों के समर्थक बन जाते हैं ताकि सबों के लिए समान न्याय हो।

अपने शोधों के आधार पर पियाजे ने परायत्त तथा स्वायत्त अवस्थाओं के बीच निम्नांकित चार विमाओं के आधार पर अंतर स्पष्ट किया है।

(1) परायत्त अवस्था में बच्चे यह अनुभव करते हैं कि सभी समय में तथा सभी जगहों पर नियम समान रूप से लागू होते हैं परंतु स्वायत्त अवस्था में वे ऐसा नहीं समझते हैं और अब वे यह समझने लगते हैं कि इन नियमों को हमेशा मानना जरूरी नहीं है और उस पर प्रश्न उठाया जा सकता है।

(2) परायत्त अवस्था में बच्चे यह समझते हैं एक बार बन जाने पर नियमों में परिवर्तन नहीं हो सकता है, जबकि स्वायत्त अवस्था में आने पर बच्चे यह समझते हैं कि इन नियमों में परिवर्तन संभव है।

टिप्पणी

(3) परायत्त अवस्था में बच्चे सर्वव्यापी न्याय में विश्वास करते हैं अर्थात वे यह विश्वास करते हैं कि उनके द्वारा गलत काम किए जाने पर ईश्वर उन पर विपत्ति थोप देता है। जैसे, यदि कोई बच्चा किसी की कलम चुरा लेता है और बाद में सीढ़ी से गिरकर घायल हो जाता है तो वह यह सोचता है कि ऐसा इसलिए हुआ, क्योंकि उसने चोरी की थी। परंतु, स्वायत्त अवस्था में आ जाने पर बच्चा ऐसा नहीं सोचता है, क्योंकि अब बच्चा यह समझने लगता है कि वह इसलिए गिरकर घायल हो गया, क्योंकि सीढ़ी पर ध्यान देकर नहीं चल रहा था।

(4) परायत अवस्था में बच्चे किसी व्यवहार का मूल्यांकन उसके परिणाम के आधार पर करते हैं न कि करने वाले की नीयत के आधार पर, जबकि स्वायत्त अवस्था में बच्चे किसी व्यवहार का मूल्यांकन व्यक्ति की नीयत के आधार पर करते हैं।

पियाजे के नैतिक विकास सिद्धांत की परिसीमाएं

(क) पियाजे का यह दावा था कि व्यक्ति नैतिक विकास की एक अवस्था में दूसरी अवस्था में एक निश्चित एवं अपरिवर्त्य क्रम में प्रवेश करता है। इसका मतलब यह है कि बच्चे परायत्त अवस्था से स्वायत्त अवस्था में एक निश्चित उम्र पर क्रमबद्ध ढंग से प्रवेश करते हैं। इस तथ्य का समर्थन औद्यौगिक पश्चिमी देश जैसे- अमेरिका, इंग्लैंड, फ्रांस तथा स्वीट्जरलैंड के विभिन्न वर्गो से लिए गए बच्चों के अध्ययन में स्पष्ट रूप से पाया गया। परंतु फ्रांस-सांस्कृतिक अध्ययनों के परिणाम पियाजे को उस हद तक समर्थन नहीं प्रदान करते हैं। जैसे, हैभिंघर्स्ट तथ न्यूगार्टन ने एक अध्ययन किया जिसमें दस अमरीकन भारतीय जनजाति के बच्चों का अध्ययन किया गया कि इनमें से छह प्रजाति में उम्र बीतने के साथ बच्चों के सर्वव्यापी न्याय की अवधारणा में वृद्धि के बजाय कमी हो गई। इतना ही नहीं इन दस समूहों मे से मात्र दो समूह के बच्चों में उम्र बीतने के साथ लचीलापन से संबद्ध नियम में प्रत्याशित परिवर्तन नहीं होते देखे गए। ऐसे परिणाम से यह स्पष्ट हो जाता है सांस्कृतिक कारणों से पियाजे द्वारा प्रस्तावित नैतिक नियमों के क्रम में परिवर्तन हो सकता है।

(ख) हालांकि पियाजे द्वारा बतलाए गए सामान्य विकासात्मक क्रम को कई अध्ययनों में आम समर्थन मिला है, नवीनतम शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि पियाजे ने छोटे बच्चों के संज्ञानात्मक क्षमताओं का न्यूनाकलन किया है। चांडलर, ग्रीनस्पैन तथा बारेनबोइम ने अपने अपने अध्ययन में यह पाया है कि छह साल के बच्चे भी दूसरे व्यक्ति के नीयत को समझने में सफल हो जाते हैं, यदि उनके सामने परिस्थिति इस ढंग से रखी जाती है कि वे उसे ठीक से सही-सही समझ लें। अतः पियाजे का यह दावा कि छह साल के बच्चे, जो नैतिक विकास की परायत्त अवस्था में होते हैं, दूसरों के नीयत या इरादा को समझने में असमर्थ रहते हैं, उचित नहीं दिखता है।

(ग) मोटे तौर पर देखा जाए तो पियाजे के नैतिक विकास के सिद्धांत में मात्र दो कारक अर्थात नीयत तथा परिणाम पर अधिक बल डाला है, परंतु आधुनिक शोधों से यह स्पष्ट हुआ है कि इन दोनों कारकों के अतिरिक्त और भी कारक हैं, जिनका प्रभाव नैतिक विकास पर पड़ते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. स्थिति/प्रक्रिया विशेष को बार–बार दुहराने का प्रयत्न क्या कहलाता है?

(क) अभ्यास (ख) योगासन

(ग) वैराग्य (घ) विषयवती प्रवृत्ति

6. हिंसा के प्रकार हैं–

(क) कृत (ख) कारित

(ग) अनुमोदित (घ) उपर्युक्त सभी

1.5 संचारी–असंचारी रोग

संचारी–असंचारी रोग–प्रकरण को निम्नांकित बिंदुओं के तहत समझा जा सकता है–

1.5.1 संचारी–असंचारी रोग : कारक, संचरण, प्रभाव एवं चुनौतियां

जब हमारे शरीर की प्रतिरक्षा प्रणाली ठीक से काम नहीं करती, तो कई बीमारियां हो सकती हैं। कुछ पदार्थों से एलर्जी और अतिसंवेदनशीलता को प्रतिरक्षा प्रणाली विकार माना जाता है। इसके अलावा, प्रतिरक्षित तंत्र प्रतिरोपित अंगों या ऊतक की अस्वीकृति प्रक्रिया में भी भूमिका निभाता है। प्रतिरक्षा विकारों के अन्य उदाहरणों में शामिल हैं–

ऑटोइम्यून बीमारियां, जैसे कि किशोर मधुमेह, संधिशोथ और एनीमिया।

इम्यूनो डेफिशिएंसी रोग, जैसे अधिगृहीत प्रतिरक्षा कमी सिंड्रोम (एड्स) और गंभीर संयुक्त इम्यूनोडेफिशिएन्सी (एससीआईडी)।

सीडीसी के अनुसार, एक संक्रामक रोग निम्नलिखित में से एक, या अधिक के कारण होता है–

- वायरस
- जीवाणु
- परजीवी
- कवक या फफूंद।

संक्रामक बीमारियां आम बीमारियों से हो सकती हैं, जैसे कि सर्दी से लेकर घातक बीमारियां, जैसे एड्स। बीमारी पैदा करने वाले जीव के आधार पर, एक संक्रमण कुछ, या सभी में, निम्न तरीकों से फैल सकता है :

- **यौन संचरण**– संभोग सहित यौन संपर्क के माध्यम से संक्रमण का संचरण।
- **एयरबोर्न ट्रांसमिशन**– रोग के वायुजनित माध्यम से संक्रमण का संचरण, जो संक्रमित व्यक्ति की खांसी या छींक के परिणामस्वरूप हवा में मौजूद हो सकता है।
- **रक्त–जनित संचरण**– संक्रमित रक्त के संपर्क के माध्यम से संक्रमण का संचरण, जैसे कि हाइपोडर्मिक सुइयों को साझा करते समय।

टिप्पणी

- **सीधे संपर्क संचरण**— एक संक्रमित व्यक्ति के साथ सीधे शरीर की सतह से शरीर के संपर्क के माध्यम से संक्रमण का संचरण।
- **कीट—जनित संचरण**— मच्छरों जैसे कीटों के माध्यम से एक संक्रमण का संचरण, जो एक संक्रमित व्यक्ति से रक्त खींचता है और फिर एक स्वस्थ व्यक्ति को काटता है।
- **खाद्य जनित संचरण**— दूषित भोजन के सेवन से संक्रमण का संक्रमण।
- **जल जनित संचरण**— दूषित पानी के संपर्क के माध्यम से संक्रमण का संचरण।

अन्य तंत्र जो किसी बीमारी को प्रसारित कर सकते हैं।

विकसित देशों में, अधिकांश संक्रमण यौन, वायुजनित, रक्त—जनित और सीधे संपर्क संचरण के माध्यम से फैलते हैं।

संक्रामक रोग वे विकार हैं, जो जीवाणुओं के कारण होते हैं, आमतौर पर आकार में सूक्ष्म, जैसे कि बैक्टीरिया, वायरस, कवक या परजीवी, जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रविष्ट हो जाते हैं। मनुष्य एक संक्रमित जानवर के संपर्क में आने के बाद भी संक्रमित हो सकता है, जो मनुष्यों को संक्रमित करने में सक्षम है।

संक्रामक बीमारियां दुनिया भर में मौत का एक प्रमुख कारण हैं, खासकर कम आय वाले देशों में, और उनमें भी छोटे बच्चों में।

विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा 2016 में दुनिया भर में मौत के शीर्ष दस कारणों में तीन संक्रामक रोगों को स्थान दिया गया था। वे कम श्वसन संक्रमण (3.0 मिलियन मौतें), डायरियल बीमारियां (1.4 मिलियन मौतें), और तपेदिक (1.3 मिलियन मौतें) हैं। एचआईवी/एड्स, जो पहले सूची में था, मृत्यु के शीर्ष दस कारणों की वैश्विक सूची में नीचे गिरा दिया गया है (2016 में 1.0 मिलियन मौतों की तुलना में 2000 में 1.5 मिलियन), लेकिन यह अभी भी कम आय वाले देशों में मृत्यु का एक प्रमुख कारण है। एक और संक्रामक रोग, मलेरिया, कम आय वाले देशों में मृत्यु के एक शीर्ष कारण के लिए जिम्मेदार है। इसे आगे दिए गए चित्र में दर्शाया गया है।

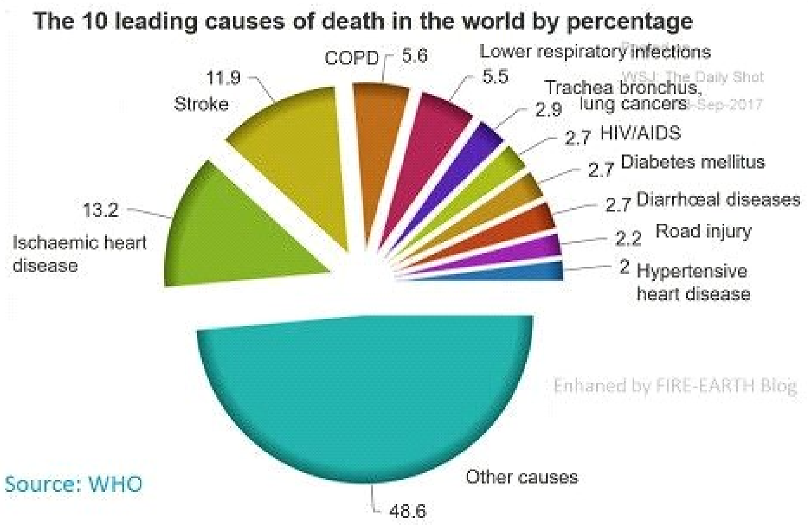

निम्न श्वसन संक्रमण (निमोनिया सहित) और डायरियल रोग कई प्रकार के संक्रामक एजेंटों के कारण होते हैं। अन्य संक्रामक रोग– एचआईवी/एड्स, तपेदिक और मलेरिया– एक एकल संक्रामक एजेंट के कारण हैं।

टिप्पणी

संचारी–असंचारी रोगों के कारक एवं संचरण

संक्रामक रोग रोगजनक जीवों (जिसे रोगाणु कहा जाता है) के कई अलग–अलग वर्गों के कारण हो सकता है। ये वायरस, बैक्टीरिया, प्रोटोजोआ और कवक हैं। इनमें से लगभग सभी जीव आकार में सूक्ष्म हैं, और अक्सर इन्हें रोगाणुओं या सूक्ष्मजीवों के रूप में जाना जाता है।

हालांकि रोगाणु संक्रमण के वाहक हो सकते हैं, अधिकांश रोगाणुओं से मनुष्यों में बीमारी नहीं होती है। वास्तव में, मनुष्यों को रोगाणुओं के एक संग्रह में बसाया गया है, जिसे माइक्रोबायोम के रूप में जाना जाता है। वे हमारे शरीर में महत्वपूर्ण और लाभकारी भूमिका निभाते हैं।

मनुष्यों में बीमारी का कारण बनने वाले अधिकांश एजेंट वायरस या बैक्टीरिया होते हैं, हालांकि मलेरिया का कारण बनने वाला परजीवी प्रोटोजोअन का एक उल्लेखनीय उदाहरण है।

वायरस के कारण होने वाले रोगों के उदाहरण हैं एचआईवी/एड्स, इन्लुएंजा, इबोला, एमईआरएस, चेचक, डायरिया रोग, हेपेटाइटिस और वेस्ट नाइल। बैक्टीरिया के कारण होने वाले रोगों में एंथ्रेक्स, तपेदिक, साल्मोनेला, और श्वसन और दस्त संबंधी रोग शामिल हैं।

संचरण

कई अलग–अलग मार्ग हैं जिनके द्वारा एक व्यक्ति एक संक्रामक रोगाणु से संक्रमित हो सकता है। कुछ कारकों के लिए, मनुष्यों को संक्रमण के स्रोत के साथ सीधे संपर्क में आना चाहिए, जैसे कि दूषित भोजन, पानी, मल सामग्री, शरीर के तरल पदार्थ या पशु उत्पाद। अन्य कारकों के मामलों में संक्रमण हवा के माध्यम से फैलाया जा सकता है।

संक्रामक कारकों के संचरण का मार्ग स्पष्ट रूप से एक महत्वपूर्ण कारक है कि आबादी के माध्यम से संक्रामक रोगाणु कितनी जल्दी फैल सकता है। एक रोगाणु जो हवा के माध्यम से फैल सकता है उसमें, प्रत्यक्ष संपर्क के माध्यम से फैलने वाले रोगाणु की तुलना में बड़ी संख्या में व्यक्तियों को संक्रमित करने की अधिक संभावना रखता है।

संचरण का एक अन्य महत्वपूर्ण कारक पर्यावरण में संक्रामक रोगाणु के अस्तित्व का समय है। एक रोगाणु जो मेजबानों के बीच केवल कुछ सेकंड तक जीवित रहता है, वह एक कारक के रूप में उनकी अपेक्षा कई लोगों को संक्रमित करने में सक्षम नहीं होगा, जो घंटों, दिनों या उससे भी अधिक समय तक पर्यावरण में जीवित रह सकते हैं। संभावित जैवआतंकवाद कारकों के जोखिमों का मूल्यांकन करते समय ये कारक महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

समाज पर संक्रामक रोगों का प्रभाव

संक्रामक रोगों ने पूरे इतिहास में मनुष्यों को त्रस्त कर दिया है, और वास्तव में कुछ अवसरों पर इतिहास को आकार भी दिया है। 1918 की फ्लू महामारी ने संयुक्त राज्य

अमेरिका में डेढ़ मिलियन से अधिक लोगों को और दुनिया भर में 50 मिलियन लोगों को मार डाला और माना जाता है कि प्रथम विश्वयुद्ध को समाप्त करने में उनकी प्रधान भूमिका थी।

टिप्पणी

संक्रामक रोगों और विश्वव्यापी महामारियों का प्रभावित आबादी पर हमेशा गम्भीर सामाजिक और आर्थिक प्रभाव पड़ा है, लेकिन हमारी वर्तमान दुनिया में, ये प्रभाव वास्तव में वैश्विक हैं।

सार्स और मर्स

2003 की शुरुआत में सार्स की महामारी ने प्रदर्शित किया कि नई संक्रामक बीमारियां सिर्फ एक हवाई जहाज की यात्रा हैं, क्योंकि हवाई यात्री एक देश से दूसरे देश में तेजी से बीमारी फैलाते हैं। भले ही सार्स का प्रकोप अपेक्षाकृत कम समय तक रहा और भौगोलिक रूप से समाहित रहा, लेकिन महामारी से प्रेरित भय ने यात्रा प्रतिबंधों और स्कूलों, दुकानों, कारखानों और हवाई अड्डों को बंद करने की स्थितियां पैदा कीं। एशियाई देशों को हुए आर्थिक नुकसान का अनुमान 18 अरब डॉलर था। लंबे समय तक और अधिक व्यापक फैलाव से जाहिर तौर पर आर्थिक प्रभाव बहुत अधिक होगा।

हाल ही में, एक नया SARS जैसा वायरस, जिसका नाम MERS–CoV है, सऊदी अरब में उभरा। यह मध्य पूर्व श्वसन सिंड्रोम या MERS का कारण बनता है, जो एक गंभीर और अक्सर घातक श्वसन बीमारी है। MERS मध्य पूर्व के अन्य देशों के साथ–साथ यूरोप, एशिया और उत्तरी अमेरिका के देशों में भी फैल गया है, जिसमें संयुक्त राज्य अमेरिका भी शामिल है। संक्रमण एक संक्रमित जानवर (ऊंट) या व्यक्ति के साथ सीधे संपर्क के माध्यम से होता है, लेकिन अगर वायरस समय के साथ मनुष्यों के अनुकूल हो जाये, तो यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में आसानी से फैल सकता है।

एचआईवी/एड्स

एचआईवी/एड्स महामारी, विशेष रूप से उप–सहारा अफ्रीका में, लंबे और व्यापक संक्रमण के आर्थिक और सामाजिक प्रभावों को दर्शाता है। सबसे अधिक आर्थिक रूप से उत्पादक व्यक्तियों के असीमित नुकसान ने प्रभावित देशों, विशेष रूप से उच्च संक्रमण दर वाले देशों के कार्यबल और आर्थिक विकास दर को कम कर दिया है। यह इन राष्ट्रों की स्वास्थ्य देखभाल, शिक्षा और राजनीतिक स्थिरता को प्रभावित करता है।

दक्षिणी अफ्रीका में, जहां संक्रमण की दर सबसे अधिक है, जीवन प्रत्याशा 1990–1995 और 2000–2005 के बीच एक दशक में 62 वर्ष से घटकर 48 वर्ष हो गई है। 18 साल से कम उम्र के दुनिया भर में लगभग 18 मिलियन बच्चों का जीवन अनाथ हो चुका है। इससे HIV/AIDS जैसे संक्रामक रोग के परिवारों और समाजों पर पड़ने वाले व्यापक प्रभाव का पता चलता है।

इंफ्लूएंजा

संक्रामक रोगों के प्रकोप का एक और हालिया उदाहरण H_1N_1 इंफ्लूएंजा या "स्वाइन" फ्लू महामारी है। यह 2009 में शुरू हुई थी। फ्लू महामारी के लंबे इतिहास में पहली बार, एक प्रकोप की शुरुआत का पता चला था, और इस बीमारी के प्रसार की निगरानी लगभग दैनिक आधार पर की गई क्योंकि हवाई यात्रियों ने इसे दुनिया भर में फैलाया।

टिप्पणी

नए H_1N_1 फ्लू ने अभूतपूर्व गति के साथ दुनिया भर में यात्रा की और कुछ ही महीनों में इसका असर विश्व स्तर पर महसूस किया गया। भले ही यह बीमारी ज्यादातर लोगों के लिए अपेक्षाकृत हल्की थी, लेकिन बहुत से स्कूल बंद हो गए और संक्रमित लोगों की संख्या में कमी आई। मेक्सिको को अपने शुरुआती चरण में प्रकोप को रोकने के प्रयास में अपने पर्यटन उद्योग को बहुत आर्थिक नुकसान और क्षति का सामना करना पड़ा।

H_1N_1 फ्लू होने के बाद, फिर इंफ्लूएंजा वायरस का एक और रूप सामने आया। नया H_7N_9 वायरस पहली बार 2013 में चीन में पक्षियों और मनुष्यों में पाया गया था, लेकिन वर्तमान में यह एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में फैलता नहीं दिखता है।

एक गंभीर महामारी संभावित रूप से राष्ट्रीय और वैश्विक अर्थव्यवस्थाओं, करीबी स्कूलों और व्यवसायों को हफ्तों तक बाधित कर सकती है, सामाजिक वार्तालाप को प्रतिबंधित कर सकती है, और एंटीवायरल ड्रग्स और वैक्सीन की सीमित खुराक के आवंटन के बारे में देशों के बीच मतभेद पैदा कर सकती है।

अनुसंधान संबंधी चुनौतियां

संक्रामक रोग अनुसंधान और उपचार में महत्वपूर्ण प्रगति के बावजूद, इन रोगों के नियंत्रण और उन्मूलन के प्रयासों को बड़ी चुनौतियों का सामना करता है।

2007 में जारी WHO की एक रिपोर्ट बताती है कि संक्रामक रोग पहले से कहीं ज्यादा तेजी से फैल रहे हैं और इतिहास में किसी भी समय की तुलना में नए संक्रामक रोगों की उच्च दर पर खोज की जा रही है। पिछले पांच वर्षों में, डब्ल्यूएचओ ने एवियन फ्लू, स्वाइन फ्लू, पोलियो और हैजा सहित संक्रामक रोगों की 1000 से अधिक महामारियों की पहचान की है।

मानव गतिशीलता में बहुत अधिक वृद्धि के कारण आज संक्रामक रोगों में तेजी से महामारी और वैश्विक महामारी बनने की संभावना पैदा हुई है।

संक्रामक रोगों का मुकाबला करने में कठिनाई के कुछ कारण इस प्रकार हैं :

- नयी संक्रामक बीमारियां सामने आती रहती हैं।
- पुरानी संक्रामक बीमारियां उभर आती हैं या भौगोलिक वितरण में वृद्धि करती हैं।
- पुराने संक्रामक रोग जो पहले नियंत्रण में थे, फिर से उभरने लगते हैं।
- जैवआतंकवाद द्वारा संक्रामक रोगाणुओं के जानबूझकर इस्तेमाल की संभावनाएं बढ़ी हैं।
- वर्तमान रोगाणुरोधी दवाओं के लिए रोगजनकों के बढ़ते प्रतिरोध।
- सार्वजनिक स्वास्थ्य प्रणालियों में व्यवधान और राष्ट्रों के बीच संचार।

1.5.2 संचारी–असंचारी रोगों की रोकथाम

इम्युनोग्लोब्युलिन्स को अपनी हैवी शृंखला के स्वरूप के आधार पर विभिन्न प्रकारों में वर्गीकृत किया जा सकता है। ये प्रकार निम्नानुसार हैं–

1. **IgG:** इसमें हैवी गामा शृंखला होती हैं एवं यह प्रतिरक्षियों में पाया जाने वाला प्रमुख आइसोटाइप है। इसका प्रमुख प्रकार्य संक्रमणों से सुरक्षा प्रदान करना

है। इसके विभिन्न अन्य प्रकार्य होते हैं, जैसे कि प्रतिजन–विशिष्ट ग्राही के माध्यम से रोगजनकों से आबद्ध होना एवं प्रतिजन–प्रतिरक्षी संकुलों का निर्माण। यह पूरक प्रणाली को भी सक्रियित कर सकता है एवं यह ऐसा एकमात्र प्रतिरक्षी है जो प्लेसेण्टल बैरियर को लांघ सकता है एवं परिवर्द्धनशील गर्भ (foetus) को अक्रिय प्रतिरक्षण प्रदान करता है।

2. **IgA:** इसके प्रकार्यों में ऐसे क्षेत्रों में रोगजनकों को निवह (कॉलोनी) बनाने से रोकना सम्मिलित हैं जो रोगजनक–आक्रमण से असुरक्षित होते हैं। यह प्रतिरक्षी अश्रुओं, लार एवं स्तन दुग्ध में स्रावित किया जाता है। वैसे IgA अणुओं द्वारा क्लासिकल पूरक मार्ग को सक्रियित नहीं किया जाता किन्तु वैकल्पिक पूरक मार्ग को सक्रियित किया जा सकता है। इस प्रतिरक्षी में अल्फ़ा हैवी शृंखला होती हैं एवं यह श्लेष्मीय प्रतिरक्षण में भाग लेता है। स्वस्थ सीरम में समस्त इम्युनोग्लोबिन्स में IgA का भाग लगभग 15 प्रतिशत् रहता है।

   अधिकांश IgA स्रावित रूप में उपस्थित रहता है। IgA अतिदुर्बल पूरक सक्रियित प्रतिरक्षी है; इस कारण यह पूरक प्रणाली के माध्यम से जीवाण्विक कोशिकालयन को प्रेरित नहीं करता। वैसे स्रावी IgA द्वारा लायसोज़ाइम्स (कई स्रावित तरलों में भी विद्यमान्) के साथ मिलकर कार्य करते हुए जीवाण्विक कोशिका–भित्तियों का जलापघटन (हायड्रोलायसिस) किया जा सकता है जिससे प्रतिरक्षा तन्त्र संक्रमण को दूर कर पाता है। IgA प्रधानतया उपकला (एपिथीलियल) कोशिका–सतहों पर पाया जाता है जहां यह 'उदासीनीकारक प्रतिरक्षी' (न्युट्रेलाइज़िंग एंटिबॉडी) के रूप में कार्य करता है।

3. **IgE:** यह किन्हीं परजीवियों, विशेषतया परजीवी कृमियों व प्रत्यूर्जक अभिक्रियाओं से प्रतिरक्षात्मक अनुक्रिया में माउंटिंग में आवश्यक है। इसमें एप्सिलोन हैवी शृंखला होती हैं एवं यह मोनोमेरिक प्रतिरक्षी है जो कुल सीरम–प्रतिरक्षियों का मात्र 0.002 प्रतिशत् रहता है। यह शरीर के विभिन्न भागों में ऊतक–कोशिकाओं में आबद्ध होता है। प्रतिजनों से IgE के सम्पर्क से मास्ट सेल्स से संकेत–अणुसमूह की विमुक्ति होती है जो संक्रमण से लड़ने के लिये प्रतिरक्षात्मक अनुक्रिया के विभिन्न कर्मकों की व्यवस्था करता है। यह प्रत्यूर्जताओं में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है क्योंकि जब यह प्रतिरक्षी अपने विशिष्ट प्रतिजन के संपर्क में आता है, तब यह ग्रैन्युलोसाइट्स अपने विषाक्त उत्पादों को मुक्त कर सकता है।

4. **IgD:** IgD का प्रकार्य पृथक् से सुस्पष्ट नहीं हो सका है एवं इसमें डेल्टा हैवी शृंखला होती हैं। यह अनुभवहीन बी–कोशिकाओं (जो अभी तक प्रतिजन द्वारा सक्रिय नहीं किया गया है) पर एक प्रतिजन संग्राही लगता है और स्प्लीन में उनकी परिपक्वता प्रक्रिया के अंत में बी–कोशिकाओं को संकेत देता है।

5. **IgM:** IgM आइसोटाइप को बी–कोशिकाओं की सतह पर व्यक्त किया जाता है किन्तु कोशिकाओं द्वारा स्रावित भी किया जाता है। यह आइसोटाइप IgG के समान परिपथ द्वारा पूरक प्रपात को प्रेरित भी कर सकता है। वैसे यह प्रतिरक्षी अधिक दक्ष कॉम्प्लिमेण्ट ट्रिगर है। यह सीरम में विद्यमान् हो सकता है, यह रक्त में प्रतिरक्षियों में 10 प्रतिशत् होता है। IgM को प्राथमिक संक्रमण में प्लाज़्मा–कोशिकाओं द्वारा संश्लिष्ट किया जाता है एवं यह रुग्णत्व की आरम्भिक

अवस्थाओं के दौरान रोगजनक के प्रसार को धीमा करने अथवा रोकने में आवश्यक है।

प्रतिरक्षा प्रणाली के सशक्तीकरण से रोकथाम

टिप्पणी

हम अपनी प्रतिरक्षा प्रणाली में कैसे सुधार कर सकते हैं? कुल मिलाकर, हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली रोग पैदा करने वाले सूक्ष्मजीवों के खिलाफ हमारा बचाव करने का उल्लेखनीय काम करती है। लेकिन कभी–कभी यह विफल हो जाती है : एक रोगाणु सफलतापूर्वक आक्रमण करता है और हमें बीमार बनाता है। क्या इस प्रक्रिया में हस्तक्षेप करना और अपनी प्रतिरक्षा प्रणाली को बढ़ावा देना संभव है? यदि हम अपने आहार में सुधार करते हैं तो क्या होगा? कुछ विटामिन या हर्बल उपाय कारगर होंगें? क्या जीवनशैली में बदलाव के माध्यम से पूर्ण प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के निर्माण की उम्मीद की जा सकती है?

प्रतिरक्षा प्रणाली को सशक्त बनाने के उपाय

अपनी प्रतिरक्षा को बढ़ाने का विचार मोहक है, लेकिन ऐसा करने की क्षमता कई कारणों से भ्रमोत्पादक साबित हुई है। प्रतिरक्षा प्रणाली ठीक है कि एक प्रणाली, एक इकाई नहीं है। अच्छी तरह से काम करने के लिए, इसे संतुलन और सामंजस्य की आवश्यकता होती है। प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया की जटिलताओं और परस्पर संबंध के बारे में अभी भी बहुत कुछ ऐसा है, जो शोधकर्ताओं को नहीं पता है। अभी के लिए, जीवनशैली और संवर्धित प्रतिरक्षा तंत्र के बीच कोई वैज्ञानिक रूप से सिद्ध सीधा संबंध नहीं हैं।

लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि प्रतिरक्षा प्रणाली पर जीवनशैली का प्रभाव नहीं पड़ता और इसका अध्ययन नहीं किया जाना चाहिए। शोधकर्ता आहार, व्यायाम, आयु, मनोवैज्ञानिक तनाव और प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के अन्य कारकों, जानवरों और मनुष्यों दोनों में पड़ने वाले प्रभावों की खोज कर रहे हैं। इस बीच, सामान्य स्वास्थ्य रणनीतियां हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को शक्ति देने की शुरुआत करने का एक अच्छा तरीका हो सकती हैं।

स्वस्थ जीवनशैली चुनने का प्रयास हमारी रक्षा की पहली पंक्ति है। सामान्य अच्छे स्वास्थ्य दिशानिर्देशों का पालन करना सबसे अच्छा कदम है जो हम अपनी प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत और स्वस्थ रखने के लिए स्वाभाविक रूप से कर सकते हैं। हमारे शरीर का हर हिस्सा, हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली सहित, बेहतर काम करता है, पर्यावरणीय हमलों से सुरक्षित रहता है यदि स्वस्थ रहने वाली रणनीतियों द्वारा हम इनके लिये स्थितियां निर्मित करते है। इन रणनीतियों में शामिल हैं :

- धूम्रपान न करें।
- फलों और सब्जियों से युक्त आहार अधिक लें।
- नियमित रूप से व्यायाम करें।
- स्वस्थ वजन बनाए रखें।
- यदि शराब पीते हैं, तो सीमित मात्रा में पीएं।
- पर्याप्त नींद लें।
- संक्रमण से बचने के लिए कदम उठाएं, जैसे कि अपने हाथों को बार–बार धोना और मीट को अच्छी तरह से पकाना।
- तनाव को कम करने की कोशिश करें।

प्रतिरक्षा बढ़ाने के स्वस्थ तरीके

टिप्पणी

बजार में कई उत्पाद प्रतिरक्षा को बढ़ावा देने या सशक्त करने का दावा करते हैं। लेकिन प्रतिरक्षा को बढ़ाने की अवधारणा वास्तव में वैज्ञानिक रूप से बहुत कम समझ में आती है। वास्तव में, आपके शरीर में कोशिकाओं की संख्या में वृद्धि– प्रतिरक्षा कोशिकाओं या अन्य– जरूरी नहीं कि एक अच्छी बात हो। उदाहरण के लिए, एक एथलीट जो "रक्त डोपिंग" में संलग्न है– अपनी प्रणाली में रक्त पंप करके रक्त कोशिकाओं की संख्या को बढ़ावा देने और अपने प्रदर्शन को बढ़ाने के लिए स्ट्रोक की जोखिम लेता है।

हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकाओं को बढ़ावा देने का प्रयास विशेष रूप से जटिल है, क्योंकि प्रतिरक्षा प्रणाली में कई अलग–अलग प्रकार की कोशिकाएं होती हैं, जो इतने सारे अलग–अलग रोगाणुओं को इतने तरीकों से प्रतिक्रिया देती हैं। हमें किन कोशिकाओं को बढ़ावा देना चाहिए, और किस स्तर पर? वैज्ञानिकों को अभी तक इसका जवाब नहीं पता है। शरीर लगातार प्रतिरक्षा कोशिकाओं का उत्पादन करता रहता है। निश्चित रूप से यह कई और अधिक लिम्फोसाइटों का उत्पादन करता है, क्योंकि यह संभवतः उनका उपयोग कर सकता है। अतिरिक्त कोशिकाएं एपोप्टोसिस नामक कोशिका मृत्यु की एक प्राकृतिक प्रक्रिया के माध्यम से खुद को दूर करती हैं। कोई नहीं जानता कि प्रतिरक्षा प्रणाली को अपने इष्टतम स्तर पर कार्य करने में सक्षम होने के लिये कितनी कोशिकाओं या कोशिकाओं के किस सबसे अच्छा मिश्रण की आवश्यकता होती है।

प्रतिरक्षा प्रणाली और उम्र

जैसे–जैसे हमारी उम्र बढ़ती है, हमारी प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया क्षमता कम होती जाती है, जो बदले में अधिक संक्रमण और अधिक कैंसर में योगदान देता है। जैसे–जैसे विकसित देशों में जीवन प्रत्याशा बढ़ी है, वैसे–वैसे उम्र से संबंधित स्थितियों में भी वृद्धि हुई है। कई अध्ययनों का निष्कर्ष यह है कि युवा लोगों की तुलना में बुजुर्गों में संक्रामक रोगों के होने की संभावना अधिक होती है, और इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि उनसे मरने की संभावना अधिक होती है। श्वसन संक्रमण, इंफ्लूएंजा और विशेष रूप से निमोनिया दुनिया भर में 65 प्रतिशत से अधिक लोगों में मृत्यु का एक प्रमुख कारण है। कोई भी यह निश्चित तौर पर नहीं जानता कि ऐसा क्यों होता है, लेकिन कुछ वैज्ञानिक मानते हैं कि यह बढ़ा हुआ जोखिम टी–कोशिकाओं में कमी के साथ संबंधित है। संभवतः थाइमस उम्र के साथ संक्रमण से लड़ने के लिए कम टी–कोशिकाओं का उत्पादन करता है। क्या थाइमस प्रणाली में यह कमी टी–कोशिकाओं में गिरावट की व्याख्या करती है या कोई अन्य परिवर्तन भूमिका निभाता है, यह पूरी तरह से समझा नहीं गया है। प्रश्न यह भी है कि क्या अस्थि मज्जा उन स्टेम कोशिकाओं के उत्पादन में कम कुशल हो जाती है, जो प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकाओं को जन्म देते हैं?

टीके के प्रति पुराने लोगों की प्रतिक्रिया से संक्रमण के प्रति प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया में कमी का प्रदर्शन किया गया है। उदाहरण के लिए, इंफ्लूएंजा के टीकों के अध्ययन से पता चला है कि 65 वर्ष से अधिक उम्र के लोगों के लिए, टीका स्वस्थ बच्चों (2 वर्ष से अधिक) की तुलना में बहुत कम प्रभावी है। लेकिन प्रभावकारिता में कमी के

बावजूद, टीकाकरण न कराये जाने की तुलना में इंफ्लुएंजा और एस निमोनिया के लिए कराये गये टीकाकरण ने पुराने लोगों में बीमारी और मृत्यु की दर को काफी कम कर दिया है।

टिप्पणी

बुजुर्गों में पोषण और प्रतिरक्षा के बीच एक संबंध होता है। कुपोषण का एक रूप जो समृद्ध देशों में भी आश्चर्यजनक रूप से आम है, "सूक्ष्म पोषक कुपोषण" के रूप में जाना जाता है। सूक्ष्म पोषक कुपोषण, जिसमें एक व्यक्ति को कुछ आवश्यक विटामिनों और खनिजों की कमी होती है। ये आहार से प्राप्त होते हैं या पूरक होते हैं, जिनकी बुजुर्गों में सामान्य कमी हो सकती है। वृद्ध लोग कम भोजन करते हैं और अक्सर उनके आहार में कम विविधता होती है। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि क्या आहार की खुराक वृद्ध लोगों को स्वस्थ प्रतिरक्षा प्रणाली को बनाए रखने में मदद कर सकती है? वृद्ध लोगों को इस सवाल पर एक चिकित्सक से चर्चा करनी चाहिए, जो कि जराचिकित्सा पोषण में पारंगत हो, क्योंकि कुछ आहार पूरकता पुराने लोगों के लिए फायदेमंद हो सकती है, यहां तक कि छोटे बदलावों से इस आयु वर्ग में गंभीर परिणाम हो सकते हैं।

आहार और प्रतिरक्षा प्रणाली

किसी भी रक्षाबल की तरह, प्रतिरक्षा प्रणाली की सेना अपने पेट के सहारे मार्च करती है। स्वस्थ प्रतिरक्षा प्रणाली के योद्धाओं को अच्छे, नियमित पोषण की आवश्यकता होती है। वैज्ञानिकों ने लंबे समय से माना है कि जो लोग गरीबी में रहते हैं, और कुपोषित हैं, वे संक्रामक रोगों की चपेट में हैं। क्या रोग की बढ़ी हुई दर प्रतिरक्षा प्रणाली पर कुपोषण के प्रभाव के कारण होती है, हालांकि, यह निश्चित नहीं है। अभी भी मनुष्यों की प्रतिरक्षा प्रणाली पर पोषण के प्रभावों के अपेक्षाकृत कम अध्ययन हैं, और ऐसे अध्ययन भी कम हैं जो पोषण के प्रभावों को सीधे विकास (बनाम उपचार) रोगों से जोड़ते हैं।

कुछ साक्ष्य हैं कि विभिन्न सूक्ष्म पोषक तत्वों की कमी– उदाहरण के लिए, जस्ता, सेलेनियम, लोहा, तांबा, फोलिक एसिड, और विटामिन ए, बी 6, सी, और ई की कमी– जानवरों में प्रतिरक्षा प्रतिक्रियाओं में परिवर्तन लाता है, जैसा कि टेस्ट ट्यूब में मापा जाता है। हालांकि, जानवरों के स्वास्थ्य पर इन प्रतिरक्षा प्रणाली के प्रभावों का प्रभाव कम स्पष्ट है, और मानव प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया पर इसी तरह की कमियों के प्रभाव का आकलन किया जाना अभी बाकी है।

तो हम क्या कर सकते हैं? यदि हमें संदेह है कि हमारा आहार हमें अपने सभी सूक्ष्म पोषक तत्वों की आवश्यकता प्रदान नहीं कर रहा है, तो दैनिक मल्टीविटामिन और खनिज पूरक लेने से प्रतिरक्षा प्रणाली पर किसी भी संभावित लाभकारी प्रभाव से परे अन्य स्वास्थ्य लाभ हो सकते हैं।

तनाव और प्रतिरक्षा तंत्र

आधुनिक चिकित्सा मन और शरीर के घनिष्ठ रूप से जुड़े संबंधों को महत्वपूर्ण मानती है। पेट खराब, पित्ती और यहां तक कि हृदय रोग सहित कई प्रकार की विकृतियां भावनात्मक तनाव के प्रभावों से जुड़ी हैं। चुनौतियों के बावजूद, वैज्ञानिक सक्रिय रूप से तनाव और प्रतिरक्षा प्रणाली के बीच संबंधों का अध्ययन कर रहे हैं।

टिप्पणी

तनाव को परिभाषित करना मुश्किल है। एक व्यक्ति के लिए जो स्थिति तनावपूर्ण हो सकती है, दूसरे के लिए भी हो जरूरी नहीं। जब लोग उन स्थितियों के संपर्क में आते हैं जिन्हें वे तनावपूर्ण मानते हैं, तो उनके लिए यह मापना मुश्किल है कि वे कितना तनाव महसूस करते हैं, और वैज्ञानिक के लिए यह जानना मुश्किल है कि किसी व्यक्ति की तनाव की मात्रा का व्यक्तिपरक प्रभाव सटीक है या नहीं। वैज्ञानिक केवल उन चीजों को माप सकता है, जो तनाव को प्रतिबिंबित कर सकते हैं, जैसे कि प्रत्येक मिनट में दिल की धड़कन की संख्या, लेकिन ऐसे उपाय भी अन्य कारकों को दर्शा सकते हैं।

अधिकांश वैज्ञानिक तनाव और प्रतिरक्षा प्रणाली के संबंध का अध्ययन करते हैं, हालांकि, अक्सर वे अल्पकालिक तनाव का अध्ययन नहीं करते; इसके बजाय, वे दीर्घकालिक तनाव के रूप में जाने जाने वाले अधिक निरंतर और लगातार तनावों का अध्ययन करने की कोशिश करते हैं, जैसे कि परिवार, दोस्तों और सहकर्मियों के साथ संबंधों के कारण, या किसी के काम में अच्छा प्रदर्शन करने के लिए निरंतर चुनौतियां। कुछ वैज्ञानिक जांच कर रहे हैं कि क्या चल रहा तनाव प्रतिरक्षा प्रणाली पर कोई प्रभाव डालता है।

क्या ठंड के मौसम में प्रतिरक्षा प्रणाली कमजोर होती है?

लगभग हर एक मां अपने बच्चों से कहती है : "तुम जैकेट पहन लो वरना सर्दी पकड़ लेगी!" क्या यह सही है? अब तक, जो शोधकर्ता इस प्रश्न का अध्ययन करते रहे हैं, उन्हें लगता है कि मध्यम ठंड के सामान्य संपर्क से संक्रमण के प्रति आपकी संवेदनशीलता नहीं बढ़ती है। अधिकांश स्वास्थ्य विशेषज्ञ यदि इस बात से सहमत होते हैं कि सर्दी "ठंड और लू का मौसम" है, तो ऐसा मानने का कारण यह है कि ठंड में लोग अधिक समय घर के अंदर बिताते हैं, अन्य लोगों के साथ घनिष्ठ संपर्क में होते हैं जो सहज रूप से अपने कीटाणुओं का प्रसार कर सकते हैं।

लेकिन शोधकर्ताओं को अलग–अलग आबादी में इस सवाल में दिलचस्पी बनी हुई है। चूहों के साथ कुछ प्रयोग बताते हैं कि ठंड के संपर्क में संक्रमण से निपटने की क्षमता कम हो सकती है। लेकिन इंसानों का क्या? वैज्ञानिकों ने लोगों को ठंडे पानी में डुबो कर देखा है। उन्होंने अंटार्कटिका में रहने वाले लोगों और कनाडाई रॉकी में अभियान पर रहने वाले लोगों का अध्ययन किया है। नतीजे मिले–जुले रहे हैं। उदाहरण के लिए, शोधकर्ताओं ने प्रतिस्पर्धी क्रॉस–कंट्री स्कीयरों में ऊपरी श्वसन संक्रमण में वृद्धि दर्ज की, जो ठंड में सख्ती से व्यायाम करते हैं, लेकिन क्या ये संक्रमण ठंड या अन्य कारकों के कारण होते हैं, यह अभी ज्ञात नहीं है।

कनाडाई शोधकर्ताओं के एक समूह ने इस विषय पर सैकड़ों चिकित्सा अध्ययनों की समीक्षा की है और स्वयं के कुछ शोधों का निष्कर्ष निकाला है कि मध्यम ठंड के जोखिम के बारे में चिंता करने की कोई आवश्यकता नहीं है– इसका मानव प्रतिरक्षा प्रणाली पर कोई हानिकारक प्रभाव नहीं पड़ता है। यदि आप एक लंबी अवधि के लिए बाहर जाने वाले हैं, तो वहां शीतदंश और हाइपोथर्मिया जैसी समस्याएं हो सकती हैं। लेकिन प्रतिरक्षा के बारे में चिंता करने की आवश्यकता नहीं है।

व्यायाम : प्रतिरक्षा के लिए अच्छा या बुरा?

नियमित व्यायाम स्वस्थ रहने के स्तंभों में से एक है। यह हृदय स्वास्थ्य में सुधार करता है, रक्तचाप को कम करता है, शरीर के वजन को नियंत्रित करने में मदद करता है

टिप्पणी

और कई तरह की बीमारियों से बचाता है। लेकिन क्या यह हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को स्वाभाविक रूप से बढ़ावा देने और इसे स्वस्थ रखने में मदद करता है? एक स्वस्थ आहार की तरह, व्यायाम सामान्य अच्छे स्वास्थ्य में योगदान कर सकता है और इसलिए एक स्वस्थ प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए यह लाभकारी है। यह अच्छे संचरण को बढ़ावा देकर और भी अधिक योगदान दे सकता है, जो प्रतिरक्षा प्रणाली की कोशिकाओं और पदार्थों को स्वतंत्र रूप से शरीर के माध्यम से स्थानांतरित करने और अपना काम कुशलता से करने में सक्षम बनाता है।

कुछ वैज्ञानिक यह निर्धारित करने के लिए अगला कदम उठाने की कोशिश कर रहे हैं कि क्या व्यायाम किसी व्यक्ति की संक्रमण के प्रति संवेदनशीलता को प्रभावित करता है? उदाहरण के लिए, कुछ शोधकर्ता यह देख रहे हैं कि क्या अत्यधिक मात्रा में गहन व्यायाम से एथलीट अधिक बार बीमार पड़ सकते हैं या किसी तरह से अपनी प्रतिरक्षा क्रिया बाधित कर सकते हैं। इस प्रकार के अनुसंधान करने के लिए, व्यायाम वैज्ञानिक आमतौर पर एथलीटों को गहन व्यायाम करने के लिए कहते हैं; वैज्ञानिक प्रतिरक्षा प्रणाली के घटकों में किसी भी बदलाव का पता लगाने के लिए व्यायाम से पहले और बाद में उनके रक्त और मूत्र का परीक्षण करते हैं। हालांकि कुछ बदलाव दर्ज किए गए हैं, लेकिन इम्यूनोलॉजिस्ट अभी तक यह नहीं जानते हैं कि इन परिवर्तनों का मानव प्रतिरक्षा प्रतिक्रिया के संदर्भ में क्या मतलब है।

लेकिन ये विषय गहन शारीरिक परिश्रम से गुजरने वाले संभ्रांत एथलीट से जुड़े हैं। औसत लोगों के लिए मध्यम व्यायाम के बारे में क्या सुझाव होने चाहिये? क्या यह प्रतिरक्षा प्रणाली को स्वस्थ रखने में मदद करता है? अभी भले ही कोई प्रत्यक्ष लाभ गिनाने की स्थिति नहीं बनी है, पर स्वस्थ रहने के लिए नियमित रूप से व्यायाम की उपयोगिता पर सन्देह नहीं है। हमारे शरीर के साथ–साथ हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली को स्वस्थ रखने के लिए यह एक संभावित महत्वपूर्ण साधन है।

यह दृष्टिकोण शोधकर्ताओं को इस बारे में अधिक पूर्ण उत्तर प्राप्त करने में मदद कर सकता है, कि क्या जीवनशैली के कारक, जैसे व्यायाम प्रतिरक्षा में सुधार में मदद करते हैं, क्या वे मानव जीनोम के अनुक्रमण का लाभ उठाते हैं? इस बारे में अधिक संपूर्ण उत्तर देने और प्रतिरक्षा प्रणाली के बारे में इसी तरह के सवालों के जवाब देने के लिए और अधिक शोध की आवश्यकता से इनकार नहीं किया जा सकता।

1.5.3 योगाभ्यास तथा इसका आधुनिक जीवन शैली पर प्रभाव

योगााभास को हमइस इकाई में 3 में विस्तार से देखेंगे। यहां योग का प्रभाव एवं इससे संदर्भित विविध पक्षों का विश्लेषण किया जा रहा है।

आधुनिक युग में योग की स्वीकृति

वर्तमान समय में हर व्यक्ति इतना अधिक व्यस्त है कि वह अपने स्वयं के लिए भी समय नहीं निकाल पाता है। लेकिन समय की मांग यह कह रही है कि योग को नहीं अपनाया गया तो व्यक्ति अपना शारीरिक एवं मानसिक विकास नहीं कर सकता है। वैज्ञानिक रूप से भी यह सिद्ध हो चुका है। योग करने से केवल व्यक्ति को संतोष ही प्राप्त नहीं होता है बल्कि मानसिक तनाव से भी उसे राहत मिलती है। उसके मन और

मस्तिष्क में शक्ति तथा सुविचारों का आगमन होता है। आज की भागम–भाग जिंदगी में लोग अपने खान–पान तथा सेहत को नजरअंदाज करते चले जा रहे हैं।

योग की परिभाषा में परिवर्तन

टिप्पणी

आधुनिक युग में योग की परिभाषा में परिवर्तन आ गया है। इस युग में हर व्यक्ति आध्यात्म की प्राप्ति के पीछे नहीं बल्कि भौतिक सुखों के पीछे भागता चला जा रहा है। तनाव से छुटकारा पाने के लिए तथा मानसिक शांति पाने के लिए वह योग की शरण में जाता है। वर्तमान में योग को जन–जन तक पहुंचाने का श्रेय बे.के.एस. आयंगर और बाबा रामदेव को जाता है। बाबा रामदेव ने इस कठिन साधना को सरल बनाकर शहरों और गांवों में प्रचलित कर दिया। बाबा रामदेव के योग का प्रचार एवं प्रसार करने के कारण ही अशिक्षित व्यक्ति भी अनुलोम–विलोम करते हुए मिल जाते हैं। योग को और प्रचारित एवं प्रसारित करने में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी जी ने पूर्ण योग दिवस मनाकार पूर्ण सहयोग प्रदान किया। मोदी जी ने यू.एन. के सामने अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस मनाने का प्रस्ताव रखा जिसको बहुत बड़ी संख्या में बहुमत मिला। 21 जून, 2015 को पहली बार योग दिवस मनाया गया। आधुनिक समय में 21 जून एक ऐतिहासिक दिवस बन गया है।

आजकल योग की शिक्षा योग संस्थाओं, योग कॉलेजों, विश्वविद्यालय के योग विभागों, प्राकृतिक चिकित्सा कॉलेजों, प्राइवेट सेंटर्स एवं अनेक समितियों द्वारा दी जा रही है। अब तो अनेक योग क्लीनिक, योग थेरेपी, योग प्रशिक्षण केंद्र, योग अनुसंधान केंद्र आदि बन चुके हैं जो योग के द्वारा अनेक प्रकार की बीमारियों से बचने के लिए प्रशिक्षित करते हैं।

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का सत्य क्लीनिकल कंट्रोल ट्रायल (Clinical Control Trial) पर आधारित है। किसी भी क्षेत्र में यथार्थ का अन्वेषण एक चुनौती भरा दायित्व है। जीवन में किसी भी बात को आत्मसात करना एक बहुत बड़ा चुनौती पूर्ण कार्य होता है। भारतीय जनमानस ने सृष्टि के आदिकाल से योग को अपनी जीवन शैली में सम्मिलित किया हुआ था। मध्यकाल में योग का अभ्यास शिथिल पड़ गया था, वर्तमान में चल रही योग क्रांति से पुनः अतीत की पुनरावृत्ति हुई है और योग के प्रयोग व अभ्यास से लाखों–करोड़ों लाभान्वित हो रहे हैं। यही प्रयास है कि योग एक जीवन–दर्शन बन जाए तथा असाध्य रोगों से पीड़ित लोग इसे अपने समाधान के लिए अपनाए। मानव इससे परम सुख व लाभ उठाएं, भूले भटकों को राह मिल जाए। अपमानित, उपेक्षित, असुरक्षित व दुखी होकर आत्महत्या की ओर कदम बढ़ा रहे मनुष्य भी योग के द्वारा स्वास्थ्य लाभ प्राप्त कर सकें। योगी व्यक्ति अपराध, भ्रष्टाचार, हिंसा रहित रहकर एक सकारात्मक, सृजनात्मक, गुणात्मक व उत्पादक समाज के निर्माण में सहभागी होता है। योग के द्वारा व्यक्ति आतंकवाद, जातिवाद, प्रांतवाद व मजहबी उन्माद से हटकर राष्ट्रवाद की राह पर आगे बढ़ता है जो कि आधुनिक समय की सर्वोपरि मांग है। योग के माध्यम से आज राष्ट्र एवं विश्व की मानवतावादी, राष्ट्रवादी, पुरुषार्थवादी, आध्यात्मवादी व सत्यवादी सात्विक शक्तियां एकीकृत हो रही हैं। इससे विश्व शांति व विश्व कल्याण का मार्ग स्वतः प्रशस्त हो रहा है।

टिप्पणी

एलोपैथी से योग की ओर

आधुनिक युग में लोग (मुख्यतः भारत जैसे विकासशील देश में) एलोपैथी की महंगी चिकित्सा से योग की ओर मार्गान्तिरित हो रहे है। योग का सिद्धांत आर्थिक हितों से पहले रोगी हित का चिंतन, समाज को सही दिशा में आगे बढ़ा रहा है। वस्तुतः रोगी हित सर्वोपरि है, 'सदैव युक्तं भैषज्यं यदारोग्याय कल्पते' की कल्पना सही अर्थों में आधुनिक समय में साकार हो रही है। योग गरीब लागों के लिए एक वरदान है जो कि गरीबी एवं आर्थिक तंगी के कारण महंगा उपचार मुहैया नहीं कर सकते हैं, वे भी योग के सरल, सहज, प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक उपचार से लाभान्वित हो सकेंगे। योग के वैज्ञानिक दृष्टिकोण द्वारा योग को केवल तनावमुक्ति का साधन व शारीरिक व्यायाम समझने वालों के संशय, भ्रम, अज्ञान व भ्रांतियां अवश्य दूर हा रही हैं तथा योग का सत्य प्रबुद्ध व्यक्तियों से लेकर आम व्यक्ति तक संप्रेषित हो रहा है तथा वह इसका भरपूर लाभ उठा रहा है। योग के द्वारा चिकित्सा के क्षेत्र में एक अभिनव क्रांति का सृजन हो रहा है तथा निरंतर कोशिशों व प्रयासों से धीरे–धीरे योग एवं आयुर्वेद सहित भारतीय चिकित्सा पद्धतियों को विश्व की मुख्य धारा की चिकित्सा विधा के रूप में स्थान प्राप्त होने के अवसर मिलेंगे। युगों के बाद जब भी विश्व में स्वास्थ्य क्रांति को याद किया जाएगा तो उसमें योग के महत्वपूर्ण योगदान को अवश्य याद किया जाएगा। आज पूरे विश्व में योग शीर्ष पर प्रतिष्ठित हो रहा है। योग का मुख्य ध्येय भारतीय संस्कृति को अधिक प्रामाणिकता व वैज्ञानिकता के साथ विश्व पटल पर स्थापित करके भारतीय संस्कृति के अनुरूप एक स्वस्थ व सुखी संसार का निर्माण है जो कि आधुनिक समय में भली–भांति सार्थकता प्राप्त कर रहा है।

व्यक्तित्व विकास हेतु एक वैज्ञानिक विधि के रूप में योग

योग करोड़ों वर्ष पुरानी भारतीय सांस्कृतिक व आध्यात्मिक विद्या है। सृष्टि के आदिकाल से लेकर आज तक कोटि–कोटि ऋषि मुनियों ने योग के क्षेत्र में योगदान दिया है। ध्यान व समाधि की परा विद्या से लेकर रोगों से आक्रांत मानव को रोगमुक्त करने के लिए विविध प्राणायामों, मुद्राओं एवं आसनों का आविष्कार किया गया। अनेक वर्षों के शोधों के पश्चात ऋषियों ने सृष्टि के समस्त जलचर, थलचर व नभचर प्राणियों की आकृति का अनुसरण कर आसनों की विधियां विकसित कीं, केवल जीव जातियों को ही नहीं, सृष्टि में दृष्टिगोचर होने वाली प्रत्येक आकृति को भी योगासनों में अपनाने की परंपरा है। उदाहरणार्थ– हल को देखकर हलासन। कुछ आसनों का विधान तो सीधे–सीधे लाभ के साथ भी जोड़कर किया, यथा– वायु से मुक्ति के लिए पवनमुक्तासन, संपूर्ण शरीर को पोषण देने के लिए सर्वांगासन इत्यादि। योग की परंपरा के वैज्ञानिक आधारों की सोच पर शोध की दिशा में चिंतन करने पर यह ज्ञात होता है कि कोई न कोई वैज्ञानिक आधार प्रत्येक योग की क्रिया के पीछे अवश्य निहित होता था। परंतु कालांतर में मात्र विधियां शेष रह गई। योग के प्रयोगों के प्रभावों का वैज्ञानिक विश्लेषण विस्मृत सा हो गया।

विज्ञान की भाषा में एक वैज्ञानिक ऋषि का योग की परंपरा में योगदान अपेक्षित होता है। जिससे युग की भाषा में विश्वस्तरीय चिकित्सा मापदंडों के अनुरूप विज्ञान की प्रत्येक कसौटी पर योग के सत्य को सत्यापित व स्थापित करने का कार्य संपन्न हो

टिप्पणी

सके। योग में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का भी गहराई से अध्ययन किया जाता है। व्यक्ति को व्याधिमुक्त कर उच्च शिखर पर पहुंचाने में योग का प्रयोग एक बहुत बड़ी चुनौती है। योग के प्रयोगों के वैज्ञानिक विश्लेषण से इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि योग से संपूर्ण आरोग्य प्राप्त किया जा सकता है। योग की गूढ़ दुरूह, जटिल परंपरा से रहस्यों का पर्दा हटाकर सरल आसनों के सार्थक प्रामाणिक प्रयोग द्वारा स्वस्थ भारत व स्वस्थ विश्व के संकल्प के प्रथम चरण को पूरा कर योग के विश्व विजयी अभियान को प्रोत्साहन दिया जा रहा है।

नैनो टेक्नोलॉजी : चिकित्सा विज्ञान का 'प्राण'

नैनो टेक्नोलॉजी उन सभी वस्तुओं एवं उपकरणों के लिए एक मुहावरे के समान है जो नैनो स्केल के तहत कार्य करते हैं। यदि मापन की मीट्रिक प्रणाली के दृष्टिकोण से देखा जाए तो नैनो मतलब मीटर के माप में 10 करोड़वां हिस्सा। नैनो के संदर्भ में नैनो मैटेरियल (वस्तुएं), नैनो इलेक्ट्रॉनिक्स, नैनो के उपकरण आते हैं। इसका मुख्य अर्थ होता है कि ऐसी सामग्री जो नैनो मीटर में मापी जा सकती है।

अगर आकार के दृष्टिकोण से देखा जाए तो मानव शरीर में लाल रक्त कोशिकाएं होती हैं। उनकी लंबाई 2000 नैनोमीटर है जो वास्तव में नैनो स्केल के माप के बाहर है। उसी प्रकार ऑक्सीजन है जो मानव ढांचे में वायु का एक अंग है और शरीर की समस्त रासायनिक क्रियाएं, मेटाबॉलिक की प्रक्रिया में सक्रिय रूप से भाग लेती है। प्राणायाम जैसे व्यावयाम के द्वारा ऑक्सीजन को नैनो लेवल पर शरीर की तमाम प्रतिक्रियाओं के लिए उपयोग किया जाता है। नैनो टेक्नोलॉजी अत्यधिक प्रभावशाली है एवं इसका उपयोग कृत्रिम हड्डियों के निर्माण में होता है जो स्टील जैसी मजबूत एवं प्राकृतिक हड्डियों से अत्यंत हल्की होती हैं। उसी प्रकार अगर ऑक्सीजन को एक विशेष तरीके से प्राणायाम, व्यायाम के द्वारा ग्रहण एवं उत्सर्जित किया जाए तो कई गंभीर बीमारियां जैसे हृदय रोग, गठिया रोग तथा अन्य अनेक बीमारियों को ठीक करने में सहायक सिद्ध होते हैं। साथ ही साथ यह संपूर्ण स्वास्थ्य लाभ में अत्यंत लाभकारी सिद्ध हुए हैं। संपूर्ण ब्रह्मांड का निर्माण पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल व आकाश तत्वों के संघात से हुआ और इन पांच तत्वों के मूल में भी एक ऐसा तत्व है जो सर्वत्र विद्यमान है, वह है ऑक्सीजन। जैसे—

पृथ्वी : ऑक्सीजन + नाइट्रोजन + कार्बन + हाइड्रोजन

अग्नि : ऑक्सीजन + कार्बन

वायु : ऑक्सीजन + नाइट्रोजन + कार्बनडाईऑक्साइड

जल : ऑक्सीजन + हाइड्रोजन

आकाश : ऑकसीजन सहित सभी वायवीय तत्वों की गति का आश्रय स्थल है।

हमारे शरीर की प्रत्येक कोशिका एवं अवयव के निर्माण की संरचना में भी ऑक्सीजन की अहम भूमिका है। यथा—

1. रस— नाइट्रोजन, कार्बन, ऑक्सीजन।
2. रक्त— ऑक्सीजन, कार्बन, नाइट्रोजन।
3. मांस— कार्बन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, अमीनो एसिड, NH_2 (नाइट्रोजन + आहइड्रोजन)

4. मेद– कार्बन, हाइड्रोजन, ऑक्सीजन।

5. अस्थिमज्जा, शुक्राणु– Ca, Co_3, C, H, P, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन।

टिप्पणी

हमारे हारमोंस व शरीर के विभिन्न रसायन में भी ऑक्सीजन एक तत्व है। मानवीय सृष्टि सहित समस्त जैवीय सृष्टि का जीवन का मुख्य आधार तत्व ऑक्सीजन है। वैज्ञानिकों ने स्थावर सृष्टि में नाइट्रोजन का आविष्कार करके हरित–क्रांति को जन्म दे दिया। विज्ञान के क्षेत्र में हाइड्रोजन एवं कार्बन आदि को लेकर बम से लेकर अन्य आविष्कार का दौर चल रहा है। चिकित्सा विज्ञान में आपातकालीन चिकित्सा के लिए ऑक्सीजन का उपयोग किया जाता है और शीघ्र ही वह दिन दूर नहीं जब समस्त रोगों के उपचार के लिए प्राण तत्व का ही उपयोग होगा। शरीर की उत्पत्ति के मूल तत्व शुक्र व रज में ऑक्सीजन एक प्रमुख तत्व है जिससे शुक्राणु में गतिशीलता रहती है तथा अंडे में पोषण होता है। उपनिषदों में शरीर को अन्नमय कहा गया है। अन्न अर्थात हमारा आहार। इस आहार के मूल तत्वों में ऑक्सीजन की ही मुख्य सहभागिता है। हम जो दाल, रोटी, सब्जी, दूध व फल आदि के रूप में शरीर के पोषण देने वाले तत्व लेते हैं उनमें भी एक मुख्य तत्व है ऑक्सीजन। शरीर को पोषण देने वाले आहार के मुख्य तत्व हैं कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, खनिज, लवण एवं विटामिन आदि। यद्यपि ब्रह्मांड एवं पिंड में ऑक्सीजन के अतिरिक्त अन्य तत्वों का भी समावेश है। हमारी पिंडगत संरचना में भी ऑक्सीजन के अलावा अन्य तत्वों कार्बन, नाइट्रोजन व हाइड्रोजन आदि तत्वों का भी समावेश है। परंतु पंचधात्वात्मक देह में जीवंतता, चैतन्यता केवल ऑक्सीजन से आती है। शरीर की सबसे छोटी इकाई प्रत्येक कोशिका का न्यूक्लिअस है, जो कोशिका का दिमाग होता है तथा माइटोकेन्ड्रिया, जहां ऊर्जा की उत्पत्ति होती है, अर्थात न्यूक्लिअस और माइट्रोकेन्ड्रिया इन दोनों में गति तथा गति की शक्ति का कारण ऑक्सीजन ही है। ऑक्सीजन के द्वारा ही जीवन यज्ञ जिसे विज्ञान मैटॉबालिज्म कहता है, चल रहा है। शरीर की प्रत्येक कोशिका में ऊर्जा की उत्पत्ति में ऑक्सीजन और शर्करा की ही मुख्य सहभागिता है। कोशिका के भीतर माइटोकोन्ड्रिया में ऊर्जा निर्माण के ठीक से निष्पन्न होने पर शरीर की आंतरिक व बाह्य क्रियाएं सुचारू रूप से निष्पन्न होती हैं। नई कोशिकाओं के निर्माण, क्षय एवं ऊर्जा संचय का मुख्य तत्व ऑक्सीजन ही है।

शरीर में विध्वंसात्मक कार्यवाही को रोककर सृजनात्मक व विधेयात्मक शक्तियों को अधिक सबल बनाने में भी ऑक्सीजन की ही मुख्य भूमिका है। शारीरिक श्रम के अभाव, तनाव, विरुद्ध आहार, अनियमित निदचर्या व असंयमित जीवन के कारण आज व्यक्ति के भीतर एक भयंकर युद्ध चल रहा है उसी का परिणाम है शरीर के दोष–वात, पित्त व कफ का असंतुलन जिसको आधुनिक चिकित्सा विज्ञान 'ऐनाबॉलिज्म मेटाबॉलिज्म' के ठीक से निष्पन्न न होने पर मेटाबॉलिक सिन्ड्रोम का नाम दे रहा है। वात ही ऐनाबॉलिज्म है, पित्त ही मेटाबॉलिज्म है, कफ दोनों का परिणाम कैटाबॉलिज्म है। इन दोषों की विषमता से ही अवसाद और अवसाद के परिणामस्वरूप उच्च रक्तचाप, मधुमेह, मोटापा, हृदय रोग, अपचन, अनिद्रा से लेकर कैंसर जैसे असाध्य रोग उत्पन्न हो रहे हैं।

दोषों की विषमता, अग्नि की विषमता, धातुओं का असंतुलन, मलों का संचय, चित्त एवं आत्मा की अप्रसन्नता, व्यक्ति की अस्वस्थता का कारण बनी है। इसी से अंतःस्राव (हार्मोन्स) व रासायनिक (कैमिकल) संतुलन बिगड़ा है। इसको ठीक करने के लिए हमें

टिप्पणी

विविध दवाओं का आश्रय लेना पड़ता है। शोधों के निष्कर्षों से ज्ञात होता है कि शरीर की प्रत्येक कोशिका जो स्वयं में हमारा एक प्रतिरूप है अर्थात शरीर की प्रत्येक कोशिका में हमारा एक हमशक्ल पैदा करने की क्षमता है, इस शरीर की सबसे छोटी इकाई से लेकर शरीर के प्रत्येक अवयव व उस अवयव के द्वारा निष्पन्न होने वाले कार्यों को, शरीर की पूरी मात्रा में ऑक्सीजन देकर, शरीर के आंतरिक अवयवों को व्यायाम व एक विधेयात्मक चिंतन से संपूर्ण आरोग्य पा सकते हैं। ऑक्सीजन युक्त रक्त (Oxygeneted Blood), आंतरिक सूक्ष्म व्यायाम (Internal Micro Exercise) व सकारात्मक जीवन शैली (Positive Life Style) यही प्राणायाम है। भस्त्रिका व अनुलोम–विलोम आदि प्राणायाम करके हम शरीर के रक्तकणों को पूर्ण ऑक्सीजन देते हैं एवं कपालभाति आदि से शरीर के आंतरिक अवयवों को वैज्ञानिक रीति से गति प्रदान कर शक्ति का संचार करते हैं तथा भ्रामरी व उद्‌गीथ आदि के द्वारा मानसिक स्तर पर श्रद्धा, समर्पण, आस्था, विश्वास व सकारात्मक चिंतन को जागृत कर हम एक स्वस्थ चिंता मुक्त जीवन का प्रारंभ करते हैं।

इस संपूर्ण प्रकल्प में ऑक्सीजन आधार बनता है। वैसे तो जीवन के प्रारंभ के साथ ही पैदा होते ही रोने के बहाने एक लंबी श्वास ली जाती है, उसी से हमारी मस्तिष्कीय शक्ति के जागरण से पूरे शरीर की आंतरिक क्रियाओं की शुरुआत होती है। प्राणायाम के द्वारा प्रविष्टि ऑक्सीजन तथा प्रदत्त वैज्ञानिक संपूर्ण आंतरिक व्यायाम व विश्रांति हमारे शरीर की सेल्फ हीलिंग (Self Healing) करते हैं। योग आत्म औषधि (Self Medicine) तथा आत्म चिकित्सा (Self treatment) है। यह सैल्फ ऑपरेशन की एक अनूठी विधा है, इसके द्वारा अधिकतम गांठ व मेरुदंड के ऑपरेशंस से हमें मुक्ति मिल जाती है। हृदय की शल्य क्रिया से हम बच जाते हैं। प्राणायाम से जब शरीर के एनाबॉलिज्म का स्तर उन्नत एवं केटाबॉलिज्म का स्तर निम्न होता है तो उम्र प्रक्रिया (Aging Process) भी कम हो जाती है अर्थात हम असामयिक बुढ़ापे से बचकर दीर्घायु प्राप्त करते हैं। प्राणायाम के प्रयोगों के वैज्ञानिक परिणामों के प्रमाणों के साथ हम यह कह सकते हैं कि प्राण अर्थात ऑक्सीजन नामक तत्व जब हमारे शरीर में निश्चित विधियों द्वारा एक सुनिश्चित समय में सुनिश्चित मात्रा व सही वैचारिक दिशा के साथ प्रविष्ठ कराया जाता है तो शरीर में स्वतः ही सकारात्मक परिवर्तन घटित होने लगते हैं और प्राण एक संपूर्ण औषध की भांति कार्य करने लगता है। यही योग विधा का मूल मंत्र है। यही आरोग्य का मूल मंत्र है और यही एक स्वस्थ, समृद्ध व संवेदनशील व्यक्ति व राष्ट्र निर्माण का आधार है। मूलतः वेदों में भी प्राण विधा का प्रमाण इसी प्रकार मिलता है–

> आवातहिभेषज विवातयाहि यद् रूपः।
> त्वहिं विश्वभेषजो देवनां दूत ईयसे। (ऋग्वेद)

प्राण भेषज है अर्थात ऑक्सीजन एक मेडिसन है। यह विविध रूप में भीतर प्रवाहमान होता है और यह औषधि ही नहीं यह विश्वभेषज पूर्णचिकित्सा (Complete Medicine) है। यह प्राण सृष्टि की समस्त दिव्यताओं का संवाहक है। प्राण एक आध यात्मिक चिकित्सा (Holistic treatment) है, प्राण का आधार संपूर्ण आरोग्य है। भौतिक अर्थात दैहिक परिवर्तनों के साथ–साथ प्राण के द्वारा शरीर में जो भावनात्मक परिवर्तन आते हैं उनका बहुत ही प्रामाणिक व वैज्ञानिक प्रमाण भी हमारी शास्त्र परंपरा में है–

> प्राणः पिता प्राणः माता प्राणः भ्राता।
> प्राणः सखा प्राणः आचार्यः प्राणः ब्रह्मांडः।

दैहिक परिवर्तनों के साथ–साथ योग अर्थात प्राण के विविध आयामों के द्वारा व्यक्ति के मन में जो भावनात्मक परिवर्तन आते हैं वे भी उतने ही प्रामाणिक एवं वैज्ञानिक होते हैं जितने कि भौतिक परिवर्तन।

टिप्पणी

शारीरिक रोगों के साथ डिप्रेशन (Depression) व स्किड्जोफ्रेनिया (Schizophrenia) जैसे भयंकर मनोरोग से आक्रांत व्यक्ति के लिए योग परंपरा के ऋषि कहते हैं 'ऐ मानव, तू घबरा नहीं, हिम्मत न हार, विचलित मत हो, अकेलेपन व असुरक्षा के भाव में मत जी, निराश हताश होने की आवश्यकता नहीं, तू प्राण की शरण में आ, प्राणायाम कर। यह प्राण पिता है, माता है। यह भ्राता व स्वसा है। प्राण आचार्य व ब्रह्मांड है।' यहां प्राणों का उपमालंकार में वर्णन है– पाति रक्षति इति पिता। मान्यं हितं करोति इति माता अर्थात जो रक्षा करे वह पिता तथा जो ममता, प्रेम, करुणा, तप, त्याग, धैर्य, साहस, शौर्य व वात्सल्य से हित करे वह माता होती है। भ्राता जो भरण भोषण करे, आचार्य जो आचरण, वाणी, व्यवहार, स्वभाव व सोच को पवित्र कर दे तथा जो ब्रह्म तक ले जाए, वह ब्राह्मण कहलाता है। प्राणायाम के प्रभाव से हमारे हृदय में मां जैसी ममता, प्रेम, करुणा व संवेदनशीलता आती है। प्राणायाम का सीधा प्रभाव हमारे विचारों पर पड़ता है। इससे विचार शुद्ध हो जाते हैं अतः प्राणायाम करने वाला व्यक्ति हिंसा, अपराध, चोरी, बेईमानी, दुराचार व व्यभिचार आदि से मुक्त होकर संयम व सदाचार की राह पर आगे बढ़ता है तथा वह एक संवेदनशील चरित्रवान व्यक्ति बन जाता है जो आज के युग की बहुत बड़ी आवश्यकता है। यह भौतिक विकास व आध्यात्मिक उन्नति की आधारशिला है। इक्कसवीं सदी विज्ञान व आध्यात्म के मिलन की सदी है। योग के परपंरागत वैदिक ज्ञान और इन वैदिक प्रमाणों के तथा वैज्ञानिक अनुसंधान के आधार पर कहा जा सकता है कि वर्तमान विश्व में जब विज्ञान की दुनिया प्रत्येक क्षेत्र में नैनो टेक्नोलॉजी की ओर जा रही है, ऐसे समय में चिकित्सा विज्ञान की नैनो टेक्नोलॉजी 'प्राण' के अतिरिक्त और क्या हो सकती है।

आधुनिक विज्ञान के मानकों पर योग

प्राचीन काल से ही योग भारत का जीवन दर्शन रहा है। योग साधना के बल पर ही संयमी साधकों ने आरोग्य एवं दीर्घायुष्य प्राप्त किया है। वर्तमान काल में विज्ञान की प्रगति के साथ–साथ जीवन क्लिष्ट होता गया और नयी–नयी घातक और भयावह बीमारियों ने मानव को अपने शिकंजे में कस लिया है। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान निरंतर इन बीमारियों के कारणों को उद्घाटित तो कर रहा है परंतु इनका इलाज अभी भी नहीं खोजा जा सका है। आज कैंसर, एड्स, मधुमेह, हेपेटाइटिस, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, श्वास आदि रोगों से मानव समाज निरंतर ग्रस्त होता जा रहा है। अनुसंधान पर अरबों–खरबों रुपये खर्च करने के बावजूद अभी भी इन रोगों का समूल नाश सपनाग्रस्त होता जा रहा है। स्वास्थ्यवर्धक चिकित्सा के मामलों में आधुनिक चिकित्सा विज्ञान शून्य के बराबर ही है। वस्तुतः आज एक ऐसी समन्वित चिकित्सा पद्धति की आवश्यकता है जिससे व्यक्ति के स्वास्थ्य की रक्षा सर्वप्रथम की जाये, जिससे रोगी बनने की स्थिति को ही दूर कर दिया जाए और यदि व्यक्ति रोगी हो भी जाए तो न्यूनतम शारीरिक और आर्थिक हानि के द्वारा सफल चिकित्सा की व्यवस्था हो सके। निश्चित रूप से योग चिकित्सा विज्ञान को अन्य चिकित्सा विधाओं के साथ जोड़कर ऐसी समन्वित चिकित्सा पद्धति का निर्माण किया जा सकता है। इसके लिए सभी

चिकित्सा विधाओं से जुड़े लोगों को अपने आग्रह त्यागकर मानवमात्र के हित में आगे आना होगा। योग निश्चित रूप से शारीरिक व्यायाम का साधन मात्र ही नहीं वरन एक संपूर्ण चिकित्सा शास्त्र है। परम पूज्य आचार्यों के आह्वान व निर्देशन में योग के चिकित्सीय प्रभावों को सर्वत्र महसूस किया जा रहा है। किसी भी विधा की प्रामाणिकता के लिए आज उसे विज्ञान के मानकों पर कसकर तथा भाषा में परिभाषित करना अति अनिवार्य हो गया है। योग का शरीर एवं शरीर के विभिन्न संस्थानों पर पड़ने वाले प्रभावों की विज्ञान सम्मत विवेचना अति आवश्यक है। योग भारतीय ऋषियों की देन है जो स्वतंत्र रूप से एवं अन्य चिकित्सा विधाओं से जुड़कर चिकित्सा जगत में संपूर्ण स्वास्थ्य की अवधारणा को पूर्ण रूप से सिद्ध कर सकता है। योग के विषय में जनसाधारण में जागरूकता का प्रसार करने के लिए इन गतिविधियों का आयोजन किया गया है–

- **विश्व में प्रथम बार चुनौतीपूर्ण योग विज्ञान शिविर**– स्वस्थ भारत, स्वस्थ विश्व के सपने को साकार करने में वैज्ञानिक योग शिविरों का सफल आयोजन अति कारगर सिद्ध हुआ है। इन वैज्ञानिक योग शिविरों में विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त रोगियों ने प्रतिभागिता की। इनमें मुख्यतः मोटापा, मधुमेह, ब्लड प्रेशर, कैंसर, हृदय रोग, गुर्दा रोग, आर्थराइटिस, स्पॉन्डिलाइटिस आदि रोगों के मरीज थे। इन शिविरों के परिणाम अत्यंत उत्साहवर्द्धक रहे।
- **योग शिविरों में जांच के मानक (Parameter) का परिचय**– योग में प्रयासों की वैज्ञानिकता पर विशेष बल दिया जाता है। हर चीज विज्ञान के मानकों के अनुरूप होती है जिससे लोगों में किसी प्रकार का कोई भ्रम न हो। योग से होने वाले विभिन्न लाभों को वैज्ञानिक विधियों से जांच–परख कर उसके परिणामों को जन–साधारण के सामने रखा जाता है जिससे योग की वैज्ञानिकता व उसके लाभों के यथार्थ को सभी जान सकें। अपने इसी उद्देश्य के क्रम में योग शिविरों में आधुनिक विज्ञान के मानकों के अनुरूप जांच करवाने की भी व्यवस्था होती है।

विभिन्न रोगों पर योग का प्रभाव

1. श्वसन तंत्रों पर प्रभाव : योग की सहायता से व्यक्ति बिना किसी शारीरिक श्रम के वेंटीलेशन आयतन को सामान्य से दस गुना तक बढ़ा सकते हैं। प्राणायाम की प्रक्रिया में कार्बन डाईऑक्साइड की तुलना में ऑक्सीजन का अनुपात बढ़ाया जाता है जिससे रक्त शोधन प्रक्रिया में वृद्धि होती है और शरीर की प्रत्येक कोशिका को आवश्यक ऑक्सीजन की मात्रा मिलती है, उनका जारण प्रक्रिया के पश्चात बनी ऊर्जा (ए.टी.पी.) द्वारा उचित पोषण होता है। इससे कोशिकाओं और अंगों में होने वाले नेक्रोसिस (Necrosis) या क्षरण (Degeneration) की प्रक्रिया को रोका जा सकता है। हम प्राणायाम को सर्वश्रेष्ठ एंटी ऑक्सीडेंट की संज्ञा दे सकते हैं।

2. हृदय–रक्त वाही संस्थान एवं संबंधित रोगों पर प्रभाव : हृदय हमारे शरीर का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। हृदय से प्रत्येक स्पंदन में 70 मिली लीटर के लगभग रक्त आगे फेंका जाता है। यही ऑक्सीजिनेटेट रक्त शरीर के सभी अंगों की ऑक्सीजन की पूर्ति करता है। हृदय की नाड़ियां कार्डियक प्लेक्सेस (Cardiac Plexus) से जो सिमपथैटिक (Sympathetic) और वेगस की दोनों शाखाओं से बना होता है, आती हैं। इसमें से सिम्पथैटिक नाड़ियां स्टीलेट गैंगलिया में समाप्त हो वहां से फैलती हैं। हृदय

टिप्पणी

या सायनो–एट्रियल या एट्रीयो वेन्ट्रीकुलर नोडों के लिए उत्तेजक होती हैं तथा वेगस की नाड़ियां जो ग्राहक कोष्ठों में गैगलियान कोशिकाओं में समाप्त होकर वहां से फैलती है, ये नाड़ियां हृदय के लिए शामक होती हैं। ये हृदय तथा मांस में, हिसक बंडल तथा हृदय धमनियों में व्याप्त होती हैं।

प्राणायाम के द्वारा सिम्पथेटिक एवं वेगस आदि क्रियाओं को नियमित कर हृदय के कार्य को सुचारू रूप से संचालित किया जा सकता है।

हृदय की कार्यक्षमता में कमी से हृदय विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। इसमें विभिन्न कारणों से अनैच्छिक नाड़ी मंडल की अत्यधिक उत्तेजना से हृदय, द्रव हृदय स्पंदन तीव्रता (Trachycardia) या उत्तेजना की कमी से स्पंदन न्यूनता (Bradycardia)। विभिन्न कारणों से जब असामायिक क्षेपक संकोच अति निर्बल हो, उससे धमनियों में रक्त न जाये तो नाड़ी परीक्षा में एक नाड़ी लुप्त होती दिखती है। इस प्रकार के स्पन्दनों को इक्टोपिक बीट्स कहते हैं। इसी प्रकार हृदय की कार्याल्पता से हृदय धमनी अवरोध (Coronary Artery Disease), हृदयाघात, हृदय कपाट विकार, हृदय शूल, रक्तभार वृद्धि (High Blood Pressure) धमनी काठिन्य (Atherosclerosis) आदि रोग उत्पन्न हो जाते हैं। विश्व में तेजी से बढ़ रहे घातक हृदय, रोग, हृदय धमनी अवरोध, कोरोनरी थ्राम्बोसिस की वजह से हार्ट अटैक के रोगी प्रतिदिन बढ़ रहे हैं।

आधुनिक मतानुसार हृदय में कोलेस्ट्रॉल की मात्रा अत्यधिक बढ़ने से यह रोग होता है। यह द्रव्य आहार से उत्पन्न होकर रक्त में आता है और वहां से यकृत में जाकर पित्त (Bile) एसिड्सकोलिक, ग्लाइकोकोलिक, टारोकोलिक आदि में परिवर्तित हो जाता है। ये एसिड्स फिर आंत में आकर भोजनग्रस्त वसा के पाचन में काम आते हैं और फिर विलीन होकर इन्टरा हिपेटिक परिसंचरण के द्वारा यकृत में पहुंच हाते हैं परंतु खान–पान एवं जीवन–शैली की अनियमितता के कारण कोलेस्ट्रॉल की मात्रा रक्त में अधिक ऊंची हो जाती है, ऐसी अवस्था देर तक रहे तो हृदय आदि की सूक्ष्म रक्त वाहिनियों की दीवार में कोलेस्ट्रॉल बैठने लगता है जिससे उनमें स्रोतावरोध की प्रवृत्ति बढ़ जाती है। यह प्रक्रिया हृदयपोषक धमनियों में होने लगे तो हृदयाघात होने का भय रहता है। यह रोग इन्जाइमस की कमी और विटामिन सी की न्यूनता से भी उत्पन्न होता है। नियमित प्राणायाम अभ्यास और लौकी आदि के रस के सेवन से इस रोग का इलाज तथा रोग की प्रगति को रोका जा सकता है। प्राणायाम के द्वारा रक्त को ऑक्सीजन की अच्छी आपूर्ति होती है जिससे एड्रीनलीन, ग्लूकोज, वसा, फैटी एसिड्स का अत्यधिक क्षरण होकर ऊर्जा निर्माण में व्यय हो जाता है जिससे रक्त के जमने, थ्राम्बोसिस हृदय धमनी अवरोध (कोरोनरी आर्टरी डिसीज) आदि रोगों में अत्यधिक लाभ मिलता है।

हृदय शरीर के रक्तवाही संस्थान का केंद्र है जो अंदर से खाली मांसपेशियों का बना लगभग 342 ग्राम वजन का अंग है और एक दिन में एक लाख से अधिक बार धड़कता है और रक्तवाही धमिनयों में 60 हजार मील दूरी के बराबर दौड़ लगाने के लिए रक्त को पम्प करता है। हृदय के किसी भाग या क्रिया में विकृति आ जाये तो हृदय एवं समस्त शरीर का कार्य विकृत हो जाता है। इस विकृति को हृदय रोग कहते हैं। हृदय में दो प्रकार के रोग मिलते हैं– रचनात्मक विकार और क्रियात्मक विकार।

इनमें से क्रियात्मक विकार का शीघ्र शमन हो जाता है जबकि रचनात्मक विकार का शमन देरी से होता है, कदाचित नहीं भी होता है। हृदय रोगों को मुख्यतः निम्नलिखित रूपों में देखा जा सकता है–

टिप्पणी

– जन्मजात हृदय रोग

– हृदय कपाट विकार

– हृदय धमनी विकास।

कोरोनरी धमनी या उसकी किसी शाखा में रुकावट या वसा जमने से उस भाग की पेशियों को पोषण नहीं मिल पाता है यह अवस्था हृदय की कार्य क्षमता में कमी, सांस फूलना, तीव्र खिंचाव युक्त दर्द आदि उत्पन्न करती है। इसे हृदय धमनी विकार कहते हैं। आजकल अधिक संतृप्त वसा युक्त भोजन तथा अनियमित जीवन पद्धति के कारण यह रोग सर्वाधिक देखने को मिलता है।

इसको प्रामाणिकतापूर्वक सिद्ध करने के लिए आवासीय योग शिविरों में आये रोगियों का शिविर से पूर्व एवं शिविर के पश्चात ई.सी.जी. एवं संपूर्ण लिपिड प्रोफाइल कराया गया। इसके पश्चात यह स्वतः सिद्ध हो गया कि योग क्रिया निःसंदेह हृदय रोगों में अत्यंत लाभकारी है।

3. रक्तचाप पर प्रभाव : हृदय द्वारा शरीर के विभिन्न भागों की ओर भेजे गए रक्त के शरीर की धमिनयों की दीवार पर पड़ने वाले दबाव को रक्त दबाव या रक्त भार कहते हैं। रक्त का आयतन तथा गाढ़ापन एवं धमनियों की दीवारों की मांसपेशियों द्वारा लगाया गया प्रतिरोध रक्त भार को निरूपित करता है।

सामान्यतः रक्त भार पर एक स्वचालित प्रक्रिया का नियंत्रण रहता है तथा शरीर के विभिन्न अवयव जैसे हाइपोथैलमस, थाइरॉइड, पैराथाइरॉइड, सिम्पेथेटिक, पैरासिम्पेथेटिक तंत्रिका तंत्र, एड्रीनल स्त्रावित एड्रीनलीन एवं नारएड्रीनलीन हार्मोन का स्वप्रेरक नियंत्रण रहता है। हृदय का बायां भाग जिस बल से एवं जितने अधिक रक्त को धमनियों की ओर फेंकता है, उसे संकोचकालिक रक्त भार कहते हैं तथा हृदय के विश्राम काल के समय प्रधान लचीली बड़ी–बड़ी धमनियां जिस बल के साथ वापस सामान्य होती हैं, उसके कारण भी धमनियों की दीवार पर एक दबाव उत्पन्न होता है, उसे प्रसारीय रक्त भार कहते हैं। 15–20 प्रतिशत हृदय रोगियों में यह रोग पाया जाता है तथा आम लोगों में से 10 प्रतिशत लोग इस रोग से ग्रसित हैं तथा 50 वर्ष से ऊपर के लोगों में लगभग 50 प्रतिशत लोग इस रोग से ग्रस्त हैं। आज की तनावपूर्ण एवं प्रतिस्पर्धा पूर्ण दुनिया में यह रोग बहुत तीव्रता से अपनी जड़ें जमा रहा है।

प्राणायाम की क्रियाओं के अभ्यास और शवासन द्वारा उच्च रक्त चाप को पूर्ण रूप से नियंत्रित किया जा सकता है। शिविर में आने वाले रोगियों का शिविर के पूर्व व पश्चात रक्तचाप का निरीक्षण किया गया जिसमें मात्र 7 दिन के अभ्यास में ही आश्चर्यजनक परिणाम प्राप्त हुए। उच्च रक्तचाप के रोगियों के चिकित्सीय परीक्षण में अनिद्रा, शिरःमूल, अवसाद, भ्रम, उत्क्लेश आदि लक्षणों में भी सकारात्मक प्रभाव देखने को मिला।

4. अंतःस्रावी तंत्र एवं उससे संबंधित रोगों पर प्रभाव : प्राणायाम अभ्यास करने वाले लाखों साधकों पर किए गए अध्ययनों के परिणामस्वरूप हम इस तथ्य पर पहुंचे

टिप्पणी

हैं कि इस क्रिया के अभ्यास से अंतःस्रावी ग्रंथियों की क्रियाशीलता में वृद्धि होती है और अंतःस्रावी ग्रंथियों की सम स्थिति पाकर अनेक प्रकार के रोग ठीक हो जाते हैं। हारमोन या प्रेरक स्राव किसी ग्रंथि या किसी अंग से उत्पन्न होकर सीधे रक्त में प्रवेश कर जाते हैं और शरीर में चयापचय को प्रेरणा प्रदान करते हैं या किसी अंग विशेष के स्राव को उत्तेजित करते हैं। जैसे– एंटीरियर पिटयूटरी (Anterior Pitutary) का ग्रोथ हारमोन वृद्धि को, मेटाबॉलिज्म हारमोन मेटाबॉलिज्म को उत्तेजित करता है। पेंक्रियाज का इंसूलिन शरीर के अंगों की शर्करा को ग्लाइकोजन में परिवर्तित करने के लिए उत्तेजना प्रदान करता है। सेक्रेटिन डयूडोनम (Duodenum) की श्लेष्म कला से उत्पन्न होता है और पेंक्रियाज के पाचस सों को उत्तेजित करता है।

इसी प्रकार 12–14 वर्ष की आयु में सेक्स हार्मोन्स जैसे पुरुषों में एड्रोजन और स्त्रियों में इस्ट्रोजन उत्पन्न होने लगता है। शारीरिक और मानसिक परिवर्तनों के लिए यही हारमोन उत्तरदायी होते हैं। स्त्री–पुरुष की शारीरिक, मानसिक अभिवृद्धि, उनकी छाती, भुजाएं, पेल्विस, आवाज, शरीर पर बालों की स्थिति, उनका एक–दूसरे के प्रति व्यवहार, सब इन्हीं हारमोंस पर ही निर्णीत होता है। थायरॉइड ग्रंथि से ट्राई आयाडोथायरोनीन (T_3) और थायगॉक्सिन (T_4) नामक हारमोंस का स्राव होता है। शरीर की समुचित वृद्धि के लिए यह ग्रंथि आवश्यक है। शरीर के अस्थि पंजर की बनावट व वृद्धि इसी पर निर्भर करती है। यह ग्रंथी मेटाबॉलिज्म की संचालक है। शरीर की मानसिक व सेक्स संबंधी वृद्धि भी इसी पर निर्भर करती है।

उज्जयी प्राणायाम के साथ दीर्घ एवं लघु कुंभक के अभ्यास से एड्रीनो मडूलरी स्रावों की स्थिति सामान्य होती है। शरीर के सभी अवयवों, अस्थि, मांस, मस्तिष्क आदि में जो आक्सीडेशन का धात्वीय पचन होता है उसमें थायराइड के हारमोन सहायक होते हैं। अवयवों में ग्लूकोज का ज्वलन, यकृत में ग्लाइकोजन से ग्लूकोज का निर्माण, रक्त में कोलेस्ट्रॉल आदि वसा का पचन, शरीर में प्रोटीन्स का पचन तथा उनके पचन से नाइट्रोजन, फास्फोरस आदि की निकासी तथा हृदय आदि की चेष्टा इसी पर निर्भर करती है। इस ग्रंथ के स्रावों में अनियमितता अर्थात हाइपरथायरायडिज्म (Hyperthyroidism) से शरीर कृश, धड़कन तेज, शरीर के धातुओं का क्षय प्रारंभ हो जाता है तथा अल्पस्राव (Hypathyroidism) से शरीर स्थूल, कोलेस्ट्रॉल की वृद्धि एवं शरीर की चयापचय क्रिया क्षीण हो जाती है। आवासीय शिविरों में आने वाले शिविरार्थियों के T_3, T_4 व TSH level का शिविर से पूर्व एवं शिविर के पश्चात परीक्षण कराया गया जिसमें सभी अनियमित स्तर के रोगियों को शत–प्रतिशत लाभ देखने को मिला।

5. मधुमेह रोगियों पर प्रभाव : आज मधुमेह एक घातक बीमारी का रूप लेता जा रहा है। आयुर्वेद में परिगणित 20 प्रकार के प्रमेहों में मधुमेह सबसे भयंकर व्याधि है।

आस्यासुखं स्वप्नसुखं दघीनि
ग्राम्योदकानूपरसाः पयांसि।
नवान्नपान गुड़वैकृतं च
प्रमेह हेतुः कपफकृच्च सर्वम्।।

अर्थात आनन्दपूर्वक बैठे रहने, कोमल शैया पर सोने, अधिक मात्रा में दूध, दही, छाछ आदि, औदक, मत्स्यादि एवं सजल तथा भूमिजात वराह, कछुआ जीवों का मांस खाने, नया चावल, मिश्री आदि मधुर और कफवर्धक आहार–विहार का निरंतर सेवन करने से

मधुमेह रोग हो जाता है। समय पर उपचार न करने पर सभी प्रकार के प्रमेह मधुमेह में परिणत हो जाते हैं। मधुमेह रोग में रक्त के अंदर ग्लूकोज की मात्रा में वृद्धि हो जाती है। इसमें इंसुलिन की उत्पत्ति कम हो जाती है एवं कार्बोहाइड्रेट का परिचालन भली भांति नहीं हो पाता है।

टिप्पणी

आधुनिक मतानुसार मधुमेह चार प्रकार का होता है–

(क) इंसुलिन आश्रित मधुमेह (Insulin Dependent Dibetes)

(ख) इंसुलिन अनाश्रित मधुमेह (Non-Insulin Dependent Dibetes)

(ग) गर्भावस्था तथा जीर्णव्याधियों से संबंधित मुधेमह (Pregnancy & Chronic disease related diabetes)

(घ) युवाओं में पूर्ण वृद्धि प्रारंभिक मधुमेह (Malnutrition ouset diabetes of Young)

भस्त्रिका, कपालभाति, मण्डूकासन, योग मुद्रासन आदि क्रियाओं से पेंक्रियाज पर पड़ने वाले दबाव व इसके स्रावों को उत्तेजित करने वाले केंद्रों के उत्तेजित होने से इंसूलिन की उपयुक्त मात्रा का स्राव प्रारंभ हो जाता है। फलस्वरूप रक्त शर्करा स्तर में समानता आनी प्रारंभ हो जाती है।

जिन रोगियों की पेंक्रियाज की कोशिकाओं का क्षरण प्रारंभ हो चुका होता है उनको उचित मात्रा में ऑक्सीजन की प्राप्ति होने से वे धीरे–धीरे क्रियाशील होने लगती हैं और इंसूलिन का स्राव होने लगता है। अतः इंसूलिन आश्रित रोगियों को भी प्राणायाम तथा योग की क्रियाओं के अभ्यास से सकारात्मक लाभ प्राप्त होता है। इस तथ्य को वैज्ञानिकता पूर्ण सिद्ध करने के लिए शिविर में आये रोगियों का शिविर से पूर्व एवं शिविर के पश्चात शर्करा स्तर का परीक्षण किया गया।

मधुमेह में पाये जाने वाले लक्षणों बहुमूत्रता (Polyurea), प्यास वृद्धि (Polydypsla), अधिक भूख (Polyphajia), दुर्बलता (Weakness), पेशी शूल आदि लक्षणों में सकारात्मक लाभ देखने को मिले। इस प्रकार प्राणायाम व योग क्रियाएं मधुमेह की चिक्तिसा में पूर्ण रूप से लाभदायक हैं।

6. मेदोवृद्धि पर प्रभाव : मेद अर्थात फैट के अधिक बढ़ने पर यह रोग हो जाता है। आमतौर पर इसे मोटापा (Obesity) के नाम से जानते हैं। मेद हमारे शरीर की चौथी धातु है जब अन्य धातुओं की अपेक्षा इसका निर्माण अधिक होने लगता है तो मोटापे का रोग पैदा हो जाता है। समृद्ध देशों एवं समृद्ध परिवारों में यह रोग अधिक होता है। अंतःस्रावी ग्रंथियों की अनियमितता भी कभी–कभी इसका कारण होती है। चरक के अनुसार यह आनुवंशिक भी हो सकता है।

सामान्य तौर पर मेदो वृद्धि हो जाने पर उदर, नितंब, कपोल, जंघा आदि बड़े–बड़े हो जाते हैं तथा चलने पर हिलते हैं। इसके अतिरिक्त मेदस्वी व्यक्ति को बदबूदार पसीना भी आता है तथा सदैव ही उसका मन कुछ न कुछ खाने को करता रहता है। चलने–फिरने से उसका श्वास फूलता है। मोटपे से पीड़ित रोगियों के शारीरिक भारत के आकलन से ज्ञात हुआ है कि अधिकतर रोगियों ने 7 दिनों में 5–10 किलो वजन कम किया।

7. वृक्क रोगों पर प्रभाव : वृक्क (किडनी) हमारे शरीर का सर्वाधिक सक्रिय अंग है। इसका आकार सेम के बीज की तरह तथा प्रत्येक का भार 5 ग्राम होता है। वृक्क हमारे शरीर में पानी की मात्रा को संतुलित बनाये रखते हैं। ये हमारे शरीर में उत्पन्न

विषैले पदार्थों को शरीर से बाहर निकालते हैं। गुर्दे उच्च रक्तचाप को नियंत्रित करने में सहायक होते हैं। वृक्क के रोगग्रस्त होने पर वे अपना कार्य सुचारू रूप से नहीं कर पाते और हमारा शरीर विकारयुक्त हो जाता है।

टिप्पणी

वृक्क निष्क्रियता दो प्रकार की होती है–

i. **तीव्र वृक्क निष्क्रियता** (Acute Renal Failure)– संक्रमण, मलेरिया, गुर्दे पर विपरीत प्रभाव डालने वाली दवाइयों के सेवन, शरीर में भारी मात्रा में पानी की कमी से अचानक यह रोग हो जाता है।

ii. **जीर्ण वृक्क निष्क्रियता** (Chronic Renal Failure)– इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं–

* मधुमेह 34 प्रतिशत
* मधुमेह 30 प्रतिशत
* ग्लोम्यूलोनेफराइटिस (Glauemulonephritis)

इस रोग में गुर्दे की कोशिकाएं जिन्हें Nephron कहा जाता है धीरे–धीरे नष्ट होने लगती हैं। योग अभ्यास के माध्यम से गुर्दों की इस प्रवृत्ति पर नियंत्रण कर उनको सफलतापूर्वक क्रियाशील बनाया जा सकता है।

8. अस्थि खनिज घनत्व पर प्रभाव : मानव शरीर में अस्थि का विशेष महत्व है। अस्थि से ही शरीर के ढांचे का निर्माण होता है। अस्थि की रचना में विकृति आने पर शरीर विभिन्न प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाता है। इन रोगों में अस्थि सुषिरता (ऑस्टियोपोरोसिस), ऑस्टियोपीनिया, स्कॉलियोसिस और ऑस्टोमलेशिया आदि मुख्य रूप से पाये जाते हैं, अस्थि रचना विकृति के इन रोगों का बचाव ही इनका सरल उपचार है। किंतु बचाव न कर पाने की स्थिति में भी समय से निदान होने पर एवं सही योग प्राणायाम अभ्यास करके अस्थि क्षरण से या अस्थि भग्न से बचा जा सकता है। कुछ रोगों में अस्थि घनत्व में वृद्धि तथा कुछ में ह्रास हो जाता है। दोनों ही अवस्थाओं में अस्थियां कमजोर हो जाती हैं। अस्थि घनत्व में वृद्धि से प्रायः निम्न रोग होते हैं–

- **ऑस्टियोपोरोसिस (**Osteoporosis)– यह एक आनुवंशिक अवस्था है जिसमें अस्थियों में कैल्सिफिकेशन बढ़ जाता है तथा उनके भग्न होने की अधिक संभावना रहती है।
- **ऑस्टियोपोइकिलोसिस (**Ostepoikilosis)– यह भी यह आनुवंशिक दशा है जिसमें स्थान–स्थान पर छोटे–छोटे कैलसिफिकेशन के धब्बे बन जाते हैं।
- **द्वितीयक संचय** (Secondary Accumulation)– इसमें किसी प्राथमिक कारण से कैल्शियम का संचय हो जाता है।
- **माइलोस्कलेरोसिस** (Myloseclerosis)– इसमें मेरुदंड कठोर हो जाता है।
- **रीनल ऑस्टियोडिस्ट्राफी** (Renal Osteodystrophy)– इसके वृक्क में खराबी आने से हड्डियां कमजोर हो जाती हैं।
- **फ्लूरोसिस** (Flurosis)– अधिक फ्लूराइड युक्त पानी को काफी समय से पीने से अस्थि घनत्व बढ़ जाता है।

- **पेजेट्स रोग** (Pajet's Disease)– यह वृद्धावस्था में होने वाला रोग है जिसमें अस्थियों में शोध होने के कारण वे मोटी और दुर्बल हो जाती हैं। बड़ी अस्थियां कमान की भांति मुड़ जाती हैं।

टिप्पणी

अस्थि घनत्व में ह्रास होने से प्रायः निम्न रोग हो जाते हैं–

- ऑस्टोमलेशिया (Osteomalacia)
- भोजन में जीवन आवश्यक तत्व की न्यूनता
- स्टेटोरिया (Stetorehoea) इसमें शिबेशियस ग्रंथियों के स्राव में वृद्धि पायी जाती है।
- जीर्ण वृक्क निष्क्रियता
- यकृत एवं पित्ताशय जन्य रोग
- भोजन में कैल्शियम की न्यूनता।

अस्थियों की आंतरिक दशा जानने के लिए एक परीक्षण किया जाता है जिसे अस्थि लवण घनत्व परीक्षण कहते हैं। अस्थि घनत्व से प्राप्त सूचना से चिकित्सक को रोगी की अस्थि की क्षमता का ज्ञान हो जाता है। अस्थि लवण घनत्व परीक्षण एक सरल, त्वरित, वेदना रहित और अहानिकारक प्रक्रिया है। इससे अस्थियों के कैल्शियम का ज्ञान तो होता ही है साथ ही अस्थि भग्न के खतरों के घटकों का भी पता चल जाता है। अस्थि रचना विकृति जन्य रोगों में उनसे बचाव ही सबसे आवश्यक उपचार है। धूप स्नान, योग–प्राणायाम एवं व्यायामों द्वारा इन रोगों से बचा जा सकता है तथा इससे अस्थि लवण घनत्व वृद्धि व अस्थियों में दृढ़ता लाने में सहायता प्राप्त होती है।

9. स्पोर्ट मेडीसिन (Sport Medicine) पर प्रभाव : जब हम किसी खेल या प्रतियोगिता में प्रतिभागिता करते हैं तो व्यवस्थित श्वसन क्रिया हमारे प्रदर्शन पर प्रभाव डालती है। दीर्घ एवं स्वतंत्र श्वास क्रिया प्रदर्शन व्यग्रता (Performance Anxiety) को दूर करने एवं ध्यान को केंद्रित करने में आधार का कार्य करती है।

योग प्राणायाम द्वारा हमारी श्वसन क्रिया नियंत्रित होती है। कौशल शिक्षा में योग–प्राणायाम का अपना महत्वपूर्ण योगदान है। योग प्राणायाम अभ्यास खिलाड़ियों के लिए आदर्श अभ्यास बन सकते हैं। योग–व्यायाम के अभ्यास से मांस तंतुओं का तनाव कम करके उनका लचीलापन एवं गति को बढ़ाया जा सकता है। संतुलन अभ्यासों में भी प्राणायाम का महत्वपूर्ण योगदान संभव है। लगभग सभी खेलों में संतुलन का महत्वपूर्ण योगदान होता है। प्राणायाम से शारीरिक एवं मानसिक असंतुलन को दूर किया जा सकता है। प्राणायाम से तांत्रिकीय परिवर्तन को बढ़ाया जा सकता है।

विभिन्न प्रयोगों जैसे शारीरिक अभ्यास, पथ्यापथ्य से सिद्ध हुआ है कि ये प्रयोग रक्त में लिपिड कन्टेंट को नियंत्रित करने एवं शरीर में स्फूर्ति एवं ऊर्जा उत्पन्न करने में अत्यंत सहायक होते हैं। हृदयशूल एवं हृदय धमनी अवरोध के रोगियों पर किए गए प्रयोग में योग–प्राणायाम का लिपिड प्रोफाइल पर सकारात्मक प्रभाव देखा गया है। एक अन्य अध्ययन में प्राणायाम बॉडीमास (Body Mass), बी.एम.आई. (BMI), हृदय एवं फेफड़ों की क्रियाशीलता एवं अस्थि चयापचय (Bone Metabolism) के विभिन्न पैरामीटर्स पर सकारात्मक प्रभाव दर्शाता है।

वर्तमान समय में योग चिकित्सा संबंधी अध्ययनों का मूल उद्देश्य खिलाड़ियों के प्रदर्शन एवं कौशल पर योग प्राणायामों के साथ–साथ उनके फिजियोलॉजिकल, पैथालॉजिकल एवं न्यूरॉलॉजिकल परिवर्तनों पर वैज्ञानिक अध्ययन करना है।

टिप्पणी

वर्तमान समय में योग मनुष्य का कायाकल्प करने में, उसे संजीवनी पान कराने में, उसका चहुंमुखी परिष्कार कराने में, धर्म–अर्थ–काम–मोक्ष के सोपानों को सिद्ध करने में एक विश्वसनीय, प्रमाणित एवं फलदायी विधा है। योग एक संपूर्ण विज्ञान है और वांछित फल देने में सक्षम है। इससे शारीरिक आरोग्यता, मानसिक विकास, बौद्धिक चेतना, आत्मिक उन्नति एवं आध्यात्मिक शक्ति प्राप्त होती है। आवश्यकता है योग एवं प्राणायाम की सही विधियों की नियमित अभ्यास करने की। यह मात्र कोरा कथन नहीं है, प्रतिभागी प्रत्यक्ष रूप से योग के वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक विधाओं से हतप्रभ हैं तथा इसका भरपूर लाभ उठा रहे हैं।

मानसिक स्वास्थ्य संरक्षण हेतु एक व्यवस्था के रूप में योग

यौगिक क्रियाएं शरीर को साधती है और शरीर योग को साधता है। थका हुआ शरीर योग करने से ऊर्जा, उत्साह और नई दिशा प्राप्त करता है तथा व्यक्ति अपनी मंजिल प्राप्त करने में सफल हो जाता है। कालिदास जी ने कुमार संभव ग्रंथ में कहा है कि, "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्"– 'निश्चय ही शरीर धर्मचर्या का प्रथम साधन है'। अगर शरीर स्वस्थ नहीं है तो भौतिक अथवा अभौतिक कुछ भी कार्य संभव नहीं है। सुसंगठित शरीर सभी को प्रभावित करता है। अथर्ववेद की ऋचा में शरीर के विषय में ये विशेषण प्रयोग किए गए हैं– 'अयोध्या' हिरण्ययीं पुरम, अपगीजताम् तथा अमृतेनावृताम पुरन् आदि। संसार में रहकर सभी सुखों का भोग केवल स्वस्थ शरीर से ही संभव है अन्यथा सारे सुख कोसों दूर नजर आएंगे। पुष्ट शरीर के लिए भोगों की आवश्यकता होती है और शरीर से मुक्ति पाने के लिए इंद्रियों के संयम की जरूरत होती है। इंद्रियों पर संयम केवल योग द्वारा ही संभव है।

उपनिषद के ऋषि ने उत्पत्ति के समय अग्नि की वाणी बनकर मुख में, वायु के प्राण बनकर नासिका में, सूर्य के चक्षु बनकर आंख में, दिशाओं के स्रोत बनकर कान में, अन्न, औषधि वनस्पति के लोम बनकर त्वचा में, चंद्रमा के मन बनकर हृदय में, मृत्यु के अपान बनकर नाभि में और जल के वीर्य बनकर शिश्न में प्रवेश करने का वर्णन किया है। ऋषि ने प्राकृतिक देवताओं के इंद्रियों में प्रवेश करने को इसलिए कहा है जिससे इनकी उपेक्षा रोकी जा सके। हर इस प्रकार का व्यवहार जिससे इंद्रियां समय से पूर्व अशक्त हों, विकृत हों, वह हिंसक व्यवहार कहलाता है। 'योग' हिंसा की प्रतिगामी धारा है। योग की धारा से जुड़ने वाले व्यक्ति न तो इंद्रियों के प्रति असहिष्णु रहता है न ही समाज के प्रति। उसका मन मस्तिष्क दायित्व बोध से जगमगा उठता है।

योग का शारीरिक पक्ष

शरीर विज्ञान दृष्टि एवं साधना विज्ञान दृष्टि से हमारी शारीरिक संरचना बड़ी वैज्ञानिक है। शरीर विज्ञान की दृष्टि से इसका एक प्रकार से वर्गीकर किया जाता है तो योग साधना विज्ञान की दृष्टि से दूसरी प्रकार से। शरीर विज्ञान जहां स्थूल आधारों का अध्ययन करता है वहीं साधना मार्ग में शरीर के सूक्ष्म आधारों की उद्भावना और उनका कार्य विवरण दिया गया है। शरीर पर 'योग' के प्रभावों को जानने से पूर्व ऊपर उद्धृत इन दृष्टियों से शरीर की रूप रचना के मुख्य आधारों को जानना होगा।

टिप्पणी

शरीर का संगठन— जन्मावस्था में जीवात्मा शरीर के तिहरे आवरण में संचरण होती है। इनमें स्थूल शरीर दृश्यमान है जबकि सूक्ष्म और कारण शरीर अदृश्य। स्थूल शरीर अन्य दोनों सूक्ष्म और कारण शरीर का अधिष्ठान है। इनमें तीनों शरीरों का नितांत घनिष्ठ संबंध है। भोग और योग की दृष्टि से इस शरीर के व्यापार और मोक्ष इन तीनों शरीरों को यथावत सक्रिय कर ही सिद्ध होते हैं। इनको समझने के लिए तैत्तिरीय उपनिषद के ऋषि ने इसे पंच कोशों में वर्गीकृत किया है। क्रमशः अन्नमय कोश, प्राणमय कोश, मनोमय कोश, विज्ञानमय कोश और आनंदमय कोश। हमारे शरीर, उसमें सक्रिय अनेक अंगों और भिन्न–भिन्न भाव दशाओं की क्रमवार व्याख्या बड़े ही सुगठित ढंग से इन कोशों के अंतर्गत की गई है।

हमारा स्थूल शरीर और इसके दो महत्वपूर्ण घटक ज्ञानेंद्रियां और कर्मेंद्रियां अन्नमय कोश का परिक्षेत्र हैं। बाहर की त्वचा से लेकर भीतर की हड्डी तक का भाग अन्नमय कोश कहलाता है। प्रतिदिन जो भोजन हम करते हैं, उसी से पोषित है। जन्म से पूर्व यह उस भोजन से विकसित हुआ जो मां ने खाया था। शरीर का प्रत्येक अवयव जो अपने विकास में अन्न का ऋणि है वह सब अन्नमय कोश का ही हिस्सा है। चींटी के शरीर में छोटा अन्नमय कोश है। जितना जिसका आकार है उतना उसका अन्नमय कोश है। चींटी के शरीर में छोटा अन्नमय कोश है तो हाथी के शरीर में भारी अन्नमय कोश है। शरीर का जो कुछ भी अंश तराजू की तोल में आता है वह सब अन्नमय कोश है।

अन्नमय कोश के अति महत्वपूर्ण संस्थान हैं— कर्मेंद्रियां, ज्ञानेंद्रियां, हृदय, फेफड़े और मस्तिष्क। इसमें भी हमारी पांचों ज्ञानेद्रियां चक्षु, श्रोत्र, नासिका, रसना और त्वक् केवल मुख्य क्षेत्र में अवस्थित हैं। सतत स्मरण रखना चाहिए कि इंद्रियों के गोलक इंद्रिय नहीं हैं। ये तो प्रकाश, ध्वनि आदि की तरंगों को भीतर प्रवेश देने वाली खिड़कियां भर हैं। इंद्रिय तो वह अदृष्ट उपकरण है, जिसके उपयोग करने पर गोलकों द्वारा भीतर पहुंची संवेदनाओं की प्रतीति होती है। जहां आंख और कान बहुत दूर पर स्थित वस्तुओं की भी प्रतीति कराते हैं। यह भी ज्ञातव्य है कि जीभ के बिंदु मात्र प्रदेश ही ऐसे होते हैं जो खट्टे, मीठे, नमकीन आदि के स्वाद का ज्ञान कराते हैं। भोज्य पदार्थ पहले इस पानी में घुलते हैं फिर अपना स्वाद देते हैं। इन तन्मात्राओं को जन्म देने वाले तत्व (भूत) भी पांच ही हैं, अग्नि, आकाश, पृथ्वी, जल (आपः) और वायु। ज्ञानेंद्रियों की भांति कर्मेंद्रियां भी संख्या में पांच हैं— हस्त, पाद (पांव), मुख, गुदा और उपस्थ।

हृदय अन्नमय कोश का एक अन्य अत्यंत महत्तम अवयव है। हृदय वह यंत्र है जो सारे शरीर को शुद्ध रक्त की आपूर्ति सुनिश्चित करता है। इसके एक द्वार से रक्त अंदर जाता है ओर दूसरे द्वारा से बाहर आता है। स्वतः चालित अनैच्छिक पेशियों से बना यह हृदय वक्ष स्थल के मध्य दोनों फेफड़ों के बीच में सुरक्षित है। हृदय भीतर से खोखला होता है। इसके भीतर मांस का एक परदा होता है जो हृदय को हतकोश दो कोठरियों में विभक्त करता है। इनमें दो खाने होते हैं। ऊपर के खाने को ग्राहक कोष्ठ और नीचे के खाने को क्षेपक कोष्ठ कह सकते हैं। इस प्रकार हृदय के चार कोष्ठ हुए— दाईं ओर का और बाईं ओर का ग्राहक कोष्ठ तथा दाईं ओर का और बाईं ओर का ग्राहक क्षेपक कोष्ठ। हृदय के ग्राहक कोष्ठ रक्त को हृदय के अंदर लेते हैं और क्षेपक कोष्ठ इसे बाहर फेंक देते हैं। रक्त लेने में कोष्ठों पर दबाव कम पड़ता है जबकि इसे फेंकने में अधिक। आश्चर्यजनक रूप से हम पाते हैं कि बाएं क्षेपक कोष्ठ की दीवारें

टिप्पणी

दाहिने क्षेपक कोष्ठ की दीवारों से दो–तीन गुनी मोटी है। वस्तुतः बायां क्षेपक कोष्ठ ही शुद्ध रक्त को सारे शरीर में भेजता है। हृदय आकुंचन प्रसारण अनवरत करता रहता है। एक आकलन के अनुसार एक स्वस्थ युवा का हृदय एक मिनट में 72 बार तथा शिशु का 140 बार आकुंचन प्रसारण किया करता है। मानसिक उद्वेगों तथा शारीरिक श्रम के समय यह गति बढ़ जाती है जबकि उपवास, निर्बलता एवं संताप आदि के समय घट जाती है।

इसके अतिरिक्त कपाल की सूक्ष्म संरचना, ग्रीवा से गुदास्थित तक फैले 26 कशेरुओं से निर्मित मेरुदंड तथा फेफड़े जिनका विशेष विवरण प्राणायाम के संदर्भ में दिया गया है, हमारे अन्नमय कोश के अन्य विशिष्ट अवयव हैं।

स्वास्थ्यपरक निर्देश– भोग से 'योग' तक से सफल होने के लिए इस अन्नमय स्थूल शरीर का संवर्द्धन और नियंत्रण नियमतः अनिवार्य है। योगचर्या सर्वप्रथम इसी अन्नमय स्थूल शरीर को नियमित और ऊर्जावान बनाती है। उत्तम स्वास्थ्य दुनिया की सबसे बड़ी सौगात है। दुनिया के अनेक मनीषियों ने स्वस्थता को परिभाषित किया है परंतु आयुर्वेद के प्रसिद्ध ग्रंथ में सुश्रुत द्वारा की गई परिभाषा पर हम स्वयं को मोहित पाते हैं। सुश्रुत के अनुसार जिसके तीनों दोष वात, पित्त एवं कफ सम हों, जठराग्नि सम अर्थात न अति मंद और न अति तीव्र हो, और दसों इंद्रियों सहित मन एवं इनका स्वामी आत्मा भी प्रसन्न हो तो ऐसा व्यक्ति ही स्वस्थ कहा जाता है। सुश्रुत की परिभाषा के अनुसार केवल अच्छे स्वास्थ्य को स्वस्थ नहीं कहा जा सकता। शरीर के सबल होने पर भी यदि व्यक्ति मानसिक विकारों अर्थात काम–क्रोध आदि दुरितों और वैचारिक विभ्रम का शिकार है तो उसका आध्यात्मिक उत्कर्ष तो दूर शनैः–शनैः शारीरिक अपकर्ष भी होने लगता है। स्पष्ट ही है कि स्वास्थ्य के अंतिम दोनों सोपन– मानसिक और आत्मिक प्रसन्नता तो योगजन्य ही है जबकि शारीरिक संतुलन को विकसित करने में 'योग' की हेतुता सुतराम् सिद्ध ही है। भय और मोह के संयुक्त वातावरण से यकायक 'योग' जिज्ञासु बने अर्जुन को भी योगेश्वर श्रीकृष्ण योग में सफलता को निर्धारित करने वाले मानको को उद्घाटित करते हुए कहते हैं कि आहार, विहार की सुयुक्तता, कर्मों में सुचेष्टा तथा शयन और जागरण जिसके तर्कयुक्त अर्थपूर्ण हो जाते हैं उसका योग साधन फलीभूत होता है।

आहार– उत्तम स्वास्थ्य के निर्धारक तीन आधारों में आहार अन्यतम है। युक्ति संगत आहार की वैज्ञानिक विधि अपनाए बिना संपूर्ण स्वास्थ्य की अभीप्सा बेमानी है। वस्तुतः आहार स्वयं में भैषज्य है। आहार विहार के विज्ञान को जान कर हम अनेक व्याधियों का निदान कर सकते हैं। भारत के मनीषियों ने आहार का अत्यंत बारीकी से विश्लेषण किया है। पोषण और संरक्षण को ध्यान में रखकर आहार का चयन परामर्श देते हैं। मन पर पड़े समस्त प्रभाव हमारी मानसिक–वैचारिक प्रक्रिया का हिस्सा बन जाते हैं और अंततः हम वही तो करते हैं जो हम मानसिक स्तर पर तय कर लेते हैं। स्पष्ट ही है कि आहार हमारी इंद्रियों को पुष्ट करता है। हमारे प्राणों का बल बनता है, और अंततोगत्वा मन की प्रवृत्तियों का भी पोषण करता है। जिन अच्छी बुरी प्रवृत्तियों से भोजन हेतु अन्न आदि को प्राप्त किया गया है और जिस हर्ष या विषाद के वातावरण में उसका भक्षण किया गया है इत्यादि सूक्ष्म तथ्य भी व्यक्तित्व विकास

टिप्पणी

में महती भूमिका निभाते हैं। यद्यपि आहार की इस प्रवृत्ति और परिस्थितिपरक घटकों को जैव रासायनिक भाषा में व्यक्त करना अभी तक संभव नहीं हो पाया है। परंतु यह सुनिश्चित है कि हमारे मन, हमारे विचारों पर हमारे द्वारा किए गए भोजन का निर्णायक प्रभाव पड़ता है।

आयुर्विज्ञान के मर्मज्ञ ऋषि चरक द्वारा परीक्षा काल में अपने शिष्यों से स्वास्थ्य विषयक प्रश्न किए जाने पर वाग्भट्ट नामक शिष्य स्मरणीय उत्तर देता है कि– 'हितभुक', 'मितभुक', 'ऋतभुक' अर्थात निज प्रकृति की अनुसार हितकारी, उचित मात्रा में एवं ऋतु के अनुकूल भोजन करने वाला स्वस्थ है। चरक सावधान करते हैं वस्तुतः हम तीन शारीरिक अवस्थाओं की पूर्ति हेतु आहार लेते हैं। प्रथम– शारीरिक अवयवों का सतत निर्माण और विकास, द्वितीय– दिन–प्रतिदिन के कार्यों के चलते निरंतर हो रही शारीरिक क्षति की आपूर्ति और तृतीय शरीर संचालन और कार्य संलग्नता हेतु स्फूर्ति व ऊर्जा एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता का संचयन। परंतु जब हम भोजन लेने बैठते हैं तब आहार विषयक निर्देशों को प्रायः भूल जाना पसंद करते हैं। एकमात्र स्वाद को केंद्र में रख कर किए गए भोजन का चयन परिणाम में सर्वदा सुखद नहीं होता है।

हम वसा, विटामिन, प्रोटीन, शर्करा, जल, लवण आदि के रूप में जो आहार ले रहे हैं उससे शरीर प्रतिदिन अपने विभिन्न संयंत्रों में दो हजार से अधिक यौगिक तैयार करता है। ये तैयार किए गए पदार्थ रक्त के माध्यम से शरीर के अंग–प्रत्यंगों में पहुंचकर उनका पोषण करते हैं। इस प्रक्रिया को अधिकाधिक कारगर बनाने के लिए हमें अपनी प्रवृत्ति और अवस्था आदि को भली प्रकार जान कर भोजन के पोषक तत्वों का चयन करना चाहिए। हमें इस बात का भी बराबर स्मरण रखना चाहिए कि ये सभी पोषक तत्व हम प्राकृतिक पदार्थों से ही लें, मांसाहार से नहीं। एक ओर जहां चिंता मुक्त, सहज, शांत मनोभाव से संयुक्त होकर चाव और प्रसन्नता के साथ किया गया सामान्य भोजन भी शारीरिक और मानसिक स्तर पर उच्चतम परिणाम देता है वहीं दूसरी ओर भय, तनाव, विषाद आदि की मनोदशा में किया गया अधिकतम पोषकीय तत्वों से युक्त विशेष भोजन अनेक भयावह व्याधियों का जन्मदाता बन जाता है। अतः भोज्य पदार्थ को चबा–चबा कर तरल कर लेने तथा पेय पदार्थों में लार मिल जाने के पश्चात ही उन्हें निगलना चाहिए। आहार के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ा एक पहलू यह भी है कि बिना भूख लगे या अजीर्ण के होने पर भोजन करना विष के तुल्य है।

निद्रा– निद्रा स्वास्थ्य का दूसरा महत्वपूर्ण स्तंभ है। ईश्वरीय वरदानों में नींद की व्यवस्था अन्यतम है। किसी को लगातार जगाए रखना अर्थात न सोने देना दुनिया में प्रचलित क्रूरतम सजाओं में से एक है। कल्पना करें यदि परमात्मा इस सारी सृष्टि व्यवस्था में से केवल नींद को हटा ले तो यह दुनिया कुछ ही दिनों में एक विशाल पागलखाने में परिवर्तित हो जाएगी। थका–मांदा व्यक्ति स्फूर्ति और ऊर्जा की प्राप्ति के लिए निद्रा की शरण में ही जाता है। वस्तुतः हमारा शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य निद्रा पर अत्यधिक निर्भर है। प्रातः जल्दी उठना और सायं को जल्दी सोना भारतीय लोक जीवन का अभिन्न अंग रहा है। व्यक्ति और व्यवस्था को यह तथ्य समझना ही होगा कि 24 घंटे में से किसी भी समय केवल छह से आठ घंटे सोना ही पर्याप्त नहीं है अपितु प्रकृति द्वारा नियत समय पर ही छह से आठ घंटे नींद हितकर है।

टिप्पणी

ब्रह्मचर्य– ब्रह्मचर्य स्वास्थ्य का तीसरा स्तंभ है। प्राचीन साहित्य में ब्रह्मचर्य, उसकी व्यापकता, उसके आधार और महिमा का जितना वर्णन हुआ है, वह सौभाग्य कम ही विषयों को प्राप्त है। ब्रह्मचर्य की उर्वरा भूमि में ही अविश्वसनीय शारीरिक, मानसिक और आत्मिक शक्तियों का उदय होता है। ब्रह्मचर्य के मुख्य अर्थों में ईश्वर की उपासना, ज्ञान का अर्जन और वीर्यादि का सप्रयास संरक्षण और संवर्धन परिगणित है। चरककार ब्रह्मचर्य को सर्वोत्तम पुण्य, वार्धक्य और व्याधियों का अवरोधक, तेज वर्धक, शरीरादि का रक्षक तथा मन के आनंद का संवर्धक घोषित करते हुए प्रजा पर अनुग्रह हेतु संसार में इसके प्रचार की भावुक अपील करते हैं। वस्तुतः ब्रह्मचर्य शारीरिक और मानसिक प्रवृत्तियों द्वारा शक्ति क्षरण की सतत प्रक्रिया को रोकने का भावपूर्ण तार्किक आह्वान है। जीवन रूपी भव्य अट्टालिका की यह मजबूत नींव है। यह नियम समान रूप से स्त्री पुरुष दोनों के लिए लागू होता है। योगियों के लिए तो कहना ही क्या; योगार्थियों को भी यह समझना होगा कि स्वस्थ और सुदृढ़ देह तथा प्रसन्न मन के अभाव में भोग भी न भोगे जा सकेंगे। ज्वर में मालपुआ भी कड़वा लगता है। अवसाद के क्षणों में मांगलिक आशीर्वाद भी शापत तुल्य प्रतीत होते हैं।

अतः हितकामियों के लिए उचित है कि वे ब्रह्मचर्य और उसे पुष्ट करने वाले सभी कारकों का यत्नपूर्वक सेवन और पालन करें। स्वास्थ्य के प्रथम दोनों स्तंभों आहार और निद्रा का स्वास्थ्य के साथ–साथ ब्रह्मचर्य की परिपुष्टि में भी महत्वपूर्ण योगदान है। एक–पत्नीव्रत पुरुष व एक पुरुषनिष्ठ स्त्री, जो ऋतुगामी है, को ब्रह्मचारी ही कहा गया है। आज भयंकर महामारी के रूप में पूरे विश्व में फैल रही एड्स जैसी बीमारी का समाधान यौन शिक्षा से नहीं अपितु एक पत्नीव्रत एवं एक पतिव्रत के भारतीय जीवन मूल्य से ही संभव है।

स्वास्थ्य की उपेक्षा

परमात्मा ने ऐसी अद्भुत कला, विज्ञान और व्यवस्था वाला अन्नमय कोश नामक यह स्थूल शरीर हमें प्रदान किया है। परंतु वैयक्तिक दुराचरण, सामाजिक दबावों और मानसिक अतिवाद के चलते इस विस्मयकारी निर्दोष रचना को ध्वस्त और विकृत करने के लिए हम सतत प्रयासरत हैं। प्रायः इस सुंदर संवेदनशील शरीर रूपी यंत्र से कार्य लेते समय हम नितांत अतार्किक हो जाते हैं। इसकी सुरक्षा के लिए दिए गए समस्त निर्देशों की हम लगातार उपेक्षा करते हैं, और तन मन में एक वेदना गूंज उठती है। शरीर की एक प्रक्रिया दूसरी प्रक्रिया से और एक व्यवस्था दूसरी व्यवस्था से जुड़ी हुई है। किसी एक प्रक्रिया या व्यवस्था से छेड़छाड़ का अभिप्राय होगा समस्त प्रक्रियाओं और व्यवस्थाओं से छेड़छाड़। असंतुलित आहार और अनियमित दिनचर्या, शरीरस्थ वात, पित्त, कफ रूप में भी एक इकाई मानना ही हितकर होगा। इससे विभिन्न ग्रंथियों की सक्रियता भी प्रभावित होती है। विभिन्न प्रकार की शारीरिक व्याधियां इसी का दुष्परिणाम हैं। वस्तुतः मलों का एकत्रीकरण अजीर्णता के कारण होता है और अजीर्णता का मूल कारण मंदाग्नि है। मंदाग्नि के कारण भक्ष्य पदार्थों का यथावत परिपाक नहीं बनता जिससे शरीर में मलों का संचयन होने लगता है।

योग द्वारा स्थूल शरीर का रूपांतरण

'योग' सर्वतोप्राक् हमारे इस भौतिक अन्नमय स्थूल शरीर का रूपांतरण करता है। यम नामक योगांग का अवांतर भेद ब्रह्मचर्य, नियम नामक योगांग का अवांतर भेद शौच और

टिप्पणी

तप, तृतीय योगांग आसन और चतुर्थ योगांग प्राणायाम की इसके रूपांतरण में महती भूमिका है। कहने की आवश्यकता नहीं है कि अंगों का प्राकृतिक ढंग से कार्यशील रहना ही स्वास्थ्य का मूल मंत्र है। कृत्रिम साधनों पर आयातित स्वास्थ्य कदाचित स्थिर स्वास्थ्य नहीं हो सकता। एक प्रकार की व्याधि का समाधान कर रही औषधि किसी अन्य व्याधि की जन्मदात्री बन जाती है। ये शारीरिक व्याधियां अंततः मानसिक व्याधियों को उत्पन्न करने लगती हैं।

'योग' में विभिन्न यौगिक क्रियाओं– आसन, प्राणायाम, तप, मुद्रा बंध, षट्कर्म आदि के द्वारा रक्त, प्राण, नाड़ी, ग्रंथि आदि का शोधन किया जाता है। विकारों और व्याधियों के जन्मदाता समस्त मल शरीर से पलायन कर जाते हैं। आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य व्रत से बंधा जीवन स्वास्थ्य के राजपथ से कभी भ्रमित नहीं होता। 'योग' 'अष्टांगयोग' का आधार भी है। यम और नियम का जो स्वरूप स्थापित किया है, वह वस्तुतः स्वस्थ व्यक्ति और स्वस्थ समाज के प्रस्तोता हैं, वहीं नियम–शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान वैयक्तिक उत्कर्ष के विधायक हैं। कदापि यह नहीं समझना चाहिए कि अहिंसा आदि यमों की वैयक्तिक उत्कर्ष में हेतुता नहीं है। अंततः व्यक्तियों की स्वीकार्यता और शिष्टता ही तो समाज की स्वीकार्यता और शिष्टता है। ब्रह्मचर्य को छोड़कर अहिंसा आदि यम समाज सापेक्ष है जबकि शैचादि नियम व्यक्ति सापेक्ष। मुनि पंतजलि इसी आधार पर यमों को सार्वभौम महाव्रत कहते हैं। पंतजलि द्वारा यमों को सार्वभौम कहे जाने से अभिप्राय स्पष्ट है कि 'योग' जिज्ञासु देश, काल और परिस्थिति की आड़ में अहिंसादि यमों के पालन में उदासीनता न बरतें। यद्यपि शौच, तप, स्वाध्याय आदि नियमों के अनुष्ठान में देश, काल व परिस्थिति की अनुकूलता हेतु हो सकती है। नियमों के अंतर्गत पठित तप शब्दका भारतीय साहित्य में बड़ा विस्तार हुआ है।

मुनि पंतजलि ने क्रिया योग के रूप में जो अति संक्षिप्त कार्यक्रम हमें दिया है, स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान के साथ तप भी उसका महत्वपूर्ण अंग है। बराबर अवधेय है कि शारीरिक एवं मानसिक ऊर्जा और चेतना का सतत विकास तप है, न कि शारीरिक अवयवों पर अत्याचार। पंतजलि द्वंद्वों को सहना तप मानते हैं, शारीरिक स्तर पर ऊर्जा और मानसिक स्तर पर तार्किक चेतना द्वंद्वों को सहने की विपुल सामर्थ्य व्यक्ति को देते हैं। शारीरिक और मानसिक स्तर पर प्रायः मिलने वाले द्वंद्वों के रूप में भूख–प्यास, सर्दी, गर्मी, सुख–दुख, हानि–लाभ, मान–अपमान, जय–पराजय आदि की पहचान भारतीय मनीषियों ने की है। द्वंद्वों को सहने की सामर्थ्य का निरंतर विस्तार ही तो अंततः वह धैर्य है, जिसे हम वैयक्तिक, पारिवारिक, सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक और आध्यात्मिक जीवन का आधारभूत गुण कहते हैं। गीताकार तप को और अधिक परिप्रेक्ष्य में उद्धृत करते हैं। वस्तुतः आडंबरयुक्त विलासितापूर्ण जीवन शरीर की नैसर्गिक शक्तियों का तीव्रता से ह्रास करता है। सुविधापूर्ण जीवन शैली का आदी बन चुका व्यक्ति सुविधाओं के बिना जीवन की कल्पना ही नहीं कर पाता। समस्त अंग–प्रत्यंगों के यथावत होते हुए भी सुविधाभोगी में सुविधा का अभाव विकलांगों जैसी अनुभूति उत्पन्न करता है। इसी प्रवृत्ति के चलते शरीर रोगधाम बनता है। इसी बिंदु पर व्यक्ति को प्रकृति शत्रु नजर आती है। तप प्रकृति से दूर जा कर जिए जा रहे विलासितापूर्ण जीवन के परित्याग का आह्वान है।

आसन शारीरिक रूप रचना को संतुलित रखने का बहु प्रचलित योगांग है। मुनि पंतजलि आसन की परिभाषा के प्रति बड़े सहज और उदार हैं। वे सुख एवं स्थिरतापूर्वक

टिप्पणी

बैठने को आसन कहते हैं। सबसे रोचक राय ध्यान बिंदुपनिषद्कार की है। इनके अनुसार जितनी जीवन जातियां हैं उतने ही प्रकार के आसन हैं। शरीर को चिर स्वस्थ बनाए रखने के लिए मांसपेशियों व नाड़ियों को पुष्ट बनाना आवश्यक है। आसन और व्यायाम यह संपुष्टि देते हैं। इसके अभाव में शरीर का असंतुलित विकास होने लगता है। आसन और सूक्ष्म व्यायाम हमारे श्वसन तंत्र को भी संबल देते हैं। योगासनों के द्वारा विभिन्न प्रकार की व्याधियों का उपचार सफलतापूर्वक मर्मज्ञों द्वारा किया जा रहा है। पेट, पीठ, ग्रीवा एवं घुटनों में सामान्य रूप से व्यापक स्तर पर होने वाली अनेक व्याधियों का अत्यंत प्रभावशाली उपचार आसनों के द्वारा बहुप्रचलित भी है।

प्राण शक्ति और शरीर संचालन में उसकी भूमिका

हमारे स्थूल शरीर को प्रेरणा देने का कार्य प्राण और मन करते हैं। इस संपूर्ण शारीरिक तंत्र को चौबीसों घंटे गतिशील रखने का दायित्व प्राण का है। गर्भ से लेकर मृत्यु तक शरीर का विकास ह्रास, रक्षण–पोषण सभी कुछ प्राण के कारण ही होता है। वृहदारण्यक उपनिषद का ऋषि एक कथानक के माध्यम से वाणी, आंख, कान, बुद्धि, वीर्य सभी की अपेक्षा प्राणों की श्रेष्ठता की घोषणा करता है। आख्यान को समाप्त करते हुए ऋषि कहता है कि असुरों के समक्ष वाणी आदि समस्त देवों का पराभव हो जाने पर प्राण उद्‌गाता बना। वह समस्त देवों के यश के लिए गाने लगा। असुरों ने जब यह देखा, तो वे प्राण को भी पाप से बिद्ध करने के लिए आगे बढ़े। वे असुर स्वार्थहीन प्राणों से टकरा कर ऐसे चूर–चूर हो गए जैसे मिट्‌टी का ढेला पत्थर से टकराकर चूर–चूर हो जाता है। प्राणों का आश्रय ले कर सब देव विजयी हुए। इन प्राणों को जानने वाला इनको आधार बना कर निश्चय ही असुरों पर विजय प्राप्त कर लेता है। वस्तुतः शरीर की अन्य इंद्रियों के बिना व्यक्ति जीवित तो रह सकता है, परंतु प्राण के अभाव में जीवन की कल्पना ही नहीं जन्मती। प्राणशक्ति की क्षीणता से मन और इंद्रियां अक्षम तथा प्राणशक्ति की संपुष्टता से मन और इंद्रियां अति सक्षम बनती हैं। प्राणशक्ति की प्रबलता ही आत्मविश्वास का चरम है। प्राणिक ऊर्जा ही हमारी जीवनी शक्ति तथा रोग प्रतिरोधक शक्ति का आधार है। सभी महत्वपूर्ण ग्रंथियों, हृदय, फेफड़ों, मस्तिष्क एवं मेरुदंड सहित संपूर्ण शरीर को प्राण ही स्वस्थ एवं ऊर्जावान बनाता है।

प्राणों की साधना समस्त सफलताओं और सिद्धियों का आधार है। शारीरिक संपुष्टि से ले कर मानसिक दृढ़ता और मन की एकाग्रता में प्राण नियमन की महती भूमिका है। प्राणों पर नियंत्रण कर लेने से मन और इंद्रियों पर स्वतः ही नियंत्रण हो जाता है। प्राणों के नियमन की यह प्रक्रिया ही 'योग' शास्त्र में प्राणायाम कहलाती है। वस्तुतः प्राण व मन शरीर की स्थूल संरचना के साथ एकरस हैं। अतः प्राणायाम और मनोमय कोश को भी अन्नमय कोश के ही अंतः प्रविष्ट एकरस मानना चाहिए। आकार और विस्तार केवल अन्नमय कोश में ही होता है, प्राणमय व मनोमय कोश का विस्तार तो केवल इनका अनुप्रभाव ही है।

स्थूल शरीर का प्रेरक प्राण यद्यपि एक ही है लेकिन विभिन्न शारीरिक प्रक्रियाओं और चेष्टाओं को संपादित करने की दृष्टि से एक ही प्राण के अनेक नाम पड़ गए हैं। इसी दृष्टि से प्राण के दो से दस तक भेद किए गए हैं। मुख्यतया प्राण के पांच मुख्य और पांच उपभेद माने गए हैं। प्राण के 5 मुख्य भेदों में प्राण, अपान, समान, व्यान और उदान हैं तथा 5 उपभेदों में नाग, कूर्म, कृकल, धनंजय और देवदत्त परिगणित हैं। विशेष ध्यातव्य है कि वैदिक साहित्य में प्राण के पांच प्रमुख भेदों का तो नामतः प्रचुरता के साथ

टिप्पणी

उल्लेख हुआ है लेकिन नाग, कूर्मादि प्राण के गौण भेदों को वैदिक साहित्य में विशेष महत्व नहीं मिला है। यह हमारी ज्ञानेंद्रियों को गतिमान रखने के साथ–साथ फेफड़ों, हृदय, अन्न नलिका एवं श्वसन तंत्र को क्रियाशीलता प्रदान करता है। श्वास–प्रश्वास की निरंतर चल रही दोनों प्रक्रियाएं प्राण ही है। अपान नामक प्राण शरीर में गुदा के आस–पास के प्रदेश में रहता है।

अपान शरीर में सफाई–कर्मी की भूमिका का निर्वहन करता है। मल–मूत्र के विसर्जन तथा दूषित वायु के निष्कासन की अनिवार्य प्रक्रिया इसी की सक्रियता के साहाव्य से संपन्न होती है।

हृदय से लेकर नाभी तक के क्षेत्र में संपन्न होने वाली प्रक्रिया के सुचारू संचालन को समान नामक प्राण सुनिश्चित करता है। इसका निवास भी नाभि के आस–पास का क्षेत्र है। यकृत, आंत्र, प्लीहा व अग्न्याशय सहित संपूर्ण पाचन तंत्र की आंतरिक प्रक्रियाओं को यह नियंत्रित करता है। यही भोजन से बने रसों की शरीर के विभिन्न अंगों में आपूर्ति करता है। व्यान नामक प्राण त्वक् आदि इंद्रियों के साथ समस्त शरीर में परिव्यात रहता है। यह तंत्रिकाओं द्वारा समस्त संवेदनाएं मन तक प्रेषित करता है और वहां से प्राप्त निर्देशों को ज्ञानेंद्रियों और कर्मेंद्रियों के पास पहुंचा देता है। शरीर भर में परिव्यात होने के कारण यह मांसपेशियों, तंतुओं, नाड़ियों आदि को ऊर्जा व क्रियाशीलता प्रदान करता है। उदान नामक प्राण कंठ के ऊपर से ले कर सिर पर्यंत सक्रिय रहता है। ऊपर के अंगों को ऊर्जा, प्रेरणा और निर्देशन करता हुआ यह प्राण मस्तिष्क की ऊध र्वगतियों को अनुप्राणित करता है। इसके विषय में एक विचार यह भी है कि मृत्यु के समय उदान की ही सहायता से हमारा स्थूल शरीर विमुक्त हो लोक लोकांतरों में अथवा अगले गर्भ तक जाता है। इसके अतिरिक्त शरीर में चल रही कई छोटी–छोटी प्रक्रियाएं जम्हाई लेना, छींक आना, क्षुधा पिपासा (भूख–प्यास) का लगना तथा परितृप्त होना, निमेषोन्मेष, डकार और हिचकी आना, शरीर में सूजन आदि का होना आदि, नाग, कूर्मादि उपप्राणों के द्वारा संपादित होते हैं। जब तक शरीर में प्राकृतिक रूप से चलने वाली यह क्रियाएं यथावत चलती रहती हैं तब तक अन्नमय कोश रूपी स्थूल शरीर ऊर्जावान तथा मानसिक व्यापार आशा और उत्साह से परिपूर्ण रहता है। परंतु दुराचरण, दुर्मदय और दुश्चिंतन की निरंतरता से प्राण के प्रकुपित या दोषयुक्त हो जाने पर भोजन के पाचन रस, रक्तादि के निर्माण, मल के विसर्जन सहित अन्य शारीरिक प्रक्रियाओं के संचालन और संपादन में बाधा उत्पन्न होने लगती है। प्राण के दोषयुक्त हो जाने पर शरीर भी दोषयुक्त हो जाता है। दोषयुक्त प्राण को निर्दोष करने की प्रक्रिया का नाम ही प्राणायाम है। प्राणायाम समस्त प्रकार के शारीरिक और मानसिक व्याघातों को दूर कर हमारी जीवन यात्रा को नितांत सरल, सुगम और सहज बना देता है। प्राणायाम वह छड़ी है जिसका संस्पर्श पा कर जंग खाया निस्तेज निर्जीव सा जीवन ऊर्जावान, कांतिवान और जीवंत हो उठता है। प्राणायाम जिजीविषा की मूर्धन्य खोज है। प्राणायाम औषधि, महौषधि है। प्राणायाम का ध्येय है प्राणिक ऊर्जा का अधिक से अधिक उत्पादन, संरक्षण, विनियोजन और संचालन। शारीरिक और मानसिक व्यापारों में जितनी दक्षता से कोई इसे साध लेगा वह अपने प्राप्तव्य के प्रति उतना ही सफल रहेगा।

प्राण संपूर्ण शरीर में विभिन्न क्रियाओं को नियंत्रित और प्रेरित करता है क्योंकि प्राण शरीर में व्याप्त है अतः प्राण संपुष्टि हेतु किए जा रहे प्राणायाम के प्रभाव को जानने के लिए संपूर्ण शरीर की रचना की जानकारी होना स्वाभाविक अनिवार्यता है।

टिप्पणी

संपूर्ण शरीर की रचना को न भी सही तो प्राण का सर्वाधिक प्रत्यक्ष संबंध जिस अवयव से है उस फेफड़े के विषय में थोड़ा–सा जानना प्राणायाम की उपयोगिता को समझने में सहायक होगा। शरीर में दो फेफड़े होते हैं– दायां और बायां। दायां फेफड़ा बाएं से कुछ चौड़ा और भारी होता है। हमारे नासापुटों के द्वारा कंठ और स्वर तंत्र से गुजरता हुआ श्वास टेंटुए तक पहुंचता है। फेफड़ों तक श्वास को पहुंचाने का कार्य कर रही टेंटुए की दोनों नलियों में महीन रोम होते हैं। ये इतने संवेदनशील होते हैं कि श्वास के साथ जा रहे धूल आदि के कणों के प्रवेश करते ही छींक या खांसी के द्वारा उन्हें बाहर फेंक देते हैं। यह प्राकृतिक प्रबंधन फेफड़ों को धूल या भोजन आदि के कणों से बचाता है।

फेफड़ों की चमत्कारपूर्ण बनावट रक्तशोधन की प्रक्रिया में अहं भूमिका का निर्वहन करती है। फेफड़ों के अंदर हवा के असंख्य सूक्ष्म थैले और रक्तप्रवाही कोशिकाएं विद्यमान हैं। इन दोनों की दीवारें इतनी महीन होती हैं कि इनमें सिर्फ गैस ही आ–जा सके। कोशिकाओं के भीतर बहने वाला रक्त हवा के इन थैलों से ऑक्सीजन ले लेता है और प्रश्वास के रूप में बाहर की हवा को कार्बन डाईऑक्साइड दे देता है। इस प्रकार फेफड़ों से हो कर प्रवाहित होने वाला रक्त ऑक्सीजन के द्वारा निरंतर शुद्ध होता रहता है जबकि कार्बन डाईऑक्साइड से युक्त अशुद्ध रक्त नीला पड़ जाता है।

फेफड़ों के द्वारा हमारा श्वसन चक्र चलायमान है। श्वास भीतर लेते समय छाती की पेशियां फैलती हैं इससे फेफड़ों में हवा के थैले भी फैलते हैं जिससे ये शुद्ध वायु से भर जाते हैं। श्वास छोड़ते समय हवा के ये थैले, फेफड़े और छाती की पेशियां भी सिकुड़ती हैं। भाग–दौड़ की जीवनचर्या के चलते श्वास जितनी तीव्र और सतही होती जाती है, फेफड़ों में सदा भरी रहने वाली इस हवा की मात्रा उतनी ही बढ़ती जाती है। प्राणायाम प्रथमतः इसी का निदान करता है। प्राणायाम करते समय हम गहरी और पूरी श्वास लेते हैं तब अधिक हवा फेफड़ों में जाती है। जितनी गहरी श्वास हम लेते हैं स्वाभाविक तौर पर उतनी ही गहरी श्वास हम छोड़ते भी हैं। इससे फेफड़ों के अंदर जमा अधिक दूषित वायु बाहर निकलती है।

प्राण साधना की आवश्यकता

एक आकलन के अनुसार फेफड़ों में 180–200 घन इंच वायु समाती है। एक सामान्य श्वास में व्यक्ति 30 घन इंच वायु फेफड़ों में भरता तथा प्रश्वास के समय इतनी ही वायु छोड़ता है। इस प्रकार फेफड़ों में भरी 180 घन इंच वायु में से 30 घन इंच वायु के ही फेफड़ों के अंदर–बाहर जाने आने से स्पष्ट है कि 150 घन इंच वायु फेफड़ों में सदा ही भरी रहती है। प्राणायाम की प्रक्रिया द्वारा हम फेफड़ों में भरी इस हवा के अधिकतम भाग को प्रभावित करते हैं। फेफड़ों में विद्यमान वायु जितनी शुद्ध होगी उतनी मात्रा में ही भोजन का ऑक्सीकरण होता है जिससे शरीर के लिए अनेक उपयोगी पदार्थ बनते हैं। यह कार्बन डाईऑक्सइड भोजन में विद्यमान एक अन्य गैस नाइट्रोजन के साथ मिलकर निःश्वास के साथ शरीर से बाहर निकल जाती है। भोजन में विद्यमान फॉस्फोरस ऑक्सीजन के संपर्क से फास्फेट बन शरीर में हड्डियों का निर्माण करता है।

यहां यह भी अवधेय है कि उथला, अधूरा या ऊपरी श्वास निश्चय ही तीव्र श्वास होगा और तीव्र श्वास लेने वाले दीर्घजीवी भी नहीं होते। जिसका श्वास जितना लंबा

टिप्पणी

(गहरा) और मंद गति का होगा वह उतना ही दीर्घजीवी होगा। दो सौ वर्ष तक भी जीवित रह लेने वाले कछुए आदि प्राणियों के दीर्घजीवी होने का रहस्य यही है कि वे एक मिनट में 3 से 5 श्वास लेते हैं। जब कि एक मिनट में 34 से 37 श्वास तक लेने वाले कबूतर एवं सुअर आदि प्राणी 10 से 12 वर्ष तक ही आयु पाते हैं।

योग का मानसिक पक्ष

मन की कुल दास्तां ही वस्तुतः व्यक्ति की दास्तां है। अमन में खलल और खलल में अमन, शांति में संग्राम और संग्राम में शांति उत्पन्न करने वाला यही तो है। सबसे बड़ी समस्याओं का समाधान भी अंततः यही है। ज्ञान की एक पूरी शाखा इसके अध्ययन में विकसित हो गई जिसे हम मनोविज्ञान कहते हैं। बावजूद इसके, इस मन का स्वरूप क्या है? अंतिम रूप से अभी इस पर सहमति बननी बाकी है। भारत के ऋषियों ने ऐंद्रिक और प्राणिक ऊर्जा की क्रमशः अन्नमय और प्राणायाम कोष के रूप में पहचान करने के उपरांत शरीर में विद्यमान मनस और उसकी गतिविधियों की मनोमय कोश के रूप में पहचान की है। यह मनुष्य के अंतर्जगत और बहिर्जगत का संपर्क बिंदु है। यह अन्नमय और प्राणमय एवं विज्ञानमय और आनंदमय ज्ञान के आवागमन की खिड़की है। इसे हम काल आयाम में अवस्थित ज्ञान के आवागमन की खिड़की कह सकते हैं। इंद्रियों द्वारा भेजा गया समस्त बाह्य विश्लेषित ज्ञान यहीं पर संश्लेषित होता है और यही आत्मा और बुद्धि की अनुभूतियों के विश्लेषित कोश की आत्मा है। यह प्रकृति से विकसित है। गहरे में जा कर जानें तो हम पाते हैं कि वस्तुतः यह सब मन के ही व्यापार हैं जो कार्य स्तर के वैभिन्य की दृष्टि से अलग–अलग नामों से जाने जाते हैं।

अंतःकरण के अवयवों का कार्य–विभाजन अत्यंत सूक्ष्मता लिए हुए है। अंतःकरण में अवयवों पर मनोमय कोश के साथ विज्ञानमय नामक एक और कोश अवलंबित है। इसकी कल्पना का मुख्य आधार तत्व बुद्धि है। बुद्धि को हम मन का उत्तर भाग या मन का प्रकाशमान क्षेत्र कह सकते हैं। बुद्धि यहीं से सक्रिय होती है। ऊहापोह की अवस्था में उपस्थित समस्त तर्कों–प्रतितर्कों में से बुद्धि किसी का चयन कर अध्यवसाय उत्पन्न करती है। मन की क्रियाएं जहां मनुष्य को बंधन की ओर धकेलती है वहीं बुद्धि की क्रियाएं उसकी विमुक्ति में सहायता करती है। बुद्धि द्वारा किए गए निर्णय का सही या गलत होना चित्त और अहंकार के स्तर एवं सक्रियता पर निर्भर करता है। अहंकार के तामसिक रूप में चेतना का उच्चतम स्तर कभी भी प्रकट नहीं होता। निम्न स्तरीय अहंकार और निम्न स्तरीय चेतना बुद्धि के सही और तार्किक निर्णय लेने की क्षमता को बाधित करते हैं। बुद्धि, चित्त और अहंकार मन की ही विभिन्न कलाएं हैं।

मन

मुनि पतंजलि मन के लिए चित्त पद का ही प्रयोग करते हैं। 'योग' में प्रबल गति रखने वाले अनुभवी मनस्वी स्वामी आत्मानंद सरस्वती ने अपने विश्रुत ग्रंथ शिवसंकल्प और वैदिक मनोविज्ञान में मनस तत्व के संगठन, संरचना, कार्य–विभाजन और कार्यप्रणाली का इसके भेदों–प्रभेदों सहित सूक्ष्म विवेचन किया है। इसमें भी घृतिमन के तीन प्रभेद हैं– प्रत्यम्भान मन, विश्वभान मन ओर वशीकरण मन। इनमें देवमन देव स्वरूप ज्ञानेंद्रियों के साहाव्य से समस्त सूचनाएं संकलित कर आत्मा तक संप्रेषित करता है। कर्मेंद्रियों को गतिमान रख इनके द्वारा आंतरिक आदेशों का अनुपालन यही मन सुनिश्चित करता है। प्रज्ञामन देवमन से प्राप्त समस्त सूचनाओं का तार्किक विश्लेषण

टिप्पणी

कर निर्णय करता है तथा कर्मेंद्रियों के अधिष्ठाता यक्ष मन को अनुपालन हेतु निर्णय से अवगत कराता है। इस स्तर पर सक्रिय मनस्तत्व वस्तुतः बुद्धितत्व है। कर्मों और अनुभवों के चित्त पर पड़े संस्कारों का लेखा–जोखा चेतस मन रखता है। पांचवां घृतिमन तीन विभिन्न स्तरों पर आत्म तत्व के लिए निर्भ्रांत ज्ञान, वैश्विक दृष्टि के विकास तथा दिव्य सदाचरण की प्रतिबद्धता का केंद्र है।

मन क्या है? संपूर्णता से यह तो हमारे ज्ञान की पकड़ में आना कठिन है, परंतु मन कैसे क्या करता है?– के विषय में ऋषियों के अन्वेषण को हम बेहतर ढंग से समझ सकते हैं। ऋषि गौतम एक रोचक जानकारी मन के विषय में देते हैं कि मन एक साथ दो ज्ञानों की उत्पत्ति या अनुभूति नहीं करता। अर्थात जिस क्षण किसी वस्तु के रूप को ग्रहण कर रहा होता है, उसी क्षण उसकी गंध या उसके रस को ग्रहण नहीं कर रहा होता। लेकिन यह सब समय के इतने छोटे खंड में संपन्न हो जाता है कि हमें इस प्रक्रिया के क्रमशः होने का भान नहीं हो पाता।

मन का संपूर्णतया व्यक्ति के उत्कर्ष और हित साधन में लगे रहना उसकी स्वस्थता पर निर्भर करता है। व्याधिग्रस्त मन, विकास, शांति और आनंद की प्राप्ति में सबसे बड़ा बाधक है। मुनि पतंजलि ने योग शास्त्र में मनोन्माद, हताशा, चिंता, मूढ़ता, भ्रम, भय आदि के रूप में जब तब मन में पैदा होने वाली व्याधियों के कारणों की गहन पड़ताल की है।

चित्त वृत्तियां

योग शास्त्र की दृष्टि में हमारा चित्त पांच भूमियों में रह सकता है। यह पांच भूमियां हैं, क्रमशः– क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र और निरुद्ध। चिंता, शोक और व्यग्रता की अवस्था में पहुंच कर जब हम बहके–बहके से होते हैं तब हम चित्त की क्षिप्त भूमि अर्थात क्षिप्त स्थिति में होते हैं। ऐसा चित्त व्यर्थ की गतिविधियों में भटकता रहता है। इस अवस्था का चित्त प्रायः राग द्वेषादि की संस्कारगत प्रवृत्तियों में भी ग्रस्त होता है। वस्तुतः मूढ़ अवस्था चित्त में तमोगुण छा जाने के कारण उत्पन्न होती है। इस अवस्था का भी बोध नहीं रह पाता, साथ ही बात–बात पर क्रोध का आवेग उठते रहने से निषिद्ध और नकारात्मक कर्मों में मन प्रवृत्त होता रहता है। हानि–लाभ, मान–अपमान, जय–पराजय, सुख–दुख, जन्म–मृत्यु आदि सांसारिक व्यवहारों में आंशिक तौर पर संवेगों को नियंत्रित रखने वाला मनुष्य चित्त की विक्षिप्त भूमि से जुड़ा होता है। समग्रता से चित्त का किसी एक विषय में लग जाना जहां चित्त की एकाग्र भूमि है वहीं चित्त की समस्य वृत्तियों का निरोध या ध्यान मार्ग में प्रवर्तन हो जाना चित्त की निरुद्ध भूमि है। इसमें प्रथम तीन भूमियां योगचर्या के लिए उपयुक्त नहीं है। पुनरपि योग साधन के लिए चित्त की एकाग्र और निरुद्ध स्थिति ही उपयुक्त है। एकाग्र भूमि में सतत विचरण और उत्थान का प्रयास करता साधक स्वतः चित्त की निरुद्ध भूमि में प्रवेश कर जाता है। यह चित्त का चरमोत्कर्ष है, शुद्धता और सकारात्मकता की पराकाष्ठा है। चित्त की इसी ऊंचाई पर साधक का समाधि और उसके आनंद से परिचय होता है। इसी चित्त भूमि में विद्यमान साधक समाधि के शिखर को प्राप्त कर मुक्त हो जाता है।

चित्त की भूमियों के साथ चित्त की वृत्तियों की पतंजलि अभूतपूर्व समझ रखते हैं। मुनि पतंजलि चित्त की इन तमाम वृत्तियों को पांच भागों में वर्गीकृत करते हैं– प्रमाणवृत्ति, विपर्यत वृत्ति, विकल्प वृत्ति, निद्रा वृत्ति और स्मृति वृत्ति। पतंजलि के अनुसार

टिप्पणी

यह सुखदायक भी है। यदि हम मानसिक और जागतिक व्यवहारों पर विहंगम दृष्टि करें तो आश्चर्यजनक रूप में पाएंगे कि दुनिया का कोई ऐसा जागतिक या मानसिक व्यापार नहीं है जो इन पांचों में न आ गया हो। ये वृत्तियां विषयों में लिप्त हो कर वासनाओं से आबद्ध हो जाती हैं। ये पुण्य कृत्यों को माप में परिणत कर लेती है। वृत्तियों की अनुकूलता, जो कि एकाग्रभूमि का प्रारंभ भी है हो जाने पर वातावरण में होने वाली उथल–पुथल और उत्तेजनाएं चित्त को हताशा या चिंता की ओर धकेल कर प्रतिवाद के लिए तैयार नहीं होने देतीं।

हमारा संपूर्ण लोक–व्यवहार और मानसिक व्यापार इन वृत्तियों के द्वारा ही संपादित होता है। अतः तथ्यात्मक, सकारात्मक एवं नियंत्रित होना नितांत आवश्यक है। वृत्तियों की तथ्यात्मकता और सकारात्मकता व्यक्ति उत्थान के शुभतम संकेत हैं। वृत्तियों की कोटि में प्रमाण, विपर्यय और विकल्प को क्रमशः प्रथम तीन पतंजलि के लिए बड़ी महत्वपूर्ण भी हैं। ये तीनों ज्ञान के तथ्यात्मक और निभ्रति होने पर ही बल देते हैं। प्रामाणिक ज्ञान ही तो अंततः तथ्यात्मक ज्ञान है। इन्हें क्रमशः प्रत्यक्ष, अनुमान और शब्द प्रमाण की कोटि में रखते हैं। वस्तु के स्वरूप या संरचना का आंशिक या अयथार्थ धारणाओं के आधार पर आकलन उसकी वास्तविकता के विपरीत होता है। ज्ञान की प्रमाण और विपर्य वृत्ति वस्तुसत्तानुगामी है जबकि विकल्प नामक तृतीय वृत्ति वस्तु शून्य बोध को उत्पन्न करती है। किसी वस्तु के विषय में सुने हुए शब्दों या वाक्यों के द्वारा चित्त में उनके स्वरूप की संकल्पना इसी विकल्प वृत्ति के द्वारा प्रादुर्भूत होती है।

चित्त की प्रमाण, विपर्यय और विकल्प वृत्ति का संबंध मनुष्य की जाग्रत अवस्था से है जबकि स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था में घटित होने वाले समस्त मानसिक व्यापार को पतंजलि ने निद्रा वृत्ति के अंतर्गत रखा है। निद्राकालीन प्रशांतचित्त तथा अतृप्त कामनाओं और वासनाओं की उथल–पुथल से भरा स्वप्नकालीन अस्थिर चित्त निद्रावृत्ति के रूप में हमारा उपकारक या अपकारक होता है। मनुष्य की स्वप्निल अवस्था अनेक अनसुलझे प्रश्नों से भरी है। स्वप्न और उसकी बनावट पर अभी सिवाय इसके कि जाग्रत अवस्था की हमारी अतृप्त और दमित इच्छाओं, प्राप्त अनुभवों तथा जन्म जन्मातरों की वासनाओं का उलझा हुआ संयुक्त प्रदर्शन होते हैं, से अधिक अंतिम रूप में हम कुछ कहने की स्थिति में नहीं हैं। हमारे अतीत में ज्ञात, अनुभूत या घटित विषयों को संजोए रखने वाले चित्त के व्यापार की पहचान पतंजलि ने स्मृत नामक पांचवीं वृत्ति के रूप में की है। वस्तुतः यह वृत्ति हमारे अतीत का जीवंत दस्तावेज है। हमारे चेतन और अवचेतन में पड़ी हजारों जानकारियां समय–समय पर प्रकट हो कर मनुष्य का हित–अहित करती रहती हैं। यह वृत्ति अति संबल प्रदायक भी है तथा बेहद उत्तेजक और उकसाऊ भी है। यह हिंसा निवृत्ति का भी आधार बन सकती है। मुनि पतंजलि ने इस सभी प्रवृत्तियों को सुखदायी और दुःखदायी दोनों प्रकार की कहा है। सुख और उत्कर्ष के आकांक्षी जनों से योग शास्त्र के अनुशास्ता वृत्तियों के प्रवाह को नियंत्रित करने की अपील करते हैं। वृत्ति निरोध के अभियान को बाधित करने वाले विक्षेपों, तत्वों से भी सावधान रहने का आचार्य ने साधक को परामर्श दिया है। ये विक्षेप संख्या में नौ हैं– क्रमशः– व्याधि, सत्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रांतिदर्शन, अलब्धभूमिकत्व तथा अनवस्थित्व। इसके साथ ही चार प्रकार के सहविक्षेप और भी हैं। जिनका साधक को विक्षेपों के साथ ही सामना करना पड़ता है। ये हैं क्रमशः दुख, दौर्मनस्य, अंगमेजयत्व और श्वास प्रश्वास।

मुनि पतंजलि के मन की कार्यप्रणाली को प्रभावित करने वाले तत्वों का अध्ययन करते हुए पंच क्लेशों के रूप में एक और महत्वपूर्ण जानकारी दी है। वृत्तियों के विकार

टिप्पणी

उत्पन्न कर मन को व्याधियों का आगार बना देने में अविद्या ही शेष चारों क्लेशों की जन्मदाता और परिपोषक है। इसे अन्य क्लेशों का क्षेत्र या खेत कहा गया है। अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश में अविधा का ही बीज है। हम इन्हें अविधा की शाखाएं—प्रतिशाखाएं भी कह सकते हैं। समस्त दुखों, तनावों, उग्रताओं, दुर्भावनाओं, दुराचरणों, कुटिलताओं आदि के मूल में अविधा ही तो है। अपने मूल चरित्र में अविधा अयथार्थ की अभिभावक है। प्रसिद्धि की तीव्र उत्कंठा, उसके पूरा न होने पर क्रोध और प्रतिशोध का एक संपूर्ण कार्यक्रम अस्मिता की प्रतिच्छाया में निरंतर चलता है।

राग

सुखद अहसास देने वाली वस्तु की अतिशय आकांक्षा राग है। तृष्णा और आसक्ति इसी के रूप हैं। राग की प्रबलता अति सांसारिक संलग्नता को उत्पन्न करती है। विषयगामी सांसारिक संलग्नता का परित्याग कर प्रव्रजित हो जाने वाले संन्यासियों को दिए जाने वाले सम्मानजनक विशेषणों में वीतराग भी एक है। यह वस्तुतः राग का ही उत्तर रूप है। इसके बिना राग विकसित ही न हो सकेगा। अभिनिवेश के रूप में पांचवां और अंतिम क्लेश समस्त आशंकाओं और भयों का अधिष्ठाता देवता है। संसार के स्वनामधन्य सुधारकों का सपना रहा है, भयमुक्त व्यक्ति और भयमुक्त समाज का। एक वैदिक प्रार्थना व्यापक रूप में भय से विमुक्ति की कामना करती है कि हम न केवल पृथ्वी और अंतरिक्ष आदि में घटने वाली प्राकृतिक घटनाओं से सभी दिशाओं में अभय रहें अपितु हमें भिन्न—अभिन्न, ज्ञात—अज्ञात, प्रत्यक्ष—परोक्ष, रात—दिन आदि सभी से अभय प्राप्त हो। सभी आशाएं हमारी मित्र हों। व्यक्ति जिस वस्तु से जितना अधिक डरता है वह वस्तु उतनी ही अधिक उसके मन पर भयात्मक आक्रमण करती है। रात को उठ—उठ कर खिड़की—दरवाजों के बंद होने को बार—बार जांचता है, चौकीदार घूम रहा है या नहीं— इसकी जांच करता रहता है। ऋषि पतंजलि इसका चरम मृत्यु के भय में देखते हैं। वस्तुतः सभी भयों के मूल में मृत्यु का भय ही सक्रिय है।

योग शास्त्र के विशेषज्ञ भाष्यकार मुनि व्यास इन सभी क्लेशों को विवेक की अग्नि, जिसे वह प्रसंख्यान अग्नि कहते हैं, में डाल कर दग्धबीजवत् कर देने का परामर्श देते हैं। जला हुआ बीज जैसे अंकुरण की योग्यता नहीं रखता उसी प्रकार विवेक की अग्नि में पड़ कर अविधादि क्लेशों की दुख प्रजनन क्षमता समाप्त प्राय हो जाती है। सूत्रकार आचार्य की एक सलाह यह भी है कि क्लेशों पर उनकी प्रथमावस्था में ही वार करना हितकर है। क्लेश के परिपुष्ट हो कर आदत या स्वभाव का हिस्सा बन जाने पर उनका निराकरण दुःसाध्य हो जाता है। अविधा के क्षेत्र में पैदा होने वाले इन क्लेशों के विभिन्न स्तरों का उल्लेख योग दर्शन में उपलब्ध है।

मनोवृत्तियां

मनोविज्ञान, मनोन्माद, मनोभय, मनः अवसाद आदि की सुगठित श्रृंखला मनोवृत्तियों के रूप में प्रवाहमान है। आधुनिक दिनचर्या और जीवनचर्या के चलते यह श्रृंखला निरंतर विकसित होती जा रही है। समाज के सद्यः घटित वैश्विक संरचना और व्यवस्थागत दबावों ने इसे और भी जटिल बना दिया है।

सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और धार्मिक व्यवस्था तथा प्रचलनों के कारण वृत्तियों के विषयों का रूपांतरण तो होता रहता है, परंतु वृत्तियों के मूल चरित्र में कोई बदलाव नहीं आता। वृत्तियों के उपराम की प्रक्रिया वृत्तियों के रूपांतरण से प्रारंभ होती है। विषयोन्मुखी वृत्तियों का ईशोन्मुखी हो कर प्रवाहित होना ही इसका

टिप्पणी

रूपांतरण है। विषय–चिंतन से यदि विलगाव न हो सका तो श्रीकृष्ण सावधान करते हैं कि क्रमशः विनाश की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाएगी। प्रथमतः विषय–चिंतन। विषय–चिंतन के फलस्वरूप उनमें आकर्षण से काम, काम से क्रोध, क्रोध से सम्मोह, सम्मोह से स्मृति भ्रम, स्मृतिभ्रम से बुद्धिनाश और सर्वनाश तक फैली। अतः वृत्तियों का रूपांतरण कर इनका उपराम करना ही होगा। हम देख सकते हैं कि चित्त वृत्तियों का नियंत्रण योगचर्या की कितनी अनिवार्य शर्त है। यही वह बिंदु है जहां से 'योग' साधक बहिरंग योग से अंतरंग योग में प्रवेश कर रहा होता है। यद्यपि यह आसान नहीं है। योग्य शिष्य ने भी इस काम को वायु को गठरी में बांधने जैसा कह अपनी असमर्थता प्रकट कर दी थी। अर्जुन की मुश्किल मन की चंचलता से भी अधिक उसका तीव्र बलवान और दृढ़ होना है। चंचल मन यदि मंद, निर्बल और मृदु होता तब खतरा अधिक नहीं था लेकिन चंचल मन की विषयों के प्रति तीव्रता, बलवत्ता और दृढ़ता ही मनोनिग्रह की प्रक्रिया को चुनौतीपूर्ण बनाते हैं।

मनोवृत्तियां बहुधा शारीरिक और मानसिक आवश्यकताओं को व्यसन के रूप में प्रतिस्थापित कर देती हैं। पेट की भूख तृप्त होने के बाद व्यक्ति में प्रायः नाम की भूख जाग उठती है। मानसिक असंतुष्टि अपने प्रचंड रूप में अभिव्यक्त हो कर अमानवीयताओं को ही जन्म देती है। महत्वकांक्षाओं के सुनहरे आवरण में जब तब प्रकट होती ये मानसिक अतृप्तियां मनुष्य के संपूर्ण व्यवहार को अंततः अहं केंद्रित बना देती हैं। सारी संवेदनाएं, सारी सदाशयता, सारी उर्वरकता और संपूर्ण रचनात्मकता इन प्रतिक्रियाओं में कहीं खो जाती है। व्यक्ति यंत्र बन जाता है, समाज भीड़ बन जाता है, स्वर कोलाहल बन चलते हैं। संवाद विवाद का रूप लेता है, पक्ष गिरोह में स्थापित हो जाते हैं। धार्मिक लोग तमाशाई बन बैठते हैं और तीर्थ स्थल अड्डों के रूप में विकसित हो चुकते हैं। क्या इसे रोकना नहीं होगा? निश्चय ही इसे रोकना होगा। इस तरह के व्यक्ति और समाज की संरचना के मूल में काम कर रही मनोवृत्ति को रोकने का आह्वान ही 'योग' है। निश्चय ही यह सरल नहीं है। बस साहसपूर्ण संकल्प और उसके अनुसरण की आवश्यकता भर है।

'योग' शास्त्र ने चित्तवृत्तियों, मनोवृत्तियों के संयमन, संरक्षण और निरोधन की नितांत वैज्ञानिक प्रक्रिया का व्याख्यान किया है। योग के बहिरंग साधनों के सेवन से मन योगचर्या के प्रति उत्सुकता से भर चुकता है। यमों के रूप में सार्वभौम विचार की विद्यमानता से मन की दुश्चेष्टाएं निर्बल पड़ने लगती हैं। उसको सुदृढ़ बनाने के उपाय विकसित करने में योगशास्त्र का सर्वाधिक योगदान है। मुनि पतंजलि इसके लिए अभ्यास और वैराग्य के निरंतर अवलंबन का परामर्श देते हैं।

मनोनिग्रह को दुःसाध्य बताने वाले मोह ग्रस्त अर्जुन को भी योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अभ्यास की प्रेरणा दी थी। अभ्यास के विषय में अवश्य समझ लेना चाहिए कि यह दीर्घकाल तक निरंतर किया जाएगा तभी सफल होगा। अभ्यास को देख कर हम सहज ही अनुमान लगा सकते हैं। जैसे संवेदनशील अभियान में अभ्यास के प्रति कितनी गंभीरता या सावधानी रखनी होगी। यह नितांत आंतर भाव है। राम मुक्ति को पतंजलि पर वैराग्य कहते हैं। जो प्रकृति पुरुष विषयवत से उत्पन्न ज्ञान होता है। अपने और अपने चित्त के स्वरूप की भिन्नता जैसे ही संसार में मग्न मानव अविद्या के कारण चित्त स्वरूप और चित्त की कामनाओं को अपनी कामनाएं मानता है पर विवेक का प्रकाश उसको देता है।

टिप्पणी

वृत्तिनिरोध के मार्ग में आने वाले विघ्नरूपी विक्षेपों का उल्लेख पूर्व में हो ही जाता है। अनुष्ठाता के लिए मुनि पतंजलि ने लोक–व्यवहार प्रतिषिद्ध नहीं किया है। लोक–व्यवहार बनाए रखने के लिए मैत्री, करुणा, मुदित और उपेक्षा के रूप में चार व्यवहारों का 'योग' कर सामान्य व्यवहार में विभिन्न प्रवृत्तियों वाले व्यक्तियों के साथ मैत्री, करुणा, मुदिता आदि चित्त प्रसाधन के महत्वपूर्ण घटक हैं। सुखी व्यक्तियों से मैत्री, दुखियों के साथ करुणा और दया, पुण्यशालियों मुदित ओर प्रतिगामी मानसिकता वाले व्यक्तियों के साथ उपेक्षा का व्यवहार 'योग' मार्ग से दिया जाता है।

'योग' का अनुष्ठान समस्त उद्वेगों को निरस्त कर मन को संबल प्रदान करता है। आश्चर्यजनक अभिवृद्धि कर देता है, जिसके फलस्वरूप जीवन में संतुलन और आनंद का व्यवहार आता है। आधुनिक मनोविज्ञान संतुलित व्यक्तित्व के लिए जिन नियमों के अनुपालन का निर्देश देता है वे योग के समक्ष बहुत ही सतही हैं। योगजन्य संकल्प शक्ति व्यक्तित्व के असाधारण गुणों से व्यवहार करके झंझावात में मन की नाजुक तरंगों को सुरीली बनाए रखे आज के समय में साधरण 'योग' है।

महानगरीय जीवन में कमजोर पड़ते सामाजिक ढांचे, सुविधाओं की बढ़ती प्यास मन की टूटन और दुखद स्मृतियों की चुभन के फलस्वरूप पैदा होते ही रूप ले चुके हैं। बेचैनी, अकारण क्रोध, व्याकुलता, अवसाद, मानसिक एकाग्रता, चिड़चिड़ापन, नींद का ठीक से न आना और बोझिल रहना यह सब तनाव और रक्तचाप जैसी व्याधियों का उत्पादक भी है। उसी प्रकार क्षण–क्षण में विभिन्नता वाली मनोविकारों की लहरें, कभी सौम्य और कभी क्रूर विकृतियों को जन्म देती हैं। तनाव की अपनी एक उठने–बैठने की मुद्राएं, व्यवहार में आए परिवर्तन तथा मांसपेशियों से प्राप्त हो रहे संकेतों से तनाव को भांप लेना कठिन नहीं है।

तनाव मुक्ति

तनाव से विमुक्ति के लिए एक स्वर से सभी विशेषज्ञ ध्यान की अनुशंसा करते हैं। पाश्चात्य मनोचिकित्सक 'योग' का प्रचुर प्रयोग कर रहे हैं। 'गाइडेड रिलेक्सेशन' के रूप में तनावग्रस्त व्यक्ति को शवासान में लिटा कर प्राण और मन की क्रियाओं को निर्देशों द्वारा संचालित करवाया जाता है। यद्यपि यह ध्यान की बनावटी क्रिया है, पुनरपि यह यथेष्ठ लाभ दे रही है।

शरीर के जिन स्थानों में धारणा की गई है, उन्हीं स्थानों में चित्त की एकतानता को ध्यान कहते हैं। हम देख सकते हैं कि धारणा और ध्यान एक ही प्रक्रिया का पूर्वापर भाग है। ध्यान बहुत व्यापक शब्द है। यद्यपि पतंजलि एक नियत अर्थ में ही इसका प्रयोग करते हैं।

योग शास्त्र ध्यान की एकाधिक विधियों को इंगित कर ध्यानविधि के चयन को पूर्ण स्वतंत्रता देता है। ध्याता, ध्यान विधि का चयन रुचि के अनुसार ही करता है। ध यान और रुचि का घनिष्ठ संबंध है। ध्यान के अभ्यास से व्यक्ति में मन को तत्क्षण एक विषय से हटा कर दूसरे विषय में लगाने की महती योग्यता आ जाती है।

तनाव की संभावना के क्षणों में वह अपने ध्यान को स्थानापन्न कर लेता है। जय–पराजय, हानि–लाभ, मान–अपमान के अवसरों पर पैदा होने वाले अतिरेक को नियंत्रित कर लेता है। ध्यान से ही व्यक्ति धैर्यशील बना रह सकता है।

टिप्पणी

योग का अध्यात्मिक पक्ष

संपूर्ण योग के अनुशास्ता मुनि पतंजलि की दृष्टि में 'योग' के तीन ध्येय हैं–

1. चित्तवृत्तियों का निरोध कर समाधिस्थ होना।
2. शरीरस्थ क्लेशों का परिशमन।
3. स्वस्वरूपावस्थित हो कैवल्य की प्राप्ति।

इनमें शरीरस्थ क्लेशों का परिशमन साधक अन्नमय एवं प्राणमय कोश की साधना के द्वारा तथा चित्तवृत्तियों का निरोध प्राणमय, मनोमय एवं विज्ञानमय कोश की साधना कर प्राप्त करता है। विज्ञानमय कोश की साधना का मुख्य अवयव बुद्धि है। जैसा कि कहा जा चुका है कि मन की निर्णय प्रक्रिया का नाम ही बुद्धि है। मनोमय कोश इससे परिपूर्ण है। इसी से प्रेरणा पा कर कर्मों का विस्तार होता है।

विज्ञानमय कोश की साधना

बुद्धि की प्रखरता या उसका अप्रतिहत होना ही विज्ञानमय कोश की साधना है। बुद्धि का प्राथमिक परिष्कार सांसारिक सफलताओं का प्रदायक है, बुद्धि का माध्यमिक परिष्कार चित्तवृत्तियों के निरोध का साधक है, बुद्धि का उच्च परिष्कार धारणा नामक योगांग को एवं उच्चतर परिष्कृत ध्यान को सिद्ध करता है। बुद्धि का उच्चतम परिष्कार ही समाधि के रूप में अभिव्यक्त होता है। योगेश्वर श्रीकृष्ण ने स्थितप्रज्ञ के रूप में बुद्धि की इस स्थिति का वर्णन अर्जुन के समक्ष किया है।

चित्त प्रसादन से प्राप्त निर्मल बुद्धि द्वारा अविद्यादि क्लेशों का सुगमतया निराकरण हो जाता है। इन अविद्यादि क्लेशरूपी अवरोधों के हट जाने और वृत्तियों के शांत हो जाने पर साधक ध्यान मार्ग में अबाध गति से बढ़ता हुआ समाधि में प्रवेश कर जाता है। ध्यान से समाधि में प्रवेश कर रही बुद्धि वस्तुतः संसार से अध्यात्म में प्रवेश कर रही होती है। समाधि में पहुंच कर भी बुद्धि का रूपांतरण अवरुद्ध नहीं होता।

प्रारंभिक समाधि के फलस्वरूप बुद्धि का जो परिष्कृत क्रांतिदर्शी रूप प्रकट होता है उसे 'ऋतंभरा प्रज्ञा' का अन्वर्धक संबोधन मिला है। समाधि में पहुंचते–पहुंचते ध्येय मात्र का अस्तित्व रह जाता है। 'ध्याता' और 'ध्यान' स्वरूप से शून्य जैसे हो जाते हैं।

आनंद के स्रोत का अवलंबन

विशेष अवधेय है कि समाधि में उतरते समय आनंद के स्रोत–आनंद स्वरूप परमात्मा का ही ध्येय के रूप में अवलंबन किया जाता है। परब्रह्म का ध्यान करते–करते समाधिस्थ साधक को न तो अपना भास रहता है और न ही इस तथ्य का कि वह ध्यान कर रहा है। केवल ध्येय के रूप में अवलंबित परब्रह्म ही अर्थमात्र से भासता है। समाधि में ठहरा साधक शरीर के आनंदमय कोश की परिधि में पहुंच चुका होता है। समाधि के स्तरों के साथ ही प्राप्त होने वाले आनंद का स्तर भी परिवर्तित होता रहता है। समाधि की दृढ़ता के साथ ही साधक अपने और परब्रह्म के स्वरूप के विषय में उत्तरोत्तर निर्भ्रांत होता जाता है। मुनि पतंजलि ने समाधि के संप्रज्ञात और असंप्रज्ञात नामक दो मुख्य भेद करके पुनः इन दोनों के कई उपभेदों का उल्लेख किया है। यह सब भेद–उपभेद समाधि के विभिन्न स्तरों को ही अभिव्यक्त करते हैं। स्मरण रखना चाहिए कि समाधि से भी प्रज्ञा उत्पन्न होती है। संप्रज्ञाता एकाग्रता के अतरंग भेद निर्वितर्क समाधि के फलस्वरूप ऋतंभरा प्रज्ञा के प्राप्त हो जाने से साधक को अन्य

टिप्पणी

विधियों से ज्ञान अर्जित करने की आवश्यकता नहीं रह जाती। असंप्रज्ञता एकाग्रता के चरम निर्बीज समाधि तक पहुंचते–पहुंचते ऋतंभरा प्रज्ञा और उससे उत्पन्न संस्कार भी मूल्यवान नहीं रह जाते। इस समाधि में समस्त संस्कार दग्ध बीजवत् हो जाते हैं। मनुष्य के अपुनर्भव का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। निर्बीज समाधि का चरम है। यह स्थिति मुक्ति है, यही कैवल्य है, यही अपवर्ग और मोक्ष है, यही निर्वाण है। समस्त दुःखों का यहां उपराम हो जाता है। पुरुषार्थ–चतुष्टय के व्रत की यहां पूर्णाहुति हो जाती है। यह शाश्वत अहोभाग्य है। यह आध्यात्मिक जीवन की कृतकार्यता है। यह योगानुष्ठान का परम प्रसाद है।

पार्थिव व अपार्थिव जीवन

जीवन की भौतिक और आध्यात्मिक वर्गों में बांट कर देखने की प्रवृत्ति जीवन की अखंड धारा को विखंडित करती है। जीवन के दो प्रवाह नहीं हैं। अतः जीवनयापन के परस्पर विरुद्ध दो मानक भी नहीं हो सकते। वस्तुतः जीवन को बांट कर देखने वाली प्रवृत्ति के मूल में दो विरोधी जीवन शैलियों को स्वीकृत कराने की भावना निहित है। जीवन के विराट प्रवाह में आयु के विशेष पड़ावों पर वृत्ति रूप अनेक लघु धाराएं आकर एकरूप होती रहती हैं। योगानुष्ठान इनके प्रभाव को निष्क्रिय करता है। परंतु योग के संरक्षण से दूर जाकर जीने वाला व्यक्ति जीवन की इन उपधाराओं से स्वयं को अप्रभावित नहीं रख पाता। यहीं से दुर्भाग्यों का सूत्रपात होता है। यह अनिवार्य रूप से तपस्या पूर्ण नैतिक जीवन की मांग करता है। योगानुष्ठान तपस्यापूर्ण नैतिक जीवन का ही आचरण है।

योग की तत्व–मीमांसा इस जीवन को प्रथम और अंतिम नहीं मानती। यह निरपेक्ष नहीं है। यह जीवन न जन्म से प्रारंभ होता है और न मृत्यु पर समाप्त होता है। यह तो शाश्वत जीवन–प्रवाह की कालिक अभिव्यक्ति मात्र है। यह जीवन पूर्व जीवन का परिणाम भी है और आगामी जीवन की प्रस्तावना भी, यह उस खेत के सदृश है जिसमें से पूर्ववपित बीज से तैयार फसल को काटा भी जा रहा है और आगामी फसल के लिए बीजवपन भी किया जा रहा है। इन अर्थों में अपना आगामी जीवन मानव मात्र को स्वयं निर्धारित करने की पूर्ण स्वतंत्रता है। योगशास्त्र कर्माशय और संस्कारों के रूप में इसका व्याख्यान करता है। भारतीय दर्शन ने धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के रूप में पुरुषार्थ, चतुष्टय का वर्णन किया है। यह जीवन की अखंड धारा है। पुरुषार्थ चतुष्टय में अर्थ, काम यदि सामाजिक और पारिवारिक मूल्य हैं तो धर्म और मोक्ष आध्यात्मिक। धर्म और मोक्ष के द्वारा अर्थ और काम को कोष्ठगत रखने का तात्पर्य ही यह है कि सामाजिक और पारिवारिक मूल्यों के लिए आध्यात्मिक मूल्यों की उपेक्षा नहीं की जा सकती। सामाजिकता को विकृत होने से बचाने के लिए ही उस पर आध्यात्मिकता का अनुशासन और वर्चस्व है। योगशास्त्र यमों के रूप में अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह जैसी सार्वभौम आध्यात्मिक प्रवृत्ति के द्वारा सामाजिक ध्येयों को प्राप्त करने की प्रेरणा देता है। योग में सामाजिकता आध्यात्मिक जीवन का ही अंग है।

योग और मनोस्वास्थ्य

संपूर्ण जगत में जबसे औद्योगिक क्रांति ने अपने पैर पसारने प्रारंभ किए तभी से सामाजिक एवं आर्थिक परिवर्तन सामने नजर आने लगे। भारत वर्ष की 70 प्रतिशत जनसंख्या आज भी गांवों में निवास करती है तथा कृषि ही उसका एकमात्र जीविकोपार्जन का साधन है। प्राचीन समय में संयुक्त परिवार प्रथा थी जिसमें परिवार का सबसे बड़ा

व्यक्ति मुखिया होता था, सभी उसी के निर्देशानुसार कार्य किया करते थे। लेकिन औद्योगिक विकास जो कि पश्चिमी देशों की देन है ने भारत के सामाजिक एवं आर्थिक ढांचे पर अपने बुरे प्रभावों को दिखाना शुरू कर दिया। जो कभी छोटे–छोटे कस्बे हुआ करते थे वह शहरों और महानगरों में बदल गए। गांवों में रहने वाले व्यक्ति शहरों में रोजगार पाने की इच्छा से पलायन करने लगे।

टिप्पणी

आर्थिक स्थिति मजबूत न होने के कारण तथा कोई अन्य विकल्प न होने के कारण वह ऐसा कदम उठा रहे थे। ये ग्रामीण वर्ग शहर में आकर बड़ी–बड़ी मिलों एवं कारखानों में मजदूर के रूप में कार्य करने लगे। ग्रामीण लोग रोजगार पाने की इच्छा से शहरों की ओर दौड़ने लगे। शहरों की ओर रुख करने के कारण संयुक्त परिवार टूटने लगे ओर धीरे–धीरे एक नई प्रणाली जिसे एकांकी परिवार का नाम दिया गया, प्रारंभ होने लगी जिसमें पारिवारिक सदस्यों के नाम पर सिर्फ माता–पिता तथा उनके बच्चे होते हैं। मानसिक तनाव को पैदा करने में औद्योगिक विकास का यह सामाजिक परिवर्तन एक बहुत महत्वपूर्ण कड़ी है क्योंकि शहर में बसे हुए इस केंद्रीय परिवार का सामाजिक वातावरण गांव के प्राकृतिक एवं स्वच्छंद वातावरण से एकदम भिन्न है। भिन्नता इसलिए है कि संयुक्त परिवार के अंतर्गत कमियां होने के बावजूद भी परिवार का हर सदस्य एक दूसरे से जुड़ा हुआ होता था तथा उसे भावनात्मक एवं आर्थिक सुरक्षा भी प्राप्त हो जाती थी। लेकिन एकाकी परिवारों में अब भावनात्मक एवं आर्थिक सुरक्षा की कमी बनी रहती है।

औद्योगिक विकास के दुष्परिणामों ने केवल संयुक्त परिवार प्रथा को ही नहीं तोड़ा बल्कि अनेक बीमारियों को भी जन्म दिया। संसाधनों की सीमितता एवं जनसंख्या की शहरों में निरंतर वृद्धि इसका प्रमुख कारण बनी। संसाधनों के उपर्युक्त मात्रा में न होने के कारण अत्यंत कम जगह एवं गंदगीयुक्त स्थान पर परिवार रहते थे। बहुत कम स्थान पर एक साथ कई व्यक्तियों के रहने के कारण भावनात्मक एवं वातावरणीय प्रदूषण तथा आर्थिक समस्याएं जन्म लेने लगीं। इन समस्याओं ने असुरक्षा की भावना को जन्म दिया और व्यक्ति इस असुरक्षा की भावना से बचने के लिए व्यसन जैसी बुरी लतों का शिकार होने लगा।

भारत वर्ष जब से गुलाम हुआ तभी से वह संस्कृति की बहुमूल्य धरोहर से अलग होता चला गया। लेकिन 19वीं शताब्दी में अर्थात 1857 के आसपास स्वामी दयानंद तथा स्वामी विवेकानंद जी ने सामाजिक एवं सांस्कृतिक आंदोलन चलाकर भारत में पुनः आध यात्मिक जागरण का बिगुल बजाया। दूसरे अन्य संतों ने इसे 20वीं शताब्दी में और आगे बढाने का कार्य किया। भौतिकवाद, औद्योगिक विकास, संयुक्त परिवारों का विघटन, एकांकी परिवारों का बढ़ना, ग्रामीण जनता का शहरों में बसना आदि ने आध्यात्मिक पक्ष को कमजोर कर दिया और तनाव की स्थिति उत्पन्न होती चली गई। चिकित्सा सर्वेक्षण से यह स्पष्ट होता है कि उन्नीसवीं सदी में संक्रमण (infection) से मौतें ज्यादा होती थीं परंतु बीसवीं सदी में चिकित्सा विज्ञान की उन्नति होने के कारण संक्रमण से तो मौतें कम हो गईं हैं परंतु तनाव (Stress) से होने वाली मौतें लगातार बढ़ती जा रही हैं। तनाव से उत्पन्न होने वाली प्रमुख बीमारियां निम्न हैं–

1. उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure)
2. मधुमेह (Diabetes)
3. मोटापा (Obesity)

4. ह्रदय रोग (Heart Disease)

5. पेट के रोग (Stomach Disease)

6. कोलेस्ट्रॉल की अनियमितता (Irregularity of Cholesterol)

टिप्पणी

सर्वेक्षण इस बात की पुष्टि करते हैं कि ये सभी बीमारियां या तो तनाव के कारण उत्पन्न होती हैं या तनाव जन्य परिस्थितियों के कारण। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान इस बात को तो स्वीकार करता है कि बीमारियों का कारण तनाव है परंतु तनाव दूर करने का अभी तक कोई उपाय नहीं निकल पाया है। योग, प्राणायाम से साध्य एवं असाध्य रोगों का सफलतापूर्वक इलाज तो किया जा रहा है परंतु योग की सीमित क्रियाएं असीमित असाध्य रोगों को कैसे ठीक करती हैं इसकी कोई प्रमाणिक एवं ठोस व्याख्या नहीं हो पा रही थी। लेकिन जब व्यापक स्तर पर तनाव हार्मोन्स के ऊपर योग के प्रभाव को देखा गया तो समस्या का समाधान यह मिला कि योग साधना ही तनाव को दूर कर सकती है।

मनोस्वास्थ्य एवं तनाव (Mental Health & Stress)

तनाव मस्तिष्क पर सीधा प्रभाव डालता है क्योंकि मानव मस्तिष्क ही भावनाओं, विचारों, सपनों तथा उत्तेजनाओं का सृजन होता है। जब कभी भी मस्तिष्क अपनी क्षमता से अधिक कार्य करता है तो मानसिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। मानसिक तनाव में स्नायु तंत्र एवं हारर्मोस का विशेष स्थान पाया जाता है। मानसिक तनाव हारमोंस का अनियंत्रित तथा अनियमित स्राव कर देता है और परिणामस्वरूप अनेक प्रकार के रोग शरीर में प्रवेश कर जाते हैं। मानव मस्तिष्क अन्य जीवधारियों की अपेक्षाकृत भिन्न प्रकार का है क्योंकि इसमें सोचने, समझने, कल्पना करने, आविष्कार करने, विश्लेषण करने की अद्‌भुत क्षमता है। जहां मानव मस्तिष्क अनेक सृजनात्मक कार्य कर सकता है वहीं तनाव इस सोचने की प्रक्रिया का एक अंग बन जाता है।

तनाव के कारण एवं कारक

तानव के उत्पन्न होने का कारण सेरेबुल कार्टेक्स एवं भावनात्मक कार्टेक्स के मध्य असंतुलन होना है। तनाव के उत्पन्न होने के दो प्रमुख कारण हैं– 1. बाह्‌य कारण और 2. आंतरिक कारण।

1. बाह्‌य कारक– बाह्‌य कारण मनुष्य की दिनचर्या, कार्य पद्धति एवं आस–पास के वातावरण के कारण उत्पन्न होता है, जैसे–

- **आर्थिक समस्या**– वित्तीय समस्या एवं आर्थिक परिवर्तन के कारण भी मानसिक तनाव उत्पन्न होता है। जैसे– धन की कमी, बचत का सही प्रकार से प्रयोग न होना तथा सरकार की आर्थिक नीतियां आदि तनाव उत्पन्न करती हैं।
- **संवादशीलता**– व्यक्ति के अपने विचार तथा भावनाओं को प्रकट करने का तरीका भी तनाव का कारण बन सकता है। व्यक्ति की संवादशीलता घर तथा कार्यस्थल के वातावरण पर निर्भर करती है। अगर वातावरण अनुकूल नहीं है तो वह तनाव का कारण बन जाता है।
- **समाज एवं परिवार**– समाज एवं परिवार के सदस्यों से स्नेहपूर्ण व्यवहार न मिलना, आपस में संवाद या बातचीत कम होना, अपनी भावनाओं को व्यक्त न कर पाना, मूल–मान्यताओं में भिन्नता होना आदि तनाव को उत्पन्न करने में

टिप्पणी

सहयोग प्रदान करते हैं। परिवार तनाव को निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। कुछ व्यक्ति कार्यस्थल पर तो ठीक रहते हैं पर घर आकर तनाव में आ जाते हैं। परिवार को व्यक्ति का तनाव कम करना चाहिए क्योंकि परिवार प्रथम सामाजिक समूह है जो व्यक्ति को प्यार, प्रेरणा और सुरक्षा देता है एवं उसकी उन्नति के विषय में सोचता है।

- **वातावरण**– जनसंख्या का अत्यधिक बढ़ना, प्रदूषण, तापमान में वृद्धि, जंगलों का कटना और उसके स्थान पर इमारतों का बनना, महामारी का समय–समय पर फैलना आदि मानव जीवन में तनाव उत्पन्न करते हैं।
- **मूलभूत मान्यताएं एवं सामाजिक परिवर्तन**– आधुनिक युग में नई एवं पुरानी पीढ़ी की मूल मान्यताओं में काफी परिवर्तन आ चुके हैं जो तनाव उत्पन्न करते हैं। नई पीढ़ी पुराने रीति–रिवाजों तथा परंपराओं को स्वीकार नहीं करती है और दूसरी तरफ पुरानी पीढ़ी नए विचारों को आत्मसात नहीं करती है जिसके कारण कलह एवं तनाव हो जाता है।
- **तकनीकी क्षेत्र में प्रगति**– आर्थिक क्षेत्र एवं तकनीकी क्षेत्र में प्रगति के कारण मनुष्यों की जीवन शैली में बहुत अधिक परिवर्तन आ गया है। आधुनिक शैली देखने और सुनने में तो बहुत अधिक अच्छी लगती है परंतु यह तनाव अधिक दे रही है। तकनीकी एवं औद्योगिक प्रगति के कारण शहरों में भीड़–भाड़ ज्यादा हो रही है, व्यवसाय तेजी से बढ़ रहे हैं, मनुष्य शहरों की ओर आकर्षित हो रहे हैं, शहरों की चकाचौंध उनको आने को मजबूर कर रही है जिसके कारण उनका शोषण हो रहा है। अपराध बढ़ रहे हैं, भ्रष्टाचार का बोलबाला है, लड़कियों का जीवन असुरक्षित होता जा रहा है।
- **भौतिक अपेक्षाएं**– धन के महत्व को व्यक्ति बचपन से ही देखता है। धन मनुष्य की महत्वाकांक्षाओं एवं बाह्य व्यक्तित्व को विकसित करने के लिए अत्यंत आवश्यक है। धन के बिना जीवन में कोई भी कार्य संभव नहीं है। घर से बाहर होने पर आप पानी भी बिना पैसे के नहीं पी सकते हैं।
- **कार्य स्थल**– कार्य स्थल भी तनाव का कारण बन सकता है। जैसे स्पष्ट कार्य प्रणाली का निर्धारण न होना, किए गए कार्य की प्रशंसा न मिलना, व्यक्ति का उस स्थान पर बनाये गए नियमों से संतुष्ट न होना, अपनी योग्यता एवं रुचि के अनुकूल कार्य न मिलना, आवश्यकता से अधिक कार्य के घंटे होना और उनके अनुसार वेतन न मिलना, वेतन वृद्धि न होना आदि।
- **राजनैतिक स्थिति**– किसी संस्थान, राज्य अथवा देश की राजनीति वहां के नौकरी पेशा एवं व्यवसाय करने वाले व्यक्तियों पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालती है। ये परिस्थितियां भी तनाव उत्पन्न करने में सहयोग करती हैं।
- **मनोवैज्ञानिक तनाव**– उचित सफाई न होना, गर्मी या सर्दी अधिक होना, वातावरण एवं शहर के अनुकूल संसाधनों का अभाव होना, कार्य स्थल पर राजनीति, असुरक्षा का भाव, आपसी शत्रुता का वातावरण होना ये सभी कारण मनोवैज्ञानिक तनाव उत्पन्न करते हैं।
- **प्राथमिकताएं**– व्यक्ति क्या चाहता है, उसे क्या करना चाहिए? यह व्यक्ति के जीवन की विभिन्न स्थितियों पर निर्भर करता है। किसी भी व्यक्ति की प्राथमिकताएं उसके विश्वास, सामाजिक उत्तरदायित्व एवं मान्यताओं पर निर्भर करती है।

टिप्पणी

- **कर्तव्य एवं कार्य में परिपूर्णता की भावना**— परिवार, मित्रों एवं समाज के प्रति हम अपने उत्तरदायित्व को कितनी पूर्णता के साथ निभा सकते हैं, यह भी तनाव का कारण है।
- **सामाजिक अपेक्षाएं**— उच्च स्तर का व्यवसाय होना, नौकरी में उच्च पद पर होना, समाज में ऊंचा स्थान, संयुक्त परिवार आदि के कारण विभिन्न प्रकार की अपेक्षाएं जन्म लेती हैं जो तनाव का कारण बन जाती हैं।
- **भावनात्मक सहारा**— भावनात्मक सहयोग का अभाव भी तनाव को बढ़ाने में अहम भूमिका निभाता है। व्यक्ति अपने संबंधियों, पत्नी, बच्चों एवं अच्छे विश्वसनीय मित्रों से भी काफी उत्साह प्राप्त कर सकता है। इसके अभाव में उसे तनाव झेलना पड़ता है। परिवार विश्वास का आधार होता है।

2. आंतरिक कारक— मनुष अनुवंशिकीय एवं परिस्थिति जन्य घटकों से मिलकर बना है। अनुवंशिकीय कारणों पर हमारा कोई नियंत्रण नहीं होता है, परंतु ये मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य के लिए अत्यंत आवश्यक हैं। आनुवंशिकीय कारण व्यक्ति के विश्वास, आशाओं, व्यवहार एवं अपेक्षाओं को मूर्तरूप प्रदान करते हैं। आंतरिक कारण व्यक्ति के व्यवहार पक्ष को निर्धारित करते हैं। इसके निम्न कारण हैं—

- **माता—पिता का व्यवहार**— माता—पिता का व्यवहार, उनके अनुभव, आपसी संबंध, बच्चों के ऊपर अमिट छाप छोड़ते हैं जिसका हमारे व्यवहार पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है।
- **परिवार**— परिवार के दूसरे सदस्य जैसे— दादा—दादी, ताऊ—ताई, चाचा—चाची, भाई—बहन आदि के बीच आपसी संबंध एवं पारिवारिक परिवेश का किसी भी व्यक्ति की जीवनशैली पर अत्यधिक प्रभाव पड़ता है।
- **शारीरिक स्वास्थ्य**— व्यक्ति की आवश्यकताएं उसके मन एवं शरीर को बहुत प्रभावित करती हैं। संसाधनों के अभाव में सभी आवश्यकताएं या मांगे (demands) पूरी नहीं हो पाती हैं जो कि बुरी आदतों को जन्म देती हैं।
- **असंतुलित जीवन शैली**— असंतुलित जीवन शैली होने के कारण विभिन्न प्रकार के रोग उत्पन्न हो जाते हैं, जैसे— आंखों का कमजोर होना, सिर दर्द, मधुमेह, उच्च रक्तचाप आदि। ये सभी कारण हार्ट अटैक एवं लकवा जैसी परिस्थितियों को उत्पन्न कर सकते हैं। इसलिए तनाव के चरम पर पहुंचने से पहले ही उसे नियंत्रित करना आवश्यक है।
- **समाज**— सामाजिक संरचना, मूल मान्यताएं एवं अपेक्षाएं व्यक्ति के व्यवहार एवं आचरण को प्रभावित करती हैं।
- **वित्तीय संसाधन**— किसी व्यक्ति की वित्तीय स्थिति उसकी प्रतिष्ठा एवं सुरक्षा का प्रतीक होती है परंतु अधिक धन को व्यवस्थित कर सुरक्षित रखते हुए अपने सामाजिक स्तर को बनाए रखने के लिए तनावपूर्ण स्थितियों का सामना करना पड़ता है। यद्यपि मुद्रा सभी बुराइयों की जड़ मानी जाती है, परंतु मुद्रा की आवश्यकता जीवन में प्रत्येक कदम पर पड़ती है। जैसे— जीवनयापन, आवास, भोजन, आराम, मनोरंजन, शिक्षा, बच्चों की शादी तथा सुख के अन्य साधन आदि। अकुशल वित्तीय प्रबंधन, अविवेकशील विनियोग आदि तनाव को उत्पन्न करते हैं।

- **शिक्षित संस्थाएं**– व्यक्ति के व्यक्तित्व निर्माण में स्कूल एवं शिक्षकों की अहम भूमिका होती है। अच्छे शिक्षक एवं अच्छी संस्थाएं अच्छे व्यक्तियों का निर्माण कर देश की प्रगति में सहायक बनाते हैं। व्यक्ति का यदि ठीक प्रकार से निर्माण नहीं होता है तो वह जीवन भर तनाव में रहता है।
- **उच्च जीवन स्तर**– आज के आधुनिक युग में व्यक्ति का जीवन स्तर बहुत उच्च हो गया है। अनेक प्रकार के ऐशो–आराम के साधन, जैसे– फ्रिज, ए.सी, हीटर, कम्प्यूटर तथा अन्य आधुनिक साधन व्यक्ति के जीवन के अनिवार्य अंग बन गए हैं। व्यक्ति इन साधनों की प्राप्ति के लिए अपनी क्षमता से अधिक कार्य करने के कारण तनाव में आ जाता है।
- **मित्र एवं सहयोगी**– व्यक्ति समाज के इस वर्ग से सबसे अधिक नजदीक होता है। ये हमारे आपसी संबंध, व्यवहार तथा हमारे आंतरिक व्यक्तित्व पर प्रभाव डालते हैं।
- **साहित्य एवं मीडिया**– आधुनिक सामाजिक परिवेश में साहित्य एवं मीडिया, सामाजिक जिम्मेदारियां तथा अपेक्षाएं निर्धारित करने में महत्वपूर्ण भूमिका रखते हैं। परंतु दूरदर्शन पर अत्यधिक चैनलों का प्रसारण, समाचार पत्रों के अत्यधिक पेजों का होना, नकारात्मक सूचनाओं का प्रसारण होना व्यक्ति को तनाव के घेरे में ले आते हैं।
- **धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण**– धार्मिक एवं आध्यात्मिक वातावरण अनुशासन एवं विश्वास की आधारशिला होते हैं। धार्मिक परिवेश के अनुसार व्यक्ति स्वतः उत्साहित होकर कार्यों को करने में तत्पर रहते हैं। पवित्रता, नैतिकता, आध्यात्मिकता जीवन के महत्वपूर्ण घटक माने जाते हैं। ये सारे तत्व मिलकर व्यक्ति को स्थायित्व, मानवता एवं शांति प्रदान करते हैं। भगवान में विश्वास करके उसके नियम और निर्देशों को मानते हुए जीवन व्यतीत करना चाहिए। एक संतुलित व्यक्ति ही अपने जीवन में सामाजिक उत्तरदायित्वों का वहन करते हुए जीवनयापन कर सकता है।
- **व्यक्तिगत अनुभव**– बचपन में जब से माता–पिता एवं गुरुओं की शिक्षा प्रारंभ हो जाती है तभी से व्यक्ति के व्यवहार, सोच, लाभ–हानि, आशा–निराशा एवं उपलब्धियों के अनुसार मानसिक संरचना विकसित होती है। व्यक्ति भविष्य में जाकर इन्हीं अनुभवों के आधार पर अपनी समस्त क्रियाओं एवं प्रतिक्रियाओं को संपादित करता है।
- **कार्य की अवधि**– कुछ व्यक्तियों के लिए तनाव का प्रमुख कारण कर्म बन जाता है। इसे कार्य करने की अवधि के साथ नहीं जोड़ा जा सकता है। कुछ लोग एक दिन में सोलह से अठारह (16–18) घंटे कार्य करके भी खुश रहते हैं। इसके विपरीत कुछ लोग कम घंटे कार्य करके भी तनाव में रहते हैं। तनाव को कम करने के लिए सदैव अपने कार्य को आनंद के साथ स्वीकार करना चाहिए तथा अपने आपको अनुशासित रखना चाहिए।
- **व्यक्तिवाद एवं भौतिकवाद**– कुछ व्यक्ति पर्याप्त धन, अच्छा वातावरण, प्रेरणादायी कार्य, अच्छा परिवार होने के साथ–साथ दूसरों की मदद के लिए हमेशा तैयार रहते हैं लेकिन स्वयं को दूसरों से अलग दिखाने के चक्कर में

टिप्पणी

तनाव में आ जाते हैं। किसी भी व्यक्ति को इस परिस्थिति से अपने आपको दूर रखना चाहिए।

- **सामाजिक एवं सामुदायिक जीवन**– व्यक्ति एक सामाजिक प्राणी माना जाता है। इसके साथ–साथ वह सामाजिक ज्ञान का वाहक भी है। स्वस्थ एवं अच्छा सामाजिक वातावरण बहुत आवश्यक होता है। नए सामाजिक वातावरण में मित्रों, पड़ोसियों एवं परिवार का बहुत महत्व है जो व्यक्ति को प्यार एवं सामाजिक सुरक्षा प्रदान करते हैं।

तनाव के लक्षण

मानसिक तनाव की जांच करने के लिए अभी तक कोई पैमाना नहीं बनाया गया है। इसलिए इसके लक्षणों का अनुमान लगाना भी कठिन है परंतु फिर भी कुछ लक्षण तनाव बताने में मदद करते हैं–

1. **व्यावहारिक लक्षण**– तनाव के कारण व्यक्ति गलत आदतों की तरफ मुड़ जाते हैं, जैसे– शराब पीना, सिगरेट पीना, गुटका खाना, भांग, गांजा, चरस आदि का सेवन। इन सभी मादक पदार्थों का सेवन बढ़ता जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ और लक्षण जैसे– नाखून काटना, पैरों को हिलाना आदि भी मानसिक तनाव के व्यावहारिक लक्षण हैं।
2. **संवेदनशील लक्षण**– अधीरता, बेचैनी, भुला देना आदि संवेदनशीलता के लक्षण हैं।
3. **भावनात्मक लक्षण**– चिड़चिड़ापन, अधीरता या अत्यधिक आक्रामक होना, नींद न आना, बुरे स्वप्न आना, अवसाद की स्थिति का होना आदि मानसिक तनाव के भावनात्मक लक्षण हैं।
4. **शारीरिक लक्षण**– मांसपेशियों में तनाव, गर्दन या पीठ में दर्द, सांस का कम या ज्यादा होना, शारीरिक तनाव के लक्षणों की ओर इशारा करते हैं। मुंह सूख जाना, हाथों में अत्यधिक पसीना आना भी शारीरिक तनाव के लक्षण माने जाते हैं।

ये सभी लक्षण मनुष्य के तनाव को व्यक्त करते हैं। इनको जानने से मानसिक तनाव को पहचानना सरल हो जाता है।

तनाव का शरीर पर प्रभाव

तनाव की स्थिति में हमारा शरीर इस प्रकार की क्रियाएं करने लगता है जिससे स्पष्ट होता है कि व्यक्ति तनाव की स्थिति से गुजर रहा है। अत्यधिक तनाव शरीर एवं मस्तिष्क को प्रभावित करता है। कुछ ऐसे उदाहरण हैं, जैसे– व्यक्ति अपना स्थान बनाये रखने के लिए बहुत भारी वजन उठाते हैं, खेल–कूद में व्यक्ति ऐसे कारनामें कर चुके हैं जो कि खिलाड़ी स्वयं दुबारा नहीं कर सकते हैं। यह एक व्यक्तित्व के मनोविज्ञान पर बड़ी चुनौती है। जीवन में कभी–कभी व्यक्ति अपनी क्षमता से अधिक कार्य कर बैठते हैं और यह आगे चलकर तनाव का कारण बन जाता है। अधिकांशतः तनाव से जुड़ी चुनौतियां भी आती हैं जिसका जीवन से प्रत्यक्ष संबंध होता है। इसका सीधा संबंध संबंधों में संतुलन बनाना, भविष्य के लिए योजना बनाना, वित्तीय चिंताओं आदि से है। इसका संबंध रहन–सहन के तरीके में परिवर्तन तथा नई परिस्थितियों में पहुंचने से भी है। तनाव की स्थिति होने पर शरीर 'एडरीनल एवं कॉर्टिसोल' जैसे हार्मोन

टिप्पणी

छोड़ता है, जिनकी भूमिका तनाव में प्रतिक्रिया के लिए महत्वपूर्ण मानी जाती है। ये हार्मोन शरीर की हृदय गति और नाड़ी गति पर प्रभाव डालते हैं। अत्यंत तेज रक्त प्रवाह धमनियों को पतला कर देता है एवं तेज हृदय गति से रक्त–चाप भी बढ़ जाता है। एड्रीनल शरीर की मांसपेशियों को संकुचित कर देती है जिसके कारण ऑक्सीजन की खपत बढ़ जाती है एवं श्वास प्रक्रिया तीव्र हो जाती है। यह श्वास प्रक्रिया पर भी प्रभाव डालती है। तनाव के कारण शरीर पर निम्न दुष्परिणाम होते हैं–

- हृदय गति बढ़ जाना।
- सीरम कॉलेस्ट्राल का बढ़ना।
- धमिनयों में रक्त प्रवाह की गति में परिवर्तन।
- जी.एफ.आर. घटना।
- रक्तचाप बढ़ना।
- पेट में अम्ल बढ़ना।
- एस. कोरटीसोल का बढ़ना।
- मांसपेशियों में तनाव बढ़ना।
- श्वास गति बढ़ना।
- ऑक्सीजन की खपत बढ़ना।
- लार का सूखना।
- एडरीनल (Adrenaline) का बढ़ना।
- रक्त के थक्के के बढ़ने की संभावना।
- रक्त शर्करा बढ़ना।

अपनी प्रगति जांचिए

7. संक्रमण का संचरण रोग के वायुजनित माध्यम से होने की स्थिति क्या कहलाती है?

   (क) खाद्य जनित संचरण (ख) एयरबोर्न ट्रांसमिशन

   (ग) रक्तजनित संचरण (घ) कीटजनित संचरण

8. इंफ्लूएंजा (स्वाइन फ्लू) महामारी कब शुरू हुई थी?

   (क) 2009 (ख) 2015

   (ग) 2017 (घ) 2020

1.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (घ)
3. (ख)

टिप्पणी

4. (ग)
5. (क)
6. (घ)
7. (ख)
8. (क)

1.7 सारांश

जिसके त्रिदोष (वात, पित्त एवं कफ) सामान्य अथवा विकार रहित हों, जठराग्नि (पाचन शक्ति) सामान्य हो, सातों धातुएं (रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा तथा वीर्य) विकार रहित हों। तीनों मल (स्वेद, पुरीष एवं मूत्र) सामान्य हों तथा जिसकी आत्मा, इंद्रिय एवं मन प्रसन्न हो, वही स्वस्थ कहलाता है। इस प्रकार न केवल रोगों की अनुपस्थिति को बल्कि व्यक्ति की पूर्णतया सम्यक शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं आध्यात्मिक अवस्था को स्वास्थ्य कहते हैं।

आयुर्वेद एवं योग मात्र चिकित्सा पद्धति ही नहीं है, यह अपने आप में संपूर्ण जीवन दर्शन है। इन नियमों का यथाविधि पालन करने से प्रायः समस्त प्रकार की आधि–व्याधियां दूर होती हैं और मनुष्य 'सर्वतोभावेन सुखावह' स्वास्थ्य प्राप्त कर सकता है। आधुनिक रहन–सहन एवं चिकित्सा के दुष्परिणामों से त्रस्त मनुष्य आज योग विज्ञान की शरण लेकर आरोग्य लाभ ले रहा है।

अविद्या को भावरूप तत्व माना गया है अभावरूप नहीं। अर्थात विद्या का अभाव अविद्या नहीं अपितु विपरीत ज्ञान या मिथ्याज्ञान का नाम अविद्या है। मिथ्याज्ञान भी एक प्रकार का ज्ञान नहीं है। जैसे अमित्र शब्द का अर्थ मित्र का अभाव नहीं है, न ही मित्र मात्र इसका अर्थ है अपितु मित्र का विरोधी शत्रु अमित्र–शब्द का अर्थ है। इसी प्रकार अगोष्पद का अर्थ गाय के खुर का अभाव नहीं है अपितु गाय के खुर से भिन्न विशाल स्थान इसका अर्थ है। इसी प्रकार अविद्या का अर्थ न तो प्रमाण है न प्रमाणाभाव है अपितु विद्या का विपरीत दूसरा ज्ञान है।

साधना जगत में भक्तियोग का विशिष्ट स्थान है। भगवान के साथ संबंध जोड़ने के कारण इसे योग कहा गया है। यह योग की विभिन्न शाखाओं में से एक है। इसको उत्कृष्ट एवं सर्वोत्तम माना गया है, क्योंकि यह सबसे सरल एवं सुगम है। इसका अधिकारी कोई भी बन सकता है इसमें किंचित मात्र भी संदेह नहीं है।

मानव चेतना जैसे – जैस उत्कर्ष की ओर बढ़ती है उसी अनुपात में उसकी आत्मियता का विस्तार हो जाता है। भक्ति शब्द भज सेवायाम धातु में भिन्न प्रत्यय लगाकर बनता है जिसका अर्थ है सेवा, पूजा, उपासना, और संगतिकरण आदि। भावना के आधार पर अपनी आत्मीयता का इतना विस्तार करना कि वह सम्पूर्ण विश्व – ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो जाए यही मठि योग है। भगवान के प्रति उत्कृष्ट प्रेम विशेष का नाम ही भक्ति है।

केवल प्राणायाम भी सब मलों को दूर करने में समर्थ है। जैसे सुवर्णादि धातुओं के दोष अग्नि में तपाने से भस्म हो जाते हैं, वैसे ही प्राणायाम के अभ्यास से इंद्रियों

के दोष दूर होकर मन भी शांत और स्थिर होकर एकाग्र होने लगता है। इसी भांति सात्विक भोजन से शरीरस्थ दोष कुपित नहीं होते तथा मन–बुद्धि भी अपनी स्वाभाविक अवस्था में बने रहते हैं।

टिप्पणी

जीवात्मा का परमात्मा के साथ एकाकार हो जाना समाधि कहा गया है। जैसे– जैसे ध्यान चलता रहेगा वैसे– वैसे समाधि बढ़ती रहेगी। ध्यान को ही आत्मा में लगाना चाहिए जिससे वह पृथक न हो। सत्य ज्ञान, अनंत और आनंद रूप निर्गुण ब्रह्म का आत्मा में चिंतन करने से समाधि लाभ होता है। हृदय कमल के अंदर आत्मा में शरीराकार वासुदेव परमात्मा का ध्यान करने पर समाधि का लाभ होता है। हृदय कमल के मध्य में स्थित शिखा स्वरूप ईश्वर का ज्योतिर्मय ध्यान करने से समाधि हो जाती है।

नैतिक विकास में एक प्रमुख तत्व सांवेगिक तत्व होता है क्योंकि व्यक्ति में मौजूद भाव या संवेग ही व्यक्ति को दूसरों को दुःख में देखकर उसे भी दुःखी होने का अहसास कराता है या उस दुःख का कारण यदि वह स्वयं को समझता है, तो उसमें दोष–भाव उत्पन्न होता है।

हॉफ्फमैन के अनुसार ऐतिहासिक तौर पर बच्चों में नैतिक विकास से संबंधित तीन प्रमुख दार्शनिक सिद्धांत है। एक सिद्धांत जिसका समर्थन मशहूर धर्मविज्ञानी संत ऑगस्टाइन द्वारा किया गया है, को मौलिक पाप का सिद्धांत कहा जाता है, जिसके अनुसार बच्चे संभवतः दोषी प्रकृति के होते हैं। अतः वयस्कों के ज्ञानकृत तथा दंडात्मक हस्तक्षेप के माध्यम से उन्हें क्षतिपूरण की आवश्यकता होती है। दूसरे तरह के सिद्धांत के समर्थक जॉन लॉके (1632–1704) हैं जिनका मत है कि बच्चा नैतिक रूप से तटस्थ होता है अर्थात टैबुला राजा होता है और उन्हें जेसा शिक्षण–प्रशिक्षण मिलता है उसके अनुरूप या तो वे नेक या दोषी बन जाते हैं। तीसरे सिद्धांत के प्रवर्तक जीन जेक्स रूसो हैं जिनका मत है कि बच्चों में जन्मजात शुद्धता होती है तथा अनैतिक व्यवहार मूलत वयस्कों के दोषपूर्ण प्रभाव से उत्पन्न होते हैं।

संक्रामक रोग वे विकार हैं, जो जीवाणुओं के कारण होते हैं, आमतौर पर आकार में सूक्ष्म, जैसे कि बैक्टीरिया, वायरस, कवक या परजीवी, जो एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति में प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से प्रविष्ट हो जाते हैं। मनुष्य एक संक्रमित जानवर के संपर्क में आने के बाद भी संक्रमित हो सकता है, जो मनुष्यों को संक्रमित करने में सक्षम है।

हमारी प्रतिरक्षा प्रणाली रोग पैदा करने वाले सूक्ष्मजीवों के खिलाफ हमारा बचाव करने का उल्लेखनीय काम करती है। लेकिन कभी–कभी यह विफल हो जाती है : एक रोगाणु सफलतापूर्वक आक्रमण करता है और हमें बीमार बनाता है।

1.8 मुख्य शब्दावली

- **स्वस्मिन** : स्वयं में।
- **योग थेरेपी** : योग से रोगोपचार की प्रक्रिया।
- **त्रिगुण** : सत्व, रजस और तमस।
- **ज्ञानेन्द्रियां** : स्रोत, त्वक, चक्षु, रसना एवं घ्राण।
- **मूढ़** : मूर्ख, कर्तव्य–अकर्तव्य के भान से रहित।

- **आभ्यंतर** : आंतरिक।
- **आत्मप्रेम** : स्वयं से प्रेम।
- **कैवल्य** : मुक्ति या मोक्ष की अवस्था।

टिप्पणी

1.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. स्वास्थ्य से क्या आशय है?
2. योग के आठ अंग कौन–कौन से हैं?
3. चित्तवृत्ति निरोध का क्या तात्पर्य है?
4. कर्मयोग क्या है?
5. प्रत्याहार किसे कहते हैं?
6. हठयोग से क्या आशय है?

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. स्वास्थ्य की अवधारणा स्पष्ट करते हुए स्वास्थ्य और योग के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।
2. सर्वांगीण स्वास्थ्य से आप क्या समझते हैं? हठयोग का अर्थपूर्ण विश्लेषण कीजिए।
3. पतंजलि के अष्टांग योग का परिचय दीजिए।
4. नैतिक मूल्य क्या है? व्यक्तित्व विकास से ये कैसे संबंधित हैं?
5. संचारी–असंचारी रोग के कारक, प्रभाव एवं रोकथाम पर प्रकाश डालिए।

1.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *Patanjal Yoga Predeep*, Swami Omanad Tirth.
2. *Asana Why & How*, Shri O.P. Tiwari
3. *Asana*, Swami Kuvalyananda
4. Pran*ayam*, Swami Kuvalyananda
5. *Patanjal Yogasaar*, Dr. Sadhana Dauneia
6. *Physical Activity & Health*, Dr. Dilip Jaiswal
7. *Principles of Anatomy & Phsiologh*, Dr. Thakur & Aneja
8. *Ethics in Sports Management* , Dr. Jawaid Ali
9. *Fundamental Elements of Physical Education*, Dr. Kamlesh
10. *Principles of Sports Training* , Dr. Smt K.G. Jadhav
11. *Health and Physical Eduction*, Geeta Singh Sisodia, Gwalior: Raj publisher, 2006.

इकाई 2 शारीरिक शिक्षा

टिप्पणी

संरचना

2.0 परिचय
2.1 उद्देश्य
2.2 मानव शरीर : वृद्धि और विकास
- 2.2.1 शारीरिक शिक्षा : लक्ष्य और उद्देश्य
- 2.2.2 मानव शरीर : वृद्धि और विकास

2.3 शारीरिक गतिविधियों के अनुसार खान–पान
- 2.3.1 आहार : भूमिका एवं महत्ता
- 2.3.2 संतुलित आहार और स्वास्थ्य
- 2.3.3 कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन, खनिज आदि घटक

2.4 क्रीड़ा और खेल के आधारभूत कौशल– नियम, विनियम एवं नैतिकता
- 2.4.1 क्रीड़ा और खेल (गेम्स एंड स्पोर्ट्स) के आधारभूत कौशल
- 2.4.2 खेल में नियम, विनियम तथा नैतिकता

2.5 शारीरिक स्वस्थता, शारीरिक मुद्रा और लचीलापन, खेलों में शक्ति और स्ट्रेचिंग व्यायामों का महत्व
- 2.5.1 शारीरिक मुद्राएं और लचीलापन
- 2.5.2 खेलों में शक्ति और स्ट्रेचिंग व्यायामों का महत्व

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
2.7 सारांश
2.8 मुख्य शब्दावली
2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

2.0 परिचय

विकास की प्रक्रिया एक अविरल, क्रमिक और जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया होती है। इस प्रक्रिया के अंतर्गत व्यक्ति का शारीरिक, क्रियात्मक, संज्ञानात्मक, भाषागत, संवेगात्मक और सामाजिक विकास होता है। बाल–विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत रुचियों, आदतों, दृष्टिकोणों, जीवन–मूल्यों, स्वभाव, व्यक्तित्व व्यवहार आदि को शामिल किया जाता है। बाल्यावस्था में विकास से तात्पर्य होता है बालक के वृद्धि–विकास की सर्वांगीण प्रक्रिया। यह प्रक्रिया जन्म से पूर्व गर्भ में ही प्रारंभ हो जाती है। विकास की इस प्रक्रिया में वह गर्भावस्था, शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था इत्यादि कई चरणों से गुजरते हुए परिपक्वता की अवस्था को प्राप्त करता है।

बाल्यावस्था के विकासात्मक बदलाव बहुआयामी और परस्पर संबद्ध होते हैं और सापेक्षतया स्थिर भी। किशोरावस्था के दौरान शरीर के साथ–साथ संवेगात्मक, सामाजिक और संज्ञानात्मक क्रियात्मकता में भी तेजी से परिवर्तन दिखाई देते हैं। बाल्यावस्था में वृद्धि और विकास को परिवार, पड़ोस, सहपाठी समूह, समुदाय, समाज, शिक्षालय ही नहीं, जाति, धर्म, लिंग, वर्ग, मीडिया, शहरीकरण–वैश्वीकरण आदि सभी प्रभावित करते हैं।

इस इकाई में हम मानव शरीर के वृद्धि एवं विकास संबंधी तथ्यों की विवेचना करते हुए, खान–पान, गेम–स्पोट्र्स, फिटनेस के लिए शारीरिक एवं स्वास्थ्य की आवश्यकता, उपादेयता एवं स्वरूप आदि का अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

2.1 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- मानव शरीर की वृद्धि एवं इसके विकास के संघटकों से परिचित हो पाएंगे;
- शारीरिक गतिविधियों के अनुसार खानपान की आवश्यकता और महत्व का अध्ययन कर पाएंगे;
- क्रीड़ा एवं खेल संबंधी तथ्यों एवं स्वास्थ्य में इनकी महत्ता समझ पाएंगे;
- फिटनेस के लिए शारीरिक शिक्षा की भूमिका एवं घटकों को जान पाएंगे।

2.2 मानव शरीर : वृद्धि और विकास

शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति के व्यक्तित्व का संपूर्ण विकास करना है। व्यक्तित्व के आयाम हैं– प्रथम : स्वस्थ एवं सुगठित शरीर तथा द्वितीय : स्वस्थ चिन्तन व व्यवहार।

स्वस्थ शरीर का अर्थ है शारीरिक अंग–प्रत्यंगों की समुचित वृद्धि, उनका सही विकास और सभी अंगों का सक्षमता से कार्य करना।

स्वस्थ चिन्तन मानसिक क्षमता है जो बालकों में उचित एवं योग्य निर्णय लेने व उसे करने की क्षमता प्रदान करता है।

विद्यालयी शिक्षण व्यवस्था में शारीरिक शिक्षा को इसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु शामिल किया गया है। शारीरिक शिक्षा बालक के शरीर को स्वस्थ, सुगठित, कार्यक्षम और व्यक्तित्व निर्माण के साथ–साथ, समाज निर्माण में भी सहायक होता है।

प्राचीन काल से ही भारत में शारीरिक शिक्षा पर बहुत बल दिया जाता था, उस समय भी यौगिक क्रियाएं की जाती थी। सभ्यताओं के विकास के साथ–साथ शारीरिक शिक्षा और शिक्षा का भी विकास होता गया। आज का युग मशीनी युग है। अर्थात प्रत्येक कार्य को मशीन से किया जाता है। व्यक्ति शारीरिक श्रम बहुत कम करता है। अर्थात मनुष्य शारीरिक श्रम से दूर हो गया है। अतः शारीरिक शिक्षा की बहुत जरूरत है।

आज घर के काम में हाथ बटाने और पैदल चलने की आदत भी नहीं रही, अतः आज युवाओं को शारीरिक शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। सुडौल एवं स्वस्थ युवक राष्ट्र की आवश्यकता हैं। हमारे देश के नवयुवक हर क्षेत्र में आगें बढ़ें, इसके लिए शारीरिक शिक्षा को अपनाना उचित होगा।

2.2.1 शारीरिक शिक्षा : लक्ष्य और उद्देश्य

शारीरिक शिक्षा का क्षेत्र व्यापक है जिसमें विविध कार्यक्रम शामिल होते हैं जिनसे बालक का शारीरिक, मानसिक, संवेगात्मक और सामाजिक विकास होता है और वह अपनी भावी जीवन में अच्छे नागरिक की भांति समाज में जीवनयापन कर सकता है।

शारीरिक शिक्षा के अंतर्गत वृहत तथा लघु खेल, दौड़–परिपथ और क्षेत्रीय खेल, नृत्य तथा मनोरंजन के कार्य, पर्यटन, शिविर और प्रकृति विहार आदि कार्यक्रमों का समावेश होता है और साथ ही इसमें स्वास्थ्य एवं योग शिक्षण, शरीर–रचना, शरीर क्रिया विज्ञान आदि विषय भी शामिल होते हैं।

शारीरिक शिक्षा से बालक को एक व्यक्तित्व पूर्ण नागरिक बनाने का कार्य किया जाता है। शिक्षा बालक को सुसंस्कृत व्यवहार देती है और शारीरिक शिक्षा अपने तीव्र गतियुक्त मांसपेशीय क्रिया–कलापों से बालक के संपूर्ण व्यक्तित्व विकास में सहायक होती है।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्य इस प्रकार हैं–

- शारीरिक अंगों की पुष्टता का विकास
- स्नायु मांसपेशीय कुशलता का विकास
- चरित्र एवं व्यक्तित्व का विकास।

अतः शारीरिक शिक्षण बल या शरीर संवर्धन के साथ–साथ व्यक्तित्व संवर्धन भी करता है। शिक्षा तथा शारीरिक शिक्षा के सही तालमेल से व्यक्ति के संपूर्ण विकास से अन्य गुणों का विकास भी होता है।

शारीरिक शिक्षा के उद्देश्यों और लाभों का वर्णन निम्न प्रकार है–

- **शारीरिक विकास** : शारीरिक व्यायाम से शरीर के विभिन्न अंगों–प्रत्यंगों का और शारीरिक बल का विकास होता है। व्यक्ति स्वस्थ और शक्तिशाली बनता है जिससे व्यक्ति दौड़ने, भागने, भार उठाने, चढ़ने, उतरने, फेंकने, पकड़ने, कूदने, फादने आदि क्रियाओं को सहजता से कर पाता है।
- **मानसिक विकास** : शारीरिक शिक्षा से मन तथा मस्तिष्क को दृढ़ता तथा आत्मविश्वास मिलता है और व्यक्ति का मानसिक विकास होता है। अतः व्यक्ति भविष्य में प्रत्येक स्थिति का सामना दृढ़ निश्चय तथा आत्मविश्वास से कर सकता है और बालक मानसिक तनाव और दबाव को किनारे कर उचित प्रकार से सोचने, समझने, कठिनाइयों को हल करने की समझ प्राप्त होती है।
- **गामक विकास** : इसकी प्राप्ति से शारीरिक क्रिया–प्रक्रिया अधिक उपयोगी सिद्ध होती है। गामक विकास से नाड़ी–पेशी समन्वय के स्थापित होने से गति में वृद्धि होती है। तंत्रिकाओं तथा पेशियों के बीच सुंदर तालमेल से व्यक्ति विभिन्न गामक प्रक्रियाओं और खेल कौशल को आसानी से कर पाता है।
- **सामाजिक विकास के कार्यक्रम** : शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रम वैयक्तिक समायोजन, समूह समायोजन तथा एक सामाजिक सदस्य के रूप में समायोजन करने में व्यक्ति को सहायता करते हैं। शारीरिक शिक्षा से खाली समय का सदुपयोग, अच्छी अदातों का विकास, अच्छे आचरण और चरित्र का विकास, प्रजातांत्रिक दृष्टिकोण, अच्छे खिलाड़ी के गुण, सच्ची खेल भावना आदि सामाजिक विकास होता है। सभ्यता, संस्कृति तथा मानवता का विकास खेलों के माध्यम से जितना संभव है उतना शायद अन्य क्रिया के माध्यम से संभव नहीं हो।
- **शारीरिक शिक्षा का महत्व** : आज के यांत्रिक युग में हम सब यंत्रों के दास बन गए हैं। हमें सुबह से लेकर रात तक बिजली, पंखा, हीटर, कूलर, बाईक,

टिप्पणी

कार आदि की जरूरत होती है। इन यंत्रों से ही हम सुख का अनुभव करते हैं लेकिन ये सब यंत्र हमारे शरीर के लिए लाभकारी नहीं हैं। इनके उपयोग से प्रकृति से हमारा संबंध टूटता जा रहा है। विद्वानों ने कहा है– "स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है।" अच्छा मनुष्य शरीर से हृष्ट–पुष्ट, बुद्धि से प्रखर, संवेगात्मक दृष्टि से संतुलित और समाज में सुव्यवस्थित होता है। इसलिए आज सभी शिक्षाशास्त्रियों ने शारीरिक शिक्षा को शिक्षा का अभिन्न अंग माना है।

शारीरिक शिक्षा में विभिन्न प्रकार के खेल–कूद, दौड़, व्यायाम, योग आदि माने जाते हैं। विद्यालयों में इन क्रियाओं को अनिवार्य किया गया है। शारीरिक शिक्षा से स्वास्थ्य के अलावा अन्य लाभ भी हैं, जो इस प्रकार हैं–

- खेल भावना का विकास
- सामान्य शिक्षा में सहायक
- नैतिक व चारित्रिक विकास
- नागरिकता की भावना का विकास

संक्षेप में–

- शारीरिक शिक्षा सामान्य शिक्षा का अभिन्न अंग है।
- शारीरिक शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यक्ति का संपूर्ण विकास करना है।
- यांत्रिक युग ने मानव की मांसपेशियों को लुंज–पुंज बना दिया है। अतः शारीरिक शिक्षा आज की जरूरत बन गई है।

2.2.2 मानव शरीर : वृद्धि और विकास

मानव में वृद्धि और विकास की समय सीमा अलग–अलग है। वृद्धि तो एक निश्चित आयु तक होती है किंतु विकास सतत रूप से चलता रहता है। यदि मनुष्य के शरीर की वृद्धि और विकास में असंतुलन हो जाए तो उसके शरीर की वृद्धि तथा मेधा शक्ति का विकास प्रभावित होता है। वृद्धि और विकास का अर्थ निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

वृद्धि का अर्थ

- शरीर की वृद्धि का अर्थ आकार, ऊंचाई, वजन और लंबाई में वृद्धि से है।
- मानव शरीर में वृद्धि उसके शरीर के विभिन्न अंगों में अनुपातिक तरीके से होती है।
- किशोरावस्था से प्रौढ़ावस्था की तरफ बढ़ने पर मानव शरीर में वृद्धि की प्रक्रिया धीमी पड़ने लगती है।

विकास का अर्थ

- विकिास की प्रक्रिया में मानव शरीर में शारीरिक बदलाव के अतिरिक्त उसकी मेधा शक्ति में भी परिवर्तन का असर दिखाई देता है।
- विकास की इस प्रक्रिया में मानव की कार्य क्षमता व सोचने समझने की क्षमता में सकारात्मक परिवर्तन दिखाई देते हैं।
- मानव शरीर में विकास के परिणामस्वरूप गुणात्मक बदलाव दिखाई देते हैं।

विकास को प्रभवित करने वाले कारक

टिप्पणी

(क) **परिवेश** : जिस भौतिक परिवेश में मनुष्य रहता है वह व्यक्ति के शारीरिक व बौद्धिक विकास को प्रभावित करता है। प्रदूषित वातावरण सभी उम्र के व्यक्तियों व बालकों की वृद्धि और विकास को नकारात्मक रूप से प्रभावित करता है। इसी प्रकार स्वच्छ वातावरण बालकों व व्यक्तियों की शारीरिक वृद्धि व बौद्धिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

(ख) **वंशानुगत कारक** : व्यक्ति के कद, शारीरिक बनावट, रूप–रंग व मानसिक बौद्धिक विकास में वंशानुगत गुणों की विशेष भूमिका होती है। वंशानुगत गुणों के कारण ही व्यक्ति की शारीरिक व मानसिक विकास की विशेषताएं एक पीढ़ी से अगली पीढ़ी में स्थानांतरित होती हैं। उपर्युक्त दोनों कारकों को विकास का आधार माना जाता है।

(ग) **शारीरिक विकृतियां** : जन्म के साथ ही मिली शारीरिक विकृतियां बालकों की शारीरिक वृद्धि और बौद्धिक विकास को अवरुद्ध करती हैं। विकलांगता, बधिरता, अंधता, मानसिक कमजोरी व्यक्ति के विकास व वृद्धि को प्रभावित करते हैं।

(घ) **रोग** : रोग व बीमारियों से व्यक्ति का विकास बचपन से ही बाधित होने लगता है। रोग शारीरिक वृद्धि के साथ–साथ बालकों के बौद्धिक विकास को भी प्रभावित करता है।

(ङ) **पारिवारिक वातावरण** : परिवार में बालकों के प्रारंभिक शिक्षक और प्रथम प्रेरक माता–पिता होते हैं। अतः माता–पिता का व्यवहार बच्चों के प्रति प्रेरक और संस्कारवान होना चाहिए। सकारात्मक पारिवारिक वातावरण का बच्चों के मानसिक विकास पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

(च) **अच्छी आदतें** : बालकों के शारीरिक व बौद्धिक विकास में अच्छी आदतों का महत्वपूर्ण योगदान होता है। शरीर की स्वच्छता, सुबह जल्दी उठना, माता–पिता और बुजुर्गों का सम्मान करना, नशे से दूर रहना, अच्छे दोस्तों की संगत में रहना, प्रेरक जीवनियां पढ़ना, समय पर सोना व उठना, बालकों के शारीरिक और मानसिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

(छ) **खान–पान व रहन–सहन** : खान–पान व रहन–सहन के तरीकों का व्यक्तियों विशेषकर बालकों के भावी जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। खान–पान की अच्छी आदतों जैसे– संतुलित भोजन बालक के विकास को मां के गर्भ में ही प्रभावित करना प्रारंभ कर देता है। अतः बाजार में मिलने वाली खुली खाद्य सामग्री के सेवन से बचना चाहिए। खान–पान की प्रक्रिया में स्वच्छता का ध्यान रखते हुए रहन–सहन में भी स्वच्छता रखनी चाहिए और शुद्ध पेयजल का प्रयोग स्वतः ही कई बीमारियों से बचाव करता है।

(ज) **योगासन व व्यायाम** : नियमित खेलकूद, व्यायाम, योगासनों से व्यक्ति स्वस्थ रहता है। मन ऊर्जावान, स्फूर्तिदायक बनता है। मन की एकाग्रता, शांतचित्त के लिए योगासान व व्यायाम बहुत आवश्यक है।

(झ) **विद्यालयी शिक्षा व सहशैक्षिक प्रवृत्तियां** : शिक्षा व्यक्तित्व निर्माण के साथ अच्छा जीवन जीने की प्रेरणा भी देती है, वहीं सहशैक्षिक प्रवृत्तियां बालकों में देश

प्रेम, आत्मविश्वास, साहस, नैतिक गुण, सहयोग की भावना जैसे गुणों का विकास करती है और मानसिक व बौद्धिक विकास में भी सहायक होती हैं। बालक एक सभ्य नागरिक बन पाता है।

टिप्पणी

विकास की विभिन्न अवस्थाएं

बालक के जन्म से लेकर प्रौढ़ होने और वृद्धावस्था में पहुंचने तक की प्रक्रिया में वृद्धि व विकास कई चरणों से गुजरता है। व्यक्ति के विकास की 5 अवस्थाएं निम्न प्रकार हैं—

(क) शैशवावस्था (जन्म से 5 वर्ष तक की अवस्था)

(ख) बाल्यावस्था (6—12 वर्ष तक की अवस्था)

(ग) किशोरावस्था (13 से 18 वर्ष तक की अवस्था)

(घ) प्रौढ़ावस्था (19—40 वर्ष तक की अवस्था)

(ङ) वृद्धावस्था (41 से आगे तक)

पुस्तक के विषय के संदर्भ में 'किशोरावस्था' का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है—

किशोरावस्था (13 से 18 वर्ष तक की अवस्था) : किशोरावस्था बाल्यजीवन की अंतिम व विकास की जटिल अवस्था होती है। विकास की यह अवस्था यूं तो 'स्वर्णिम—काल' होती है किंतु सही मार्गदर्शन न मिलने पर दिग्भ्रमित होने का खतरा भी इस उम्र में सबसे ज्यादा होता है। क्योंकि बालक इस अवस्था में 'कल्पना लोक' में जीता है। बालकों में मानसिक विकास तीव्र गति से होता है वहीं शारीरिक वृद्धि के क्रम में अंगों में महत्वपूर्ण बदलाव दिखाई देने लगते हैं। इस अवस्था में बालिकाएं स्वभावगत व्यवहार से संकोची हो जाती हैं वहीं बालक मुखर होने लगते हैं। अतः माता—पिता, परिवार के सदस्यों, विद्यालयों में शिक्षकों को इन बालकों के साथ संतुलित व्यवहार करना चाहिए।

किशोरावस्था में निम्न शारीरिक, भावनात्मक, सामाजिक तथा ज्ञानात्मक परिवर्तन दिखाई देते हैं—

(क) शारीरिक विकास

(अ) बालकों के कद में बालिकाओं की अपेक्षा अधिक वृद्धि होती है। दोनों के चेहरे पर कील—मुहांसे निकलते हैं।

(ब) बालकों की आवाज भारी हो जाती है।

(स) बालिकाओं के शरीर में वसीय ऊत्तक व त्वचा के नीचे ऊत्तक विकसित होने से शरीर गोलाई लेते हुए सुडौल होने लगता है। मासिक धर्म प्रारंभ हो जाता है।

(द) बालकों की मांसपेशियां मजबूत होने लगती हैं तथा चेहरे और बगल में बालों का उगना प्रारंभ हो जाता है।

(य) बालिकाओं के शरीर में स्तनों और नितंबों के आकार में वृद्धि होने लगती है।

(ख) भावात्मक विकास

(अ) भावात्मक विकास का अर्थ है अपने भावों को जिम्मेवार तरीके से अभिव्यक्त करने की क्षमता का विकास।

(ब) विभिन्न प्रतिबंधों के कारण किशोरावस्था में बालक–बालिकाएं चिड़चिड़े हो जाते हैं।

(स) भावों व आवेगों में तेजी से उतार–चढ़ाव होने लगता है।

टिप्पणी

(द) मनोभावों पर नियंत्रण कर लेने वाले बालक–बालिकाओं के व्यवहार में गंभीरता झलकने लगती है।

(य) बालिकाएं अपने मनोभावों को नियंत्रित करने में बालकों की अपेक्षा अधिक सफल होती है।

(ग) सामाजिक विकास

(अ) बालक अपने परिवार, समूह के साथ संवाद करने का प्रयास करने लगता है।

(ब) वयस्कता की तरफ बढ़ने से सामाजिक संबंधों में बदलाव दिखाई देते हैं।

(स) माता–पिता व परिवार के सदस्यों के स्थान पर मित्रों व सहपाठियों के साथ अधिक समय व्यतीत होना आरंभ हो जाता है।

(द) स्वयं को कभी बड़ा तो कभी बच्चा समझने का असमंजस बना रहता है।

(य) माता–पिता को अपने बच्चों का सामाजिक परिचय करवाना चाहिए ताकि बच्चे अधिक सहज महसूस कर सकें व परिवार से दूर रहने का प्रयास न करें।

(घ) ज्ञानात्मक विकास

(अ) ज्ञानात्मक विकास का अर्थ मस्तिष्क के विकास से है।

(ब) यह स्थिति बालकों के मानसिक कार्यों की जटिलता को कम करती है।

(स) विचारधारा का विकास होता है।

(द) सृजनात्मक प्रवृत्ति का विकास होता है।

(य) आदर्शवादिता की सोच जन्म लेती है।

किशोरावस्था में ध्यान रखने योग्य बातें

- कपड़ों और शरीर के अंगों की स्वच्छता पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।
- विद्यालय व घर में बच्चों को मित्रवत परिवेश मिलना चाहिए।
- बच्चों के साथ प्रेमपूर्वक व्यवहार हो एवं उनके आवेगों को समझने का प्रयास करना चाहिए।
- बच्चों के साथ बातचीत का सुखद वातावरण बनाए रखना चाहिए।
- अच्छे मित्र बनाने के लिए प्रेरित करना चाहिए।
- कमजोर बच्चों को पारिवारिक प्रोत्साहन मिलना चाहिए।
- अच्छी पुस्तकें पढ़ने का अवसर मिलना चाहिए। गंदी फिल्में, गंदे साहित्य, गंदे मित्रों से बच्चों को दूर रहना चाहिए। इस हेतु माता–पिता व शिक्षक द्वारा बच्चों को समय–समय पर जागरूक करते रहना चाहिए।
- कल्पना लोक में विचरण व एकांत की चाह के कारण बलाकों पर विशेष ध्यान देते हुए उन्हें जीवन की वास्तविकता से अवगत कराते रहना चाहिए।

- बच्चों की अनावश्यक मांगों की पूर्ति करने से बचना चाहिए तथा इसका कारण भी उन्हें समझाना चाहिए।
- हार्मोन्स के स्राव का समय होने से तनाव से बचना चाहिए व खान–पान की अच्छी आदतों का विकास करना चाहिए। कील–मुंहासों से बचने के लिए चेहरे को धूल, धुएं तथा उमस भरे वातावरण से दूर रखना चाहिए तथा स्वच्छ तौलिये का प्रयोग करना चाहिए।

टिप्पणी

संक्षेप में

- शरीर में वृद्धि का अर्थ आकार, ऊंचाई, वजन व लंबाई में वृद्धि से है।
- परिवेश, वंशानुगत कारक, खान–पान, योग–योगासन व व्यायाम विकास को प्रभावित करने वाले कारक हैं।
- व्यक्ति के विकास की 5 प्रमुख अवस्थाएं होती हैं– शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था, प्रौढ़ावस्था, वृद्धावस्था।
- बालकों के विकास की दृष्टि से किशोरावस्था सबसे महत्वपूर्ण अवस्था है।
- किशोरवस्था विकास की अवस्था का स्वर्णिम काल होता है।
- किशोरावस्था में विकास या परिवर्तन की चार अवस्थाएं– शारीरिक, भावात्मक, सामाजिक और ज्ञानात्मक हैं।
- किशोरावस्था बालकों में एकांत की चाह पैदा करती है ओर वे कल्पना लोक में विचरण करते हैं। अतः किशोरावस्था में उन्हें जीवन की वास्तविकताओं से अवगत कराते रहना चाहिए।
- किशोरावस्था में बालकों को शारीरिक स्वच्छता, खान–पान में सावधानी और प्रेरक पुस्तकों को पढ़ने पर विशेष ध्यान देना चाहिए।

अपनी प्रगति जांचिए

1. निम्न में से कौन–सा कथन सत्य है?
   (क) मानव में वृद्धि एक निश्चित आयु तक होती है
   (ख) मानव विकास सतत रूप से चलता रहता है
   (ग) (क) और (ख) दोनों
   (घ) इनमें से कोई नहीं
2. किशोरावस्था में निम्न में से कौन–सा परिवर्तन दिखाई देता है?
   (क) शारीरिक (ख) भावात्मक
   (ग) सामाजिक और ज्ञानात्मक (घ) उपर्युक्त सभी

2.3 शारीरिक गतिविधियों के अनुसार खान–पान

स्वस्थ रहने के लिए संतुलित आहार की भूमिका बहुत अधिक है। संतुलित आहार के बिना स्वास्थ्य का चक्र अधूरा ही रह जाता है। मानव की आधारभूत आवश्यकताओं में

भोजन भी एक है। भोजन वह होता है जिससे शरीर को पोषण मिलता है। आहार कोई भी ऐसी वस्तु है, जिसे खाया या पिया जाता है, जो शरीर की ऊर्जा वृद्धि, सुचारु रूप से चलाने और रोगों से लड़ने की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

टिप्पणी

2.3.1 आहार : भूमिका एवं महत्ता

आहार हमारे शरीर के लिए कच्चा माल है। समुचित आहार से अच्छा पोषण व स्वास्थ्य प्राप्त होता है, जिसकी अभिव्यक्ति हमारी बाहरी आकृति, कुशलता तथा भावनात्मक अवस्था से होती है। आहार में पोषक तत्वों की कमी से शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पोषक तत्वों की समुचित मात्रा भी भोजन में होना आवश्यक है, क्योंकि इनकी न्यूनाधिक मात्रा से स्वस्थ मनुष्य भी रोगी हो जाता है।

जिस प्रकार घर बनाने के लिए ईंट, पत्थर, रेत, सीमेंट इत्यादि की जरूरत होती है, उसी प्रकार शरीर रूपी ढांचे के निर्माण के लिए भी कार्बोज, विटामिन, प्रोटीन इत्यादि की समुचित मात्रा में आवश्यकता होती है। ये सभी शरीर को ऊर्जा प्रदान करते हैं। ऊर्जा के द्वारा ही हम कार्यों को करने में समर्थ होते हैं।

"आहार्यते गलात् अधोनीयते इत्याहारः।"

अर्थात, जो द्रव्य ग्रहण करके गले के नीचे ले जाया जाए, उसे आहार कहते हैं। वह कोई भी पदार्थ जो अन्न नली से ग्रहण किये जाने पर जीवनी शक्ति उत्पन्न करे, धातुओं का पोषण करे, उनकी रक्षा तथा क्षतिपूर्ति करे, जीवन प्रक्रिया को संयमित करे, उसे आहार कहते हैं।

आजकल आहार शब्द का प्रयोग उन्हीं द्रव्यों के लिए होता है, जो मानव को स्वस्थ बनाए रखते हैं। इस प्रकार आहार को दो प्रकार के तत्वों में विभाजित कर सकते हैं–

1. शाकाहारी आहार
    - अनाज
    - दालें
    - सब्जियां
    - फल
    - मसाले
    - वसा व चीनी
    - दूध

2 मांसाहारी आहार
    - मांस
    - मछली
    - अंडा

इन सभी पदार्थों की समुचित मात्रा हमें तरोताजा बनाए रखती है।

प्रत्येक व्यक्ति के लिए देश, काल, समय, परिस्थिति आदि के आधार पर ही आहार की मात्रा का निर्णय किया जाता है। मानव जीवन को सुखी बनाने के लिए आहार की महत्वपूर्ण भूमिका है। भारतीय लोकजीवन में तो यह कहावत भी प्रचलित है–

"भूखे भजन न होए गोपाला,
धरी रहने दो कंठी माला।"

टिप्पणी

आहार का महत्व

आहार की हमारे जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका है। अच्छे आहार से ही हमें अच्छे स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है। उसे हमें नियमित रूप से ग्रहण करना चाहिए। आचार्य श्रीराम शर्मा कहते हैं, "आहार का मुख्य उद्देश्य शरीर की क्षीणता अथवा घिसाई की पूर्ति करना और शरीर की वृद्धि करना है। आहार से हमारे शरीर में ताप की उत्पत्ति भी होती है जो हमारे जीवन का लक्षण है।"

भोजन में निहित आवश्यक तत्व कोशिकाओं की टूट–फूट की मरम्मत करते हैं। इन्हीं से रक्त बनता है। शारीरिक अवयवों की वृद्धि व पुष्टि होती है। हमारा आहार पोषक तत्वों से युक्त होना चाहिए। पोषक तत्वों को ग्रहण करने से हमारा शरीर विभिन्न प्रकार के रोगों से दूर रहता है तथा स्वस्थ बनता है। कहा भी गया है–

"शरीर माध्यम सर्व धर्म खलु साधनम।"

अर्थात, धर्म का प्रथम साधन है, शरीर का निरोग रहना। चरक संहिता में भी कहा गया है कि धर्म, अर्थ, काम अथवा मोक्ष– इन चार पुरुषार्थ चतुष्ट्य की प्राप्ति का मूल कारण शरीर का निरोग रहना है। परंतु भोजन जीवन के लिए है, जीवन भोजन के लिए नहीं। इसलिए भोजन न तो कम करना चाहिए और न अधिक। साथ ही साथ हमें भोजन में शामिल होने वाले आवश्यक तत्वों का भी ध्यान रखना चाहिए। इन तत्वों की समुचित मात्रा ही मनुष्य को बीमारियों से बचा सकती है। कार्बोहाइड्रेट के अधिक प्रयोग से मोटापे जैसी बीमारियां हो जाती है तथा कम सेवन से शरीर को निश्चित तापक्रम नहीं मिल पाता। हमारे शास्त्रकारों ने स्वास्थ्य की रक्षा के प्रयोजन को निर्दिष्ट करते हुए कहा है–

"सर्वमन्यत् परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तद्भावे हि भावनां सर्वभावः शरीरिणाम्।।"

अर्थात, अन्य कामों को छोड़कर सर्वप्रथम शरीर की रक्षा करनी चाहिए, क्योंकि शरीर का अभाव होने से सभी चीजों का अभाव हो जाता है।

इस आधार पर इतना तो कहा ही जा सकता है कि आहार का प्रमुख कार्य शरीर का विकास, पोषण तथा उसकी रक्षा करना है। भोजन से शरीर को ऊर्जा मिलती है। भोजन का सीधा संबंध हमारे मन पर भी पड़ता है, जैसा कि कहा गया है–

"जैसा खाये अन्न वैसा बने मन।"

अन्न को प्राणियों का प्राण भी कहा गया है–

"प्राणाः प्राणभृतामन्नम्।"

अतः आहार से मनुष्य को शारीरिक बल व मानसिक ओजस् मिलता है। समुचित आहार के बिना व्यक्ति स्वस्थ नहीं रह सकता और रोगी व्यक्ति का चिकित्सा कर्म सफल नहीं हो सकता। इस प्रकार स्वस्थ और रोगी दोनों के जीवन में आहार की महती भूमिका है।

आचार्य 'भाव मिश्र' स्वादिष्ट अन्न का लक्षण देते हुए अपने 'भावप्रकाश' में कहते हैं कि–

"यद्यत्स्वादुतरं तत्तद्विध्यादुतरोत्तरम् भुक्त्वा
यत्प्रार्थ्यते भूयस्तदुक्तं स्वादु भोजनम्।"

टिप्पणी

अर्थात, भोज्य पदार्थों में जो अत्यंत स्वादिष्ट हो, उनका उत्तरोत्तर क्रम से भोजन करें अर्थात प्रथम कम स्वादु तदनंतर उससे अधिक स्वादु पदार्थ को खाएं। जिस पदार्थ को खाकर पुनः मांगा जाए, उसे स्वादु भोज्य पदार्थ कहते हैं।

सुश्रुतसंहिता में द्रव्य का लक्षण देते हुए कहा गया है कि–

"द्रव्य लक्षणं तु क्रियागुणवत् समवायिकारणम्।"

अर्थात क्रिया गुणवान एवं समवायिकरण वाला पदार्थ ही द्रव्य है।

आहार, विज्ञान, कला एवं विज्ञान का एक समन्वयात्मक रूप है, जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष या सभी व्यक्तियों के समूह को पोषण व्यवस्था के सिद्धांतों के तथा विभिन्न आर्थिक एवं शारीरिक स्थितियों के अनुसार भोजन दिया जाता है। वैसे तो जो कुछ भी भोज्य या द्रव्य रूप में हमारे मुख द्वारा ग्रहण किया जाता है वह आहार है परंतु ग्रहण किये गए वे पदार्थ जो मानव स्वास्थ्य की पुष्टि करते हैं, आहार कहलाते हैं।

आधुनिक विज्ञान के अनुसार, "व्यक्ति भूख लगने पर एक बार में जितना भोजन ग्रहण करता है, भोजन की वह मात्रा उस व्यक्ति का आहार कहलाती है।"

मानव द्वारा ग्रहण किया जाने वाला भोजन तभी स्वास्थ्यवर्धक हो सकता है, जब वह गुणवत्ता पूर्ण हो तथा अन्न को सही समय पर ग्रहण करना चाहिए। जो अन्न मानव को प्राणवान बनाता है, वही अन्न सही समय और सही मात्रा में ग्रहण नहीं किया जाए तो रोग का कारण और विष भी हो सकता है। भूख लगने पर ग्रहण किये जाने वाले भोजन की गुणवत्ता बताते हुए 'भावप्रकाश' में कहा गया है कि–

"आहार प्राणिनः सद्यो बलकृद् देहधारणः।
स्मृत्यायुःशक्ति वर्णोजः सत्त्वशोभाविवर्धिनः।।"

अर्थात, भूख लगने पर किया जाने वाला भोजन प्रसन्नता को प्रदान करने वाला, तत्काल बल उत्पन्न करने वाला, शरीर को स्थिर रखने वाला, स्मरण शक्ति, आयु, सामर्थ्य, ओज, सत्व और शोभा को बढ़ाने वाला होता है।

भोजन की गुणवत्ता के आधार पर उसको दो भागों में बांटा गया है–

1. **पथ्य भोजन**– रोगियों द्वारा खाए जाने योग्य पदार्थ पथ्य भोजन कहलाता है।
2. **अपथ्य भोजन**– रोगियों के लिए वर्जित पदार्थ अपथ्य भोजन कहलाता है।

1. **पथ्य भोजन**– सुश्रुत संहिता में पथ्य भोजन निम्नलिखित बताए गए हैं – लाल चावल, श्वेत साठी, कङ्गनी, मुकुन्दक (काले साठी), पाण्डुक (पीले धान्य), पीतक, प्रमोदक, कालक, असवक, पुष्पक, कर्दभक, शकुनाहृत, सुगंधक, कमल, नीवार, कोद्रव, उछालक, श्यामाक (सांवा), गेहूं, वैणव, और जौ ये शूकधान्यों में उत्तम हैं। एण हरिण (कालाहरिण), कुरङ्ग, मृगमातृका, श्रदंष्ट्रा

टिप्पणी

(कर्कटक), कराल (कस्तूरी मृग), क्रकर (पक्षी), कबूतर, बटेर, तीतर, कपिंजल, वर्त्तीर इनका मांस जंगली पक्षियों में श्रेष्ठ है। मूंग, वनमूंग, मोठ, कलाय (मटर), मसूर, मंगल्य, चना, हरेणु, अरहर, सतीन, चिल्ली (बथुआ), चौपतियां, तंडुलीयक (चौलाई), मंडूकपर्णी– ये दालों व शाकों में श्रेष्ठ हैं। नमकों में सैंधव, फलों में आंवला और अनार उत्तम है। आहार का यह वर्ग सामान्य रूप में सब प्राणियों के लिए उत्तम है।

2. **अपथ्य भोजन**– 'हठ प्रदीपिका' के अनुसार करेला आदि कटु, इमली आदि खट्टा, मिर्च आदि तिक्त और गुड़ आदि उष्ण, तिल का तेल, मदिरा, मांस, दही, मट्ठा, हींग लहसुन आदि योग साधकों के लिए अपथ्य कहे गए हैं।

घरेण्ड संहिता के अनुसार कड्डुवा, अम्ल, लवण और तीखा ये चार रस वाली वस्तुएं भुने हुए पदार्थ, दही, तक्र, शाक, उत्कट, मद्य, ताल और कटहल का त्याग करें। मार्ग गमन, स्त्री गमन तथा ताप सेवन भी योगी के लिए उचित नहीं। प्याज, लहसुन आदि जड़दार सब्जियां व मसाले, नींबू आदि भी योगियों के लिए वर्जित हैं।

मनुष्य जिस प्रकार का अन्न ग्रहण करता है उसका चित्त भी उसी प्रकार का बन जाता है तथा उसके अंतःकरण में विराजमान देवता भी उसी प्रकार के अन्न को खाते हैं। इसी बात को वाल्मीकि रामायण में भी कहा गया है–

"यदन्नं पुरुषदृष्टिभावित तदन्नास्तस्य देवताः।"

श्रीमद्भगवदगीता में भी कहा गया है कि "उचित आहार, उचित विहार, कर्मों में उचित चेष्टा, सही समय पर जागना, सही समय पर सोना, ऐसा करने वाले योगी मानव के सभी रोग दूर हो जाते हैं तथा वह स्वस्थ बना रहता है।"

अतः मानव को गुणवत्तापूर्ण आहार उतनी ही मात्रा में ग्रहण करना चाहिए, जिससे उसकी भूख भी मिट जाए और आलस्य भी नहीं आए। अतः संतुलित मात्रा में ही आहार ग्रहण करना चाहिए।

आयुर्वेद शास्त्र के अनुसार, "भोजन स्वयं को संतुष्ट करने के लिए नहीं करना चाहिए वरन शरीर के अंदर विद्यमान भगवान को संतुष्ट करने के लिए करना चाहिए।"

गुणवत्तापूर्ण आहार में सभी पोषक तत्व जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज लवण और जल की समुचित मात्रा को शामिल करना आवश्यक है। आहार में सभी पोषक तत्वों की समुचित मात्रा उपलब्ध नहीं होने से मनुष्य किसी न किसी रोग से युक्त हो जाता है। दो विरोधी पदार्थों को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। आहार में सभी पदार्थों का समुचित सामंजस्य भी होना चाहिए, क्योंकि जब अन्न का युक्तिपूर्वक सेवन किया जाता है तो वह शरीर का पोषण तथा प्राण पालक बनता है। देश, काल आदि के विरुद्ध आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए। उचित और पौष्टिक आहार ही स्वस्थ जीवन की कुंजी है। साथ ही देश में चलाए जा रहे खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम, बाल विकास कार्यक्रम आदि कार्यक्रम गुणवत्तापूर्ण आहार प्रदान करने में अहम भूमिका निभा सकते हैं।

आहार की मात्रा एवं समय

मात्रा– आहार मानव जीवन के लिए अत्यंत उपयोगी है। परंतु साथ ही यह भी ध्यान रखना हमारे लिए अत्यंत आवश्यक है कि आहार कितनी मात्रा में लेना चाहिए और कौन

सा घटक कितना होना चाहिए? महर्षि चरक ने चरक संहिता में 'मात्राशीस्यात्' नामक शीर्षक में आहार की मात्रा का विशेष रूप से उल्लेख किया है। मनुष्य को कितना आहार ग्रहण करना चाहिए, यह इस बात पर निर्भर करता है कि वह कितना भोजन पचा सकता है। इसके लिए कहा गया है –

टिप्पणी

"आहारमात्रा पुनरग्निबलापेक्षिण।"

मनुष्य द्वारा ग्रहण किया गया अन्न उसके स्वास्थ्य को हानि पहुंचाए बिना, यथा समय पच जाए, उतना अन्न मनुष्य को ग्रहण करना चाहिए। लघु आहार द्रव्यों और गुरु आहार द्रव्यों के आधार पर भी आहार मात्रा का निर्धारण करना चाहिए।

मनुष्य द्वारा ग्रहण की जाने वाली आहार की मात्रा उसके द्वारा किये जाने वाले शारीरिक श्रम पर निर्भर करती है। अधिक शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति का भोजन शीघ्र पच जाने पर उसे अधिक भोजन की आवश्यकता होती है जबकि कम शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति को कम भोजन की आवश्यकता होती है। अतः आहार की मात्रा का मनुष्य द्वारा किये जाने वाले श्रम से सीधा संबंध है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए विश्राम काल में लगभग 2000 कैलोरी ग्रहण करना आवश्यक है। जो व्यक्ति अधिक शारीरिक श्रम करते हैं उन्हें 4000 कैलोरी भोजन ग्रहण करना चाहिए। जबकि आराम करने वाले व्यक्ति को 2200 कैलोरी भोजन ग्रहण करना चाहिए।

आचार्य पं. श्रीराम शर्मा ने आहार की मात्रा के बारे में कहा है – "कितना खाया जाए? इसका उत्तर है भूख से कम। आधा पेट आहार से भरना चाहिए, चौथाई पानी से तथा चौथाई हवा से भरना चाहिए। यदि आहार स्फूर्ति देने के स्थान पर आलस्य प्रदान करे, भारीपन लाने लगे तो समझना चाहिए कि भोजन अधिक मात्रा में किया है।"

आहार का समय

आहार को समय पर ही ग्रहण करना चाहिए, तभी वह स्वास्थ्यवर्धक होता है। भोजन के समय के बारे में बताते हुए 'भावप्रकाश' में कहा गया है–

"यथोक्तगुणसम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम्।
विचार्य दोषकालादीन्कालयोरुभयोरपित।"

अर्थात मनुष्य के लिए यह उचित है कि वह दोष कालादि का विचार कर दोनों कालों में अन्न का भोजन करे। इसी में आगे कहा गया है कि भोजन सायंकाल व प्रातःकाल को ग्रहण करना चाहिए। प्रातः और सायंकाल मनुष्य के लिए भोजन करना वेद से अनुमोदित है। इन दो कालों के मध्यकाल में भोजन नहीं करना चाहिए, क्योंकि वेदानुमोदित अग्निहोत्र के समान भोजन करने की भी विधि है अर्थात भोजन प्रातः तथा सायंकाल में ही करना चाहिए।

प्रातःकालीन भोजन का समय प्रातःकाल एक प्रहर के मध्य हो, दो प्रहर के बाद भोजन करना उचित नहीं, क्योंकि एक प्रहर के अंदर भोजन न करने से रसोत्पत्ति होती है और दूसरे प्रहर के व्यतीत होने पर भोजन करने पर बल की हानि होती है।

भूख लगने पर भोजन करने का महत्व बताते हुए कहा है कि–

"क्षुत्सम्भावितपक्वेषु रसदोषमलेषु च।
काले वा यद वा काले सोन्नकाल उदाहृतः।"

भूख लगने पर भोजन का नियमित समय—वचन, रस, दोष और मल का परिपाक होने पर ही भूख लगती है। अतः चाहे भोजन का समय हुआ हो या न हुआ हो किंतु जब भी भूख मालूम पड़े तभी भोजन का समय समझना चाहिए।

टिप्पणी

सुश्रुत संहिता में भोजन के बारह भाग बताए गए हैं, ये हैं— शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, द्रव्य, शुष्क, एककालिक, द्विकालिक, औषधयुक्त, मात्राहीन, दोषप्रशमन तथा वृत्ति।

आहार काल का उल्लेख करते हुए सुश्रुत संहिता में कहा गया है कि—

"विसृष्टे विण्मूत्रे, विशदकरणे देहे च सुलघौ,
विशुद्धचोद्‌गरे हृदि सुविमले वाते च सरित।
तथान्नश्रद्धायां क्लमपरिगमे कुक्षौ च शिथिले,
प्रदेयस्त्वाहारो भवति भिषजां कालः स तु मतः।।"

अर्थात मल मूत्र का त्याग कर चुकने पर, इन्द्रियों के निर्मल होने पर, शरीर में हल्कापन प्रतीत होने पर, उदर के शुद्ध हो जाने पर, हृदय में निर्मलता होने पर, अपान वायु का अधः प्रवाहण होने पर, भोजन में रुचि होने पर, थकान मिट जाने पर, उदर में ढीलापन होने से, वैद्य को चाहिए कि इस समय आहार दें, क्योंकि भोजन का समय यही है।

जिन ऋतुओं में अत्यंत लंबे प्रहरों वाली रातें होती हैं उनमें ऋतु के विपरीत भोजन प्रातःकाल में ही कर लेना चाहिए। इसी प्रकार जिन ऋतुओं में दिन बहुत लंबे होते हैं उनमें समय के अनुकूल रात्रि के प्रथम प्रहर में निर्धारित भोजन अपराह्न में ही कर लेना चाहिए। जिन ऋतुओं में दिन—रात बराबर होते हैं उनमें दिन—रात का बराबर आकलन कर साधारण काल में भोजन करना चाहिए।

आचार्य श्रीराम शर्मा के अनुसार, "जब पहले वाला भोजन अच्छी तरह से पच चुका हो, पेट खाली हो गया हो और तेज भूख लगने लगे, तभी भोजन करना चाहिए। यदि ऐसा न हो तो एक ही समय भोजन करें और दूसरे समय का भोजन स्थगित कर दें।" इसके साथ यह भी आवश्यक है कि भोजन करने का एक नियत समय होना चाहिए। हमें हमारी दिनचर्या इस प्रकार निर्धारित करनी चाहिए कि नियत समय पर भूख लगे।

दिन में एक स्वस्थ मनुष्य को कितनी मात्रा में भोजन ग्रहण करना चाहिए, इस बारे में आचार्य श्रीराम शर्मा कहते हैं कि, "सबके लिए एक सा सामान्य नियम तो नहीं बनाया जा सकता, पर प्रौढ़ अवस्था के स्वस्थ व्यक्ति दिन में दो बार भोजन करें। एक सुबह नौ बजे के आस—पास, दूसरा शाम पांच—छह बजे के आस—पास हो, यह स्वास्थ्य के लिए उत्तम कहा गया है। इसके लिए सुबह का नाश्ता नहीं करना चाहिए, परंतु जो बारह—एक बजे भोजन करते हैं उन्हें सुबह हल्का भोजन कर लेना चाहिए। जरूरत पड़ने पर पेय पदार्थ भी ग्रहण कर सकते हैं।" आशय यही है कि नियत समय पर दिन में दो या तीन बार आहार ग्रहण करना चाहिए, इसके बीच कुछ भी नहीं लेना चाहिए, क्योंकि यह हानिकारक होता है।

अलग—अलग ऋतुओं में भी अलग—अलग प्रकार के भोजन का विधान है। शीत ऋतु में गुरु मात्रा में आहार ग्रहण करना चाहिए। हेमंत ऋतु में वातवर्धक खान—पान, अल्पाहार और सत्तू घोलकर लेना चाहिए। शिशिर ऋतु में कफशोधनार्थ वमन आदि

पंचकर्मों को करना चाहिए। ग्रीष्म ऋतु में शीतल द्रव्यों का पान अधिक करना चाहिए। वर्षा ऋतु में लवण रस प्रधान व स्निग्ध भोजन करना चाहिए।

सही समय पर ग्रहण किया गया भोजन मनुष्य के लिए स्वास्थ्यवर्धक है। यह मनुष्य की चयापचय क्रियाओं को नियंत्रित करता है। शरीर की वृद्धि व टूट–फूट की मरम्मत करता है। सही समय पर नहीं लिया गया भोजन अनेक प्रकार की बीमारियों का जनक है। भूख न लगने पर भोजन कभी नहीं करना चाहिए, यह मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। अतः आहार समय पर ही ग्रहण करना चाहिए।

2.3.2 संतुलित आहार और स्वास्थ्य

"हार्यते इति आहारः।"

जो ग्रहण किया जाए, वह आहार है। अनेक प्रकार के खाद्य पदार्थों के मिश्रण से बना वह आहार जो सभी पौष्टिक तत्वों (कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण, जल) को उचित अनुपात में आवश्यकतानुसार प्रदान करता है, उसे संतुलित आहार कहते हैं। इसी प्रकार भोजन से शरीर को भली प्रकार से पोषण मिलता है। शरीर को आवश्यक ऊर्जा की आपूर्ति होती है। यदि सभी आवश्यक तत्व शरीर को उचित मात्रा में नहीं दिए जाएं तो शरीर को पूरा पोषण नहीं मिलेगा तथा वह क्षीण हो जाएगा।

विभिन्न भोज्य पदार्थों को अनेक पोषक तत्वों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है। प्रत्येक मनुष्य के लिए संतुलित आहार की मात्रा एक समान नहीं होती है। जो आहार एक व्यक्ति के लिए संतुलित होता है, आवश्यक नहीं कि वह दूसरे व्यक्ति के लिए भी संतुलित हो। अतः यह व्यक्ति विशेष की क्षमता पर निर्भर करता है। संतुलित आहार की मात्रा को निर्धारित करने वाले अनेक कारक हैं–

उम्र

प्रत्येक व्यक्ति में संतुलित आहार की मात्रा को प्रभावित करने वाले कारकों में उम्र महत्वपूर्ण कारक है। बच्चे व बुजुर्गों की तुलना में वयस्क व्यक्तियों को अधिक मात्रा में आहार की आवश्यकता होती है। बच्चों को ऊर्जा प्रदान करने वाले तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है। इसलिए इस अवस्था में प्रोटीन, विटामिन तथा खनिज लवणों की मांग अधिक रहती है। वयस्क व्यक्ति के आहार में पौष्टिक तत्वों की एक संतुलित मात्रा होनी चाहिए।

वृद्धावस्था में शरीर की क्रियाशीलता कम हो जाती है, शरीर कम आहार को पचा सकता है। इस दौरान सुरक्षात्मक तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है।

लिंग

स्त्री और पुरुष की आहार की मात्रा में भी भिन्नता होती है, क्योंकि दोनों की शारीरिक संरचना, आकार, भार तथा क्रियाशीलता में भी अंतर होता है। पुरुषों को स्त्रियों की अपेक्षा अधिक पोषक तत्वों की आवश्यकता होती है।

शारीरिक क्रियाशीलता

आहार में पौष्टिक तत्वों की मात्रा मनुष्य की शारीरिक गतिविधियों पर निर्भर करती है। कम शारीरिक काम करने वाले को कम मात्रा में पौष्टिक तत्वों की जरूरत होती है

जबकि अधिक शारीरिक श्रम करने वालों को अधिक मात्रा में पौष्टिक तत्वों की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

मानव स्वास्थ्य भी आहार में पोषक तत्वों की मात्रा को निर्धारित करता है। स्वस्थ व्यक्ति को सही अनुपात में सभी तत्व ग्रहण करने आवश्यक हैं, परंतु अस्वस्थ मनुष्य की शारीरिक गतिशीलता कम होने के कारण ऊर्जा की कम आवश्यकता होती है। अस्वस्थ मनुष्य को सुरक्षात्मक व निर्माणात्मक तत्वों की अधिक आवश्यकता होती है।

जलवायु

आहार को निर्धारित करने वाला एक प्रमुख तत्व जलवायु है। ठंडे प्रदेशों में रहने वाले लोगों को अधिक ऊर्जा की आवश्यकता होती है अतः शारीरिक ताप को बनाए रखने के लिए अधिक ऊर्जावान पदार्थ ग्रहण करने की आवश्यकता होती है। जबकि गर्म जलवायु प्रदेशों में रहने वाले लोगों को कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है।

इन्हीं सब तत्वों को ध्यान में रखकर आहार ग्रहण करना चाहिए तभी मानव स्वस्थ रह सकता है। रक्त में अम्लीय व क्षारीय तत्वों की दृष्टि से भी संतुलित आहार आवश्यक है। रक्त में 80 प्रतिशत क्षार तत्व तथा 20 प्रतिशत अम्लीय तत्व होना आवश्यक है। रक्त में इनका संतुलन बिगड़ जाने से मानव की मृत्यु भी हो सकती है। अतः इनकी संतुलित मात्रा ग्रहण की जानी चाहिए।

आहार के घटक

आचार्य चरक ने चरक संहिता में आहार के घटकों को निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत किया है–

- **उत्पत्ति के आधार पर**– उत्पत्ति के आधार पर संतुलित आहार के घटक दो प्रकार के हैं–

  स्थावर (वानस्पतिक पदार्थ) – वृक्ष, पौधों आदि से प्राप्त।

  जंगम (पशुजन्य पदार्थ) – पशुओं आदि से प्राप्त।

- **उपभोग के आधार पर**– आचार्य सुश्रुत ने सुश्रुत संहिता में चार प्रकार के द्रव्यों को संतुलित आहार में शामिल किया है–

  "भक्ष्यं भोज्यं लेह्यं पानं इत्याहार चतुष्टयम्।"

  अर्थात, भक्ष्य, भोज्य, लेह्य, पेय चार प्रकार के आहर हैं। आचार्य चरक भी इसी मत से सहमत होते हुए आहार के चार द्रव्य बताते हैं–

  पान– पीने योग्य

  अशन– चबाकर निगलने वाले

  भक्ष्य– अधिक चबाकर खाने योग्य

  लेह्य– चाटकर खाने योग्य।

- **द्रव्य के गुणों के आधार पर**– आहार द्रव्यों को गुणों के आधार पर भी वर्गीकृत किया गया है। ये गुण निम्नलिखित हैं–

गुरु, लघु, शीत, उष्ण, स्निग्ध, रुक्ष, मंद, तीक्ष्ण, स्थिर, सर, मृदु, कठोर, विशद, पिच्छिल (चिपचिपा), श्लक्ष्ण (चिकना), खर (खुरदुरा), सूक्ष्म, स्थूल, सान्द्र (गाढ़ा) व द्रव।

टिप्पणी

- **स्वाद भेद के आधार पर**– आहार द्रव्यों में मुख्यतया 6 रस होते हैं। रस की उत्पत्ति जल से ही होती है। कहा गया है– 'तस्मादाप्यो रस।' आकाश से पृथ्वी पर गिरने वाले जल पंच महाभूतों के साथ समन्वित होकर छः प्रकार के रसों में परिवर्तित होता है–

  अम्ल वर्ग के द्रव्य– नींबू, अनार, आंवला, दही, छाछ, इमली आदि अम्ल वर्ग के द्रव्य हैं।

  लवण रस– इस वर्ग में विभिन्न प्रकार के नमक आते हैं।

  कटु (कड़वा) रस– मूली, तुलसी, लहसुन आदि कटु वर्ग के रस हैं।

  तिक्त रस– हल्दी, करेला, मिर्च आदि तिक्त रस के स्रोत हैं।

  कषाय रस– कषाय रस के स्रोत मुख्यतया जामुन, आम, शाक, पालक आदि हैं। इनमें मधुर, अम्ल, लवण रस वात नाशक, कटु, तिक्त, कषाय रस कफ नाशक तथा मधुर, तिक्त, कषाय रस पित्त नाशक हैं।

भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद ने सभी पौष्टिक पदार्थों को शामिल करते हुए पांच प्रकार के संतुलित खाद्य पदार्थों के वर्ग निर्धारित किये हैं, जिनको आहार में शामिल किया जाना आवश्यक है वे निम्नलिखित हैं–

- **अनाज व स्टार्चयुक्त सब्जियां**– चावल, अनाज, आलू, मक्का, शकरकंदी आदि।
- **दालें व मेवे**– उड़द, चना, मूंग, मूंगफली, काजू, बादाम आदि।
- **मांस, दूध व उनसे बने पदार्थ**– खोया, दूध, पनीर, दही, कलेजी, मछली, मांस व अंडा।
- **फल व सब्जियां**– सेब, अमरूद, संतरा, पत्तेदार सब्जियां, बैंगन, गाजर आदि।
- **वसा व चीनी**– तेल, चीनी, मक्खन, घृत व गुड़ आदि।

इन सभी की उपयुक्त मात्रा मानव जीवन में शामिल की जानी चाहिए।

संतुलित आहार की उपयोगिता

मानव शरीर को स्वस्थ रखने में संतुलित आहार की महत्वपूर्ण भूमिका है। आहार की उपयोगिता को बताते हुए चरक संहिता में कहा गया है –

"प्राणाः प्राणभृतामन्नमन्नं लोको भिधावति।
वर्गप्रसादः सौस्वर्य सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।।
तुष्टिः पुष्टिर्बलं मेधा सर्वमन्ने प्रतिष्ठितम्।
कर्मापवर्गे यच्चोक्तं, तच–चाप्यन्ने प्रतिष्ठितम्।।"

अर्थात अन्न ही प्राणियों का प्राण है। इसलिए सारा संसार अन्न की ओर भागता है। प्रसन्नता (निखार), अच्छा स्वर, जीवन, प्रीति, सुख, तुष्टि, पुष्टि, बल, ये सब गुण अन्न

में प्रतिष्ठित हैं। लौकिक कर्म तथा स्वर्ग आदि के लिए वैदिक कर्म और मुक्ति के लिए जो ब्रह्मचर्यादि कर्म हैं, वे सब अन्न में ही प्रतिष्ठित है।

टिप्पणी

संतुलित आहार ग्रहण करने से मानव अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त रहता है तथा स्वस्थ बना रहता है। साथ ही अपने कार्यों को अधिक कुशलता से कर पाता है। संतुलित आहार से मानव शरीर को आवश्यक ऊर्जा की प्राप्ति हाती है। संतुलित भोजन शरीर के पुराने तत्वों की मरम्मत करने तथा नवीन तत्वों के निर्माण में मदद करता है। यह शारीरिक गतिविधियों का संचालन सुचारु तरीके से बनाए रखता है। हम सभी वर्गों में से कोई भी एक पदार्थ अपने आहार में शामिल करें तो हमारा आहार संतुलित होगा। संतुलित आहार से पोषक तत्वों की आपूर्ति सम्यक तरीके से होती है। हमारे आयुर्वेद के ग्रंथों में भी लिखा है कि–

"आहारः प्रीणनः सद्यो बलकृत् देहधारकः।
आयुस्तेजः समुत्साहस्मृत्योजोग्निविवर्धनः।।"

अर्थात आहार पुष्ट करने वाला, शीघ्र बल प्रदान करने वाला, जीवन धारण कराने वाला, आयु, तेज, उत्साह, स्मृति, ओज और अग्नि को बढ़ाने वाला होता है।

आयुर्वेदीय नियमानुसार 'जब हम शरीर का पोषण करते हैं तो शरीर भी हमारा पोषण करता है। हमारे द्वारा ग्रहण किया गया पदार्थ पचकर शरीर के अन्य भागों में पहुंचता है।'

संतुलित आहार ग्रहण करने के प्रति संकेत करते हुए गीता में भी कहा गया है कि "जो मनुष्य शरीर के साथ, विचार और भावना की शुद्धता, निर्मलता और पवित्रता चाहता है उसको राजसी और तामसिक आहार त्यागकर सात्विक आहार ग्रहण करना चाहिए।" अतः आहार की शुद्धता से अंतःकरण निर्मल और पवित्र होता है। साथ ही संतुलित आहार ग्रहण करने से मनुष्य स्वस्थ बना रहता है तथा अनेक प्रकार के रोगों से मुक्त रहता है।

2.3.3 कैलोरी, प्रोटीन, विटामिन, खनिज आदि घटक

भोजन से शक्ति या ऊर्जा प्राप्त होती है। यह हमारे शरीर की गर्मी बनाए रखने में सहायक है। भोजन से शरीर की वृद्धि और विकास होता है। हमारे शरीर के विभिन्न कोषों एवं तंतुओं में होने वाली टूट–फूट की मरम्मत भी भोजन से ही होती है। इसलिए संतुलित व पौष्टिक आहार लेना आवश्यक है। पौष्टिक आहार में प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, खनिज लवण, विटामिन तथा जल आदि तत्व होते हैं। संतुलित आहार से स्फूर्ति और कार्यक्षमता का संचार होता है। संतुलित भोजन शरीर को हृष्ट–पुष्ट बनाता है। शरीर में पौष्टिक आहार का महत्व निम्न प्रकार है–

- शरीर की सभी क्रियाओं के लिए ऊर्जा प्रदान करता है।
- शरीर में रोग के कीटाणुओं से लड़ने की शक्ति उत्पन्न करता है।
- आहार शरीर की वृद्धि और विकास करता है।
- शरीर के कोषों तथा तंतुओं में टूट–फूट की क्षतिपूर्ति करता है।
- शरीर की विभिन्न प्रक्रियाओं को नियंत्रित करता है।

- शरीर में जल की मात्रा को संतुलित करता है। जल की सहायता से ही पसीना, मल–मूत्र आदि निरर्थक पदार्थ शरीर से बाहर निकलते हैं।

कैलोरी : पोषक तत्वों से हमें जो ऊर्जा प्राप्त होती है, उसकी माप को कैलोरी कहते हैं, यह भौतिक कैलोरी की तुलना में एक हजार गुना अधिक होता है।

संतुलित भोजन के तत्व : भोजन में कई पौष्टिक तत्व होते हैं, जिन्हें मुख्य रूप से 5 वर्गों में बांटा जा सकता है, ये हैं– कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, वसा, विटामिन, खनिज लवण, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन और वसा हमें ऊर्जा प्रदान करते हैं। इनमें प्रतिदिन 25 प्रतिशत ऊर्जा वसा से, 10 प्रतिशत प्रोटीन से एवं शेष ऊर्जा कार्बोहाइड्रेट से मिलती है। भोजन में विटामिन व खनिज लवण भी महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। 2500 कैलोरी ऊर्जा के लिए निम्नलिखित तत्वों को सम्मिलित किया जा सकता है–

तत्व	कैलोरीज	प्रतिशत
प्रोटीन	250	10
वसा	625	25
कार्बोहाइड्रेट, खनिज लवण, विटामिन, जल	1625	65
योग	**2500**	**100**

आहार में पाए जाने वाले पौष्टिक तत्वों के प्रमुख कार्य– पौष्टिक तत्वों के प्रमुख कार्य निम्नलिखित हैं–

1. प्रोटीन : निर्माणकारी।
2. वसा : ऊर्जा व ऊष्मा का स्रोत।
3. कार्बोहाइड्रेट : ऊर्जा व ऊष्मा का स्रोत।
4. विटामिन्स : रोगों से रक्षा व प्रक्रियाओं को नियमित करना।
5. खनिज लवण : रोगों से रक्षा व प्रक्रिया नियमित करना।
5. जल : प्रक्रियाओं का वाहक।

आहार से शरीर स्वस्थ रहता है तथा शरीर को ऊर्जा प्राप्त होती है परंतु इसके लिए यह भी जानना आवश्यक है कि आहार में कौन–कौन से घटक शामिल होने चाहिए? आहार के प्रमुख घटक निम्नलिखित हैं–

प्रोटीन (Proteins)

प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, फैट की शरीर में अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। ये शरीर में ऊर्जा प्रवाह को बनाए रखते हैं। शरीर का ढांचा प्रोटीन से बनता है। विटामिन और खजिन पदार्थों की कम मात्रा में आवश्यकता होती है। ये शरीर की चयापचय क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। साथ ही पानी से हमारे शरीर का 80 प्रतिशत भाग निर्मित है।

प्रोटीन का हमारे आहार में प्रमुख स्थान है। प्रोटीन हमारे शरीर में तीन प्रकार के कार्य करता है–

(1) शरीर की वृद्धि, विकास, तंतुओं का नव निर्माण तथा मरम्मत।

(2) शरीर की महत्वपूर्ण क्रियाओं को नियंत्रित करना।

(3) अतिरिक्त प्रोटीन द्वारा ऊर्जा की प्राप्ति भी होती है।

टिप्पणी

प्रोटीन शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के शब्द 'प्रोटीअस' (Protease) से हुई है जिसका अर्थ है, 'प्रथम स्थान ग्रहण करने वाला'। इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम 'मुल्डर' (1838) नामक रासायनशास्त्री ने किया था। उन्होंने अपने शोधों से यह परिणाम निकाला कि सभी प्रकार के प्राणियों की कोशिकाएं एवं ऊतक प्रोटीन से बने होते हैं। प्रोटीन को शरीर की आधारशिला भी कहा जाता है। जंतु जगत व वनस्पति जगत दोनों से ही प्रोटीन की प्राप्ति होती है। प्रत्येक कोशिका के द्रव सहित भाग का आधे से अधिक प्रोटीन के रूप में होता है। यह प्रोटीन एंटीबॉडीज, हारमोंस एवं एंजाइम के रूप में उपस्थित रहता है। शरीर के कुल भाग का 1/6 भाग प्रोटीन है जिसमें से 1/3 भाग मांसपेशियों में होता है, 1/5 हड्डियों में, 1/10 भाग त्वचा में, शेष बचा भाग ऊतकों व शरीर मेरुदंड में विद्यमान रहता है।

शरीर में हजारों प्रकार के प्रोटीन पाए जाते हैं। प्रोटीन एक कार्बनिक यौगिक है जिसमें कार्बन हाइड्रोजन, ऑक्सीजन, नाइट्रोजन, सल्फर आदि तत्व होते हैं। प्रोटीन में नाइट्रोजन की मात्रा 16 प्रतिशत होती है। प्रोटीन साधारण सरंचना वाले 'अमीनो अम्लों' से बने होते हैं। अमीनो अम्ल प्रोटीन का आहार स्तंभ हैं।

मानव शरीर को प्रोटीन के निर्माण के लिए 20 प्रकार के अमीनो अम्लों की आवश्यकता होती है। अमीनो अम्लों को दो प्रकार के वर्गों में रखा जा सकता है– (क) आवश्यक अमीनो अम्ल (Essential amino acids), (ख) अनावश्यक अमीनो अम्ल (Non essential amino acids)।

अनावश्यक अमीनो अम्ल वे हैं जिनका निर्माण शरीर के भीतर होता है, जबकि आवश्यक अमीनो अम्ल वे हैं जिनका निर्माण शरीर के भीतर नहीं होता, इन्हें भोजन द्वारा ग्रहण करना आवश्यक है। आवश्यक और अनावश्यक दोनों प्रकार के अमीनो अम्लों की आवश्यकता शरीर को होती है।

प्रोटीन के स्रोत

प्रोटीन दो प्रमुख स्रोतों से प्राप्त होता है – (1) पशु जन्य स्रोत, (2) वनस्पति जन्य स्रोत। पशु जन्य स्रोतों में दूध, मांस, मछली, पनीर, अंडा आदि है। जबकि वनस्पति जन्य स्रोत में सोयाबीन, दाल, चावल, गेहूं आदि हैं। ये दोनों ही हमारे शरीर के लिए उपयोगी हैं। प्रोटीन को हम निम्नलिखित वर्गों में बांट सकते हैं।

1. उत्तम प्रोटीन
2. मध्यम प्रोटीन
3. निकृष्ट प्रोटीन

उच्चवर्गीय प्रोटीन वे होते हैं जो अपने अंदर सभी आवश्यक अमीनो अम्लों को संचित रखते हैं। इसमें दूध व दूध से बने पदार्थ, मांस, मछली, अंडा आदि हैं। मध्यम श्रेणी के प्रोटीनों में अमीनो अम्ल कम मात्रा में पाए जाते हैं। इसमें चावल, दाल, रोटी आदि आते हैं। निकृष्ट प्रोटीन वे होते हैं जिसमें आवश्यक अमीनो अम्ल की बहुत ही कम मात्रा होती है। इनमें सब्जियां, फल, मक्का आदि शामिल हैं।

टिप्पणी

शरीर में प्रोटीन की उपयोगिता

- शरीर की वृद्धि एवं विकास के लिए यह अत्यंत आवश्यक है।
- यह शरीर की टूटी–फूटी कोशिकाओं की मरम्मत करता है।
- फाइब्रिन नामक प्रोटीन रक्त का थक्का बनाने में मदद करता है।
- शरीर की विभिन्न क्रियाओं को नियंत्रित करता है।
- एन्जाइम, हारमोंस इत्यादि का निर्माण करता है।
- शरीर की रोग प्रतिरोधक क्षमता को बढ़ाने में सहायक है।
- शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है।
- शरीर में जल के संतुलन को बनाए रखता है।
- शरीर में ऑक्सीजन व कार्बनडाइऑक्साइड के वाहक के रूप में कार्य करता है।

कार्बोज (Corbohydrates)

आहार में ग्रहण किये जाने वाले घटकों में कार्बोहाइड्रेट का अंश सबसे बड़ा है। यह कार्बन, हाईड्रोजन तथा ऑक्सीजन के संगठन से बनने वाला एक यौगिक है। ये तीनों तत्व 1 : 2 : 1 में रहते हैं। कार्बोहाइड्रेट्स को हम निम्नलिखित प्रकार से वर्गीकृत कर सकते हैं।

(i) मोनोसैकराइड्स

यह कार्बोहाइड्रेट्स का सरलतम रूप है। अन्य सभी प्रकार के कार्बोहाइड्रेट्स मोनोसैकराइड्स से बनते हैं। ग्लूकोज, फ्रक्टोज, गैलेक्टोज, इसके उदाहरण हैं। ग्लूकोज शर्करा की सरलतम इकाई है। फ्रक्टोज सबसे मीठी शर्करा है।

(ii) डाईसैक्राइड्स

यह मोनोसैकराइड्स के दो अणुओं से मिलकर बनती है। इसके उदाहरण सुक्रोज, माल्टोज, लैक्टोज है। लेक्टोज दूध में पाई जाने वाली शर्करा है।

(iii) पॉलीसैकराइड्स

इसका निर्माण तीन या तीन से अधिक मोनोसैकराइड्स के अणुओं से मिलकर होता है। स्टार्च, पैक्टिन, ग्लाइकोजन, सेल्यूलोज आदि प्रमुख पॉलीसैकराइड्स हैं। मानव शरीर में सैल्यूलोज का पाचन नहीं होता, परंतु वह आंतों की क्रियाशीलता के लिए आवश्यक है।

कार्बोहाइड्रेट्स के स्रोत

स्टार्च और शर्करा कार्बोहाइड्रेट्स के दो प्रमुख स्रोत हैं। अनाज, दालें, आलू, शकरकंद तथा कंद वाली सब्जियों में स्टार्च अत्यधिक मात्रा में मिलता है। ये फीके कार्बोहाइड्रेट्स हैं। गन्ना, मीठे फल, शहद, किशमिश आदि शर्करा के स्रोत हैं जो मीठे कार्बोहाइड्रेट्स हैं। हरे पौधों में स्टार्च अधिक मात्रा में संचित रहता है।

कार्बोहाइड्रेट्स के उपयोग

- इसका प्रमुख कार्य शरीर को ऊर्जा प्रदान करता है।

टिप्पणी

- आहार में कार्बोज को पर्याप्त मात्रा में लेकर प्रोटीन को ऊर्जा प्रदान करने के कार्य से मुक्त रख सकते हैं।
- गैलेक्टोज मानव मस्तिष्क के विकास के लिए आवश्यक है।
- यह हमारी रोग प्रतिरोधक क्षमता बढ़ाने में सहायक है।
- पाचन तंत्र को स्वस्थ रखने में भी इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है।
- नाड़ी संस्थान को स्वस्थ रखने में ग्लूकोज की आवश्यकता होती है।

वसा (Fats)

वसा शरीर को ऊर्जा प्रदान करने में महत्वपूर्ण योगदान देती है। स्वस्थ पुरुषों में शारीरिक भार का 15–20 प्रतिशत तथा स्वस्थ महिलाओं में शारीरिक भार का 18–25 प्रतिशत भार वसा से बना होता है। यह भी कार्बन, ऑक्सीजन व हाइड्रोजन से बना एक कार्बनिक यौगिक है। परंतु इसमें अनुपात भिन्न पाया जाता है। वसा मुख्य रूप से दो प्रकार की पाई जाती है– (1) संतृप्त वसा, (2) असंतृप्त वसा।

संतृप्त वसा में पशुजन्य उत्पाद आते हैं, जैसे मांस, घी, दूध, मक्खन आदि। जबकि असंतृप्त वसा में वनस्पतिक पदार्थ पाए जाते हैं। इसमें अनेक प्रकार के तेल, हरी पत्तेदार सब्जियां आदि आती हैं।

आहार में वसा की मात्रा 30 प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए। इससे अधिक वसा ग्रहण करने से मोटापा जैसी बीमारियां हो जाती हैं।

वसा का शरीर में उपयोग

- वसा शरीर को ऊर्जा प्रदान करती है।
- वसा संचित रूप में भी शरीर में रहती है, लंबे उपवास में यही संचित वसा ऊर्जा प्रदान करती है।
- शरीर के कोमल अंगों को सुरक्षा प्रदान करती है। जैसे गुर्दे, यकृत, फेफड़े इत्यादि।
- वसा हमारे शरीर के तापमान को नियंत्रित रखती है।
- मानव द्वारा लिए जाने वाले आहार की स्वाद वृद्धि में भी वसा की महत्वपूर्ण भूमिका है।
- शारीरिक कार्यों को सुचारु ढंग से चलाने में वसा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

विटामिन (Vitamins)

स्वास्थ्य रक्षण में विटामिनों की महत्वपूर्ण भूमिका है। विटामिन शब्द वाइटल अमीन (Vital Amine) से बना है, जिसका अर्थ है 'जीवन देने वाला'। इनको हम आहार के माध्यम से ग्रहण करते हैं। ये हमारे शरीर में कम मात्रा में उपस्थित होते हैं, परंतु शरीर की क्रियाओं के सुचारु संचालन में इनकी महती भूमिका है। विटामिनों को हम दो भागों में वर्गीकृत कर सकते हैं –

(क) वसा में घुलनशील विटामिन – ए, डी, ई और एल

(ख) जल में घुलनशील विटामिन – बी और सी

टिप्पणी

- **विटामिन 'ए'**– इसका वैज्ञानिक नाम रेटिनॉल है। इसके प्राणी जन्य स्रोत मछली, मांस, अंडे, दूध आदि है। जबकि अन्य वनस्पति स्रोत हरी पत्तेदार सब्जियां, आम, पपीता, संतरा आदि हैं। विटामिन–ए स्वस्थ आंखों, स्वस्थ एपीथिलिम तंतुओं के लिए आवश्यक है। स्वस्थ मनुष्य के लिए इसकी 600 माइक्रोग्राम मात्रा आवश्यक है। इसकी कमी से रतौंधी व जीरोप्थैलमिया नामक रोग हो जाते हैं।
- **विटामिन 'बी'**– विटामिन बी एक जटिल विटामिन है। यह जल में पूर्णतया घुलनशील है। 'बी' समूह में निम्नलिखित विटामिन हैं–

  विटामिन बी1– इसका वैज्ञानिक नाम थायमिन है। यह साबुत अनाज, चावल, साबुत दालों आदि में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। मछली, अंडे, सब्जी आदि में अल्प मात्रा में पाया जाता है। यह आमाशय, तंत्रिका तंत्र तथा हृदय के सुचारु रूप से संचालन में सहायक है। इसकी कमी से बेरी–बेरी रोग हो जाता है।

  विटामिन बी2– इसका वैज्ञानिक नाम राइबोलेविन है। यह विटामिन हमें भोजन द्वारा मिल जाता है। दूध, अंडा, मांस, हरी पत्तेदार सब्जियों में पर्याप्त मात्रा में यह मिलता है। इसकी कमी से होंठ पर छाले होना, जीभ पर छाले आदि हो जाते हैं। अतः यह नेत्र, मुंह, बालों आदि के स्वस्थ रहने के लिए आवश्यक है।

  विटामिन बी3– इसका वैज्ञानिक नाम नियासिन है। यह त्वचा, आंत, स्नायु तंत्र के सम्यक संचालन में आवश्यक है। यह चावल, मूंगफली, साबुत अनाजों में पाया जाता है। इसकी कमी से पेलाग्रा नामक रोग हो जाता है।

  विटामिन बी6 – इसका वैज्ञानिक नाम पायरिडाक्सिन है। मांस, दालें, गेहूं इसके महत्वपूर्ण स्रोत हैं। यह हमारी स्मरण शक्ति को बढ़ाता है।

  विटामिन बी12– इसका वैज्ञानिक नाम साइनोकोबालामीन है। यह लाल रक्त कोशिकाओं (RBC) के निर्माण में सहायक है। इसकी कमी से एनीमिया तथा एमनेशिया जैसी बीमारियां हो जाती हैं। इसके अच्छे स्रोत मछली, मांस, अंडे व दूध आदि हैं।
- **विटामिन सी**– इसका वैज्ञनिक नाम एस्कोर्बिक अम्ल है। यह जल में घुलनशील है। यह विटामिन अधिक तापमान में नष्ट हो जाता है। यह त्वचा को स्वस्थ रखने में सहायक है। आंवला, अमरूद, नींबू, संतरा, हरी पत्तेदार सब्जियां इसके उत्तम स्रोत हैं। इसकी कमी से स्कर्वी नामक रोग हो जाता है। यह कोलेजन फाइबर का निर्माण करता है।
- **विटामिन डी**– इस विटामिन का वैज्ञानिक नाम कैल्सिफेरोल है। इस विटामिन का उत्तम स्रोत सूर्य का प्रकाश है। इसके स्रोत केवल पशुजन्य पदार्थ हैं। यह हड्डियों के निर्माण तथा उनको मजबूती प्रदान करने में सहायक है। इसकी कमी से बच्चों में रिकेट्स तथा वयस्कों में अस्थि मृदुता (osteomalacia) नामक रोग हो जाते हैं। हड्डियों के टूटने की संभावना भी रहती है।
- **विटामिन ई**– इसका रासायनिक नाम टोकोफेरोल है। इसके मुख्य स्रोत वनस्पतिक तेल, जैसे–सोया, कास बीज आदि, सबुत अनाज, हरी पत्तेदार

सब्जियां हैं। मां के दूध में भी यह प्रचुर मात्रा में मिलता है। वह त्वचा को स्वस्थ रखने, प्रजनन कार्यों को नियमित रखने में सहायक है। इसकी कमी से प्रजनन कार्य ठीक ढंग से नहीं हो पाता। एनीमिया की संभावना भी इसमें बनी रहती है।

टिप्पणी

- **विटामिन के**– इसका वैज्ञानिक नाम फिलोक्वानिन है। यह छोटी आंत में बनता है तथा रक्त का थक्का बनाने में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका है। इसके प्रमुख स्रोत हरी पत्तेदार सब्जियां हैं इसकी कमी से चोट लगने पर रक्त का थक्का बनने में समस्या आती है।

खनिज पदार्थ

खनिज शरीर की चयापचय क्रियाओं को नियंत्रित करते हैं। ये कोशिकाओं की यथास्थिति को बनाए रखने में सहायक हैं। खनिज पदार्थ दो प्रकार के होते हैं–

1. विरल खनिज लवण– कैल्शियम, फास्फोरस, सोडियम, पोटेशियम।
2. अणु खनिज लवण– आयोडीन, लौह तत्व, जिंक, कोबाल्ट।

प्रमुख खनिज इस प्रकार हैं–

- **कैल्शियम**– यह दांतों व हड्डियों को मजबूत बनाता है। यह दूध व दूध से बने पदार्थों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। इसकी कमी से आस्टियोपोरोसिस व रिकेट्स नामक रोग हो जाते हैं।
- **फास्फोरस**– इसके मुख्य स्रोत मांस, मछली, दूध आदि हैं। शरीर के कुल भार का 17 प्रतिशत फास्फोरस होता है। यह हड्डियों व दांतों को मजबूत बनाता है। शरीर की चयापचय क्रियाओं को नियंत्रित करता है।
- **सोडियम**– इसके प्रमुख स्रोत हरी पत्तेदार सब्जियां, दूध, अंडा, मांस आदि हैं। यह शरीर में पाए जाने वाले सभी तरल पदार्थों में पाया जाता है। यह शरीर के संतुलन को बनाए रखता है।
- **पोटाशियम**– यह फलों व सब्जियों में प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। पोटाशियम हृदय की धड़कन (गति) को नियंत्रित करता है।
- **लौह तत्व**– हीमोग्लोबिन के निर्माण में इसकी प्रमुख भूमिका है। यह हरे पत्तेदार सब्जियों, सोयाबीन, तिलहन आदि में पाया जाता है। इसकी कमी से एनीमिया हो जाता है।
- **आयोडिन**– आयोडीन युक्त नमक तथा समुद्री जीव इसके प्रमुख स्रोत हैं। इसकी कमी से गलगंड नामक रोग हो जाता है।
- **जिंक**– यह स्वाद के लिए प्रमुख रूप से जिम्मेदार है। शरीर का तापमान बढ़ने पर जिंक की कमी हो जाती है। इसलिए बुखार में भोजन स्वादिष्ट नहीं लगता है।
- **फ्लोराइड**– फ्लोराइड प्रमुख रूप से पीने के पानी में पाया जाता है। यह दांतों, हड्डियों, थाइराइड ग्रंथि व त्वचा में पाया जाता है।
- **कोबाल्ट**– यह विटामिन बी12 के निर्माण में सहायक है जो लाल रक्त कणिकाओं व स्मरण शक्ति के लिए जिम्मेदार है।

टिप्पणी

- **जल**– "जल ही जीवन है।" इससे जल की उपयोगिता स्वतः सिद्ध है। हमारे शरीर का 60–80 प्रतिशत भाग जल से बना है। जल हाइड्रोजन के दो परमाणु तथा ऑक्सीजन के एक परमाणु से मिलकर बनता है जल की आवश्यकता पीने के पानी तथा अन्य पेय पदार्थों से पूरी होती है। जल फलों व सब्जियों में विद्यमान रहता है।

जल का प्रमुख कार्य विभिन्न पोषक तत्वों को शरीर में घोलना है। यह शरीर के तापमान को नियंत्रित करता है। साथ ही यह पाचन में भी सहायक है।

भोजन करने संबंधी नियम

- भोजन लेने से पूर्व हाथ, पैर व मुंह साफ करें।
- निश्चित समय पर हल्का व ताजा भोजन करना चाहिए।
- भोजन को अच्छी तरह से चबाना चाहिए।
- अरुचिकर भोजन न करें।
- भूख लगने पर ही भोजन करें।
- भोजन के साथ टमाटर, मूली, गाजर, फल आदि का प्रयोग करें।
- भोजन करते समय क्रोध, चिंता आदि न करें। सदैव प्रसन्नचित्त रहकर भोजन करें।
- वातावरण मधुर, शांत एवं प्रसन्नतापूर्ण हो।
- भोजन के बीच में पानी का सेवन कम करें। भोजन करने के 1 घंटे बाद पानी पिएं ताकि पाचन में सहायता मिल सके।
- खुली वस्तुओं का सेवन न करें।
- बासी व बदबूदार पदार्थों का सेवन न करें।
- भोजन में अधिक मिर्च–मसालों का प्रयोग न करें।
- रात्रि का भोजन सोने से 2 घंटा पूर्व करें।
- भोजन के तुरंत बाद कठोर शारीरिक परिश्रम न करें।
- भोजन शरीर की आवश्यकता के अनुसार ही लें।

13 से 15 वर्ष के बच्चों हेतु संतुलित आहार तालिका

भोज्य पदार्थ	**13 से 15 वर्ष (2000–2400 कैलोरी प्रतिदिन)**
अनाज	25 ग्राम
दालें	50 ग्राम
पत्तीदार शाक	100 ग्राम
अन्य सब्जी तरकारी	100 ग्राम
घी, मक्खन आदि	40 ग्राम
फल	100 ग्राम
चीनी / शक्कर	50 ग्राम

मांस	100 ग्राम
अंडा	1 अंडा
दूध	1/2 लीटर

टिप्पणी

शाकाहार और मांसाहार के अनुसार तालिका में दी गई मात्रा में आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया जा सकता है।

पोषण व कुपोषण

आजकल अधिकतर लोगों को उपयुक्त मात्रा में भोजन और पोषक तत्व नहीं मिलते हैं। मात्रा कम या अधिक हो तो इसे कुपोषण कहते हैं। अपर्याप्त पोषण अधिक पोषण व असंतुलित पोषण के तीनों क्षेत्र कुपोषण की श्रेणी में आते हैं।

(क) अपर्याप्त पोषण : शारीरिक जरूरतों के अनुसार उपयुक्त मात्रा से कम पौष्टिक तत्व प्राप्त होने की स्थिति को अपर्याप्त पोषण कहते हैं। इससे शरीर में रक्त की कमी हो जाती है जिससे शरीर में दुर्बलता आ जाती है तथा वृद्धि और विकास रुक जाता है।

(ख) अधिक पोषण : आवश्यकता से अधिक खाने पर शारीरिक स्थूलता बढ़ जाती है। शरीर में वसा अधिक हो जाती है। अधिक मोटापा कई प्रकार के रोगों को उत्पन्न करता है। अधिक वसा युक्त भोजन करने से अधिक पोषण होता है। दूध, मलाई व मिठाई आदि वसा युक्त पदार्थ होते हैं।

(ग) असंतुलित पोषण : भोजन में पौष्टिक तत्वों की असंतुलित मात्रा को असंतुलित पोषण कहते हैं।

कुपोषण के कारण

1. भोजन के विभिन्न पोषक तत्वों का समुचित अनुपात में न मिलना।
2. भोजन की अनियमितता।
3. परिवार में जनसंख्या वृद्धि के कारण खाद्य पदार्थ, फल, सब्जी, दूध, दही, घी आदि पदार्थों का अभाव।
4. पारिवारिक, आर्थिक स्थिति खराब होना।
5. निर्धनता, बेकारी, अज्ञानता, अस्वच्छ वातावरण में रहना।
6. स्वास्थ्यप्रद वातावरण का अभाव।
7. खेलकूद, व्यायाम व मनोरंजनात्मक कार्यों में भाग न लेना।
8. कोई भी कार्य नियमित रूप से नहीं करना।
9. आवश्यकता से अधिक कार्य करना। निद्रा व आराम की कमी।
10. शराब, गुटका, सिगरेट आदि नशीली वस्तुओं के सेवन की प्रवृत्ति का होना।

कुपोषण के लक्षण

1. चिंता, परेशानी।
2. भय व शंका होना।
3. मानसिक व्यग्रता एवं विचलन।

4. आलसीपन।
4. थकावट।
6. नींद कम आना।
7. पाचन शक्ति खराब होना।
8. त्वचा पीली पड़ जाना।
9. मांसपेशियों में शिथिलता।
10. आंखें दुखना।
11. सिरदर्द रहना।
12. जुकाम खांसी।
13. आंखों की ज्योति कम होना।
14. दांत कमजोर होना
15. वजन कम होना।

टिप्पणी

कुपोषण से होने वाले रोग

कुपोषणजनित रोगों का अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है–

कार्बोहाइड्रेट न्यूनता जनित रोग : भोजन में कार्बोहाइड्रेट की कमी से 'मरास्मस' या 'सूखा रोग' हो जाता है। क्रियाशीलता तथा शरीर का भार कम हो जाता है और दुर्बलता आ जाती है। इसके अधिक सेवन से मधुमेह रोग हो जाता है।

प्रोटीन न्यूनता जनित रोग : प्रोटीन की कमी से शरीर अस्वस्थ रहता है। हड्डियां कमजोर हो जाती हैं तथा उसका विकास रुक जाता है। मांसपेशियों में शिथिलता, त्वचा व नाखून का सूखापन, रक्तहीनता, शरीर क्रियाओं में गड़बड़ व बालों का टूटना तथा क्वाशिरकोर बीमारी हो जाती है। इससे शरीर में रक्त की कमी होने लगती है, दांतों का क्षय होने लगता है, शारीरिक वृद्धि रुक जाती है। स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है तथा मांसपेशियों की वृद्धि में रुकावट आ जाती है।

वसा न्यूनता जनित रोग : वसा के अभाव में शरीर का भार कम एवं त्वचा शुष्क हो जाती है। वसा की अधिक मात्रा से शरीर मोटा हो जाता है। वसा से शरीर की त्वचा नर्म व चिकनी रहती है।

जल की कमी से उत्पन्न रोग : जल के अभाव में मनुष्य अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकता है। दूषित जल के सेवन से अनेक रोग उत्पन्न हो जाते हैं।

विटामिन की कमी से होने वाले रोग

विटामिन ए : विटामिन ए की कमी से रतौंधी, शिथिलता, ब्रोकाइटिस, खांसी, गुर्दे में पथरी, निमोनिया, चर्म रोग आदि।

विटामिन बी : इसकी कमी से बेरी–बेरी (स्नायुरोग), पैलाग्रा (पेट दर्द), रक्तहीनता/एनीमिया, आंशिक पक्षाघात, मांसपेशियों का दूषित होना, शरीर की वृद्धि रुकतना, अतिसार, चर्म रोग, खुजली, पाचन शक्ति में कमी, भुजाओं में कड़ापन, बुढ़ापा (रोग प्रतिरोधक क्षमता का कम होना) आदि हो जाते हैं।

विटामिन सी : इसकी कमी से स्कर्वी (दांतों व मसूढ़ों का क्षय), पायरिया रोग तथा मसूड़े खराब हो जाते हैं। तपेदिक व निमोनिया रोग भी हो जाता है। दांतों से खून आता है तथा हाथ–पैरों व जोड़ों में दर्द रहता है।

टिप्पणी

विटामिन डी : इसकी कमी से रिकेट्स (सूखा रोग) हो जाता है। यह रोग अधिकतर पांच वर्ष की उम्र तक होता है। इस रोग में हड्डियां कमजोर तथा दांतों का विकास रुक जाता है। इसमें बच्चों के सिर की अस्थि विकृत हो जाती है। कूबड़ निकलना तथा रोगी खिन्न रहता है और चिड़चिड़ा हो जाता है।

विटामिन ई : विटामिन ई की कमी से कंकाल पेशियां कमजोर, हृदय व शरीर की मांसपेशियों का अपकर्षण होने लगता है।

विटामिन के : इसकी कमी से रक्त स्राव बंद नहीं होता है।

खनिज लवण की कमी से उत्पन्न रोग

कैल्शियम : कैल्शियम की कमी से हड्डियां कमजोर व विकृत हो जाती हैं और बच्चों में रिकेट्स रोग हो जाता है। कैल्शियम की कमी से दांत शीघ्र टूट जाते हैं। दिल की धड़कन की गति बढ़ने लगती है, पूरी तरह नींद नहीं आती, गुर्दे समुचित तरीके से काम नहीं करते हैं। जोड़ों में दर्द और सूजन आ जाती है तथा मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है।

आयोडीन : आयोडीन के अभाव में घेंघा रोग हो जाता है और बच्चे का मानसिक विकास रुक जाता है तथा गण्ठमाला रोग होने की संभावना हो जाती है।

मैग्नीशियम : मैग्नीशियम की कमी से स्नायु संबंधी रोग और ऐंठन के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

पोटेशियम : पोटेशियम की कमी से मन में घबराहट रहती है। नींद कम आती है और कब्ज रहता है।

जस्ता : जस्ते की कमी से मधुमेह नामक रोग हो जाता है।

लोहा : लोहे की कमी से एनीमिया, रक्ताल्पता, रक्तहीनता रोग हो जाता है।

कुपोषण निवारण के उपाय

- विद्यालय में बालकों को भोजन के पोषक तत्वों और उनके महत्व की जानकारी देनी चाहिए।
- मध्यावकाश में संतुलित भोजन की व्यवस्था होनी चाहिए।
- खिलाड़ियों में संतुलित भोजन की आदतों को प्रोत्साहित करना चाहिए।
- कुपोषण के कारणों को ढूंढ़कर उनके निवारण का प्रयास करना चाहिए।
- कुपोषित बालकों को डॉक्टर के परामर्श के अनुसार भोजन दिलवाने का प्रयास करना चाहिए।

अधिपोषण से उत्पन्न रोग

अधिपोषण अधिक वसा वाले पदार्थ घी, दूध, मेवे मलाई तथा मिठाई से होता है। आवश्यकता से अधिक खाना किंतु शारीरिक श्रम नहीं करने से आवश्यक ऊर्जा से अधिक मात्रा में लिया गया भोजन वसा के रूप में शरीर में एकत्रित हो जाता है। यह

वसा शरीर को मोटा बना देती है। यह जमा वसा रक्त की धमनियों को रुग्ण कर देती है और मोटे व्यक्ति को चलने–फिरने, उठने–बैठने में तकलीफ होती है। मोटापे से आयु भी कम होती है।

टिप्पणी

अधिपोषण के कारण उत्पन्न होने वाले रोग : अधिपोषण मधुमेह, हृदय रोग, अपच, अजीर्ण, जोड़ों में दर्द, फोड़े–फंसियां आदि रोगों का कारण बन जाता है।

अधिपोषण निवरण के उपाय

- सम्यक आहार, सम्यक दिनचर्या तथा सम्यक व्यायाम।
- उपर्युक्त रोगों से संबंधित लक्षण दिखाई देने पर अपने आहार में कार्बोहाइड्रेट्स व वसा से संबंधित पदार्थों में कमी कर देनी चाहिए।
- व्यायाम एवं खेलकूद में भाग लेना चाहिए तभी उत्तम स्वास्थ्य की प्राप्ति संभव है।

संक्षेप में

1. संतुलित भोजन प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट्स, खनिज लवण, विटामिन और जल के सम्मिलित तत्वों से बनता है।
2. संतुलित भोजन मनुष्य को स्वस्थ, निरोगी व पुष्ट बनाए रखने में सहायता करता है। टूटी–फूटी कोशिकाओं की मरम्मत कर शरीर के विकास में सहयोग देता है।
3. वसा की कमी से त्वचा शुष्क हो जाती है। त्वचा के विभिन्न रोग हो जाते हैं।
4. खिलाड़ियों व अधिक परिश्रम करने वाले व्यक्तियों को कार्बोहाइड्रेट्स की अधिक आवश्यकता होती है।
5. प्रतिदिन खाद्य पदार्थों द्वारा 2500 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त की जाती है।
6. विटामिन व्यक्तियों को निरोग और स्वस्थ रखने के लिए आवश्यक हैं। इन्हें शरीर के सुरक्षात्मक पोषक तत्व भी कहते हैं।
7. चूना तथा फास्फोरस हड्डियों को बनाते हैं। लोहा, तांबा, हिमोग्लोबिन बनाने में सहायक होते हैं।
8. भोजन संबंधी अच्छी आदतों का होना अत्यंत आवश्यक है।

अपनी प्रगति जांचिए

3. इनमें से क्या मांसाहारी आहार नहीं है?

(क) मछली (ख) अंडा

(ग) मांस (घ) वसा

4. कैल्शियम की कमी से होने वाला रोग है–

(क) आस्टोपोरोसिस (ख) रतौंधी

(ग) एनीमिया (घ) गलगंड

2.4 क्रीड़ा और खेल के आधारभूत कौशल– नियम, विनियम एवं नैतिकता

टिप्पणी

क्रीड़ा और खेल छात्रों के सर्वांगीण विकास का एक महत्वपूर्ण घटक रहा है। स्कूलों में खेल और खेल का महत्व केवल शारीरिक गतिविधि के लाभ से अधिक है। यह न केवल अकादमिक प्रदर्शन को बेहतर बनाने में मदद करता है, बल्कि यह नेतृत्व, टीम कार्य कौशल और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा देने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण भी है। समन्वय, गतिविधि, शक्ति, निपुणता, गति कौशल के साथ फिटनेस, साइकोमोटर कौशल तथा सहयोग और खिलाड़ी भावना को बढ़ावा देने के लिए खेलों को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके अलावा, युवा प्रतिभाओं को प्रारंभिक चरण में ही पहचाना जाता है और विशेष कोचिंग द्वारा उनके चुने हुए क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त करने में उनकी मदद की जाती है तथा छात्र अपनी ऊर्जा के लिए स्वस्थ आउटलेट पाते हैं। यह छात्रों, शिक्षकों, माता–पिता और प्रशासन के बीच अच्छे तालमेल को भी बढ़ावा देता है।

क्रीड़ा, खेल और किलोल में अंतर

क्रीड़ा (Game): क्रीड़ा खेल का एक संरचित रूप है, जो आमतौर पर मनोरंजन के लिए किया जाता है, और कभी–कभी एक शैक्षिक उपकरण के रूप में उपयोग किया जाता है। क्रीड़ा कार्य और कला से अलग होती है, कार्य आमतौर पर पारिश्रमिक के लिए किए जाते हैं, और कला अक्सर सौंदर्य या वैचारिक तत्वों की अभिव्यक्ति होती है।

खेल (Sports): खेल आमतौर पर प्रतिस्पर्धी शारीरिक गतिविधि के सभी रूप हैं, जो आकस्मिक या संगठित भागीदारी के माध्यम से, प्रतिभागियों और कुछ मामलों में दर्शकों को मनोरंजन प्रदान करते हैं तथा खेलों में शारीरिक क्षमता और कौशल का प्रयोग होता है, या फिर शारीरिक क्षमता और कौशल को बनाये रखने या उनमें सुधार करना इनका उद्देश्य होता है।

किलोल (Play)– यह मनोरंजन और आनंद के लिए की जाने वाली आंतरिक रूप से प्रेरित गतिविधियों की श्रृंखला होती है जो क्रीड़ा से अधिक साम्य रखती है। किलोल आमतौर पर बच्चों और किशोर–स्तर की गतिविधियों से जुड़ा होता है, हालांकि यह किसी भी जीवन/आयु स्तर पर हो सकता है, और अन्य उच्च–कार्यक्षम जानवरों में भी यह क्रिया पायी जाती है, विशेष रूप से स्तनधारियों और पक्षियों में नजर आती है।

अंतर

क्रीड़ा, खेल और किलोल के बीच मुख्य अंतर यह है कि क्रीड़ा में मानसिक और शारीरिक दोनों गतिविधियां शामिल होती हैं जबकि खेल में मुख्य रूप से शारीरिक गतिविधियां शामिल होती हैं।

क्रीड़ा कौशल, ज्ञान या भाग्य से जुड़ी एक गतिविधि है, जिसमें आप नियमों के एक सेट का पालन करते हैं और एक प्रतिद्वंद्वी के खिलाफ जीतने की कोशिश करते हैं। दूसरी ओर, खेल एक ऐसी गतिविधि को संदर्भित करता है जिसमें शारीरिक परिश्रम और कौशल शामिल होता है जिसमें एक व्यक्ति या एक टीम दूसरों के खिलाफ

प्रतिस्पर्धा करती है। हालांकि ये शब्द कभी–कभी विनिमेय होते हैं, किन्तु क्रीड़ा और खेल के बीच विशिष्ट अंतर होता है।

टिप्पणी

किलोल अपने शुद्धतम रूप में शारीरिक गतिविधि है। किलोल असंरचित गतिविधि है। क्रीड़ा ऐसी गतिविधियां हैं जिनमें नियमों, उपकरणों और कोचिंग का न्यूनतम सेट होता है। खेल प्रतिस्पर्धी या सहकारी हो सकते हैं और इसमें स्कोरबोर्ड की उपस्थिति वैकल्पिक है।

2.4.1 क्रीड़ा और खेल (गेम्स एंड स्पोर्ट्स) के आधारभूत कौशल

कौशल क्या है?

किसी कौशल की व्याख्या या परिभाषित करते समय, स्पष्टीकरण या परिभाषा में निम्नलिखित प्रमुख शब्द और विचार होने चाहिए–

एक सीखी हुई क्षमता : बास्केटबॉल खिलाड़ी को यह सीखना होता है कि ले–अप शॉट कैसे किया जाता है।

पूर्व–निर्धारित परिणाम : बास्केटबॉल खिलाड़ी गेंद को टोकरी में डालने के लिए निकलता है।

अधिकतम निश्चितता : बास्केटबॉल खिलाड़ी हर बार गेंद को टोकरी में डालने की अपेक्षा करता है।

अधिकतम दक्षता : बास्केटबॉल खिलाड़ी ले–अप को आसानी से करने में समर्थ होता जाता है तथा शक्ति एवं ऊर्जा का प्रयोग न्यूनतम होता जाता है, हालांकि ऐसी स्थिति तक पहुंचने में बहुत समय लगेगा।

इन चार विचारों को सम्मिलित कर एक उपयुक्त उद्धरण 1963 में बारबरा कन्नप द्वारा लिखा गया था जिसके अनुसार– "एक कौशल अधिकतम निश्चितता के साथ पूर्व–निर्धारित परिणाम लाने की सीखी हुई क्षमता है; अक्सर समय या ऊर्जा या दोनों के न्यूनतम परिव्यय के साथ।"

कौशल को दो श्रेणियों में उप–विभाजित किया जा सकता है–

शारीरिक कौशल : इसे मोटर कौशल के रूप में भी जाना जाता है। यह सभी खेलों का आधार है और इसे दो प्रकारों में उप–विभाजित किया जा सकता है–

सरल मोटर कौशल जिनके लिए शरीर की जटिल गति की आवश्यकता बहुत कम होती है और अधिकांश खेलों में समान होते हैं। उदाहरण– दौड़ना, कूदना, फेंकना, पकड़ना, मारना आदि।

जटिल मोटर कौशल के लिए शरीर के कई हिस्सों के बेहतर नियंत्रण के साथ शरीर की जटिल गतिविधियों की आवश्यकता होती है। इसका एक उदाहरण बास्केटबॉल में ले–अप शॉट है।

मानसिक कौशल : खेल में अधिकांश प्रदर्शनों के लिए किसी न किसी रूप में मानसिक गतिविधि की आवश्यकता होती है। सरल मोटर कौशल के लिए कम मानसिक इनपुट की आवश्यकता होती है, जबकि ओरिएंटियरिंग जैसी गतिविधियों के लिए खिलाड़ी को अगले कदम के बारे में निर्णय लेने से पहले मानसिक रूप से स्थिति का आकलन करने की आवश्यकता होती है।

ड्रॉप शॉट खेलने के बजाय बैडमिंटन में कब स्मैश करना है, यह जानने के लिए 'गेम को पढ़ने' के लिए मानसिक इनपुट की आवश्यकता होती है।

टिप्पणी

प्रदर्शन को दोहराने से पहले पिछले प्रदर्शन के दौरान त्रुटियां क्यों हुईं, यह पता लगाने के लिए उच्च स्तर के मानसिक इनपुट की आवश्यकता होती है।

इसलिए शीर्ष प्रदर्शन करने वाले खिलाड़ियों में शारीरिक रूप से उच्च स्तर की मानसिक चपलता होती है।

कौशल के कुछ अन्य प्रकार निम्नांकित हैं–

- **साधारण कौशल** : ऐसे कौशल जिनमें समन्वय या सामंजस्य, समय व विचारों की अधिक मात्रा में आवश्यकता नहीं पड़ती उन्हें साधारण कौशल कहा जाता है। ये सीखने में आसान होते हैं। जैसे– चेस्ट पास, अंडर आर्म सर्विस इत्यादि।
- **जटिल कौशल** : इस प्रकार के कौशलों में समन्वय या सामंजस्य समय व विचारों की अधिक मात्रा में आवश्यकता होती है। इनको करने में जटिलता का सामना करना पड़ता है। जैसे– फुटबाल में ओवर हेड किक।
- **निरंतर कौशल** : इन कौशलों का कोई वास्तविक प्रारंभ व अंत नहीं होता है। उदाहरण के लिए साइक्लिंग आदि करना निरंतर कौशलों के उदाहरण हैं।
- **उचित कौशल** : उचित कौशलों में जटिल गतियां जिनमें छोटी मांसपेशियों के समूह का प्रयोग होता है जैसे स्नूकर का शॉट।
- **व्यक्तिगत कौशल** : ये वे कौशल होते हैं जो अकेले ही किए जाते हैं, जैसे– ऊंची कूद, लंबी कूद।

कौशल का स्थानांतरण

एक कौशल को सीखने से कभी–कभी दूसरी गतिविधि के अन्य कौशल को सीखने में मदद मिल सकती है। इसे सकारात्मक स्थानांतरण के रूप में जाना जाता है।

इसका एक उदाहरण नेटबॉल में चेस्ट पास सीखना और बास्केटबॉल में चेस्ट पास सीखना है।

पहले से सीखा हुआ कौशल नया कौशल सीखने में बाधा भी डाल सकता है। इसे नकारात्मक हस्तांतरण के रूप में जाना जाता है। इसका एक उदाहरण टेनिस शॉट के मूल रैकेट एक्शन के विपरीत स्क्वैश शॉट का मूल रैकेट एक्शन है।

कौशल वर्गीकरण

कौशल को वर्गीकृत करने के कई तरीके हैं, तीन सबसे नियमित रूप से उपयोग की जाने वाली विधियों की चर्चा नीचे की गई है–

खुला (मुक्त) कौशल और बंद कौशल : उदाहरण के लिए पर्यावरण, हवा और बारिश या कोई क्षेत्र एक कौशल के प्रदर्शन को प्रभावित कर सकते हैं। पर्यावरण से प्रभावित कौशलों को मुक्त कौशल के रूप में जाना जाता है।

वे उन खेलों में भी पाए जाते हैं जिनमें विरोधी खिलाड़ी या टीम शामिल होती है। जहां कहीं भी अप्रत्याशितता का तत्व होता है, वहां कौशल को खुले कौशल के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।

ऐसे खेलों में जहां एक प्रतिद्वंद्वी का एक्शन किसी कौशल या कौशल के प्रदर्शन में बहुत कम या कोई भूमिका नहीं निभाता है, जहां एथलीट अपने प्रदर्शन पर लगभग पूर्ण नियंत्रण रखता है, तो इन कौशलों को बंद कौशल के रूप में जाना जाता है।

टिप्पणी

बंद कौशल को भौतिक वातावरण भी प्रभावित नहीं करता है।

इन दोनों चरम सीमाओं के बीच ही कौशल का स्तर प्रदर्शित होता है और इसलिए खुले कौशल और बंद कौशल स्तर के बीच एक निरंतरता बनी रहती है।

खुले और बंद सातत्य की तरह, यह सातत्य उस नियंत्रण की मात्रा पर आधारित होता है जिस पर एथलीट का प्रदर्शन होता है या जब कौशल को निष्पादित किया जाता है।

सातत्य के दोनों छोर पर बाह्य गति और आत्म–गतिविधि होती है।

बाहरी पेसिंग तब होती है जब बाहरी कारक निर्धारित करते हैं कि कौशल या प्रदर्शन कब किया जाता है, उदाहरण के लिए, लक्ष्य पर एक शॉट और जब गोलकीपर गोल बचाता है।

सेल्फ–पेसिंग तब होती है जब खिलाड़ी यह तय करता है कि वह कब कौशल का प्रदर्शन करना चाहता है, उदाहरण के लिए, गोल्फ की गेंद को मारना।

यह सातत्य उन कौशलों का वर्णन करता है जो निरंतर से असतत तक होते हैं।

साइकिल चलाने और चलने जैसी गतिविधियां निरंतर कौशल के अंतर्गत आती हैं।

असतत कौशल के अंतर्गत वे कौशल आते हैं जिनकी एक अलग शुरुआत और समाप्ति होती है जैसे कि एक उच्च गोता।

हर खेल के लिए जरूरी स्पोर्ट्स स्किल्स

हर कोच, हर एथलीट, हर मीडिया कमेंटेटर और हर प्रशंसक का यही मानना है कि सभी खेलों का मूल तत्व कौशल है।

फुटबॉल में किकिंग और पासिंग।

क्रिकेट और बेसबॉल में फेंकना और पकड़ना।

तैराकी में गोताखोरी, मोड़ और परिष्करण।

रग्बी और रग्बी लीग में बलपूर्वक निपटना और पास करना।

बास्केटबॉल और नेटबॉल में पासिंग और शूटिंग।

खेल के बुनियादी कौशल हैं– सीखना, अभ्यास करना, महारत हासिल करना, कोचिंग, खेल प्रदर्शन और एथलेटिक प्रशिक्षण।

हालांकि, खेल कौशल सीखना इस प्रक्रिया में केवल पहला कदम है। यदि लक्ष्य प्रतियोगता में जीतना है तो केवल मूर्ख ही मानते हैं कि "अभ्यास परिपूर्ण बनाता है"।

एथलीट इसलिए असफल नहीं होते क्योंकि उनका कौशल स्तर खराब है बल्कि वे इसलिए असफल होते हैं क्योंकि प्रतिस्पर्धा की परिस्थितियों में कौशल का प्रदर्शन करने की उनकी क्षमता खराब होती है और यह सही कोचिंग का मुद्दा है।

हर खेल में सफल होने के लिए खिलाड़ी को कुछ निश्चित कौशल चरणों में महारत हासिल करनी पड़ती है।

टिप्पणी

तो स्पोर्ट्स स्किल क्या है?

"प्रतियोगिता के माहौल में थकान और दबाव की स्थिति में एक खेल कौशल का गति के साथ लगातार अच्छा प्रदर्शन करने की क्षमता।"

खेल में कौशल के बारे में कहा जाता है– "यह सब बुनियादी बातों के बारे में है" तो कुछ कहते हैं– "कौशल ही सब कुछ है"।

लेकिन जब आप थके हुए हों, दबाव में हों और हजारों लोगों के सामने कौशल का प्रदर्शन करने की कोशिश कर रहे हों, तो कौशल सीखने और कौशल का लगातार अच्छी तरह से प्रदर्शन करने के लिए सीखने में बहुत बड़ा अंतर होता है।

तकनीकी रूप से खेल का बिल्कुल सही कौशल होना एक मिथक ही है।

"आपको एथलीट को तब तक प्रशिक्षित करना चाहिए जब तक कि वे तकनीक एक्स के हर तत्व को पूरी तरह से महारत हासिल नहीं कर लेते"। यह एक मिथक है।

खिलाड़ी को तकनीक में उत्कृष्टता का पीछा करना चाहिए और कोचों को एथलीटों के कौशल में लगातार सुधार करने का प्रयास करना चाहिए।

एथलीटों को प्रदर्शन स्थितियों में खेल कौशल को निष्पादित करने में सक्षम होना चाहिए।

प्रदर्शन अभ्यास : जिस तरह की परिस्थिति में आपको प्रदर्शन करना है उन्हीं परिस्थितियों में प्रशिक्षण उत्तम होता है।

प्रशिक्षण में कौशल अभ्यास में दबाव के तत्व को शामिल कर सुनिश्चित किया जाना चाहिए कि प्रशिक्षण अधिक चुनौतीपूर्ण और प्रतिस्पर्धा के माहौल की तुलना में अधिक कठोर हो जिसके लिए खिलाड़ी तैयारी कर रहे हैं।

प्रशिक्षण के दौरान खिलाड़ी बहुत अच्छी तरह से, गति से, थकान में और लगातार दबाव में कौशल का प्रदर्शन करें। एक बार प्रतिस्पर्धा की परिस्थितियों में कौशल का प्रदर्शन करने में सक्षम होना भाग्य भी हो सकता है, लेकिन प्रतिस्पर्धा की परिस्थितियों में उच्च कोटि का प्रदर्शन लगातार करने में सक्षम होना एक वास्तविक चैंपियन का संकेत है। प्रतियोगिता में कौशल निष्पादन में निरंतरता प्रशिक्षण मानकों की निरंतरता से आती है। प्रशिक्षण में कौशल निष्पादन की गुणवत्ता के लिए "कोई समझौता नहीं" दृष्टिकोण अपनाना प्रतिस्पर्धा की स्थितियों में कौशल निष्पादन की सतत गुणवत्ता विकसित करने का एक निश्चित तरीका है। लेकिन दुर्भाग्य से कई एथलीटों के पास दो दिमाग होते हैं–

- **प्रशिक्षण मस्तिष्क**– प्रशिक्षण और तैयारी में वे "मस्तिष्क" का उपयोग करते हैं। यह "दिमाग" आलस्य, अशुद्धि, ढिलाई और खराब कौशल निष्पादन को हमेशा स्वीकार करता है और यह विश्वास दिलाता है कि "प्रदर्शन उस दिन ठीक रहेगा" और प्रतियोगिता में सब कुछ जादुई रूप से सही होगा।
- **प्रतियोगिता मस्तिष्क**– प्रतियोगिता में सफलता का रहस्य प्रत्येक प्रशिक्षण सत्र में "प्रतियोगिता मस्तिष्क" का उपयोग करना है। अर्थात यह विश्वास होना

चाहिए कि सफलता के लिए जो कुछ भी आवश्यक हैं, मैंने उस सब का सदैव अभ्यास किया है और मैं सफल हो कर रहूंगा।

टिप्पणी

प्रतिस्पर्धा की स्थितियों में खिलाड़ी को लगातार, थकान और दबाव में, बहुत अच्छी तरह से कौशल के प्रदर्शन योग्य होना चाहिए। एक चैंपियन एथलीट बनाने में असली कारक प्रतिस्पर्धा की परिस्थितियों में लगातार प्रदर्शन करने की उनकी क्षमता है।

एक बुनियादी कौशल को अच्छी तरह से करना मुश्किल नहीं है। लेकिन 75 मिनट की प्रतियोगिता की थकान में यदि पूरे सीजन का दबाव, बोर्ड, कोच, प्रबंधन, टीम के साथी और हजारों प्रशंसकों की उम्मीदें जोड़ दें तो जो खिलाड़ी इस सबके बावजूद अगर सर्वोत्तम प्रदर्शन करता है तो वही चैंपियन कहलाता है।

प्रतियोगिता में अनुभव की जाने वाली परिस्थितियों में लगातार अभ्यास करने से ही सफलता मिलेगी।

तकनीक

तकनीक किसी भी क्रिया को सहज ढंग से करने की एक विधि या तरीका है। एक कौशल को, एक से अधिक तकनीक द्वारा किया जा सकता है। इसलिए कहा जा सकता है कि तकनीक कौशल को करने का एक तरीका है। उदाहरण के लिए गोला फेंक में मुख्य तकनीक गोले की अधिक दूरी तक फेंकना होता है जबकि वेटलिफ्टिंग में भार को अधिक से अधिक उठाना होता है। जबकि समूह खेल में खिलाड़ी को विभिन्न प्रकार के तरीकों का प्रयोग भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में करना पड़ता है। इस प्रकार खेल के दौरान एक खिलाड़ी विभिन्न प्रकार की तकनीकों को अलग–अलग तरीके से या शारीरिक रूप से प्रयोग करता है। शारीरिक रूप से तकनीकों को समझने के लिए प्रदर्शन करना अथवा करके दिखाने का तरीका प्रयोग किया जाता है।

सारांशतः

(क) केवल खेल कौशल सीखना और उसमें महारत हासिल करना पर्याप्त नहीं है।

(ख) प्रशिक्षकों और एथलीटों को प्रतिस्पर्धा की स्थिति में अपने खेल के मौलिक कौशल को सीखने में उतना ही समय, ऊर्जा और प्रयास खर्च करना चाहिए जितना वे बुनियादी कौशल सीखने और महारत हासिल करने के लिए करते हैं;

(ग) प्रशिक्षकों को विभिन्न कौशल चरणों के माध्यम से व्यवस्थित रूप से एथलीटों को आगे बढ़ाना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित हो सके कि वे प्रतिस्पर्धा की स्थिति में मौलिक खेल कौशल का प्रदर्शन कर सकते हैं।

अतीत में, लोग मनोरंजन के साधन के रूप में अथवा अपनी शारीरिक शक्ति का के प्रदर्शन हेतु खेल खेला और देखा करते थे। प्रारंभिक ओलंपिक खेलों को इस परिकलपना के साथ आयोजित किया गया था– स्वस्थ शरीर और दिमाग का विकास, सामाजिक नैतिकता को उन्नत करना और खेल के नियम बनाना।

विभिन्न देशों में हुए राजनीतिक और सामाजिक–आर्थिक परिवर्तनों ने दुनिया में खेल के क्षेत्र को भी प्रभावित किया। सामाजिक–आर्थिक विकास के साथ–साथ खेल प्रतिभागियों की जरूरतें बदल गईं। परिणामतः अधिकांश खेल एक उच्च संगठित इकाई के रूप में विकसित हुए ताकि समाज की जरूरतों और मांगों को पूरा किया जा सके।

प्रत्येक खेल से संबंधित मुद्दों के समाधान के लिए, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शासी निकाय स्थापित किए गए और नियम बनाए गए।

टिप्पणी

2.4.2 खेल में नियम, विनियम तथा नैतिकता

खेल के नियम और विनियम राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय खेल शासी निकाय द्वारा बनाए गए, स्वीकृत किए गए और लागू किए गए दिशा–निर्देश हैं। यह आचरण को सुविधाजनक बनाने के लिए हैं और खेलों का विकास के लिए है। इनसे संबंधित शासी निकाय सक्षम होंगे तथा नियमों और विनियमों का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए और आवश्यकताओं के आधार पर इन्हें संशोधित भी किया जाता है।

यह जानना दिलचस्प है कि कुछ ऐसे खेल भी हैं जिनमें कोई निर्धारित नियम और कानून नहीं होते हैं। ये खेल नियमों और विनियमों के एक अलिखित सेट का पालन करते हुए खेले जाते हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं।

खेलों में नियमों और विनियमों की आवश्यकता

खेलों में नियमों और विनियमों के उद्देश्यों को निम्नानुसार सूचीबद्ध किया जा सकता हैं–

- खेलों में नैतिकता बनाए रखना
- खेलकूद में उत्साह बनाए रखना
- खेल की गरिमा को बनाए रखना
- व्यक्तिगत मूल्यों का विकास करना
- खेलों को विनियमित करने और मतभेदों, दुर्घटनाओं को न्यूनतम करने के लिए
- प्रतिभागियों के अधिकारों की रक्षा के लिए
- खेल से संबंधित समस्याओं का समाधान करना।

(क) **खेल की नैतिकता बनाए रखना** : किसी खेल आयोजन में भाग लेने वाले हमेशा एक दूसरे का सम्मान करते हैं। जब खेल में भाग लेने वाले नियमों और विनियमों का पालन करते हैं, तो उन्हें सामाजिक नैतिकता बनाए रखने की भी आदत हो जाती है। खेल प्रतियोगिता की शुरुआत और समाप्ति पर, प्रतिभागियों को बधाई देना चाहिए तथा जजों और दर्शकों को बधाई देना चाहिए। उदाहरण के लिए, जब कोई प्रतियोगिता या खेल समाप्त हो जाता है, तो विरोधी टीमों के सदस्य, चाहे विजेता कोई भी हो, हाथ मिलाते हैं, एक–दूसरे को गले लगाते हैं और जजों और दर्शकों के प्रति भी अपना आभार प्रकट करते हैं।

1936 में बर्लिन ओलंपिक में, संयुक्त राज्य अमेरिका के जेसी ओवेन्स और जर्मनी के लूज लॉन्ग ने चौथे दौर के अंत तक पुरुषों की लंबी कूद में 7.87 मीटर की दूरी तय की थी। फिर लूज लॉन्ग ने जेसी ओवेन्स को रनिंग अप्रोच में सुधार के तरीकों के बारे में बताया। अंत में जेसी ओवेन्स ने 8.06 मीटर की अंतिम छलांग लगाते हुए पहला स्थान हासिल किया। लगभग 80,000 दर्शकों के मजबूत समूह के जयकारों के बीच दोनों एथलीट एक साथ खेल के मैदान में घूमे।

(ख) **खेलों में उत्साह बनाए रखना** : खेलों में उत्साह बनाए रखने के लिए नियम–विनियमों का बहुत महत्व है। यदि खेल आयोजन नियमों और विनियमों का पालन किए बिना आयोजित किए जाते हैं, तो निष्पक्ष प्रतियोगिता आयोजित करना कठिन होगा। खेल के नियमों, विनियमों और मानकों के अनुसार कार्य करने से प्रत्येक प्रतिभागी को न्याय मिलेगा। जब प्रत्येक प्रतिभागी समान नियमों का पालन करता है, तो प्रत्येक प्रतिभागी को शुरू से अंत तक समान भावना रखते हुए खेल में भाग लेने का समान अवसर मिलता है। जब नियमों और विनियमों का पालन होता है, तो दर्शकों का भी खेल में विश्वास विकसित होगा। इस प्रकार, नियम और विनियम प्रतिभागियों के लिए खेल में संलग्न होने का मार्ग प्रशस्त करते हैं, प्रशंसक इसे शुरू से अंत तक उत्साह के साथ देखते हैं और निर्विवाद रूप से जीत और हार को स्वीकार करते हैं।

(ग) **खेलों में गरिमा बनाए रखना** : खेल में गरिमा बनाए रखने के लिए भी नियम और कानून महत्वपूर्ण हैं। जब सभी प्रतिभागियों पर समान नियम लागू होते हैं, तो सभी को न्याय मिलता है। इसलिए, प्रतिभागी निष्पक्ष खेल की स्थापना करने वाले नियमों और विनियमों का पालन करते हैं, सबसे योग्य को पुरस्कार मिलता है और खेल की गरिमा को बनाए रखते हैं।

(घ) **व्यक्तिगत मूल्यों का विकास** : कोई भी खेल आयोजन अपने प्रतिभागियों को व्यक्तिगत मूल्यों को विकसित करने में मदद करता है जैसे कि जीत और हार को समान रूप से स्वीकार करने की क्षमता, नियमों और विनियमों का पालन करने वाले खेल में संलग्न होना और एक दूसरे के लिए सम्मान।

उदाहरण के लिए, 2012 में गाल में श्रीलंका और न्यूजीलैंड के बीच खेले गए टेस्ट मैच में, न्यूजीलैंड टीम के विकेटकीपर ने महेला जयवर्धने के खिलाफ कैच आउट की अपील की, जबकि महेला 91 रन पर थे। महेला अंपायर के फैसले का इंतजार किए बिना मैदान से बाहर चले गए। ऐसा इसलिए है क्योंकि उनके व्यक्तिगत मूल्य बहुत उच्च थे। इसी घटना ने महेला को ICC अवाड्‌र्स 2014 में ICC स्पिरिट ऑफ क्रिकेट नाम का विशेष पुरस्कार दिलाया।

(ङ) **दुर्घटनाओं को कम करने के लिए खेलों को विनियमित करना** : खेल आयोजनों में भाग लेने के दौरान, प्रतिभागियों को विभिन्न दुर्घटनाओं का सामना करना पड़ता है। ये दुर्घटनाएं कई कारणों से हो सकती हैं जैसे कि जिस तरह से खेल खेला जाता है, जिस तरह के उपकरणों का इस्तेमाल किया जाता है आदि। इसलिए, उपकरणों के उपयोग के संबंध में नियमों के माध्यम से मानकों को परिभाषित किया गया है और प्रतिभागी अपनी इच्छानुसार उपकरण का उपयोग नहीं कर सकते हैं। नियम उस तरीके को परिभाषित करते हैं जिसके अनुसार प्रतिभागियों को खेल खेलना चाहिए।

उदाहरण के लिए क्रिकेट में, एक तेज गेंदबाज कमर के ऊपर फुल टॉस बाल नहीं फेंक सकता (इस डिलीवरी को बीमर कहा जाता है) और बॉक्सिंग में मुक्केबाजों को हेडगियर और माउथ गार्ड पहनना अनिवार्य है।

(च) **प्रतिभागियों के अधिकारों की रक्षा** : नियम और विनियम खेल आयोजनों में प्रतिभागियों के अधिकारों की रक्षा करते हैं, उनके भाग लेने के अधिकार की

गारंटी देते हैं, प्रत्येक प्रतिभागी को न्याय प्रदान करते हैं और उनकी सुरक्षा सुनिश्चित करते हैं। नियमों और विनियमों ने प्रतियोगियों को अनुचित साधनों और गेम फिक्सिग से जीत हासिल करने से भी रोक दिया है।

टिप्पणी

(छ) **खेल से संबंधित समस्याओं का समाधान** : किसी भी खेल में, प्रतिभागियों को खेल खेलने के तरीके के संबंध में विभिन्न समस्याओं और मुद्दों का सामना करना पड़ सकता है। इस तरह के मुद्दे खेल के सफल संचालन को प्रभावित कर सकते हैं। इसलिए विवादों को कैसे सुलझाया जाना चाहिए, इस पर नियम और कानून बनाए गए हैं। यह खेल की सफल निरंतरता का मार्ग प्रशस्त करता है।

(ज) **मनोरंजन प्रदान करना** : खेलते समय, प्रतिभागियों को आनंद मिलता है चाहे उनकी प्रतिभा या स्थिति कुछ भी क्यों न हो, प्रत्येक प्रतिभागी पर समान नियम लागू होते हैं। अतः प्रत्येक प्रतिभागी खेल के परिणाम से संतुष्ट होता है और खुश होता है।

(झ) **फेयर प्ले** : ओलंपिक खेलों के उद्घाटन समारोह में, प्रतियोगियों के प्रतिनिधि के रूप में एथलीट और अधिकारियों का प्रतिनिधित्व करने वाला एक न्यायाधीश ओलंपिक शपथ लेता है। ओलंपिक शपथ दो उद्देश्यों के लिए ली जाती है, अर्थात्, खेल के नियमों और विनियमों के पालन किए जाने हेतु और सभी प्रतिभागियों द्वारा नैतिकता के पालन हेतु भी यह शपथ ली जाती है।

निष्पक्ष खेल के माध्यम से खेलों में निम्नलिखित मूल्यों की गारंटी दी जाती है–

- खेल के प्रति अच्छा नजरिया
- खेल की नैतिकता
- खेल में कदाचार, डोपिंग, हिंसक कृत्यों और शोषण की रोकथाम
- दूसरों को शारीरिक या मानसिक पीड़ा देने से बचना।

महान खेल भावना वाला व्यक्ति हमेशा मानता है कि खेल में भाग लेना जीत से ज्यादा महत्वपूर्ण है। एक उदाहरण जब 2011 में आईसीसी क्रिकेट विश्व कप टूर्नामेंट में पाकिस्तान और वेस्टइंडीज के बीच मैच था। पाकिस्तान को आखिरी गेंद पर जीत के लिए चार रन बनाने थे। वेस्टइंडीज का यह गेंदबाज आखिरी गेंद देने के लिए दौड़ रहा था, गेंदबाजी के छोर पर मौजूद पाकिस्तानी बल्लेबाज क्रीज के पीछे से आगे निकल गया था। इस बिंदु पर, गेंदबाज आसानी से पाकिस्तानी खिलाड़ी को रन आउट कर सकता था और मैच जीत सकता था, इसके बजाय वह वहीं रुक गया, गेंद को विकेट के करीब रखा और उसे आगे न बढ़ने की चेतावनी दी। आखिरी गेंद पर पाकिस्तान ने जरूरी चार रन बनाए और मैच जीत लिया। पाकिस्तानियों की जीत के बावजूद, सभी दर्शकों और कमेंटेटरों ने वेस्टइंडीज के गेंदबाज को सम्मानित किया और उसके प्रति बहुत सम्मान दिखाया, जिन्होंने महान खेल भावना का प्रदर्शन किया। इस उदाहरण से जो स्पष्ट होता है वह यह है कि ऐसे खिलाड़ी हमेशा निष्पक्ष खेल से ही जीत की उम्मीद करते हैं।

ये तथ्य स्पष्ट करते हैं कि खेलों में नियम–कायदे होने चाहिए। खेल के सुचारू संचालन के अलावा, यह सच्चे खेल नायकों की पहचान करने, दर्शकों और जजों की रक्षा करने, सटीक निर्णय लेने और धोखाधड़ी की प्रथाओं को रोकने में मदद करता है।

खेल के नियम और कानून प्रतिभागियों के व्यक्तिगत विकास में बहुत योगदान करते हैं और सामाजिक कल्याण पर बहुत प्रभाव डालते हैं।

टिप्पणी

अपनी प्रगति जांचिए

5. खेल में नियम, विनियम तथा नैतिकता की आवश्यकता क्यों है?
   (क) नैतिकता बनाए रखने हेतु
   (ख) उत्साह बनाए रखने हेतु
   (ग) खेल की गरिमा एवं मूल्यों के विकास हेतु
   (घ) उपर्युक्त सभी
6. निम्न में से कौन क्रीड़ा और खेल का आधारभूत कौशल है?
   (क) एक सीखी हुई क्षमता (ख) पूर्व निर्धारित परिणाम
   (ग) अधिकतम निश्चितता–दक्षता (घ) उपर्युक्त सभी

2.5 शारीरिक स्वस्थता, शारीरिक मुद्रा और लचीलापन, खेलों में शक्ति और स्ट्रेचिंग व्यायामों का महत्व

शारीरिक फिटनेस दिन–प्रतिदिन की सामान्य गतिविधियां जो बिना किसी थकान, शक्ति, सतर्कता और पर्याप्त ऊर्जा के साथ फुर्सत के समय का आनंद लेने और किसी भी अप्रत्याशित आपात स्थिति को पूरा करने की क्षमता है। शारीरिक फिटनेस विभिन्न विशेषताओं से बनती है, जो व्यक्तियों में होती हैं या प्राप्त की जाती हैं जो शारीरिक गतिविधि करने की उनकी क्षमता से संबंधित होती हैं। प्रत्येक शारीरिक फिटनेस घटक का अलग से परीक्षण और प्रशिक्षित किया जा सकता है। इसका उद्देश्य वयस्कों 18–65 वर्ष की आयु के लोगों को सक्रिय रूप से स्वस्थ जीवन जीने का आनंद लेने के लिए व्यक्तिगत रूप से एवं दूसरों के साथ, शारीरिक कौशल, अभ्यासों और मूल्यों को प्रदर्शित करने के लिए सक्षम करना है।

इसके अंतर्गत सभी के लिए फिटनेस को प्रोत्साहित करना तथा प्रतिदिन 30–60 मिनट की मध्यम से कठिन शारीरिक गतिविधि सुनिश्चित करना उद्देश्य होता है।

पेट की मांसपेशियों के लिए अभ्यास

पेट की मांसपेशियों और मांसपेशियों की क्षमता को बेहतर बनाने के लिए एवं शक्ति वृद्धि के लिए (महिला के लिए पुश–अप/संशोधित पुश–अप), सीढ़ियों पर चढ़ने, पहाड़ी–चाल, साइकिल चलाने, नृत्य, पुश–अप, सिट–अप, स्क्वैट्स, प्लैंक्स, क्रंचेस, नौकासन, शलभासन, अकर्ण धनुरासन आदि का अभ्यास करने की आवश्यकता है। साथ ही ताड़ासन, उत्कटासन, त्रिकोणासन, कटिचक्रासन, योग मुद्रासन, क्वार्टर स्क्वैट्स, सीढ़ियां चढ़ना, क्रंचेस और बैक एक्सटेंशन व्यायाम का अभ्यास करने की आवश्यकता है।

उदरीय/कोर क्षमता

उदरीय मांसपेशियों की शक्ति में सुधार करने के लिए (आंशिक कर्ल–अप) और मांसपेशियों की क्षमता (महिला के लिए पुश–अप/संशोधित पुश–अप)

1. ताकत बढ़ाने के लिए सीढ़ियां, हिल–वॉक, साइक्लिंग, डांस, पुश–अप्स, सिट–अप्स, स्क्वैट्स, प्लेंक्स, क्रंचेस, नौकासान, शलभासन, अकर्णधनुरासन आदि का अभ्यास करना होगा।

टिप्पणी

2. ताड़ासन, वृक्षासन, उत्कटासन, त्रिकोणासन, कटिचक्रासन, योग मुद्रासन, क्वार्टर स्क्वैट्स, सीढ़ियां चढ़ना, क्रंचेस और बैक एक्सटेंशन व्यायाम का अभ्यास करने की आवश्यकता है।

शारीरिक संरचना (बॉडी मास इंडेक्स अथवा बीएमआई)

प्राथमिक तौर पर माना जाता है कि शारीरिक संरचना शरीर में मांसपेशी एवं वसा का वितरण होता है। शरीर का आकार जैसे ऊंचाई, लंबाई एवं घेरे को भी इस घटक के अंतर्गत समूहित किया जाता है।

निष्पादित टेस्ट बॉडी मास इंडेक्स (बीएमआई) होता है जिसे शरीर के वजन (डब्ल्यू) और ऊंचाई (एच), बीएमआई = डब्ल्यू/ (एच × एच) से परिकलित किया जाता है जहां डब्ल्यू = शरीर का वजन कि.ग्रा. में और ऊंचाई मीटर में मापी जाती है। आमतौर पर उच्चतम स्कोर बॉडी में वसा के उच्च स्तर का संकेत देता है।

हृदय रक्तवाहिका संबंधी सहनशक्ति (कार्डियोवास्कुलर एंडुरेंस)

हृदय रक्तवाहिकाओं संबंधी मजबूती (कार्डियोवेस्कुलर एंडुरेंस) के लिए और एंडुरेंस को सुधारने के लिए प्राणायाम (कपालभाति, भस्त्रिका, भ्रामरी), रोड साइक्लिंग, तैराकी, एरोबिक, दौड़ना और नृत्य कर सकते हैं।

फिजिकल फिटनेस

शारीरिक रूप से मजबूत स्वस्थ सक्रिय होना ही फिजिकल फिटनेस कहलाता है।

शारीरिक गतिविधि और निष्क्रिय व्यवहार 2020 पर विश्व स्वास्थ्य संगठन के दिशा–निर्देश : 18 से 64 वर्ष की आयु वर्ग के लिए आयु–उपयुक्त फिटनेस प्रोटोकॉल और दिशा–निर्देश निम्नलिखित हैं–

1. वयस्कों को पर्याप्त स्वास्थ्य लाभ के लिए सप्ताह में कम से कम 150 मिनट से 300 मिनट तक सरल से तीव्रता वाली एरोबिक शारीरिक गतिविधियां करनी चाहिए अथवा कम से कम 75 से 150 मिनट तक सशक्त तीव्रता वाली एरोबिक शारीरिक गतिविधियां करनी चाहिए अथवा पूरे सप्ताह सरल से सशक्त तीव्रता वाली मिली जुली गतिविधियां करनी चाहिए।
2. वयस्कों को सप्ताह में दो दिन अथवा इससे अधिक समय तक अधिकांश रूप से मांसपेशियों को मजबूत करने वाली सरल से सशक्त तीव्रता वाली गतिविधियां करनी चाहिए। इन गतिविधियों से अतिरिक्त स्वास्थ्य लाभ प्राप्त होता है।

शारीरिक फिटनेस की सिफारिशें

गहन प्रमाण दर्शाते हैं कि कम सक्रिय वयस्क पुरुषों और महिलाओं की तुलना में ऐसे व्यक्ति जो अधिक सक्रिय हैं उनमें–

- सर्व कारण कम मृत्यु दर, हृदय धमनी रोग, उच्च रक्त चाप, स्ट्रोक, टाइप 2 मधुमेह, उपापचीय लक्षण, बृहदान्त्र, स्तन कैंसर और विषाद कम पाए जाते हैं।
- नितंब या वर्टेब्रल फ्रैक्चर होने की संभावना का जोखिम कम होता है।

टिप्पणी

- उच्च स्तर के कार्डियोरेस्पिरेटरी और मांसपेशियों की फिटनेस का प्रदर्शन होता है तथा
- सही वजन होने की अधिक संभावना होती है तथा एक स्वस्थ शरीर द्रव्यमान और संरचना होती है।

असंक्रामक रोग और विषाद के जोखिम को कम करने के लिए दैनिक, पारिवारिक और सामुदायिक गतिविधियों के संदर्भ में 18–64 वर्ष की आयु के वयस्कों में, शारीरिक गतिविधि में खाली समय की शारीरिक गतिविधि (जैसे चलना या साइकिल चलाना), व्यावसायिक (यानी काम), घरेलू काम, खेल खेलना, खेल–कूद या नियोजित व्यायाम करने चाहिए ताकि कार्डियोरेस्पिरेटरी, मांसपेशियों की फिटनेस और हड्डी के स्वास्थ्य में सुधार लाया जा सके।

फिटनेस संकेतक

निम्नलिखित बेंचमार्क वर्तमान वर्ष (2019–20) के लिए संदर्भित आधार लाइन है। वर्ष के अंत में, देश भर में किए जा रहे फिटनेस असेसमेंट के आधार पर फिटनेस बैंचमार्क उपार्जित किए जाएंगे। वर्तमान वर्ष के संदर्भित प्वाइंट के प्रयोजन हेतु निम्नलिखित बेंचमार्क उपयोग किए जाएंगे–

वी सिट रिच : पुरुषों के लिए (सेंटीमीटर)

आयु (वर्ष)	एल1 (अधिक मेहनत करें)	एल2 (सुधार होना चाहिए)	एल3 (और बेहतर कर सकते हैं)	एल4 (अच्छा)	एल5 (बहुत अच्छा)	एल6 (अति उत्कृष्ट)	एल7 (उत्तम)
18-25	<11	12-13	14-17	18-19	20-21	22	>22
26-35	<9	10-12	13-16	17	18-19	20	>20
36-45	<7	8-11	12-15	16-17	18-19	20	>20
46-55	<6	7-9	10-13	14-15	16-18	19	>19
56-65	<5	6-8	9-11	13	14-16	17	>17

वी सिट रिच – महिलाओं के लिए (सेंटीमीटर)

आयु (वर्ष)	एल1 (अधिक मेहनत करें)	एल2 (सुधार होना चाहिए)	एल3 (और बेहतर कर सकते हैं)	एल4 (अच्छा)	एल5 (बहुत अच्छा)	एल6 (अति उत्कृष्ट)	एल7 (उत्तम)
18-25	<14	15-16	17-19	20-21	22	23	>23
26-35	<13	14-17	18-19	20	21-22	23	>23
36-45	<12	13-16	17	18-19	20-21	22	>22
46-55	<10	11-14	15-16	17-18	19-20	21	>21
56-65	<9	10-14	15-16	16-17	18-19	20	>20

बी.एम.आई. लेवल

बी.एम्.आई. श्रेणी	बी.एम्.आई. सीमा – कि०ग्रा०/एम2
अल्प-भार	< 18.5
सामान्य (स्वस्थ भार)	18.5 से 25
अधिक भार	25 से 30
मोटापा	> 30

2.5.1 शारीरिक मुद्राएं और लचीलापन

इन विषयों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

टिप्पणी

शारीरिक मुद्राएं

क्या आप जानते हैं एक सही शारीरिक मुद्रा आपको लंबा, पतला और सबसे महत्वपूर्ण बात, वह आपको आत्मविश्वासी दिखाती है? साधारणतः आज भी हम में से ज्यादातर में सही मुद्रा में बैठने का अभाव है। आज की आधुनिक जीवन शैली में लंबे समय तक रीढ़ को झुकाकर रखने से यह तनावपूर्ण हो गई है। अभ्रमणशील नौकरी, लंबे समय तक काम और उपकरणों का अत्यधिक उपयोग हमारे शरीर को कंधों से झुका हुआ और कुबड़ा बनाते हैं।

रीढ़ या स्पाइन हमारे शरीर का आधार है और सही अवस्था या मुद्रा (पास्चर) में नहीं बैठने या सोने की वजह से पीठ दर्द, कमर दर्द और टांगों में कई प्रकार से दर्द होता है। यह दर्द बाद में रीढ़ से संबंधित किसी रोग में भी बदल जाता है। डाक्टर्स का कहना है, "रीढ़ की हड्डी का दर्द आमतौर पर गर्दन (सर्वाइकल) पीठ के बीच के हिस्से (थोरेसिक) और पीठ के निचले हिस्से (लम्बर) में भी हो सकता है या फिर दर्द पूरी रीढ़ की हड्डी में भी महसूस हो सकता है। कुछ मामलों में रीढ़ की हड्डी का दर्द किसी प्रकार के रोग या रीढ़ की हड्डी से संबंधित विकार का संकेत भी दे सकता है।"

आज की जीवनशैली ही ऐसी हो गई है कि लोग घंटों कम्प्यूटर, लैपटॉप और मोबाइल में व्यस्त रहते हैं। इतने व्यस्त हैं कि ब्रेक तक लेने का समय नहीं और फिर गलत मुद्रा में बैठकर काम करते रहते हैं। गलत मुद्रा में बैठने का सबसे ज्यादा बुरा असर रीढ़ की हड्डी पर पड़ता है। गलत मुद्रा में कुर्सी पर बैठने, उठने या झुक कर गाड़ी चलाने के कारण पीठ में दर्द की समस्या हो जाती है। यह स्थिति रीढ़ की हड्डी को ज्यादा देर तक सीधा न रखने के कारण पैदा होती है। लंबे समय तक बैठे रहने से गर्दन और पीठ दोनों पर जोर पड़ता है और इससे इंटरवर्टिब्रल डिस्क में सूजन का खतरा रहता है। बैक बोन या वर्टिब्रल कॉलम एक के बाद एक हड्डियों और मुलायम संरचना (डिस्क) से बना होता है। इनमें सूजन आ जाती है तो स्पाइनल कॉर्ड बुरी तरह जख्मी हो जाता है और पीठ की हड्डी से जुड़ी कई बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। रीढ़ की हड्डी खोपड़ी से लेकर पेल्विस हिस्से तक चलती है। रीढ़ पूरे शरीर के वजन को संतुलित करके शरीर की संरचना को सपोर्ट देती है और इससे हम शरीर को हिला–डुला सकते हैं। रीढ़ की हड्डी को नुकसान होने से चलने, झुकने और घूमने में परेशानी हो सकती है।

हमारी कार्यप्रणाली इतनी बिगड चुकी है कि हम बैठना, चलना और सोने का तरीका तक भूल जाते हैं! और यही कारण है कि हम शरीर के विभिन्न भागों में दर्द के साथ अंतिम सांस लेते हैं। अपने खडे होने, बैठने और चलने के ढंग के प्रति सजग हो कर, तथा नियमित रूप से कुछ आसन और योग मुद्राओं का अभ्यास करके, हम शारीरिक दर्द से छुटकारा पा सकते है।

एक सही मुद्रा क्या है?

शरीर को, सही मुद्रा में तब कहा जाएगा, जब उसे इस तरह से गठित किया जाए कि पीठ सीधी हो, कंधे चौकस और आराम से, ठोड़ी सधी हुई, छाती बाहर, और पेट अन्दर हो। बस एक सीधी रेखा की तरह।

इस लक्ष्य को हासिल करने में योग कैसे मदद कर सकता है?

नियमित योग अभ्यास का पहला लाभ यह है कि यह जागरूकता लाता है। एक अच्छी मुद्रा के लिए अपनी शारीरिक क्षमता के बारे में जान समझ लेना आवश्यक है। सजगता के साथ निम्न आसनों (मुद्राओं) का अभ्यास करके अपने शरीर की स्थिति को सही करने का प्रयास करना चाहिए।

अपनी मुद्रा को ठीक करने के लिए कुछ योगासन और सुझाव

ताडासन (पेड़ मुद्रा)

भुजंगासन (सांप मुद्रा)

सर्वदिशा पीठ खिंचाव

मार्जरी आसन (बिल्ली मुद्रा)

शिशु आसन (बाल मुद्रा – बालासन)

वज्रासन

कुर्सीआसन (कुर्सी मुद्रा)

आजकल अधिकतर समय कुर्सी पर बैठकर बीतता है अतः कुर्सी पर बैठने की मुद्रा सही रखने के लिए पीठ सीधी रखें, पांव घुटने से समकोण पर मुड़े हों और पैर फर्श पर टिके हों।

अपनी मुद्रा को ठीक करने के लिए अन्य सुझाव

(क) **सचेतता के साथ** : प्रयास करें, झुके हुए, ढीले–ढाले नहीं रहें। झुके हुए होने से हमारे फेफड़े मुड़ जाते हैं जो शरीर के लिए ऑक्सीजन के प्रवाह को संकुचित करते हैं और यह सिर दर्द का कारण बनता है। सोफे पर ढीले–ढाले बैठ कर टेलीविजन देखने की कोशिश नहीं करें। इसके बजाय सीधे और आराम से बैठे।

(ख) **सही बैठें** : अधिकांश लोग घुटने के दर्द की शिकायत करते हैं, क्योंकि वे अपने घुटनों की वजह से अपने टखने पर बैठने में असहज महसूस करते हैं। सुनिश्चित करें कि आपके पैर आपका अच्छी तरह से सहयोग कर रहे हैं और जमीन पर समान रूप से टिके हुए हैं। जब बैठें तब टखनों को घुटनों के साथ लाइन में होना चाहिए। यहां तक कि जब ध्यान में बैठें, तो सीधे बैठ कर अभ्यास शुरू करें।

(ग) **अपनी मुद्रा को सही रखने के लिए अनुस्मरणीयता को तय करें** : यह विशेष रूप से शुरुआत में आपकी मदद करेगा। अपने काम की मेज पर ध्यान दिलाने वाली चिट चिपका कर रखें, टेलिवीजन के पास, दीवारों पर, या अपने फोन पर ध्यान दिलाने वाला संदेश दर्ज करें जोकि आपको सीधे बैठने, सीधे खड़े होने और सीधे चलने के लिए कह रहा हो ।

(घ) **अपने शरीर के वजन को दोनों कंधों पर समान रूप से लें** : यह लैपटॉप लेकर, कार्यालय जाने वाले, ज्यादातर कर्मियों द्वारा दोहराई जाने वाली गलती है। ज्यादातर लोग युवावस्था में ही लगातार पीठ दर्द या कंधे में दर्द की शिकायत करते हैं। कोशिश करें लैपटॉप बैग दो पट्टियों वाला हो, जो समान रूप

से दोनों कंधों पर आपके शरीर का वजन वितरित करता है। अन्यथा, सुनिश्चित करें कि आप अक्सर एक कंधे से दूसरे कंधे पर बैग का स्थानांतरण कर रहे हैं।

टिप्पणी

(ङ) **जब आप वजन उठाते हैं तो सही दिशा निर्देशों का पालन करें :** अधिकांश लोग, कुछ भारी वजन उठाने की प्रक्रिया में, अपनी पीठ को चोट पहुंचा लेते हैं क्योंकि वे ऐसा करने में सही प्रक्रिया का पालन नहीं करते। जब आप वजन उठाते हैं, तो हमेशा याद रखें कि सबसे पहले अपने घुटने मोड़ लें और फिर अपनी पीठ को।

एक सही शारीरिक मुद्रा लम्बे समय तक आपके शरीर को सही आकार में रखने के साथ ही व्यक्ति को होशियार व आत्मविश्वासी बनाती है।

रीढ़ की हड्डी को स्वस्थ और मजबूत रखने हेतु कुछ प्रमुख आसन

बालासन : घुटनों के बल बैठें। शरीर के पूरे भार को एड़ियों पर डालें, फिर आगे की तरफ झुक जाएं। सीना आपकी जांघों से छूते हुए माथे से जमीन को छूने का प्रयास करें। कुछ समय इस अवस्था में रहते हुए वापस पहली वाली अवस्था में आ जाएं।

मकरासन : जमीन पर पेट के बल लेट जाएं। इसके बाद अपनी कोहनियों के बल पर अपने सिर और कंधे को उठाएं। हथेलियों पर ठोड़ी को टिकाएं। फिर आंखों को बंद करें और पूरे शरीर को ढीला छोड़ दें।

ताड़ासन : सीधे खड़े होकर दोनों हाथों को सिर से ऊपर की ओर ले जाएं और शरीर को ऊपर की तरफ खीचें। इसी अवस्था में कुछ समय तक रहिए। शरीर को पहले वाली अवस्था में लेकर जाएं। तीन या चार बार करने से लाभ मिलेगा।

भुजंगासन : पेट के बल लेट जाएं। कंधे की सीध में दोनों हाथों को रखते हुए हथेलियों को मैट पर टिकाएं। अब सांस भरते हुए मुंह बंद करके नाभि तक के भाग को ऊपर सांप के फन की तरह उठाएं। फिर पहली मुद्रा में नीचे आएं। इसी चक्र को दो से तीन बार पूरा कीजिए।

उष्ट्रासन : घुटनों के ऊपर खड़े होकर एड़ी–पंजे मिले हुए तथा पैरों के अंगूठे की आकृति अंदर की ओर रखें। हाथों को सामने से ऊपर की ओर ले जाएं और फिर अपने दोनों हाथों को कान से मिलाकर रखें, ऐसी स्थिति में दोनों हाथों के मध्य में सिर रहना चाहिए। सिर से जंघाओं का भाग पीछे की ओर उलटते हुए हाथ के पंजों से एड़ियों को पकड़ें। गर्दन को ढीला छोड़ते हुए कमर को ऊपर की ओर ले जाएं तथा सिर पीछे की ओर लटका रहे। वापस आते समय हाथों को घुमाते हुए वापस आ जाते हैं।

डॉक्टर को कब दिखाना चाहिए? डाक्टर्स बताते हैं, यदि रीढ़ की हड्डी में गंभीर दर्द हो रहा है और आराम करने से भी काम नहीं हो रहा, इसके कारण एक या दोनों टांगों में कमजोरी, सुन्न होना या झुनझुनी महसूस हो रही हो, रीढ़ की हड्डी का दर्द टांगों तक फैल गया है, खासकर यदि यह घुटनों से भी नीचे तक महसूस होने लगा है और यदि रीढ़ की हड्डी में दर्द होने के साथ–साथ वजन भी कम हो रहा है, जिसका कारण पता नहीं है तो ऐसी प्रत्येक स्थिति में डॉक्टर को दिखा देना चाहिए।

शारीरिक लचीलापन

शारीरिक लचीलापन से आशय उस क्षमता से है कि शरीर के एक अंग या अनेक अंगों को उनके सामान्य रूप से हटकर कितना बदला जा सकता है। शरीर का लचीलापन

मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है– एक या अधिक जोड़ों की गति की सीमा कितनी है तथा जोड़ों पर लगी मांसपेशियों की लंबाई कितनी बढ़ाई जा सकती है। अलग–अलग लोगों का शारीरिक लचीलापन अलग–अलग होता है। व्यायाम के द्वारा कुछ जोड़ों का लचीलापन कुछ सीमा तक बढ़ाया जा सकता है।

शरीर जितना ज्यादा लचीला होगा उतना ही घरेलू कामों को करने में आपको आसानी होगी जैसे कि झाड़ू लगाना या झुककर पोछा लगाना और ऐसे में अचानक नीचे झुकने या झुककर कोई वजनदार चीज उठाने में भी कोई दिक्कत नहीं होगी। इसलिए स्ट्रेचिंग एक्सरसाइज को अपने डेली रूटीन में शामिल करना लाभप्रद है।

पीठ की मांसपेशियां कठोर होने के कारण ही कई बार पीठ में दर्द होने लगता है जिससे रोजाना के कई कामों को करने में बहुत परेशानी होने लगती है। अगर आप ऑफिस में एक ही जगह बैठकर 12 घंटे तक काम करते हैं तो बहुत जरूरी है कि आप अपने शरीर को लचीला बनाएं जिससे आप बैक पेन की परेशानी से बच सकें।

शरीर का लचीलापन कम होने से मांसपेशियों और जोड़ों पर जकड़न ज्यादा हो जाती है जिससे आपकी शारीरिक बनावट खराब होने लगती है। अगर आपका शरीर लचीला है तो किसी भी तरह की एक्सरसाइज या फिजिकल वर्क को करते समय चोटिल होने की संभावना काफी कम हो जाती है और वर्कआउट के दौरान किसी भी तरह के खिंचाव या तनाव के लिए आपका शरीर तैयार रहता है।

इसलिए रोजाना योग और एक्सरसाइज से, खासतौर पर स्ट्रेचिंग एक्सरसाइज शरीर का लचीलापन आसानी से बढ़ जाता है और जोड़ों में होने वाली जकड़न से भी आराम मिलता है।

लचीलापन विकसित करने के लिए नियमित रूप से पैर की अंगुली को छूकर स्ट्रेच करना, सीढ़ियां चढ़ना, चक्रासन, हलासन, पश्चिमोत्तानासन, हस्तोत्तानासन, त्रिकोणासन, कटिचक्रासन, ताड़ासन, ताई–ची और पाइलेट्स करने की आवश्यकता होती है।

2.5.2 खेलों में शक्ति और स्ट्रेचिंग व्यायामों का महत्व

उपर्युक्त विषयों का अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है–

शक्ति व्यायाम (Power Exercises) क्या है?

स्वास्थ्य जागरूकता बढ़ने के साथ–साथ आजकल स्वास्थ्य पत्रिकाओं, सोशल मीडिया और समाचार लेखों जैसे सभी माध्यमों में शक्ति व्यायामों (पावर एक्सरसाइजेज) के लाभों की भरपूर प्रशंसा होती हैं और हो भी क्यों ना क्योंकि शक्ति व्यायामों से लाभ ही इतने अधिक हैं।

पावर वर्कआउट क्या है? इस प्रकार के व्यायाम करके मांसपेशियों और मांसपेशियों की ताकत बनाने पर ध्यान केंद्रित किया जाता है जो शरीर के किसी विशेष भाग (उदाहरण के लिए; पेट या पैर) पर ध्यान केंद्रित करते हैं। अभ्यास के बीच में छोटे–छोटे ब्रेक के साथ इन अभ्यासों को एक से अधिक सेट में दोहराया जाता है।

जिममें उपकरणों की सहायता से पावर वर्कआउट इसका उदाहरण है अर्थात थोड़े समय में उच्च तीव्रता वाला व्यायाम। इस पावर वर्कआउट के कई स्वास्थ्य लाभ और महत्व इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

मांसपेशियों और हड्डियों को मजबूत करता है

नियमित पावर वर्कआउट मांसपेशियों को मजबूत बनाता है क्योंकि इसमें सामान्य से अधिक प्रतिरोध करना होता है। जैसे–जैसे आपकी उम्र बढ़ती है, और हड्डियों का घनत्व कम होना शुरू होता है, शक्ति प्रशिक्षण मांसपेशियों को टोन करने और अधिक उम्र में हड्डियों को मजबूत और स्वस्थ रखने का एक बेहतर तरीका हो सकता है।

स्वस्थ हृदय

पावर वर्कआउट करने पर अधिक पसीना आता है और रक्त प्रवाह और हृदय गति में वृद्धि महसूस होती है – इतनी कि अपने दिल की धड़कन को अपने कानों में सुना जा सकता है। वर्कआउट में पावर मूव्स जोड़ने से कार्डियोवस्कुलर फंक्शन में सुधार होता है। व्यायाम की तीव्रता के कारण हृदय शरीर में अधिक रक्त पंप करता है जिससे शरीर स्वस्थ और इसकी आभा गुलाबी हो जाती है तथा हृदय के स्वास्थ्य में सुधार होता है।

शारीरिक ऊर्जा में वृद्धि

जब व्यायाम की दिनचर्या में पावर वर्कआउट को शामिल किया जाता है तो शरीर में एंडोर्फिन की अधिक मात्रा उत्पन्न होती है और शरीर शर्करा का विघटन बहुत तेजी से करता है। विषाक्त पदार्थों के पाचन और उन्मूलन में भी सुधार होता है क्योंकि रक्त शरीर में तेजी से गमन करता है। नियमित कार्डियो की तुलना में भोजन के रूप में ली जाने वाली कैलोरी जल्दी बर्न (खपत) होती है और यह तेजी से वजन कम करने में मदद करता है। इसके अलावा, शक्ति प्रशिक्षण मांसपेशियों में उपस्थित फैट को कम कर मांसपेशियों को पतला दिखाता है, आपका शरीर अधिक टोन्ड दिखाई देता है, और अतिरिक्त वजन कम करने में आपकी सहायता करता है जो अक्सर उम्र के बढ़ने के साथ–साथ हमारे पेट के आसपास लटकता रहता है। शक्ति प्रशिक्षण से अधिक ऊर्जावान महसूस होता है, बेहतर नींद आती है और नियमित पावर वर्कआउट के बाद बेहतर भूख लगती है।

तनाव में कमी

आज की आधुनिक दुनिया में, हम जितने व्यस्त और गतिशील रहते हैं, उसके कारण हमारा शरीर और मस्तिष्क अक्सर तनाव की स्थिति में रहते हैं। इस व्यस्तता और गतिशीलता में खराब आहार और बहुत सारी कैफीन भी जोड़ लें तो स्वास्थ्य की स्थिति और भी खराब लगने लगती है। यह कोई रहस्य की बात नहीं है कि व्यायाम तनाव के स्तर को कम करने और खत्म करने में मदद करता है। इसलिए पार्क में धीमी गति से टहलने की बजाय पावर वर्कआउट के दौरान, व्यायाम अक्सर उच्च तीव्रता वाला होता है, शरीर अधिक मेहनत कर रहा होता है अतः इसका परिणाम बहुत अधिक फायदेमंद होता है। तनाव के स्तर में कमी का अर्थ है कि हम कार्यस्थल पर और घर पर दोनों जगह बेहतर ढंग से प्रतिक्रिया करने और तनावपूर्ण स्थितियों से निपटने में सक्षम होते हैं।

अतः स्पष्ट है कि छात्र खेलों और अपने अध्ययन दोनों में तथा अन्य लोग भी शक्ति अभ्यासों से बहुत लाभान्वित हो सकते हैं।

शक्ति व्यायाम के प्रकार (Power Exercises)

वजन के साथ कूदना या वजन फेंकना शक्ति प्रशिक्षण अभ्यास के दो उदाहरण हैं। वेट लिफ्टों को पूरा करने के लिए आवश्यक विस्फोटक गति के कारण नियमित वजन

प्रशिक्षण अभ्यास जैसे कि क्लीन एंड जर्क और पावर क्लीन को भी शक्ति प्रशिक्षण अभ्यास माना जा सकता है। शक्ति अभ्यास के अन्य उदाहरण जिन्हें आप शक्ति अभ्यास में अनुकूलित कर सकते हैं, इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

स्क्वैट्स। यह कोर (मुख्य आंतरिक भाग) के साथ–साथ पूरे निचले शरीर को भी मजबूत करता है।

रिवर्स लंज। यह निचले शरीर के आकार को कम करने के अलावा संतुलन और कोर को भी सही करता है।

पुश अप। यह बाहों, पीठ, छाती और कोर पर काम करता है।

प्लैंक।

लेटरल रेज।

चेस्ट प्रेस।

बाइसेप कर्ल।

ओवरहेड प्रेस।

डिप्स।

ओवरहेड ट्राइसेप्स एक्सटेंशन।

पुश–अप।

बेंच प्रेस।

स्ट्रेचिंग व्यायाम

कभी–कभी चार–पांच राउंड चलने या साइकिल चलाने के बाद अपना ही वजन उठाना या जोड़ों को हिलाना मुश्किल हो जाता है। यदि ऐसा हो तो पैदल चलना या खेल आरम्भ करने से पहले वार्म–अप करना आवश्यक है जिससे शरीर लचीला हो जाए और फिर जोड़ों या बदन में कोई दर्द या जकड़न न हो।

वार्म अप के लिए स्ट्रेचिंग से बेहतर और कोई व्यायाम नहीं हो सकता इसीलिए स्कूलों में कोच किसी भी खेल से पहले स्ट्रेचिंग करवाते हैं। स्ट्रेचिंग का व्यायाम की दिनचर्या में एक महत्वपूर्ण स्थान है। व्यायाम का आरम्भ हमेशा उचित वार्म–अप व्यायाम से शुरू करना चाहिए। सामान्यतया वर्म अप की शारीरिक गतिविधियों को स्ट्रेचिंग व्यायाम कहा जाता है।

व्यायाम से पहले वार्म–अप (स्ट्रेचिंग) करने का महत्व

व्यायाम से पहले शरीर को गर्म करने के कई कारण हैं। मूल रूप से, हीटिंग दो मुख्य उद्देश्यों को पूरा करता है– चोट को रोकने और प्रदर्शन में सुधार करने के लिए।

1. **चोट से बचाव :** व्यायाम से पहले शरीर को गर्म करने का सबसे महत्वपूर्ण कारण चोट से बचाव है। जिन मांसपेशियों में ताप बढ़ता है वे अधिक लचीली और चिकनी हो जाती हैं। इसका अर्थ है कि कठिन और अचानक हिलने–डुलने, जैसे कि ऊंची किक या जमीन पर लैंडिंग करते समय, मांसपेशियां लचीली हो जाती हैं और ऐंठन, मोच और दर्द आदि की सम्भावना भी कम हो जाती है। ऐसा न करने पर मांसपेशियों में गंभीर चोट भी लग सकती है जो ठीक होने में लंबा समय लेती हैं।

2. **खेल प्रदर्शन में सुधार** : व्यायाम से पहले वार्मिंग करने से मांसपेशियां अधिक लचीली हो जाती हैं, साथ ही विभिन्न मांसपेशियों में रक्त संचार भी बढ़ जाता है परिणामतः बढ़ा हुआ रक्त प्रवाह शरीर के सभी हिस्सों में अधिक ऑक्सीजन ले जा पाता है जिससे मांसपेशियों की ऊर्जा में वृद्धि होती है और इससे सजगता और गति की सीमा का विस्तार भी होता है।

   शुद्ध रक्त की अधिक मात्रा शरीर में संचालित होने से वृद्धि के साथ मांसपेशियों के तापमान में भी वृद्धि होती है। यह इसलिए अच्छा है क्योंकि रक्त में हीमोग्लोबिन उच्च तापमान पर अधिक आसानी से ऑक्सीजन छोड़ता है। मांसपेशियों के काम करने के लिए ऑक्सीजन की अतिरिक्त आपूर्ति के साथ, अधिक रक्त मांसपेशियों में प्रवेश करता है, जिससे खेल प्रदर्शन में बेहतर गुणवत्ता मिलती है और हम अधिक समय तक कठिन व्यायाम कर पाते हैं। मांसपेशियों के तापमान में वृद्धि मांसपेशियों में तेजी और खिंचाव को बढ़ाती है। तंत्रिका संचरण और मांसपेशियों के चयापचय में वृद्धि होती है, इसलिए मांसपेशियां अधिक कुशलता से काम करती हैं।

3. **स्वस्थ हड्डियों और जोड़ों को बनाए रखना** : व्यायाम से पहले वार्मिंग का महत्व हड्डियों और जोड़ों को भी प्रभावित करता है, ये शरीर के ऐसे हिस्से हैं जिनमें प्रशिक्षण के दौरान चोट लगने की संभावना होती है। वार्म अप करने से जोड़ों को चिकना रखने में अधिक तरल की मदद मिलती है, जिससे जकड़न और लॉकिंग को रोकने के लिए जोड़ों को अधिक चिकना और लचीला बनाया जा सकता है। ऐसे व्यायाम जो घुटनों पर बहुत दबाव डालते हैं, जैसे कि दौड़ना, उससे पहले वार्म अप करना अनिवार्य है। रीढ़ की हड्डी के लचीलेपन से सम्बंधित व्यायामों को करने से पीठ की गंभीर चोटों से बचाव हो जाता है।

4. **भारी शारीरिक व्यायाम के लिए मानसिक रूप से तैयार करना** : वार्मिंग किसी व्यक्ति या खिलाडी के लिए स्वयं को मानसिक रूप से तैयार करने का एक अच्छा अवसर होता है जो गंभीर शारीरिक प्रशिक्षण करते समय अपनी क्षमता का हमेशा 100 प्रतिशत देने में सहायक होता है। वार्मअप न केवल मांसपेशियों और जोड़ों में रक्त प्रवाह को सुविधाजनक बनाने में मदद करता है, बल्कि मस्तिष्क में भी समुचित रक्त प्रवाहित होता है, जिससे ध्यान और सतर्कता बढ़ती है और तनाव कम होता है।

शरीर के लचीलेपन हेतु किये जाने वाले शारीरिक व्यायाम खेल में प्रदर्शन हेतु मानसिक तैयारी, तकनीक, कौशल और समन्वय में सुधार करने में सहायक होते हैं। यह दौड़ की कठिन परिस्थिति का सामना करने में होने वाली संभावित असुविधा के लिए भी एथलीट को शारीरिक और मानसिक रूप से तैयार होने में मदद करता है। यदि खिलाड़ी का मन और मस्तिष्क बेचैनी और तनाव से निपटने के लिए तैयार है, तो शरीर वांछित उच्च गति उत्पन्न कर सकता है। यदि मन दबाव का सामना करने को तैयार नहीं है, तो शारीरिक प्रदर्शन निश्चित रूप से सीमित हो जाता है।

अतः खेलों और रोजमर्रा के जीवन में स्ट्रेचिंग व्यायाम के महत्त्व से इंकार नहीं किया जा सकता है।

अपनी प्रगति जांचिए

7. शारीरिक शिक्षा से बढ़ावा मिलता है–
   (क) मानवीय मूल्य को (ख) जीवन पक्षीय गुणवत्ता को
   (ग) आर्थिक मूल्य को (घ) उपर्युक्त सभी को
8. इनमें से क्या शारीरिक शिक्षा के विकासात्मक उद्देश्य में शामिल नहीं हैं?
   (क) संज्ञानात्मक विकास (ख) भावनात्मक विकास
   (ग) तंत्रिका पेशीय विकास (घ) जैविक विकास

टिप्पणी

2.6 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (ग)
2. (घ)
3. (घ)
4. (क)
5. (घ)
6. (घ)
7. (घ)
8. (क)

2.7 सारांश

प्राचीन काल से ही भारत में शारीरिक शिक्षा पर बहुत बल दिया जाता था, उस समय भी यौगिक क्रियाएं की जाती थी। सभ्यताओं के विकास के साथ–साथ शारीरिक शिक्षा और शिक्षा का भी विकास होता गया। आज का युग मशीनी युग है। अर्थात प्रत्येक कार्य को मशीन से किया जाता है। व्यक्ति शारीरिक श्रम बहुत कम करता है। अर्थात मनुष्य शारीरिक श्रम से दूर हो गया है। अतः शारीरिक शिक्षा की बहुत जरूरत है।

आज घर के काम में हाथ बटाने और पैदल चलने की आदत भी नहीं रही, अतः आज युवाओं को शारीरिक शिक्षा की बहुत आवश्यकता है। सुडौल एवं स्वस्थ युवक राष्ट्र की आवश्यकता हैं। हमारे देश के नवयुवक हर क्षेत्र में आगें बढ़ें, इसके लिए शारीरिक शिक्षा को अपनाना उचित होगा।

किशोरावस्था बाल्यजीवन की अंतिम व विकास की जटिल अवस्था होती है। विकास की यह अवस्था यूं तो 'स्वर्णिम–काल' होती है किंतु सही मार्गदर्शन न मिलने पर दिग्भ्रमित होने का खतरा भी इस उम्र में सबसे ज्यादा होता है। क्योंकि बालक इस अवस्था में 'कल्पना लोक' में जीता है। बालकों में मानसिक विकास तीव्र गति से होता

है वहीं शारीरिक वृद्धि के क्रम में अंगों में महत्वपूर्ण बदलाव दिखाई देने लगते हैं। इस अवस्था में बालिकाएं स्वभावगत व्यवहार से संकोची हो जाती हैं वहीं बालक मुखर होने लगते हैं। अतः माता–पिता, परिवार के सदस्यों, विद्यालयों में शिक्षकों को इन बालकों के साथ संतुलित व्यवहार करना चाहिए।

टिप्पणी

स्वस्थ रहने के लिए संतुलित आहार की भूमिका बहुत अधिक है। संतुलित आहार के बिना स्वास्थ्य का चक्र अधूरा ही रह जाता है। मानव की आधारभूत आवश्यकताओं में भोजन भी एक है। भोजन वह होता है जिससे शरीर को पोषण मिलता है। आहार कोई भी ऐसी वस्तु है, जिसे खाया या पिया जाता है, जो शरीर की ऊर्जा वृद्धि, सुचारु रूप से चलाने और रोगों से लड़ने की आवश्यकताओं को पूरा करती है।

आहार हमारे शरीर के लिए कच्चा माल है। समुचित आहार से अच्छा पोषण व स्वास्थ्य प्राप्त होता है, जिसकी अभिव्यक्ति हमारी बाहरी आकृति, कुशलता तथा भावनात्मक अवस्था से होती है। आहार में पोषक तत्वों की कमी से शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। पोषक तत्वों की समुचित मात्रा भी भोजन में होना आवश्यक है, क्योंकि इनकी न्यूनाधिक मात्रा से स्वस्थ मनुष्य भी रोगी हो जाता है।

आहार, विज्ञान, कला एवं विज्ञान का एक समन्वयात्मक रूप है, जिसके द्वारा व्यक्ति विशेष या सभी व्यक्तियों के समूह को पोषण व्यवस्था के सिद्धांतों के तथा विभिन्न आर्थिक एवं शारीरिक स्थितियों के अनुसार भोजन दिया जाता है। वैसे तो जो कुछ भी भोज्य या द्रव्य रूप में हमारे मुख द्वारा ग्रहण किया जाता है वह आहार है परंतु ग्रहण किये गए वे पदार्थ जो मानव स्वास्थ्य की पुष्टि करते हैं, आहार कहलाते हैं।

गुणवत्तापूर्ण आहार में सभी पोषक तत्व जैसे प्रोटीन, कार्बोहाइड्रेट, वसा, विटामिन, खनिज लवण और जल की समुचित मात्रा को शामिल करना आवश्यक है। आहार में सभी पोषक तत्वों की समुचित मात्रा उपलब्ध नहीं होने से मनुष्य किसी न किसी रोग से युक्त हो जाता है। दो विरोधी पदार्थों को भी ग्रहण नहीं करना चाहिए। आहार में सभी पदार्थों का समुचित सामंजस्य भी होना चाहिए, क्योंकि जब अन्न का युक्तिपूर्वक सेवन किया जाता है तो वह शरीर का पोषण तथा प्राण पालक बनता है। देश, काल आदि के विरुद्ध आहार ग्रहण नहीं करना चाहिए। उचित और पौष्टिक आहार ही स्वस्थ जीवन की कुंजी है। साथ ही देश में चलाए जा रहे खाद्य सुरक्षा कार्यक्रम, बाल विकास कार्यक्रम आदि कार्यक्रम गुणवत्तापूर्ण आहार प्रदान करने में अहम भूमिका निभा सकते हैं।

मनुष्य द्वारा ग्रहण की जाने वाली आहार की मात्रा उसके द्वारा किये जाने वाले शारीरिक श्रम पर निर्भर करती है। अधिक शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति का भोजन शीघ्र पच जाने पर उसे अधिक भोजन की आवश्यकता होती है जबकि कम शारीरिक श्रम करने वाले व्यक्ति को कम भोजन की आवश्यकता होती है। अतः आहार की मात्रा का मनुष्य द्वारा किये जाने वाले श्रम से सीधा संबंध है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए विश्राम काल में लगभग 2000 कैलोरी ग्रहण करना आवश्यक है। जो व्यक्ति अधिक शारीरिक श्रम करते हैं उन्हें 4000 कैलोरी भोजन ग्रहण करना चाहिए। जबकि आराम करने वाले व्यक्ति को 2200 कैलोरी भोजन ग्रहण करना चाहिए।

क्रीड़ा और खेल छात्रों के सर्वांगीण विकास का एक महत्वपूर्ण घटक रहा है। स्कूलों में खेल और खेल का महत्व केवल शारीरिक गतिविधि के लाभ से अधिक है। यह न केवल अकादमिक प्रदर्शन को बेहतर बनाने में मदद करता है, बल्कि यह नेतृत्व, टीम कार्य कौशल और सामाजिक सामंजस्य को बढ़ावा देने के लिए एक शक्तिशाली उपकरण भी है। समन्वय, गतिविधि, शक्ति, निपुणता, गति कौशल के साथ फिटनेस, साइकोमोटर कौशल तथा सहयोग और खिलाड़ी भावना को बढ़ावा देने के लिए खेलों को प्रोत्साहित किया जाता है। इसके अलावा, युवा प्रतिभाओं को प्रारंभिक चरण में ही पहचाना जाता है और विशेष कोचिंग द्वारा उनके चुने हुए क्षेत्र में उत्कृष्टता प्राप्त करने में उनकी मदद की जाती है तथा छात्र अपनी ऊर्जा के लिए स्वस्थ आउटलेट पाते हैं। यह छात्रों, शिक्षकों, माता–पिता और प्रशासन के बीच अच्छे तालमेल को भी बढ़ावा देता है।

खेल के नियम और विनियम राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय खेल शासी निकाय द्वारा बनाए गए, स्वीकृत किए गए और लागू किए गए दिशा–निर्देश हैं। यह आचरण को सुविधाजनक बनाने के लिए हैं और खेलों का विकास के लिए है। इनसे संबंधित शासी निकाय सक्षम होंगे तथा नियमों और विनियमों का उल्लंघन करने वालों के खिलाफ अनुशासनात्मक कार्रवाई करने के लिए और आवश्यकताओं के आधार पर इन्हें संशोधित भी किया जाता है।

यह जानना दिलचस्प है कि कुछ ऐसे खेल भी हैं जिनमें कोई निर्धारित नियम और कानून नहीं होते हैं। ये खेल नियमों और विनियमों के एक अलिखित सेट का पालन करते हुए खेले जाते हैं जो पीढ़ी दर पीढ़ी चले आ रहे हैं।

खेलों में नियम–कायदे होने चाहिए। खेल के सुचारू संचालन के अलावा, यह सच्चे खेल नायकों की पहचान करने, दर्शकों और जजों की रक्षा करने, सटीक निर्णय लेने और धोखाधड़ी की प्रथाओं को रोकने में मदद करता है। खेल के नियम और कानून प्रतिभागियों के व्यक्तिगत विकास में बहुत योगदान करते हैं और सामाजिक कल्याण पर बहुत प्रभाव डालते हैं।

शारीरिक फिटनेस दिन–प्रतिदिन की सामान्य गतिविधियां जो बिना किसी थकान, शक्ति, सतर्कता और पर्याप्त ऊर्जा के साथ फुर्सत के समय का आनंद लेने और किसी भी अप्रत्याशित आपात स्थिति को पूरा करने की क्षमता है। शारीरिक फिटनेस विभिन्न विशेषताओं से बनती है, जो व्यक्तियों में होती हैं या प्राप्त की जाती हैं जो शारीरिक गतिविधि करने की उनकी क्षमता से संबंधित होती हैं। प्रत्येक शारीरिक फिटनेस घटक का अलग से परीक्षण और प्रशिक्षित किया जा सकता है। इसका उद्देश्य वयस्कों 18–65 वर्ष की आयु के लोगों को सक्रिय रूप से स्वस्थ जीवन जीने का आनंद लेने के लिए व्यक्तिगत रूप से एवं दूसरों के साथ, शारीरिक कौशल, अभ्यासों और मूल्यों को प्रदर्शित करने के लिए सक्षम करना है।

आज की जीवनशैली ही ऐसी हो गई है कि लोग घंटों कम्प्यूटर, लैपटॉप और मोबाइल में व्यस्त रहते हैं। इतने व्यस्त हैं कि ब्रेक तक लेने का समय नहीं और फिर गलत मुद्रा में बैठकर काम करते रहते हैं। गलत मुद्रा में बैठने का सबसे ज्यादा बुरा असर रीढ़ की हड्डी पर पड़ता है। गलत मुद्रा में कुर्सी पर बैठने, उठने या झुक कर गाड़ी

टिप्पणी

चलाने के कारण पीठ में दर्द की समस्या हो जाती है। यह स्थिति रीढ़ की हड्डी को ज्यादा देर तक सीधा न रखने के कारण पैदा होती है। लंबे समय तक बैठे रहने से गर्दन और पीठ दोनों पर जोर पड़ता है और इससे इंटरवर्टिब्रल डिस्क में सूजन का खतरा रहता है। बैक बोन या वर्टिब्रल कॉलम एक के बाद एक हड्डियों और मुलायम संरचना (डिस्क) से बना होता है। इनमें सूजन आ जाती है तो स्पाइनल कॉर्ड बुरी तरह जख्मी हो जाता है और पीठ की हड्डी से जुड़ी कई बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। रीढ़ की हड्डी खोपड़ी से लेकर पेल्विस हिस्से तक चलती है। रीढ़ पूरे शरीर के वजन को संतुलित करके शरीर की संरचना को सपोर्ट देती है और इससे हम शरीर को हिला–डुला सकते हैं। रीढ़ की हड्डी को नुकसान होने से चलने, झुकने और घूमने में परेशानी हो सकती है।

शारीरिक लचीलापन से आशय उस क्षमता से है कि शरीर के एक अंग या अनेक अंगों को उनके सामान्य रूप से हटकर कितना बदला जा सकता है। शारीर का लचीलापन मुख्यतः दो बातों पर निर्भर करता है– एक या अधिक जोड़ों की गति की सीमा कितनी है तथा जोड़ों पर लगी मांसपेशियों की लंबाई कितनी बढ़ाई जा सकती है। अलग–अलग लोगों का शारीरिक लचीलापन अलग–अलग होता है। व्यायाम के द्वारा कुछ जोड़ों का लचीलापन कुछ सीमा तक बढ़ाया जा सकता है।

शरीर जितना ज्यादा लचीला होगा उतना ही घरेलू कामों को करने में आपको आसानी होगी जैसे कि झाड़ू लगाना या झुककर पोछा लगाना और ऐसे में अचानक नीचे झुकने या झुककर कोई वजनदार चीज उठाने में भी कोई दिक्कत नहीं होगी। इसलिए स्ट्रेचिंग एक्सरसाइज को अपने डेली रूटीन में शामिल करना लाभप्रद है।

आज की आधुनिक दुनिया में, हम जितने व्यस्त और गतिशील रहते हैं, उसके कारण हमारा शरीर और मस्तिष्क अक्सर तनाव की स्थिति में रहते हैं। इस व्यस्तता और गतिशीलता में खराब आहार और बहुत सारी कैफीन भी जोड़ लें तो स्वास्थ्य की स्थिति और भी खराब लगने लगती है। यह कोई रहस्य की बात नहीं है कि व्यायाम तनाव के स्तर को कम करने और खत्म करने में मदद करता है। इसलिए पार्क में धीमी गति से टहलने की बजाय पावर वर्कआउट के दौरान, व्यायाम अक्सर उच्च तीव्रता वाला होता है, शरीर अधिक मेहनत कर रहा होता है अतः इसका परिणाम बहुत अधिक फायदेमंद होता है। तनाव के स्तर में कमी का अर्थ है कि हम कार्यस्थल पर और घर पर दोनों जगह बेहतर ढंग से प्रतिक्रिया करने और तनावपूर्ण स्थितियों से निपटने में सक्षम होते हैं।

कभी–कभी चार–पांच राउंड चलने या साइकिल चलाने के बाद अपना ही वजन उठाना या जोड़ों को हिलाना मुश्किल हो जाता है। यदि ऐसा हो तो पैदल चलना या खेल आरम्भ करने से पहले वार्म–अप करना आवश्यक है जिससे शरीर लचीला हो जाए और फिर जोड़ों या बदन में कोई दर्द या जकड़न न हो।

वार्म अप के लिए स्ट्रेचिंग से बेहतर और कोई व्यायाम नहीं हो सकता इसीलिए स्कूलों में कोच किसी भी खेल से पहले स्ट्रेचिंग करवाते हैं। स्ट्रेचिंग का व्यायाम की दिनचर्या में एक महत्वपूर्ण स्थान है। व्यायाम का आरम्भ हमेशा उचित वार्म–अप व्यायाम से शुरू करना चाहिए। सामान्यतया वर्म अप की शारीरिक गतिविधियों को स्ट्रेचिंग व्यायाम कहा जाता है।

शरीर के लचीलेपन हेतु किये जाने वाले शारीरिक व्यायाम खेल में प्रदर्शन हेतु मानसिक तैयारी, तकनीक, कौशल और समन्वय में सुधार करने में सहायक होते हैं। यह दौड़ की कठिन परिस्थिति का सामना करने में होने वाली संभावित असुविधा के लिए भी एथलीट को शारीरिक और मानसिक रूप से तैयार होने में मदद करता है। यदि खिलाड़ी का मन और मस्तिष्क बेचैनी और तनाव से निपटने के लिए तैयार है, तो शरीर वांछित उच्च गति उत्पन्न कर सकता है। यदि मन दबाव का सामना करने को तैयार नहीं है, तो शारीरिक प्रदर्शन निश्चित रूप से सीमित हो जाता है।

टिप्पणी

2.8 मुख्य शब्दावली

- **गामक विकास** : बालकों का अपनी शारीरिक क्रियाओं पर नियंत्रण।
- **पथ्य भोजन** : रोगियों हेतु लाभप्रद भोजन।
- **कुपोषण** : उपयुक्त भोजन और पोषक तत्वों के न मिलने पर उत्पन्न शारीरिक स्थिति।
- **अधिपोषण** : अधिक वसा युक्त भोजन करने से उत्पन्न शारीरिक स्थिति।

2.9 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. मानव शरीर की वृद्धि और विकास का संक्षिप्त परिचय दीजिए।
5. आहार और संतुलित आहार में अंतर बताइए।
3. क्रीड़ा एवं खेल में अंतर बताइए।
4. मुद्रा से क्या अभिप्राय है? बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मानव शरीर की वृद्धि और विकास से संबंधित आधारभूत बातों का विश्लेषण कीजिए।
2. शारीरिक गतिविधियों के अनुरूप खान–पान की भूमिका व महत्ता बताइए।
3. फिटनेस के लिए शारीरिक स्वास्थ्य की अवस्थिति रेखांकित कीजिए।
4. क्रीड़ा और खेल के आधारभूत तथ्यों का विश्लेषण कीजिए।
5. शारीरिक स्वस्थता, मुद्रा और लचीलेपन से संबंधित व्यायामों के विभिन्न पक्षों का विवेचन कीजिए।

2.10 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *Patanjal Yoga Predeep*, Swami Omanad Tirth.
2. *Asana Why & How*, Shri O.P. Tiwari
3. *Asana*, Swami Kuvalyananda

टिप्पणी

4. Pran*ayam*, Swami Kuvalyananda
5. *Patanjal Yogasaar*, Dr. Sadhana Dauneia
6. *Physical Activity & Health*, Dr. Dilip Jaiswal
7. *Principles of Anatomy & Phsiologh*, Dr. Thakur & Aneja
8. *Ethics in Sports Management* , Dr. Jawaid Ali
9. *Fundamental Elements of Physical Education*, Dr. Kamlesh
10. *Principles of Sports Training* , Dr. Smt K.G. Jadhav
11. *Health and Physical Eduction*, Geeta Singh Sisodia, Gwalior: Raj publisher, 2006.

इकाई 3 अभ्यास और क्रियाकलाप

टिप्पणी

संरचना

3.0 परिचय
3.1 उद्देश्य
3.2 योगाभ्यास
- 3.2.1 ध्यान
- 3.2.2 ताड़ासन, वृक्षासन, अर्धचक्रासन
- 3.2.3 पद्मासन, वक्रासन, वज्रासन
- 3.2.4 हलासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पवनमुक्तासन
- 3.2.5 भुजंगासन, धनुरासन, शलभासन
- 3.2.6 ब्रह्म मुद्रा, योग मुद्रा
- 3.2.7 अनुलोम–विलोम, उज्जायी, भस्त्रिका एवं भ्रामरी प्राणायाम
- 3.2.8 मकरासन, शवासन
- 3.2.9 योग साधना का महत्व

3.3 शारीरिक शिक्षा का अभ्यास
- 3.3.1 लचीलापन, सहनशक्ति और गति में वृद्धि हेतु व्यायाम
- 3.3.2 ट्रैक और फील्ड की मूलभूत बातें : 100 मीटर, 200 मीटर, लांग जंप, ब्रॉड जंप
- 3.3.3 राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तरीय दो खेलों का अध्ययन : कबड्डी, खो–खो, बॉस्केटबॉल, क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, वालीबॉल
- 3.3.4 विद्यालयों अथवा समुदाय में स्वास्थ्य संदर्भित परियोजनाएं

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर
3.5 सारांश
3.6 मुख्य शब्दावली
3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास
3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

3.0 परिचय

अभ्यास और क्रियाकलाप में योगासनों का उपयोग, ध्यान एवं शारीरिक शिक्षा के तद्विषयक आयाम शामिल किए जाते हैं। आसनों की संख्या बहुत अधिक मानी गई है। श्री चरणदास जी के अनुसार चौरासी लाख आसन होते हैं। व्यक्ति के शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास की दृष्टि से अनेक आसन बहुत उपयोगी हैं। ऋषि–मुनियों ने आध्यात्मिक प्रश्नों की खोज के दौरान प्रकृति, पशु और पक्षियों का गहन अध्ययन किया और यह जानने का प्रयत्न किया कि सहज रूप में किस तरह स्वस्थ एवं चैतन्य रहा जा सकता है। ऋषि–मुनियों के द्वारा अविष्कृत आसनों को प्रमुखतः छः भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(क) पशुवत आसन– प्रथम प्रकार के वे आसन बनाए गए जो पशु–पक्षियों की भांति उठने–बैठने एवं चलने–फिरने वाले हैं, जैसे– 1. वृश्चिकासन, 2. भुजंगासन, 3. मयूरासन, 4. सिंहासन, 5. शलभासन, 6. मत्स्यासन, 7. बकासन, 8. कुक्कुटासन, 9. मकरासन, 10. हंसासन, 11. काकआसन, 12. उष्ट्रासन, 13. कूर्मासन, 14. कपोतासन, 15. मार्जरासन, 16. क्रोंचासन, 17. शशांकासन, 18. तितली आसन, 19. गौमुखासन, 20. गरुड़ासन, 21. खगासन, 22. चातकासन, 23. उल्लुकासन,

टिप्पणी

24. श्वानासन, 25. अधोमुख श्वानासन, 26. पार्श्व बकासन, 27. भद्रासन या गौरक्षासन, 28. कागासन, 29. व्याघ्रासन, 30. एकपाद राजकपोतासन, 31. मत्स्येन्द्रासन, 32. गृध्रासन, 33. गर्दन तिर्यक आकर्षकासन, 34. पक्षी आसन आदि।

(ख) **वस्तुवत आसन**— द्वितीय प्रकार के आसन विशेष वस्तुओं से संबंधित हैं, जैसे— 1. हलासन, 2. धनुरासन, 3. आकर्ण अर्ध धनुरासन, 4. आकर्ण धनुरासन, 5. चक्रासन या उर्ध्व धनुरासन, 6. वज्रासन, 7. सुप्त वज्रासन, 8. नौकासन, 9. विपरीत नौकासन, 10. दंडासन, 11. तोलंगासन, 12. तोलासन, 13. शिलासन, 14. संतुलासन आदि।

(ग) **प्रकृति आसन**— इसमें वनस्पति, वृक्ष और प्रकृति के अन्य तत्वों पर आधारित आसन हैं, जैसे— 1. वृक्षासन, 2. पद्मासन या कमलासन, 3. लतासन, 4. ताड़ासन, 5. पद्म पवर्तासन, 6. मंडूकासन, 7. पर्वतासन, 8. अधोमुख वृक्षासन, 9. अनंतासन, 10. चंद्रासन, 11. अर्ध चंद्रासन, 12. तालाबासन, 13. भ्रमणासन आदि।

(घ) **योगीनाम आसन**— ये आसन किसी योगी या भगवान के नाम पर आधारित हैं, जैसे— 1. महावीरासन, 2. ध्रुवासन, 3. हनुमानासन, 4. मत्स्येंद्रासन, 5. अर्धमत्स्येंद्रासन, 6. भैरवासन, 7. गोरखासन, 8. ब्रह्ममुद्रा, 9. भारद्वाजासन, 10. सिंहासन, 11. नटराजासन, 12. अंजनेमासन, 13. अष्टवक्रासन, 14. मारिचियासन, 15. वीरासन, 16. वीरभद्रासन, 17. वशिष्ठासन।

(ङ) **अंग या मुद्रावत आसन**— ये आसन विभिन्न अंगों को हृष्ट—पुष्ट करने के लिए किये जाते हैं। अतः इनके नाम भी शरीर के अंगों पर ही आधारित हैं, जैसे— 1. शीर्षासन, 2. सर्वांगासन, 3. पादहस्तासन या उत्तानासन, 4. अर्धपादहस्तासन, 5. विपरीतकर्णी सर्वांगासन, 6. सलंब सर्वांगासन, 7. मेरुदंडासन, 8. एकपादग्रीवासन, 9. पाद अंगुष्ठासन, 10. उत्थिष्ठ हस्तपादांगुष्ठासन, 11. सुप्त पादअंगुष्ठासन, 12. कटिचक्रासन, 13. द्विपाद विपरीत दंडासन, 14. जानुसिरासन, 15. जानुहस्तासन, 16. परिकृत जानुसिरासन, 17. पाश्वांत्तानासन, 18. कर्णपीड़ासन, 19. बालासन या गर्भासन, 20. आनंद बालासन, 21. मलासन, 22. प्राण मुक्तासन, 23. शवासन, 24. हस्तपादासन, 25. भुजपीड़ासन, 26. भुजंगासन आदि। इसके अलावा कटिचक्रासन, एक पदासन, दंडासन, द्विहस्त चक्रासन, उर्ध्वहस्तोत्तानासन, उत्तानपादासन, ऊर्ध्व पद्मासन आदि आते हैं।

(च) **अन्य आसन**— इसके अंतर्गत निम्न आसन आते हैं— 1. स्वस्तिकासन, 2. पश्चिमोत्तानासन, 3. सुखासन, 4. योगमुद्रा, 5. वक्रासन, 6. वीरासन, 7. पवनमुक्तासन, 8. समकोणासन, 9. त्रिकोणासन, 10. वातायनासन, 11. बंध कोणासन, 12. कोणासन, 13. उपविष्ठ कोणासन, 14. चमत्कारासन, 15. उत्थिष्ठ पार्श्व कोणासन, 16. उतिष्ठ त्रिकोणासन, 17. सेतुबंध आसन, 18. सुप्त बंधकीणासन, 19. पाशासन, 20. पर्यकासन, 21. कोण संतुलनासन, 22. सूर्य नमस्कार आसन, 23. मृगासन, 24. भद्रासन, 25. भूनमनासन, 26. चरण उद्धृतासन, 27. प्रार्थनासन, 28. नानकासन, 29. उदराकर्षासन, 30. उपविष्ठिासन आदि।

इस इकाई में हम योगाभ्यास एवं शारीरिक शिक्षा के तत्संदर्भित उपक्रमों का अध्ययन करेंगे।

3.1 उद्देश्य

टिप्पणी

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- योगाभ्यास के अंतर्गत ध्यान एवं विविध आसनों को समझ पाएंगे;
- शारीरिक शिक्षा के अभ्यास के अंतर्गत विविध खेलों से परिचित हो पाएंगे।

3.2 योगाभ्यास

योगाभ्यास के अंतर्गत आसन, प्राणायाम एवं ध्यान आदि को शामिल किया जाता है। पाठ्यक्रम के अनुरूप संदर्भित विषयों का विवेचन निम्नांकित है–

3.2.1 ध्यान

ध्यान ध्यै धातु में ल्युट् प्रत्यय लगने से बना है। ''ज्ञानात् ध्यानं विशिष्यते''– ध्यान में निरत होने के कारण आत्मा विस्मृति को ध्यान कहते हैं।

पौर्वापर्य क्रम में पतंजलि धारणा के पश्चात ध्यान को लेते हैं। उनके अनुसार हृदयादि देश रूप विषय हैं उनमें जो ध्येयाकार चित्तवृति की एकाग्रता है वह ध्यान है अर्थात धारणाकाल में जिस नाभि चक्रादि देश में चित्तवृत्ति को लगाया हो उसी देश में चित्तवृत्ति की एकाग्रता को प्राप्त हो जाना ध्यान कहा जाता है। कहने का अभिप्राय है कि ध्यान काल में चित्त ध्येय विषय में इतना लीन हो जाता है कि चित्त में अन्य वृत्तियां उदित नहीं होती। एक मात्र ध्येय विषयक वृत्ति ही आविर्भूत और तिरोभूत होती रहती है, दूसरा ज्ञान बीच में नहीं आता।

वसिष्ठ के मत में आत्मतत्व का चिंतन ही ध्यान है। ध्यान के अभ्यास के लिए साधक को मर्म स्थान, नाड़ी और वायु से परिचित होना आवश्यक है।

ध्यान के प्रकार

स्थूल रूप से वसिष्ठ ने दो प्रकार का ध्यान माना है– सगुण और निगुर्ण। निगुर्ण ध्यान प्रकार अथवा आकार रहित है।

प्रथम– सगुण ध्यान

वसिष्ठ ने पांच प्रकार का सगुण ध्यान कहा है। प्रथम प्रकार के ध्यान में कंद से उठा हुआ प्राणायाम से विकसित बारह अंगुल नालवाला, चार अंगुल विस्तार वाला अष्टदल युक्त तथा केसर युक्त कर्णिका वाला हृदय कमल है। उसमें वासुदेव जगन्नाथ नारायण विशुद्ध चतुर्भुज प्रशस्त अंग वाले, शंखचक्र, गदाधारी, किरीट तथा केयुरधारी, कमल के पत्ते के समान नेत्र वाले, श्रीवत्स से चिह्नित वक्षवाले, पूर्ण चंद्र के समान मुखवाले, विष्णु कमलदल के समान अरुण ओष्ठ वाले, अत्यंत प्रसन्न, निर्मल, स्फटिक के समान कांतिमान, पवित्र मुस्कराहट वाले, पीतवस्त्रधारी, अच्युत कमल की कांति के सदृश्य चरणदृय वाले परमात्मा चारों तरफ से आवृत रूप वाले ईश्वर की मन से कल्पना कर– सब प्राणियों के हृदय में स्थित वह देवेश मैं ही हूं– ऐसा विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने को सगुण ध्यान कहते हैं।

टिप्पणी

द्वितीय– सगुण ध्यान

मूल प्रकृति रूपी, कर्णिका वाले, आठ ऐश्वर्य रूपी दल वाले, अध्यात्म विद्यारूपी केशवाले, हृदय कमल के मध्य में ज्ञान रूपी नाल वाले, महत तत्व रूपी कंदवाले, प्राणायाम के अभ्यास से प्रबोधित, अखिल ज्योति स्वरूप जगत का कारण, ज्योति शिखा रूप, पांव से मस्तक तक अपने शरीर को देदीप्यमान करने वाले ईश्वर की, निर्वात दीप के समान प्रकाशित अग्नि की कल्पना कर, उसकी शिखा के मध्य में परमात्मा परमेश्वर को नीले मेघ के अंदर चमकती हुई बिजली के समान, नीवारतंतु के समान पीतवर्ण सभी का मूल वह अग्नि देव मैं ही हूं, ऐसी निष्ठा करने को योगी लोग सगुण ध्यानों में इसे उत्तम कहते हैं।

तृतीय– सगुण ध्यान

भौहों के मध्य में कांति स्वरूप देहमध्य से मस्तक तक स्थाणु निश्चल स्तंभ के समान उठा हुआ सभी का मूल, आत्मा का जगत कारण, महाप्रतापी, देदीप्यमान, अव्यक्त, मन से ऐसी कल्पना कि मैं वहीं हूं– इस प्रकार का ध्यान भी उत्तम है।

चतुर्थ ध्यान

सोममंडल के मध्य में कर्णिका तथा केशर से युक्त आठ दल वाले विकसित हृदय कमल में बालरूप अपने को अव्यय भोक्तारूप से और अमृत की वर्षा करती चंद्र किरणों से घिरे हुए सोलह कंद वाले, अधोमुख शिरकमल से चारों तरफ बरसती हुई हजारों अमृत की धारा से प्लावित पुरुष की कल्पना कर, एकाग्रचित्त से चिंतन कर, उस अमृत से परिपूर्ण सांगोपांग शरीर वाला मैं अव्यय परमात्मा और मैं ही परब्रह्म हूं– इस प्रकार की निष्ठा को भी सगुण ध्यान कहते हैं। इस प्रकार अमृत रूपी ध्यान को करते हुए योगी छः मास में ही मृत्यु को जीतने वाला हो जाता है और एक वर्ष में जीवन धारण करते हुए भी वह मुक्त है। जीवन–मुक्त को कभी भी कहीं से दुःख का स्पर्श नहीं होता।

पंचम– सगुण ध्यान

देदीप्यमान, सूर्यमंडल में, संपूर्ण जगत के आत्मरूप, सुवर्ण रूप पुरुष को सुवर्ण रूप दाढ़ी और केशवाले, सुवर्ण नख वाले, कल्पांत दृश्य जगत की लय को समाहित करने वाले, अग्नि के समान कर्णवाले, सृजन, पालन और संहार करने वाले, हरि पद्मासन में स्थित, सौम्य विकसित, कमल के समान मुख वाले, कमल मध्य की आभा के समान आंख वाले, सभी प्राणियों को अभय देने वाले, सदैव सभी वस्तुओं को जानने वाले, धार्मिक को उठाने वाले, सभी रत्नों से व्याप्त, मुकुट आदि से विभूषित संपूर्ण जगत को प्रकाशित करने वाले ऐसे एकमात्र लोक साक्षी को मन से देखकर, मैं वही हूं, ऐसी ही निष्ठा ध्यान में प्रशस्त मानी गई है। ध्यान ही मोक्ष के लिए राजपथ है। इसी सूर्यात्मक ध्यान से विद्वान लोग इस संसार में मोक्ष मार्ग को जाते हैं।

नारायण तीर्थ ने भी ध्यान के दो रूप– सगुण और निर्गुण माने हैं। उनका सगुण ध्यान वसिष्ठ के समान ही है किंतु निर्गुण ध्यान के विषय में उनका कथन है कि ओऽम् का जप करने वाले साधक को अकार् से ब्रह्मा, मकार् से महादेव तथा उकार् से हरि के अर्थ की भावना करनी चाहिए। फिर तीनों देवों में ऐक्य बुद्धि करने से साधक के समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं।

घेरंड ने तीन प्रकार के ध्यान का वर्णन किया है, स्थूल ध्यान, ज्योतिर्ध्यान और सूक्ष्म ध्यान। स्थूल ध्यान मूर्तिमय इष्ट देव का ध्यान है, ज्योतिर्मय ध्यान तेजोमय ज्योतिरूप ब्रह्म का चिंतन है तथा सूक्ष्म ध्यान में बिंदुरूप ब्रह्म कुण्डलिनी शक्ति का चिंतन किया जाता है।

स्थूल ध्यान

नेत्रों को बंद करके हृदय में अमृत के समान सागर का ध्यान करें कि उसमें रत्नमयद्वीप है और उस दीप की शोभा रत्नामयी बालुका से हो रही है। उसके चारों ओर कदंब के वृक्षों की शोभा हो रही है और ये वृक्ष पुष्पों के खिलने से सुशोभित हो रहे हैं। उस कदंब वन के चारों ओर मालती, मल्लिका, चमेली, केशर, चंपा, पारिजात और कमल से इस द्वीप में खाई बनी हुई है और उन पुष्पों की सुगंध से सभी दिशाएं सुगंधित हो रही हैं। योगी को यह ध्यान करना चाहिए कि उस वन के मध्य में वेद रूपी चार शाखाओं वाला एक कल्पवृक्ष है। वे सब नित्य पुण्य फलों से शोभित हैं। उन पर भौंरें गुंजार कर रहे हैं। कोयल अपने कूहू–कूहू शब्द द्वारा मन को लुभा रही है। उस कल्पवृक्ष के नीचे महामाणिक्य निर्मित एक मंडप है, जिसमें मनोहर पर्यंक बिछा हुआ है और उस पर इष्ट देवता विराजमान है। फिर गुरु ने जैसा आदेश दिया हो उसी के अनुसार योगी को उस देवता के भूषण वाहनादि का ध्यान करना चाहिए। विद्वानों ने इसे स्थूल ध्यान कहा है।

ज्योतिर्मय ध्यान

ज्योतिर्मय ध्यान से योग की सिद्धि और आत्मा का प्रत्यक्ष होता है। मूलाधार में सर्पाकार कुंडलिनी है। यहीं पर दीप कलिका के आकार में जीवात्मा विद्यमान रहता है। यहां तेजोमय ब्रह्म का ध्यान करना ही तेजोध्यान अर्थात ज्योतिर्मय ध्यान है। भौहों के मध्य में और मन के ऊर्ध्व भाग में जो प्रणवात्मक ज्योति है उस ज्वाला युक्त ज्योति का ध्यान ही ज्योतिर्ध्यान कहलाता है।

सूक्ष्म ध्यान

तेजो ध्यान ज्योतिर्ध्यान के बाद सूक्ष्म ध्यान आता है। योगी का बहुत भाग्य से ही कुंडलिनी जागरण होता है। वह आत्मा के साथ संयुक्त होकर नेत्र रंध्रों से निर्गत होकर ऊर्ध्व भाग में स्थित राजमार्ग नामक स्थान में विचरण करती है। परंतु सूक्ष्मत्व और चंचलत्व के कारण वह दिखाई नहीं देती। शांभवी मुद्रा का अभ्यास करता हुआ योगी कुंडलिनी का ध्यान करे, यही सूक्ष्म ध्यान कहलाता है। यह ध्यान अत्यंत गोपनीय और देवताओं के लिए भी दुर्लभ है। स्थूल ध्यान से ज्योतिर्ध्यान सौ गुणा श्रेष्ठ है और ज्योतिर्ध्यान से सूक्ष्म ध्यान लाख गुणा विशिष्ट है। इस सूक्ष्म ध्यान की सिद्धि होने पर आत्मा का साक्षात्कार होता है।

हठयोग के एक अन्य आचार्य चरणदास ने चार प्रकार के ध्यान का वर्णन किया है जो इस प्रकार है– पदस्थ ध्यान, पिंडस्थ ध्यान, रूपस्थ ध्यान, रूपातित ध्यान।

पदस्थ ध्यान

पदस्थ ध्यान में अपने हृदय में प्रभु के चरण रूपी कमल का ध्यान करें। तत्पश्चात प्रभु के सारे शरीर का ध्यान करें, पैर के नाखून से सिर तक की उनकी छवि का ध्यान करके उनके चरणों में ध्यान लगाना चाहिए। उस समय कुंभक करें या ओंकार का जाप करें। इसके करने से मन स्थिर होता है तथा शरीर के दैहिक, दैविक व भौतिक

दुःख दूर होते हैं। इसे पदस्थ ध्यान कहते हैं। जो इसे करता है वह उसके रहस्य को समझ लेता है।

पिंडस्थ ध्यान

टिप्पणी

यह शरीर पिंड ब्रह्म ही है, वह इसी जीवात्मा में निवास करता है। कमल के देवता विष्णु के यही दर्शन होते हैं। यह सभी चक्रों को शुद्ध करता है। अतः चक्रों पर ध्यान लगाना चाहिए। चक्रों को धीरे–धीरे भेदता हुआ ध्यान भ्रूमध्य में आ जाता है। यहां पर ईड़ा, पिंगला व सुषुम्ना का मिलन होता है। यहां पर ज्योति के दर्शन होते हैं। जब ध्यान चित्त को एकाग्र करके किया जाता है तो पूर्व के सात जन्मों का स्मरण हो जाता है।

इससे आगे सहस्र दल कमल पर अपने गुरु का ध्यान करना चाहिए, वहां पर अमृत का सागर बह रहा है, यहीं पर जीव स्नान करता है। यहीं पर आत्मा को आनंद की प्राप्ति होती है। इसके ऊपर इतना प्रकाश पुंज है जैसे सैकड़ों सूर्यों का प्रकाश हो। उसके ऊपर शून्य पर्वत है, जहां पर योगी विश्राम करते हैं।

रूपस्थ ध्यान

तृतीय रूपस्थ ध्यान है जहां पर अपने मन को ठहराना चाहिए। अपनी दृष्टि भ्रूमध्य में लगा कर मन से एकटक होकर देखना चाहिए। जहां पर पहले ध्यान किया था, वहां पर छोटे–छोटे अग्नि कण जैसे दिखाई देते हैं। उसके कई दिनों बाद वहां पर एक द्वीप की लौ जैसी ज्योति प्रकट होती है। धीरे–धीरे यह अवस्था होने पर दीपों की माला जैसे जल रही हो, ऐसा दिखाई देता है। उसके पश्चात सितारों की माला ऐसे चमक रही होती है जैसे बिजली कौंधती है। ऐसा लगता है कि बहुत से चांद तथा सूर्य आकाश में दिखाई दे रहे हों अथवा ऐसा लगता है कि अपने दोनों हाथों में करोड़ों अणु लिए चमक रहे हों। ऐसा लगता है जैसे सारा संसार झिल–मिल, झिल–मिल होकर प्रकाशमान हो रहा है। यह देखकर शरीर तथा मन में आनंद की अनुभूति होकर सुख प्राप्त होता है। ऐसा प्रतीत होता है जैसे गहरे पानी में डुबकी लगाकर पुनः देखते हैं तो चारों तरफ पानी ही पानी दृष्टिगत होता है। इसकी महिमा का वर्णन नहीं किया जा सकता। इसी को प्रत्यक्ष ध्यान भी कहते हैं, जिसकी प्राप्ति गुरु की कृपा से होती है।

रूपातीत ध्यान

रूपातीत ध्यान शून्य के ऊपर को कहते हैं। शून्य को परब्रह्म समझना चाहिए। भृकुटी भ्रूमध्य के ऊपर जो स्थान है वही शून्य का स्थान है। यहीं पर निर्वाण की प्राप्ति होती है। उसी आनंद को हृदय में लाना चाहिए। उसी में अपने मन को लगाना चाहिए। यहां पर साधक को अपना चित्त आठ पहर तक लगाना चाहिए। चित्त के लगाने से साधक को लय की प्राप्ति होती है। जिस तरह से पक्षी आकाश में उड़ते समय धीरे–धीरे दृष्टि से दूर ओझल हो जाता है, फिर अचानक दिखाई दे जाता है। ध्यान करने वाले साधक की भी यही स्थिति होती है। शून्य का ध्यान सबसे ऊंचा ध्यान है। इससे परमतत्व की प्राप्ति होती है। इससे समाधि लग जाती है, जिसे योग निद्रा कहते हैं। ध्यान करने वाला यहां समाहित हो जाता है तथा उसे ज्ञाता, ज्ञान व ज्ञेय की त्रिपुटी का ज्ञान नहीं रहता।

यद्यपि ध्यान समाधि की पूर्वावस्था है किंतु गोरख संहिता में इसके कुछ लाभ भी बताए गए है। हठयोग की अन्य पुस्तकों में यथा घेरण्ड संहिता, वसिष्ठ संहिता आदि में इस प्रकार का कोई उल्लेख नहीं मिलता।

ध्यान से पाप निवारण

गोरक्ष संहिता के अनुसार सुखासन लगाकर मूलाधारादि चक्रों में मन को लगाकर सम्यक प्रकार से नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि लगाकर ध्येय का ध्यान करना चाहिए। जिससे सभी पापों से मुक्ति मिल जाती है। ध्यान योग्य स्थानों में प्रथम स्वर्ण आभा वाला चार दल कमल का मूलाधार चक्र है। इसका कुण्डलिनी सहित ध्यान करने से सभी पापों से छुटकारा हो जाता है। दूसरा स्वाधिष्ठान चक्र है जो कि छः दल कमल और माणिक्य के समान लाल वर्ण का है। नासाग्र दृष्टि से उस चक्र के साथ आत्मा का ध्यान करने से योगी सुखी होता है।

ध्यान से सामर्थ्य प्राप्ति

मणिपुर चक्र तरुण सूर्य के समान है। नासिका के अग्रभाग पर दृष्टि रखकर इस चक्र में ध्यान करने वाला योगी जगत को क्षुब्ध करने में समर्थ होता है। हृदयाकाश में स्थित अनाहत चक्र प्रचंड सूर्य के समान तेजस्वी है। उसका नासाग्र दृष्टि से ध्यान करने पर साधक ब्रह्ममय हो जाता है। प्राणायाम के भेद से विद्युत के समान हृदय कमल में नासिका के अग्र भाग पर दृष्टि रखकर जो योगी ध्यान करता है, वह साधक भी ब्रह्मय हो जाता है।

आत्म ध्यान से अमरत्व की प्राप्ति

कंठ स्थान में दीप ज्योति के समान आभा वाले विशुद्ध चक्र में नासाग्र दृष्टि रखकर आत्मा का ध्यान करने से साधक आनंदमय हो जाता है। भौंहों के मध्य में मणि की शिखा के समान आत्मा में नासाग्र दृष्टि करने से साधक को आनंद की प्राप्ति होती है। वहीं नीलाभ परमेश्वर शिव का भौहों में नित्य ध्यान करता हुआ योगी प्राण को जीत कर जीव और ब्रह्म की एकता स्थापित करता है। नासिका के अग्र भाग में निर्गुण, शांत, विश्वतोमुख आकाश के समान व्यापक शिव का ध्यान करने वाला योगी स्वयं भी एकाकी ब्रह्ममय हो जाता है।

ध्यान से कैवल्य प्राप्ति

जहां नाद का प्रकाट्य होता है, वह आकाश मन का स्थान है, उसी को आज्ञा चक्र कहते हैं, वहीं आत्मा में शिव का ध्यान करके योगी मोक्ष को प्राप्त होता है। वह निर्मल व्योमकार मरीचिजल के साधन एवं सर्वव्यापक आत्मा का ध्यान करके योगी मोक्ष को प्राप्त होता है।

ध्यान से अष्टसिद्धि लाभ

हठयोगियों ने ध्यान के लिए नौ स्थान उपयुक्त कहे हैं– गुदा (मूलाधार चक्र), पेडू (स्वाधिष्ठान चक्र), नाभि (मणिपुर चक्र), हृदयकमल (अनाहत चक्र), उससे ऊपर घटिका स्थान, भौहों के मध्य का स्थान और नभोबिल। ये नौ स्थान ध्यान के योग्य माने गए हैं। इसमें उपाधि पृथ्वी, जल, तेज, वायु और आकाश पांच तत्वों को सम्मिलित करके ध्यान करने से अष्ट सिद्धियां प्राप्त होती हैं। इन स्थानों में तेजोमय, ब्रह्ममात्मक श्रेष्ठ ज्योति स्वरूप शिव का ध्यान करके और उन्हें जानकर योगी मुक्त हो जाता है।

ध्यान की श्रेष्ठता

ध्यान योग के बराबर कोई अन्य साधना नहीं है। बड़े से बड़ा यज्ञ भी इसकी तुलना नहीं कर सकता। जब साधक मन के द्वारा यथार्थ के विचार में समर्थ हो जाता है और

निरंतर उसी विचार में स्थिर रहता है तो वह अवस्था ध्यान की होती है। सहस्रों अश्वमेध और सैकड़ों वाजपेय यज्ञ का फल भी अकेले ध्यान योग के सोलहवें अंश के समान नहीं हो सकता।

राजयोग में ध्यान क्या है, इसके बारे में बताया गया है। इस ध्यान को कैसे करें इस बारे में कुछ नहीं कहा गया। इससे प्रतीत होता है कि जिसने पहले हठयोग का अभ्यास कर लिया हो वही इस ध्यान का अभ्यास कर सकता है। अतः हठयोग के आचार्यों ने इस पर विस्तार से प्रकाश डाला है कि साधक ध्यान का अभ्यास कैसे करें।

3.2.2 ताड़ासन, वृक्षासन, अर्धचक्रासन

(1) ताड़ासन

यह योग के आधारभूत आसनों में से एक है। ताड़ासन योग का नाम दो संस्कृत शब्दों से मिलकर बना है। 'ताड़' जिसका मतलब है 'पर्वत' और 'आसन 'का अर्थ है 'मुद्रा', यानि की इस आसन का अर्थ है पर्वत की मुद्रा में होना।

ताड़ासन शरीर की लंबाई बढ़ाने और पैरों से लेकर बाजुओं तक शरीर को स्ट्रेच करने के लिए प्रभावी तौर पर काम करता है।

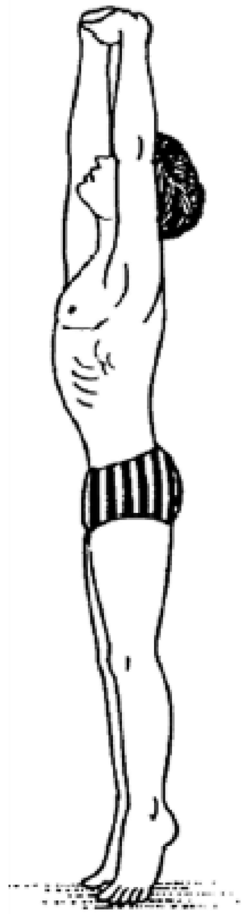

क्रियाविधि

- सीधे खड़े हो जाएं और पैरों के बीच कुछ दूरी रखें।
- दोनों हाथों को अपने शरीर के पास में सीधा रखें।

टिप्पणी

- अब गहरी सांस लेते हुए अपनी दोनों बाजुओं को सिर के ऊपर उठाएं और अपनी उंगलियों को आपस में बांध लें।
- हाथों को सीधा रखें और स्ट्रेच करें।
- अपनी एड़ी उठाते हुए अपने पैर की उंगलियों पर खड़े हो जाएं।
- इस दौरान आपके शरीर में पैरों से लेकर हाथों की उंगलियों तक स्ट्रेच महसूस होना चाहिए।
- 10 सेकेंड के लिए इस स्थिति में रहें और सांस लेते रहें।
- अब सांस छोड़ते हुए अपनी शुरुआती अवस्था में आ जाएं।

इस आसन को 10 बार दोहराएं।

लाभ– इस आसन से निम्न लाभ मिलते हैं–

- इसका सही तरह से अभ्यास करने से पीठ के दर्द की समस्या को कम करने में मदद मिलती है।
- यह अधिक देर तक बैठे रहने या लेटे रहने से खराब हुए पोस्चर में सुधार करता है।
- यह बच्चों की लंबाई बढ़ाने में मदद कर सकता है। मानसिक जागरूकता भी इससे बढ़ती है।

(2) वृक्षासन

दैहिक स्वास्थ्य से अधिक इस आसन का योगदान मानसिक विकास में है।

क्रियाविधि

- दोनों पांव व हाथ मिलाकर सीधे खड़े हो जाएं।
- दायां पांव घुटने से मोड़ते हुए दाएं पांव की एड़ी को बायीं जांघ के मूल में रखें।

पांव को मोड़ने के लिए हाथों का सहारा ले सकते हैं।

- दोनों हाथ कंधे के बराबर ऊंचाई पर फैलाकर हथेलियों का रुख आसमान की ओर करें।

- हाथों को सिर के ऊपर सीधे रखते हुए नमस्कार की मुद्रा में मिला लें।
- शरीर को स्थिर रखने के लिए श्वास को नियंत्रित करें व दृष्टि को एक बिंदु पर स्थिर करें। क्षमतानुसार आसन में स्थिर रहने का समय बढ़ाते हुए चले जाएं।
- वापस आने के लिए उन्ही स्टेप्स को दोहराएं।
- अब इसी अभ्यास को दूसरे पांव से दोहराएं।

लाभ

- मानसिक एकाग्रता के लिए बहुत उपयोगी।
- शरीर में लचक बढ़ाने में सहायक।
- पांवों की मांस–पेशियों को मजबूत करता है।
- रीढ़ व पेट को स्वस्थ रखता है।

(3) अर्द्धचक्रासन

अर्धचक्रासन खड़े होकर करने वाला एक योगाभ्यास है। इसका अर्थ समझने के लिए आप इस शब्द को दो भागों में बाँट सकते हैं– संस्कृत भाषा में 'अर्द्ध' का अर्थ होता है आधा और 'चक्र' का अर्थ होता है पहिया। इस आसन में शरीर की आकृति आधे पहिये के समान हो जाती है, इसीलिए इसे अर्द्ध–चक्रासन कहा जाता है।

यह डायबिटीज, शुगर, पेट की चर्बी कम करना इत्यादि के लिए बहुत प्रभावी है।

क्रियाविधि

- सबसे पहले आप पैर एक साथ जोड़कर सीधे खड़े हो जाएं। बहुत हद तक ताड़ासन की स्थिति में रहें।

टिप्पणी

- अपने हाथ बगल में रहने दें।
- कोहनियां मोड़ें और कमर के निचले हिस्से को हथेलियों से सहारा दें।
- अब सांस लेते हुए यथासंभव पीछे झुक जाएं।
- इस अवस्था को बनाये रखें और धीरे धीरे सांस लें एवं धीरे–धीरे सांस छोड़ें।
- ध्यान यह भी रखें कि मुद्रा को मेन्टेन करते समय संतुलन बना रहे।
- फिर सांस छोड़ते हुए मूल अवस्था में लौट आएं।

यह एक चक्र हुआ। इस तरह से आप 5 से 7 बार करें।

लाभ

- इस अभ्यास को करने से पेट साइड्स की चर्बी घटती है।
- यह पैंक्रियास को एक्टिवेट करता है और इन्सुलिन की सही मात्रा खून में बनाये रखने में मदद करता है।
- इस एक्सरसाइज से गर्दन के दर्द को कम किया जा सकता है।
- यह पीठ की मांसपेशियों में संतुलित खिंचाव लेकर आता है और पीठ में कोई अतरिक्त स्ट्रेन हो तो उसको कम करता है।

3.2.3 पद्मासन, वक्रासन, वज्रासन

(1) पद्मासन

इस आसन में साधक द्वारा अपने पैरों की स्थिति कमल की पंखुड़ियों के समान कर ली जाती है। इसलिए इस आसन को पद्मासन के नाम से जाना जाता है।

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार–

वामोरूपरि दक्षिणं च चरणं संस्थाप्य वामं तथा
दक्षोरुपरि पश्चिमेन विधिना धृत्वाकराभ्यां दृढ़म्।
अंगुष्ठौ हृदये निधाय चिंबुकं नासाग्रमालोकयेत्
एतद्व्याधिविनाशकारि यमिनां पद्मासनं प्रोच्यते।।

ह० प्र० 1/44

विधि

टिप्पणी

साधक द्वारा बायीं जांघ के ऊपर दायें पैर का पंजा फिर बायें पैर को दायीं जांघ के ऊपर रखने के बाद हाथ को कमर के पीछे से लेते हुए दायें हाथ से दायें तथा बायें हाथ से बायें पैर का अंगूठा पकड़ने के बाद ठोढ़ी को कण्डकूप से लगाकर अपनी दृष्टि को नाक की सीध रखकर बैठने से पद्मासन की स्थिति बनती है।

लाभ

इस आसन को करने से सभी प्रकार की व्याधियों का नाश होता है और कुण्डलिनी शक्ति के जागृत होने से ज्ञान की प्राप्ति होती है।

(2) वक्रासन

वक्र शब्द का अर्थ टेढ़ा अर्थात मोड़ना होता है। इस आसन को करते समय गर्दन और पीठ को पीछे की तरफ मोड़ा जाता है जिसके कारण इसे वक्रासन कहा जाता है।

इसको करने पर पीठ और पेट पर सबसे ज्यादा खिंचाव होता है। इसलिए यह रीढ़ की हड्डी को लचीला तथा पाचन क्रिया को मजबूत बनाता है।

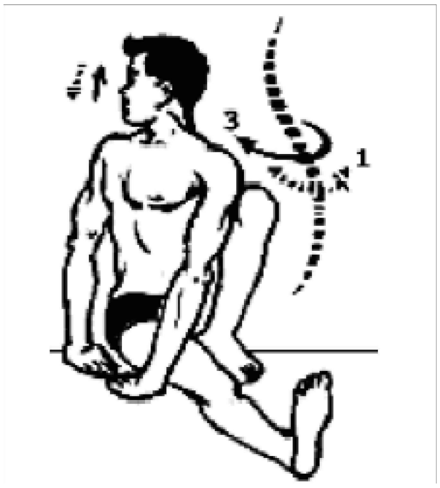

क्रियाविधि

- सामने की तरफ पैर को सीधा फैला कर बैठ जाएं।
- गर्दन और कमर को सीधा रखें तथा दोनों हाथों को कूल्हे के बगल में जमीन पर रखें। इस स्थिति को दंडासन कहते है।
- मन को शांत और ध्यान को केंद्रित करें।
- दाएं पैर को घुटने से मोड़ें और बाएं पैर के घुटने के पास दाएं पैर के पंजे को रखें।
- अब बाएं हाथ को दाएं पैर के ऊपर से घुमा कर पार ले जाए और दाएं पैर के पंजे के पास हथेली को सीधा रखें।
- इसको दूसरे तरीके से भी किया जा सकता है जैसे बाएं हाथ को दाएं पैर के ऊपर से घुमा कर ले जाते हुए बाएं पैर के घुटने को पकड़ लें।
- दाएं हाथ को पीछे की तरफ मोड़ें।

टिप्पणी

- गर्दन और शरीर को पीछे की तरफ मोड़ें।
- हाथों, पैरों और पीठ की स्थिति सीधी होनी चाहिए।
- इस स्थिति में शरीर को स्थिर करें और सांस को सामान्य रूप से लेते और छोड़ते रहें।
- 15 से 20 सेकंड तक शरीर को स्थिर रखें और धीरे–धीरे सांस को छोड़ते हुए हाथ, गर्दन, पीठ और पैर को सीधा करें।
- कुछ समय तक दंडासन में आराम करें और इसी प्रकार बाएं पैर से दोहराएं।

इस आसन को सुबह–शाम खाली पेट किया जा सकता है, परंतु इस आसन को सुबह खाली पेट करने से सबसे अधिक लाभ प्राप्त होता है।

इस आसन को पहली बार करने पर 10 से 20 सेकंड तक शरीर को स्थिर रखा जा सकता है और इसका अभ्यास होने पर समय सीमा को धीरे–धीरे बढ़ाकर 1 मिनट तक किया जा सकता है।

लाभ

- वक्रासन करने से रीड की हड्डी लचीली बनती है। पेट से संबंधित बीमारियों से बचा जा सकता है।
- कब्ज, गैस और अपचन जैसी समस्याओं में यह आसन लाभकारी होता है।
- पेट और कमर की चर्बी को कम करने में और पैंक्रियास को सक्रिय करने में मदद करता है।

(3) वज्रासन

वज्र का अर्थ है कठोर। घेरण्ड के अनुसार दोनों जंघाओं को वज्र के समान कठोर करके घुटनों को जमीन पर लगाकर दाएं पांव के एड़ी पंजे को दाएं गुदा के नीचे और बाएं पांव के एडी पंजे को बाएं गुदा के नीचे रखें। इस आसन में पांव के अंगूठे आपस में मिले रहने चाहिए और एड़ी बाहर की ओर और घुटने आगे से मिले रहने चाहिए। कमर, गर्दन को सीधा रखते हुए दोनों हथेलियों को घुटनों पर रखने से यह वज्रासन कहलाता है। यह आसन योगियों को सिद्धि प्रदान करने वाला है। इस आसन को खाना खाने के बाद भी किया जा सकता हैं इसे करने से खाना अच्छी तरह से पच जाता है। इससे घुटनों व टखनों का दर्द दूर होता है। जो साधक पद्मासन नहीं लगा सकते वे ध्यानादि के लिए इस आसन में बैठ सकते है।

क्रियाविधि

टिप्पणी

सबसे पहले जमीन पर चटाई बिछाकर अपने घुटनों के बल बैठ जाएं।

अब अपने घुटनों को एक–दूसरे के पास लायें जिससे आपके पैरों के बीच का अंतर स्वाभाविक रूप से बढ़ जाएगा।

ध्यान रखें कि यह अंतर आपकी कूल्हों की चौड़ाई से थोड़ा अधिक हो तथा जब आप जमीन पर बैठें तो आपके घुटनों से लेकर पैरों की उँगलियों तक का भाग जमीन से सटा होना चाहिए।

अपने पैरों को नीचे फर्श पर दबायें और अपने कूल्हों को खींचे।

आप देखेंगे कि आपके कूल्हे फर्श पर टिके हुए है तथा आपके पैर, कूल्हों को किनारे से स्पर्श कर रहे हैं।

जब आप कूल्हों को फर्श पर टिकाते है तो इस बात पर विशेष ध्यान दें कि नीचे बैठते समय घुटनों में तीव्र घुमाव या संवेदना न होने पाए।

अगर ऐसा हो तो अभ्यास को रोक दें और आसन से बचें।

अब अपनी दोनों हथेलियों को अपने घुटनों पर रखें और अपना ध्यान नाभि पर केंद्रित करने का प्रयास करें।

इस अवस्था में कम से कम 30 से 60 सेकंड तक बने रहें, नियमित अभ्यास के द्वारा समय अवधि को बढ़ाकर 1 से 2 मिनट तक ले जाएं।

लाभ

- शारीरिक रचना एवं कंधे, पैर, जाँघों की मांसपेशियों को मजबूत बनाने के लिए यह उपयुक्त आसन है।
- यह घुटने, जांघ तथा पैरों में एक अच्छा खिंचाव देता है और पैरों की मांसपेशियों को मजबूत बनाने में सहायक है।
- वज्रासन पैरों में रक्तसंचालन कार्यों में सुधार करता है, जिससे पैर तनावमुक्त अनुभव करते हैं।
- यह जठराग्नि को प्रदीप्त कर भूख को बढ़ाता है साथ ही मंदाग्नि, एसिडिटी, अन्न न पचना, गैस, कब्ज जैसी पेट की समस्याओं को समाप्त कर देता है।
- इससे पाचन प्रणाली सुचारु ढंग से कार्य करने लगती है, जिससे भूख खुलकर लगती है, यह धीरे–धीरे अतिरिक्त चर्बी को दूर करता है, तथा मोटापे को घटाने में सहायक है।

3.2.4 हलासन, सर्वांगासन, मत्स्यासन, पवनमुक्तासन

(1) हलासन

इस आसन में शरीर की स्थिति किसानों द्वारा जमीन जोतने में प्रयोग किये जाने वाले हल के समान हो जाती है। अंग्रेजी में इसे Plow Pose के नाम से जाना जाता है। शरीर का वजन कम करने तथा मेरुदंड को मजबूत करने तथा लचीला बनाने में यह आसन सबसे अच्छा है।

टिप्पणी

विधि

1. जमीन पर पीठ के बल लेट जाएं।
2. हथेलियों को कमर के पास जमीन से सटाकर रखें।
3. आंखें बंद करके मुंह आकाश की ओर रखें।
4. शरीर को ढीला रखें।
5. सांस अंदर खींचकर पेट को सिकोड़कर पैरों को ऊपर उठायें।
6. दोनों पैरों को उठाकर 90^0 का एंगल बनायें तथा फिर सांस छोड़ें।
7. अब दोनों पैरों को सिर के पीछे जमीन पर टिकाने का प्रयास करें।
8. कमर तथा पीठ को पीछे झुकाने के लिए दोनों हाथों की मदद लें।
9. हाथ कुहनियों से सीधे रखते हुए पीठ के पीछे जमीन से लगाकर रखें।
10. अपनी क्षमता के अनुसार इस स्थिति में रुकें तथा धीरे–धीरे पीठ और पैर को जमीन पर लगाना शुरू करें।
11. पूरे आसन के दौरान घुटने सीधे रखने हैं।

लाभ

- शुगर के रोगियों के लिए लाभदायक।
- पेट को पतला करता है।
- वजन कम होता है।
- रीढ़ की हड्डी मजबूत एवं लचीली बनती है।
- पाचन तंत्र तथा प्रजनन तंत्र मजबूत होते हैं।
- गर्दन, कंधे, पेट, पीठ और कमर के स्नायु मजबूत बनते हैं।
- रजोनिवृत्ति (Mneopause), अनिद्रा (Insomnia), बांझपन, सिरदर्द तथा थायराइड में यह आसन लाभदायक है।

सावधानियां– इस आसन को निम्न रोगों से पीड़ित व्यक्ति न करें–

(क) टीबी (क्षय रोग) के पीड़ित व्यक्ति इसे न करें।

(ख) चक्कर आने (Vertigo) पर न करें।

(ग) जो व्यक्ति उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) से पीड़ित हैं वे न करें।

(घ) कमर दर्द (Lumbar spondylitis) में न करें।

टिप्पणी

(ङ) xnZ nnZ(Cervical spondylitis) होने पर भी न करें।

(च) गर्भावस्था (Pregnancy) में इसको न करने की सलाह दी जाती है।

(छ) मासिक धर्म के पहले दो दिन यह आसन न करें।

(ज) हृदय रोग (Heart disease) में भी यह आसन वर्जित है।

(2) सर्वांगासन

यह योग पूरे शरीर यानी पैर की उंगलियों से लेकर मस्तिष्क तक लाभ पहुंचाता है। सर्वांगासन को योग की दुनिया में आसनों की माँ के नाम से पुकारा जाता है क्योंकि यह आसन शरीर के हर अंग को किसी न किसी तरह से स्वास्थ लाभ पहुंचाता है। माँ को देख कर मुस्कान छिपाए नहीं छुपती उसी तरह सर्वांगासन का प्रतिदिन अभ्यास करने से पूरा शरीर हर्ष व् उल्लास से भरा रहता है और कर्ता विभिन्न प्रकार के विकारों से भी बचता है।

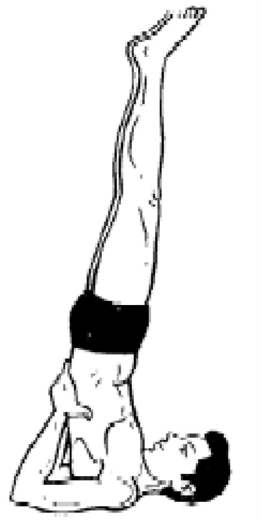

क्रियाविधि

- सबसे पहले अपनी पीठ के बल सीधे लेट जाएं।
- धीरे–धीरे अपने पैरों को 90 डिग्री पर ऊपर उठाएं।
- धीरे से सिर को अपने पैरों की तरफ लाने का प्रयास करें।
- आपकी ठोड़ी सीने से सटा कर रखें।
- 30 सेकंड या उससे अधिक के लिए मुद्रा को बनाए रखने के लिए प्रयास करें।
- और फिर धीरे–धीरे पुरानी स्थिति में वापस आ जाएं।
- यह एक चक्र हुआ।

इस तरह से आप 5 चक्र करें।

लाभ

- यह आसन बालों के लिए बहुत लाभदायक है। इसके नियमित अभ्यास से मस्तिस्क क्षेत्र में रक्त की सही आपूर्ति होती है जो पोषक तत्वों के आवागमन के लिए जरूरी है।

टिप्पणी

- यह त्वचा की खूबसूरती को ही नहीं बढ़ाता बल्कि झुर्रियों, पिम्पल्स और उम्र बढ़ने की प्रक्रिया को रोकता है।
- यह शरीर में मेटाबोलिज्म क्रिया को कण्ट्रोल करने में मदद करता है और वजन के नियंत्रण में सहायक है।
- यह पैरों की रक्त वाहिकाओं में रक्त के दबाव को कम कर देता है इस प्रकार जो लोग वैरिकाज़ नस से पीड़ित हैं उनके लिए यह आसन वरदान साबित हो सकता है।
- यह आसन आंतों की मुक्त आवाजाही को नियंत्रित करता है और कब्ज ख़त्म करता है।

(3) मत्स्यासन

संस्कृत भाषा में मत्स्य मछली को कहते हैं। सर्वांगासन में गर्दन आगे की तरफ झुकी होती है, जबकि मत्स्यासन में गर्दन पीछे की तरफ झुकी होती है। इसको करने वाले बिना हिले डुले पानी में घंटों तक तैर सकते हैं इसलिए इसे Fish Pose भी कहा जाता है। इसके द्वारा ग्रीवा की कशेरुकाएं और मांसपेशियां आगे–पीछे खिंचने से लचीली व मजबूत बनती है।

विधि

इस आसन को करने के लिए सबसे पहले पद्मासन लगाकर बैठ जाएं। पद्मासन में बैठने के लिए नीचे बैठकर दाहिने पैर को घुटने से मोड़ कर बांई जांघ पर रखें और बाएं पैर को घुटने से मोड़कर दाई जांघ पर रखें। अब हाथों के सहारे धीरे–धीरे पीठ के बल लेट जाएं। इस क्रिया को करते समय दोनों घुटने जमीन को छूते हुए हों तथा रीढ़ की हड्डी एकदम तानकर रखें। अपने दोनों हाथों की हथेलियों से सिर व गर्दन को उठाते हुए सिर के अगले हिस्से को जमीन पर स्थिर करें। इसके बाद अपने दोनों हाथों को नितंबों के दोनों ओर जमीन पर रखें। सांस स्वाभाविक रूप से लें। अब अपने दोनों हाथों को फैलाकर जांघों पर रखें या पैर के अंगूठे को पकड़ लें। बायें हाथ से दांये पैर का तथा दांये हाथ से बांयें पैर का अंगूठा पकड़ लें। इस अवस्था में दोनों कोहनियों को जमीन पर टिका कर रखें व इस स्थिति में 10–12 सेकंड तक रहें फिर धीरे–धीरे अभ्यास को बढ़ाते हुए 3 मिनट तक ले जाएं। आसन पूर्ण होने के बाद पहले अंगूठे को छोड़ें फिर कमर को सीधा कर पद्मासन को खोलकर अपने दोनों पैरों को फैला लें और कुछ देर तक लेटे रहें। ये सभी क्रियाएं धीरे–धीरे करें।

लाभ

- सांस के सभी रोगों में लाभ होता है।
- चेहरे के तंतुओं पर विशेष प्रभाव डालता है तथा संपूर्ण मेरुदंड को प्रभावित करता है।

टिप्पणी

- गर्दन पर जमा चर्बी को दूर करता है।
- पेट की मांसपेशियों को क्रियाशील बनाता है।
- छोटी आंत व मल द्वार भी सुचारू रूप से कार्य करते हैं।
- अपच को दूर करता है।
- कब्ज, वायु विकार को दूर करता है।
- भूख को बढ़ाता है।
- इसके द्वारा शरीर में शुद्ध रक्त का निर्माण एवं संचार होता है।
- चेहरे पर चमक आती है।
- दमा रोग ठीक हो जाता है।
- श्वास नली की सूजन दूर करता है।
- इससे थाइरॉइड व पैराथायरॉइड ग्रंथियों को भी लाभ मिलता है।
- इस आसन को करने से पहले 4 गिलास ताजा पानी पीने से शौच शुद्धि में तुरंत लाभ होता है।
- स्त्रियों की मासिक धर्म संबंधी तथा गर्भाशय संबंधी विकृतियां भी ठीक हो जाती हैं।

(4) पवनमुक्तासन

पवनमुक्तासन नाम संस्कृत के शब्दों से मिल कर बना है : पवन का अर्थ वायु, मुक्त का अर्थ आज़ाद और आसन का अर्थ योग मुद्रा से है।

पवनमुक्तासन को करने से आप आंतों में जमी गैस को आसानी से बाहर निकाल सकते हैं। इसे पवन से राहत देने वाली मुद्रा या पवन मुक्ति मुद्रा के रूप में भी जाना जाता है।

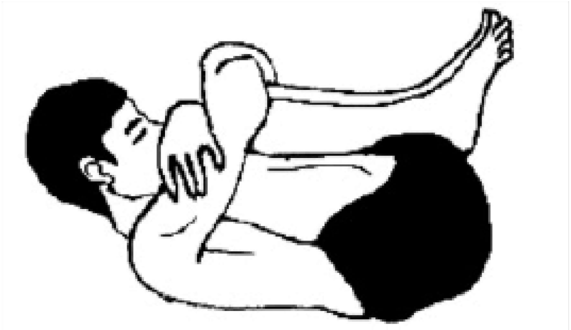

क्रियाविधि

इस आसन का अभ्यास तीन चरणों में किया जाता है।

पहले चरण में, पैरों को सीधा रखते हुए अपनी पीठ के बल लेट जाएं। फिर अपने दाहिने घुटने को मोड़ते हुए पेट को दबाएँ सहायता के लिए अपने हाथों से पैर को पकड़ें। श्वास बाहर निकालते हुए, अपने सिर को ऊपर की ओर उठाना है और अपनी ठुड्डी से घुटने को स्पर्श करिये (जितना संभव हो सके)। श्वास अंदर लेते हुए अपने पैरों को सीधा फैलाये।

दूसरे चरण में, यह पक्रिया अपने बाएं पैर से करनी है।

तीसरे चरण में, अपने पेट को दोनों पैरों से दबाना हैं, अपनी ठुड्डी को अपने घुटनों के बीच रखना हैं।

टिप्पणी

ऊपर के तीन चरण एक चक्र बनाते हैं। इसका तीन या चार बार अभ्यास किया जाना चाहिए।

लाभ

- पवनमुक्तासन पेट की मांसपेशियों को मजबूत करने में मदद करता है।
- शरीर से विषाक्त गैसों को बाहर निकालने में मदद करता है। कब्ज, पेट फूलना, अपच और एसिडिटी को ठीक करता है।
- यह पीठ की मांसपेशियों के साथ–साथ पैरों और हाथों की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है।
- यह प्रजनन अंगों और पेल्विक मांसपेशियों को उत्तेजित करता है।
- पेट, कूल्हे और जांघ क्षेत्र को टोन करता है।

3.2.5 भुजंगासन, धनुरासन, शलभासन

(1) भुजंगासन

इसे सर्पासन या सर्प मुद्रा के नाम से भी जाना जाता है। यह स्त्री–पुरुष दोनों के लिए लाभकारी है। इससे आध्यात्मिक व भौतिक दोनों प्रकार के लाभ मिलते हैं। हठयोग और घेरंड संहिता में इस आसन को कुंडलिनी जागरण करने का साध्य माना जाता है। इस आसन को बच्चे, बूढ़े, जवान, रोगी व निरोगी सभी कर सकते हैं।

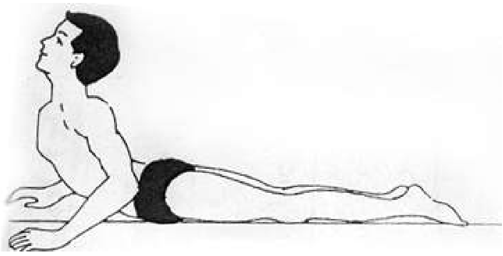

अभ्यास की विधि

भुजंगासन को करने के लिए पहले चटाई पर पेट के बल लेट जाएं और दोनों पैरों को एक–दूसरे से मिलाते हुए बिल्कुल सीधा करें। पैरों के तलवे ऊपर की ओर तथा पैरों के अंगूठे आपस में मिलाकर रखें। दोनों हाथों को कोहनियों से मोड़कर दोनों हथेलियों को छाती के बगल में फर्श पर टिकाकर रखें। आसन की इस स्थिति में आने के बाद पहले गहरी सांस लेकर सिर को ऊपर उठाएं। ध्यान रहे कि सिर से नाभि तक का शरीर ही ऊपर उठना चाहिए तथा नाभि के नीचे से पैरों की अंगुलियों तक का भाग जमीन से समान रूप से सटा रहना चाहिए। गर्दन को तानते हुए सिर को धीरे–धीरे अधिकाधिक पीछे की ओर उठाने की कोशिश करें। अपनी दृष्टि ऊपर की ओर रखें। यह आसन तब पूरा होता है जब आपके शरीर के कमर का ऊपर का भाग सिर, गर्दन और छाती सांप के फन के समान ऊंचा उठ जाये और पीठ पर नीचे की ओर नितंब

टिप्पणी

और कमर के जोड़ पर अधिक खिंचाव या जोर मालूम पड़ने लगे। ऐसी अवस्था में आकाश की ओर देखते हुए 2–3 सेकंड तक सांस रोकें। अगर आप सांस न रोक सकें तो सांस सामान्य रूप से लें। इसके बाद सांस छोड़ते हुए पहले नाभि के ऊपर का भाग, फिर छाती को और फिर माथे को जमीन पर टिकाएं तथा बाएं गाल को जमीन पर लगाते हुए शरीर को ढीला छोड़ दें। कुछ क्षण रुकें और पुनः इस क्रिया को करें। इस प्रकार से भुजंगासन को पहले 3 बार करें और अभ्यास होने के बाद 5 बार करें।

ध्यान– इस आसन में विशुद्ध चक्र या आज्ञा चक्र तथा पीठ, पेट और श्वास पर ध्यान लगायें।

सावधानियां– हर्निया एवं थाइरॉइड के रोगी व गर्भवती स्त्रियों को यह आसन नहीं करना चाहिए। इसके अलावा पेट में घाव होने पर, अंडकोष वृद्धि में, मेरुदंड से पीड़ित होने पर, अल्सर तथा कोलाइटिस वाले रोगियों को भी यह असान नहीं करना चाहिए।

यह आसन अपनी क्षमतानुसार करना चाहिए। यह सावधानी से करने वाला आसन है। दैनिक अभ्यास से भुजंगासन करने में आसानी हो जाती है।

भुजंगासन से लाभ

- इस आसन को करने से रीढ़ की हड्डी का तनाव दूर हो जाता है। यह आसन पीठ और छाती की सभी बीमारियों को दूर करके इनके विकास में लाभकारी है।
- यह आसन नसों एवं मांसपेशियों को बिना हानि पहुंचाये ही रीढ़ की हड्डी के टेढ़ेपन को ठीक कर देता है।
- रीढ़ की कोई हड्डी या कशेरुका अपने स्थान से हट गई हो तो भुजंगासन के अभ्यास से वह सामान्य स्थिति में आ जाती है।
- यह आसन बेडौल कमर को पतली, सुडौल व आकर्षक बनाता है।
- इस आसन से सीना चौड़ा, कद लंबा, मोटापा कम करने में सहायता मिलती है।
- यह शरीर की थकावट को दूर करता है।
- इस आसन से शरीर सुंदर तथा कांतिमय बनता है।
- इस आसन के अभ्यास से व्यक्ति शक्तिवान व स्फूर्तिवान बनता है तथा यह आसन ज्ञानेन्द्रियों का विकास करने तथा नाड़ी तंत्र व ज्ञान तंतु को विकसित करने में लाभकारी होता है।
- यह आसन पीठ, छाती, कंधे, गर्दन तथा हाथ–पैरों की मांसपेशियों को मजबूत बनाता है।
- इससे टॉन्सिल व गले की मांसपेशियों को मजबूती मिलती है तथा यह गंडमाला में भी लाभकारी होता है।
- इससे कब्ज दूर होती है।
- इससे माइग्रेन में भी लाभ मिलता है।
- भुजंगासन से गुर्दों को शक्ति मिलती है। इससे मसाने व जिगर की विकृतियां ठीक हो जाती हैं।
- इससे खांसी, दमा, ब्रोंकाइटिस, इयोसिनोफिलिया आदि रोगों से बचाव होता है।

- इससे स्वप्न दोष तथा वीर्य विकार भी ठीक हो जाता है।
- यह आसन मासिक धर्म की अनियमितता, कष्ट तथा प्रदर रोग में लाभकारी होता है।

- यह आसन गर्भाशय तथा भीतरी यौनांगों के अनेक विकारों को दूर करता है।
- इससे महिलाओं का यौवन व सौंदर्य सदैव बना रहता है।

(2) धनुरासन

इस आसन में साधक द्वारा अपने शरीर की आकृति धनुष के समान कर ली जाती है। अतः इस आसन को धनुरासन के नाम से जाना जाता है।

हठयोग प्रदीपिका के अनुसार–

पादांगुष्ठी तु पाणिभ्यां गृहीत्वा श्रवणावधि।
धनुराकर्षणं कुर्याद्धनुरासनमुच्यते॥

ह० प्र० 1/25

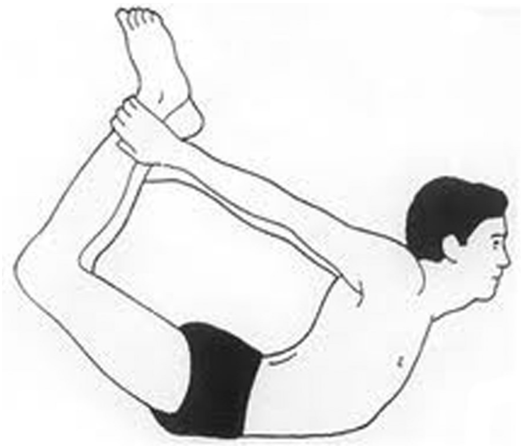

विधि

साधक द्वारा पेट के बल लेटकर, दोनों पैरों को घुटनों से मोड़ कर तथा दोनों पैरों के अंगूठों को हाथों से पकड़कर कानों तक धनुष के समान खींचने से धनुरासन की मुद्रा बनती है।

लाभ

इस आसन से हाथों-पैरों के जोड़ मजबूत बनते हैं।

(3) शलभासन

घेरण्ड संहिता के अनुसार

अध्यास्य शेते कर युग्मं वक्षे
भूमिमवष्टभ्य करयोस्तलाभ्याम्।
पादौ च शून्ये च वितस्ति चार्घ्यं
वदन्ति पीठंशलभं मुनीन्द्राः॥

घे०स० 2/39

टिप्पणी

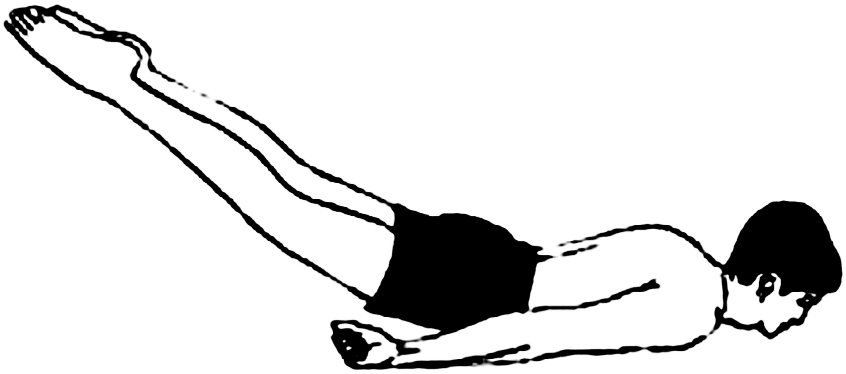

विधि

साधक पेट के बल जमीन पर लेटते हुए अपनी दोनों हथेलियों को वक्षस्थल के नीचे रखता है। उसके बाद अपने दोनों पैरों को लगभग एक बालिस्त की ऊंचाई तक उठाता है। मुनियों के द्वारा इस आसन को शलभासन कहा गया है।

लाभ

इस आसन के द्वारा उदर व वक्षस्थल के रोगों से मुक्ति मिलती है।

3.2.6 ब्रह्म मुद्रा, योग मुद्रा

ब्रह्म मुद्रा

यदि मनुष्य अपने तन तथा मन के स्वास्थ्य का संतुलन रखना सीख जाए तो सारे सुख उसके गुलाम हो जाएं। सुखी तथा समृद्ध जीवन का यह रहस्य हमारे पूर्वजों को पता था इसीलिए उन्होंने विभिन्न योगासनों तथा मुद्राओं का अविष्कार किया।

ये मुद्राएं तथा आसन उन्होंने भिन्न भिन्न अंगों के लाभ के लिए बनाएं। इन्हीं में से एक अत्यंत दुर्लभ किंतु अविश्वसनीय लाभ देने वाली मुद्रा ब्रह्मा मुद्रा है।

ब्रह्म मुद्रा जैसे कि नाम से स्पष्ट है ब्रह्मा के गुणों से प्रभावित मुद्रा है। ब्रह्म का शाब्दिक अर्थ विस्तार अथवा त्रिकालदर्शी है। इस प्रकार यह मुद्रा न सिर्फ मनुष्य के तीसरे नेत्र को प्रभावित करती है बल्कि शारीरिक लाभ भी प्रदान करती है।

शास्त्रों की मानें तो ब्रह्माजी के चार मुखों का अर्थ है कि उनकी नजर एक ही समय में चारों दिशाओं में रहती थी। इस बात का गूढ़ रहस्य तो यही है कि जीवन की हर दिशाओं में नजर के साथ संतुलन रखना। इसीलिए ब्रह्मामुद्रा का यौगिक संसार में महत्वपूर्ण स्थान है। इसे प्राण मुद्रा तथा कंठासन भी कहते हैं।

क्रिया विधि

- सर्वप्रथम एक शांत तथा हवादार स्थान पर कोई चटाई अथवा आसन बिछाकर पद्मासन, अथवा सिद्धासन में बैठ जाएं।
- दोनों आंखें बंद कर लंबी गहरी सांस लें तथा कुछ देर तक रोककर रखें। फिर मुंह द्वारा सांसों को बाहर निकाल दें। तीन से पांच बार सांसों की इस प्रक्रिया को दोहराएं।
- गर्दन को सीधी रखें तथा धीरे धीरे दाईं ओर लेकर जाएं। जितनी दूर तक आसानी से ले जा सकते हैं ले जाएं तथा स्थिर हो जाएं। मन में एक से दस तक की गिनती गिनने तक रुकें.
- गर्दन को धीरे ही धीरे बाईं ओर लेकर आएं तथा एक जगह स्थिर करें। पुनः एक से दस तक की गिनती मन में गिनने तक रुकें।
- दस तक गिनने के बाद गर्दन को बीच में ले आएं तथा सिर को धीरे धीरे ऊपर उठाएं। एक से पांच तक की गिनती मन में दोहराएं। फिर गर्दन को नीचे सामान्य अवस्था में ले आएं।
- सामान्य अवस्था में आने के बाद एक बार गर्दन को घड़ी की दिशा में घुमाएं, फिर घड़ी की उल्टी दिशा में घुमाएं। इस प्रकार ब्रह्मा मुद्रा का एक चक्र पूरा होता है।
- शुरू में पांच चक्र पूर्ण करने की सलाह दी जाती है।

सावधानियां

- गले तथा गर्दन संबंधी किसी गंभीर रोग की स्थिति में पहले चिकित्सक से तथा योगगुरु से सलाह लें।
- गर्दन घुमाते समय ध्यान उसी क्रिया पर रखें, कुछ और सोचना ध्यान भटका सकता है तथा गर्दन में मोच की संभावना हो सकती है।
- थायराइड अथवा सर्वाइकल स्पॉन्डलाइटिस पीड़ित गर्दन को नीचे करते समय बिल्कुल न झुकाएं।
- इस मुद्रा के अभ्यास में सम्पूर्ण शरीर का सीधा होना आवश्यक है इसलिए कमर पीठ तथा सिर बिल्कुल सीधा रखें तथा आराम से इस मुद्रा का अभ्यास करें।

ब्रह्मा मुद्रा के लाभ

- ब्रह्म मुद्रा के अभ्यास से प्राण अर्थात सांसों (जीवन ऊर्जा) के आवागमन में संतुलन बनता है।

टिप्पणी

- ब्रह्म मुद्रा दिमाग को शांत तथा शरीर को अधिक ऊर्जावान बनाती है।
- नियमित ब्रह्म मुद्रा के अभ्यास से एकाग्रता बढ़ती है।
- मन से नकारात्मक विचारों को निकाल नए तथा सकारात्मक विचारों के निर्माण करने में ब्रह्म मुद्रा अत्यंत सहायक है।
- शरीर के विषैले तत्वों को बाहर निकालकर शरीर को शुद्ध करती है।
- ब्रह्म मुद्रा से विशुद्धि चक्र सक्रिय होता है तथा सिर, पीठ, गर्दन एवं कंधों का तनाव तथा दर्द कम होता है।

योग मुद्रा

योग मुद्रा एक प्राचीन तकनीक है जिसका अभ्यास हम प्राणायाम और मेडिटेशन के दौरान करते हैं। मुद्रा संस्कृत का शब्द है जिसका अर्थ हावभाव (attitude) है।

प्राचीन काल में साधु संत शरीर के अंदर मौजूद पांच तत्व हवा, पानी, अग्नि, पृथ्वी और आकाश को संतुलित रखने के लिए योग मुद्राएं करते थे। हमारी उंगलियों में इन तत्वों की विशेषता होती है और इनमें से प्रत्येक पांच तत्वों का शरीर के अंदर एक विशिष्ट (specific) और महत्वपूर्ण कार्य होता है। यही वजह है कि आज भी लोग योग मुद्रा का अभ्यास करते हैं।

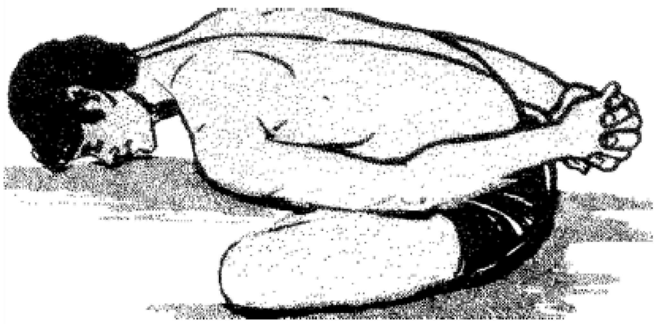

योग मुद्रा शारीरिक गतिविधियों का एक समूह है जो व्यक्ति के मन, मनोभाव (attitude) और प्रत्यक्ष ज्ञान (perception) को बदलता है और मस्तिष्क के विशेष भागों में ऊर्जा का प्रवाह करने का काम करता है।

आमतौर पर हमारे शरीर में मौजूद कई तत्व संतुलित (balanced) अवस्था में नहीं होते हैं जिसके कारण शरीर में विभिन्न बीमारियां लग जाती हैं और व्यक्ति हल्की से लेकर गंभीर समस्याओं (serious issue) से पीड़ित रहने लगता है। ऐसी स्थिति (condition) में योग मुद्रा शरीर के पांच तत्वों को संतुलित करने का काम करती है और पूरे शरीर को स्वस्थ रखने में भी सहायक होती है।

योग मुद्रा के स्वरूप

शरीर में पांच तत्व मौजूद होते हैं और इन तत्वों (elements) के असंतुलित होने पर व्यक्ति व्याधियों से जकड़ जाता है। इन पांच तत्वों की विशेषता हमारे हाथों की उंगलियों में समाहित होती है। हाथ की पांच उंगलियों में वायु तर्जनी उंगली पर, जल छोटी उंगली पर, अग्नि अंगूठे पर, पृथ्वी अनामिका उंगली पर और आकाश (space) मध्यमा उंगली पर स्थित होता है।

इन्हीं के आधार पर योग मुद्रा को पांच समूहों (groups) में बांटा जाता है और यह आमतौर पर अभ्यास किये जाने वाले शरीर के अंगों पर निर्भर करते हैं। ये पांच समूह निम्न हैं–

टिप्पणी

- हस्त (Hand Mudras)
- मन (Head Mudras)
- काया (Postural Mudras)
- बंध (Lock Mudras)
- आधार (Perineal Mudras).

वैसे तो योग मुद्राएं सैकड़ों प्रकार की होती हैं।

कुछ आसान और अहम योग मुद्रा की क्रियाविधि एवं महत्ता

वरुण मुद्रा

यह शरीर में पानी के तत्व (water element) को संतुलित बनाए रखने में मदद करती है। चेहरे पर निखार लाने का कार्य करती है क्योंकि शरीर में मौजूद तरल पदार्थों का सही तरीके से प्रवाह होता है और यह चेहरे को अच्छे से मॉश्चराइज (moisturise) करती है।

विधि

फर्श पर आराम से बैठ जाएं और अपनी छोटी उंगली (little finger) और अंगूठे (thumb) को हल्का सा झुकाकर एक दूसरे के पोरों (tip) से सटाएं।

हाथ की बाकी उंगलियों को सीधा रखें।

इसके बाद हथेली को जांघ (thigh) के ऊपर जमीन की तरह थोड़ा सा झुकाकर रखें।

आंखें बंद करके कुछ देर तक इसी मुद्रा में बैठे रहें।

इस मुद्रा को करते समय इस बात का विशेष ध्यान दें कि उंगली के पोर (tips) को नाखून से न दबाएं अन्यथा शरीर में पानी के तत्व संतुलित होने के बजाय आपको निर्जलीकरण (dehydration) की समस्या हो सकती है।

लाभ

- मस्तिष्क को शांत (calm mind) रखने, त्वचा से जुड़े रोगों को दूर करने में यह मुद्रा बहुत लाभदायक है।
- वरुन मुद्रा का प्रतिदिन अभ्यास करने से शरीर में तरल पदार्थों का सर्कुलेशन सही तरीके से होता है जिसके कारण व्यक्ति को संक्रमण नहीं होता है और मुंहासों से छुटकारा मिलता है।
- यह मुद्रा मांसपेशियों के दर्द से मुक्ति दिलाता है और चेहरे पर प्राकृतिक निखार (natural glow) लाता है।

ज्ञान मुद्रा

यह सबसे मौलिक (basic) योग मुद्रा है जो एकाग्रता और ज्ञान को बेहतर बनाने में मदद करता है।

विधि

- फर्श पर बिल्कुल आराम से पदमासन की मुद्रा में बैठ जायें।
- इसके बाद अपनी तर्जनी उंगली (index fingers) को मोड़े और अंगूठे के ऊपर सटाएं।
- बाकी तीन उंगलियों को बिल्कुल सीधा रखें और ये तीनों उंगलियां एक दूसरे को छूनी नहीं चाहिए।
- अब हाथ को घुटने के ऊपर रखें और हथेली को घुटने से हल्का सा नीचे झुकाए रखें।
- हाथ पर किसी तरह का तनाव न दें और आंखें बंद करके इस मुद्रा में कुछ देर तक बैठे रहें।

टिप्पणी

लाभ

- ज्ञान मुद्रा अनिद्रा (insomnia) की समस्या दूर करने में काफी लाभदायक होता है।
- यह मुद्रा एकाग्रता को बढ़ाता है और यादाश्त की क्षमता भी मजबूत करता है।
- प्रतिदिन ज्ञान मुद्रा का अभ्यास करने से मनोवैज्ञानिक समस्याएं जैसे गुस्सा, डिप्रेशन, तनाव और चिंता (anxiety) दूर हो जाते हैं।
- यह मुद्रा शरीर में ऊर्जा को बढ़ाता है और कमर दर्द (waist pain) से राहत दिलाने में बहुत लाभदायक होता है।

वायु मुद्रा

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है, वायु मुद्रा का अभ्यास शरीर में वायु का संतुलन बनाये रखने के लिए किया जाता है।

विधि

- अपनी तर्जनी उंगली को मोड़ें।
- इसके बाद अपने अंगूठे के आधार पर तर्जनी उंगली (index finger) को मोड़कर हड्डी को दबाते हुए आधार के पास रखें।
- हाथ की बाकी तीन उंगलियों को बिल्कुल सीधा (straight) रखें और उंगलियों पर किसी तरह का दबाव न दें।
- इसके बाद हथेली को घुटने के ऊपर रखें और आंखें बंद करके कुछ देर तक बैठे रहें।

लाभ

- यह मुद्रा शरीर से अधिक वायु बाहर निकालने का कार्य करती है और गैस के कारण सीने में उत्पन्न दर्द से राहत दिलाने में मदद करती है।
- वायु मुद्रा का नियमित अभ्यास करने से घबराहट (nervousness) और बेचैनी दूर होती है और मन शांत रहता है।
- यह मुद्रा वात दोष को दूर करने और अर्थराइटिस, गैस की समस्या, साइटिका, घुटनों एवं मांसपेशियों के दर्द को दूर करने में प्रभावी होती है।

3.2.7 अनुलोम–विलोम, उज्जायी, भस्त्रिका एवं भ्रामरी प्राणायाम

(1) अनुलोम–विलोम प्राणायाम

सुखासन तथा वज्रासन में बैठना चाहिए या अपने शरीर को जिस तरह भी बैठकर आराम मिलता है, उस अवस्था में बैठकर इस आसन को करें। इस आसन को बायें नथुने से ही प्रारंभ करें तथा बायें पर ही समाप्त करें। नाक का दांया नथुना बंद करें व बायें से लंबी सांस लें, फिर बायें को बंद करके दायें से लंबी सांस छोड़ें, इसी क्रम को दुबारा दोहरायें। यह प्रक्रिया 10–15 मिनट तक दोहरायें। सांस लेते समय अपना ध्यान दोनों आंखों के बीच में स्थित 'आज्ञा चक्र' पर केंद्रित करना चाहिए। मन ही मन सांस लेते समय ओऽम–ओऽम का जाप करते रहना चाहिए। इससे हमारे शरीर की 72, 72, 10, 210 सूक्ष्मवादी सूक्ष्म नाड़ी शुद्ध हो जाती हैं। बायीं नाड़ी को चंद्र नाड़ी और दायीं नाड़ी को सूर्य नाड़ी कहते हैं। चंद्र नाड़ी ठंडी हवा अंदर भेजने का कार्य करती है तथा सूर्य नाड़ी गर्म हवा को अंदर पहुंचाती है। इसी ठंडी और गर्म हवा के कारण हमारे शरीर का तापमान संतुलित रहता है। इससे रोग प्रतिकार शक्ति बढ़ जाती है।

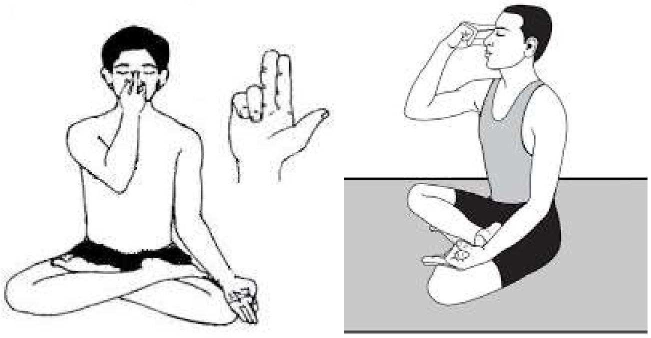

अनुलोम–विलोम प्राणायाम के लाभ–

- हार्ट की रुकावट (ब्लॉकेज) खुलती है।
- उच्च तथा निम्न रक्तचाप दोनों ठीक होते हैं।
- आर्थराइटीस, रूमैटिक आर्थराइटिस, कार्टीलेज घिसना ऐसी बीमारियों को ठीक करता है।
- टेढ़े लिगामेंट को ठीक करता है।
- व्हेरीकोप व्हेनस ठीक हो जाती हैं।
- कोलेस्ट्रॉल, टाक्सिंस, ऑक्सीडण्टस जैसे विजातीय पदार्थ शरीर के बाहर निकल जाते हैं।
- सायकिक रोगी ठीक हो जाते हैं।
- किडनी प्राकृतिक रूप में स्वच्छ हो जाती है।
- डायलेसिस की जरूरत नहीं पड़ती है।
- कैंसर में भी लाभ मिलता है।

टिप्पणी

- सभी प्रकार की एलर्जियां मिट जाती हैं।
- यह याददाश्त को बढ़ाता है।
- सर्दी, खांसी, नाक, गला ठीक करता है।
- ब्रेन ट्यूमर भी ठीक करता है।
- सभी प्रकार के चर्म रोगों में लाभकारी।
- मस्तिष्क से संबंधित सभी बीमारियों में लाभकारी।
- पर्किनसन, पॅरैलेसिस, लुलापन आदि स्नायुओं से संबंधित बीमारियों में लाभदायक।
- सायनस की बीमारी ठीक हो जाती है।
- डायबिटिज पूरी तरह ठीक हो जाता है।

(2) उज्जायी प्राणायाम

सुखासन, सिद्धासन, पद्मासन या वज्रासन में बैठकर इस आसन को करना चाहिए। इसके अंतर्गत गले को सिकोड़ कर अंदर की तरफ सांस लेनी होती है। उज्जायी प्राणायाम से व्यक्ति अपनी सांसों पर विजय प्राप्त करता है। इसलिए इस प्राणायाम को अंग्रेजी में Victorious Breath कहा जाता है। उज्जायी प्राणायाम करते समय समुद्र की अवाज के समान ध्वनि उत्पन्न होती है। जिस कारण इसे Ocean Breath भी कहा जाता है। उज्जायी प्राणायाम करने से स्वच्छ हवा शरीर में जाती है तथा शरीर से दूषित एवं जहरीले पदार्थ बाहर निकलते हैं।

विधि

1. इस प्राणायाम को करते समय मुंह बंद रखना होता है।
2. उज्जायी प्राणायाम करने के लिए आप किसी भी आसन में बैठ सकते हैं।
3. जीभ को मोड़कर खचरी मुद्रा लगा लें। जीभ को पीछे की ओर मोड़कर तालू से जीभ के अग्र को लगाना खचरी मुद्रा की राजयोग पद्धति है।
4. गले, सिर तथा पीठ को सीधा कर लें।
5. आंखों को बंद कर लें।
6. संपूर्ण शरीर को शिथिल करें।
7. कंठ के स्नायु को tight करना होता है।
8. कंठ को संकुचित कर नाक से मंद तथा गहरी श्वास लें।

9. सरसराहट की ध्वनी गले से निकालें। यह ध्वनी छोटे बच्चे की नींद में आनेवाली आवाज के समान होगी।
10. उज्जायी प्राणायाम शुरुआत में 2 से 3 मिनट तक करें और धीरे–धीरे समय बढ़ाते हुए 10 मिनट तक कर सकते हैं।
11. सांस छोड़ने की अवधि सांस लेने की अवधि से दोगुनी रखें।
12. ध्यान रखें कि उज्जायी प्राणायाम करते समय आवाज आपके कंठ के ऊपरी हिस्से से निकलनी चाहिए न कि नाक के सामने वाले हिस्से से।
13. उज्जायी प्राणायाम हम कभी भी कर सकते हैं पर अधिक लाभ के लिए इसका अभ्यास सुबह की ताजी हवा में खाली पेट करना चाहिए।
14. इस आसन को अष्टांग योग पद्धति से कर रक्तचाप को बढ़ाया जा सकता है एवं meditation द्वारा कम भी किया जा सकता है।

उज्जायी प्राणायाम के लाभ

- थायरॉयड रोग में लाभ।
- तुतलाना एवं हकलाने की समस्या में लाभदायक।
- अनिद्रा तथा मानसिक तनाव को कम करता है।
- टी.बी.रोग में लाभदायक।
- गूंगे बच्चों की समस्या को भी दूर करता है।

(3) भस्त्रिका प्राणायाम

भस्त्रिका का शाब्दिक अर्थ है धौंकनी अर्थात एक ऐसा प्राणायाम जिसमें लोहार की धौंकनी की तरह आवाज करते हुए वेगपूर्वक शुद्ध प्राणवायु को अंदर ले जाते हैं और अशुद्ध वायु को बाहर फेंकते हैं।

प्राणायाम जीवन का रहस्य है। श्वासों के आवागमन पर ही हमारा जीवन निर्भर है और ऑक्सीजन की अपर्याप्त मात्रा से रोग और शोक उत्पन्न होते हैं। प्रदूषण भरे माहौल और चिंता से हमारी श्वासों की गति अपना स्वाभाविक रूप खो ही देती है, जिसके कारण प्राणवायु संकट काल में हमारा साथ नहीं दे पाती।

विधि

सिद्धासन या सुखासन में बैठकर कमर, गर्दन और रीढ़ की हड्डी को सीधा रखते हुए शरीर और मन को स्थिर रखें। आंखें बंद कर लें। फिर तेज गति से श्वास लें और तेज गति से ही श्वास बाहर निकालें। श्वास लेते समय पेट फूलना चाहिए और श्वास छोड़ते समय पेट पिचकाना चाहिए। इससे नाभि पर दबाव पड़ता है।

इस प्राणायाम को करते समय श्वास की गति पहले धीरे रखें अर्थात दो सेकंड में एक श्वास भरना और श्वास छोड़ना। फिर मध्यम गति से श्वास भरे और छोड़ें, अर्थात एक सेकंड में एक श्वास भरना और श्वास छोड़ना। फिर श्वास की गति तेज कर दें अर्थात एक सेकंड में दो बार श्वास भरना और श्वास निकालना। श्वास लेते और छोड़ते समय एक जैसी गति बनाकर रखें। वापस सामान्य अवस्था में आने के लिए श्वास की गति धीरे–धीरे कम करते जाएं और अंत में एक गहरी श्वास लेकर फिर श्वास निकालते

हुए पूरे शरीर को ढीला छोड़ दें। इसके बाद योगाचार्य पांच बार कपालभाती प्राणायाम करने की सलाह देते हैं।

सावधानी– भस्त्रिका करने से पहले नाक बिल्कुल साफ कर लें। भस्त्रिका प्राणायाम प्रातः खुली और साफ हवा में करना चाहिए। क्षमता से ज्यादा इस प्राणायाम को नहीं करना चाहिए। दिन में सिर्फ एक बार ही यह प्राणायाम करें। प्राणायाम करते समय शरीर को न झटका दें और न ही किसी तरह से शरीर हिलाएं। श्वास लेने और श्वास छोड़ने का समय बराबर रखें।

नए अभ्यासी शुरू में कम से कम दस बार श्वास छोड़ तथा ले सकते हैं। जिनको तेज श्वास लेने में परेशानी या कुछ समस्या आती है तो प्रारंभ में श्वास मंद–मंद लें। ध्यान रहे कि यह प्राणायाम दोनों नासिका छिद्रो के साथ संपन्न होता है। श्वास लेने और छोड़ने को एक चक्र माना जाएगा तो एक बार में लगभग 25 चक्र कर सकते हैं।

उक्त प्राणायाम को करने के बाद श्वासों की गति को पुनः सामान्य करने के लिए अनुलोम–विलोम के साथ आंतरिक और बाहरी कुंभक करें या फिर कपालभाती पांच बार अवश्य कर लें।

चेतावनी– उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, हर्निया, दमा, टीबी, अल्सर, पथरी, मिर्गी, स्ट्रोक से ग्रस्त व्यक्ति और गर्भवती महिलाएं इसका अभ्यास न करें। फेफड़ों, गले, हृदय या पेट में किसी भी प्रकार की समस्या हो, नाक बंद हो या साइनस की समस्या हो या फिर नाक की हड्डी बढ़ी हो तो चिकित्सक से सलाह लेकर ही यह प्राणायाम करना या नहीं करना चाहिए। अभ्यास करते समय अगर चक्कर आने लगे, घबराहट हो, ज्यादा पसीना आए या उल्टी जैसा मन करे तो प्राणायाम करना रोककर आरामपूर्ण स्थिति में लेट जाएं।

लाभ

इस प्राणायाम से शरीर को प्राणवायु अधिक मात्रा में मिलती है जिसके कारण यह शरीर के सभी अंगों से दूषित पदार्थों को दूर करता है। तेज गति से श्वास लेने और छोड़ने के क्रम में हम ज्यादा मात्रा में ऑक्सीजन लेते हैं और कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं जो फेफड़ों की कार्य क्षमता को बढ़ाता है और हृदय में रक्त नलिकाओं को भी शुद्ध व मजबूत बनाए रखता है। भस्त्रिका प्राणायाम करते समय हमारा डायाफ्राम तेजी से काम करता है जिससे पेट के अंग मजबूत होकर सुचारू रूप से कार्य करते हैं और हमारी पाचन शक्ति भी बढ़ती है।

मस्तिष्क से संबंधित सभी विकारों को मिटाने के लिए भी यह लाभदायक है। आंख, कान और नाक के स्वास्थ्य को बनाए रखने में भी यह प्राणायाम लाभदायक है। वात, पित्त और कफ के दोष दूर होते हैं तथा पाचन संस्थान, लिवर और किडनी की अच्छी एक्सरसाइज हो जाती है। मोटापा, दमा, टीबी और श्वासों के रोग दूर हो जाते हैं। स्नायुओं से संबंधित सभी रोगों में यह लाभदायक माना गया है।

मोटापा आज जन समस्या हो गई है जिससे कई बीमारियां अपने आप शरीर को घेर लेती हैं। बिना दवा और टेंशन लिये अगर नियमित रूप से भस्त्रिका प्राणायाम करें तो मोटापे से हमेशा के लिए मुक्ति पा सकते हैं। इस प्राणायाम से शरीर को प्राण वायु अधिक मात्रा में मिलती है उसी मात्रा में कार्बन डाईऑक्साइड शरीर से बाहर निकलती है, जिससे रक्त की सफाई होती है।

(4) भ्रामरी प्राणायाम

टिप्पणी

इसको सुखासन, वज्रासन, सिद्धासन अथवा पद्मासन में बैठकर करना चाहिए। मानसिक तनाव एवं विचारों पर नियंत्रण पाने के लिए भ्रामरी प्राणायाम किया जाता है। भ्रामरी प्राणायाम करते समय भ्रमर (काले भंवरे) के समान आवाज होने के कारण अंग्रेजी में Humming Bee Breath भी कहते हैं। यह प्राणायाम किसी भी समय, कुर्सी पर बैठकर अथवा सोते समय लेटकर किया जा सकता है। इस योगासन में दोनों हाथों से दोनों कानों को पूरी तरह से बंद कर लें। दो उंगलियों को माथे पर रखें तथा छः उंगलियों को आंखों पर रखें। इसके पश्चात गहरी सांस लेकर गले से भंवरे जैसी आवाज निकालें।

भ्रामरी प्राणायाम की विधि

1. सबसे पहले समतल स्थान पर दरी अथवा चटाई बिछाकर बैठें।
2. दोनों हाथों को बगल में अपने कंधों के समानांतर फैलायें।
3. दोनों हाथों को कुहनियों (Elbow) से मोड़कर हाथ को कानों के पास रखें।
4. दोनों हाथों के अंगूठों (Thumb) से दोनों कानों को बंद कर लें।
5. दोनों हाथों की तर्जनी (Index) उंगली को माथे पर और मध्यमा (Middle), अनामिका (Ring), कनिष्ठा (Little) उंगली आंखों के ऊपर रखनी चाहिए।
6. कमर, पीठ, गर्दन तथा सिर को सीधा और स्थिर रखें।
7. नाक से सांस अंदर लें (पूरक)।
8. नाक से सांस बाहर छोड़ें (रेचक)।
9. सांस बाहर छोड़ते हुए गले से भंवरे की भांति आवाज निकलनी चाहिए। यह आवाज पूर्ण सांस छोड़ने तक करनी है तथा आखिर तक एक जैसी रहनी चाहिए।
10. सांस अंदर लेने का समय 10 सेकंड तथा बाहर छोड़ने का समय 20 से 30 सेकंड होना चाहिए।

11. प्रारंभ में पांच मिनट करें तथा बाद में धीरे–धीरे समय बढ़ायें।
12. इस प्राणायाम को करते समय तर्जनी उंगली से दोनों कान बंद कर बाकी उंगलियों की हल्की मुद्रा बनाकर भी यह प्राणायाम किया जा सकता है।

टिप्पणी

भ्रामरी प्राणायाम के लाभ

- क्रोध, चिंता, भय, तनाव और अनिद्रा इत्यादि मानसिक विकारों को दूर करने में सहायक है।
- इससे मन और मस्तिष्क शांत रहता है।
- सकारात्मक सोच को बढ़ावा मिलता है।
- अर्धसीसी में लाभदायक है।
- बुद्धि तेज होती है।
- स्मरणशक्ति में वृद्धि करता है।
- उच्च रक्तचाप को ठीक करता है।
- भ्रामरी प्राणायाम करते समय ठुड्डी (Chin) को गले से लगाकर (जालंदर बंध) करने से थाइरॉइड में लाभ मिलता है।

भ्रामरी प्राणायाम में क्या सवाधानियां रखनी चाहिए

(क) कान में दर्द या संक्रमण होने पर प्राणायाम नहीं करना चाहिए।
(ख) अपनी क्षमता से ज्यादा करने का प्रयास न करें।
(ग) प्राणायाम करने का समय और चक्र धीरे–धीरे बढ़ायें।

भ्रामरी प्राणायाम करने के बाद आप धीरे–धीरे नियमित सामान्य श्वसन कर श्वास को नियंत्रित कर सकते हैं। भ्रामरी प्राणायाम करते समय चक्कर अथवा घबराहट होना, खांसी आना, सिरदर्द या अन्य कोई परेशानी होने पर प्राणायाम रोककर अपने डॉक्टर या योग विशेषज्ञ की सलाह लेनी चाहिए।

3.2.8 मकरासन, शवासन

(1) मकरासन

इस योग में शरीर की रचना मगरमच्छ/मगर के समान होने के कारण इसे मकरासन कहा जाता है। इसे Crocodile pose भी कहा जाता है। कमर और कंधे में तकलीफ से पीड़ित व्यक्तियों के लिए यह एक उपयोगी आसन है। उच्च रक्तचाप के रोगी को इससे विशेष लाभ होता है।

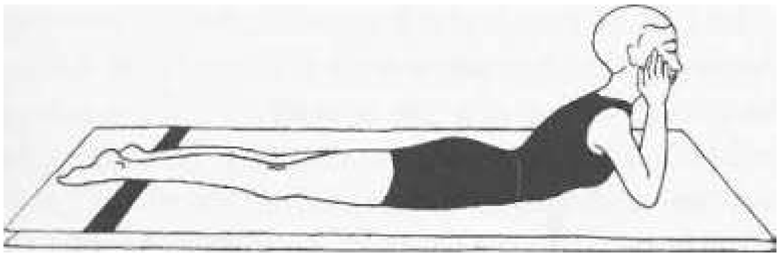

टिप्पणी

विधि

1. एक स्वच्छ व समतल स्थान पर चटाई बिछायें।
2. पेट के बल लेट जाएं।
3. गर्दन को उठाना प्रारंभ करें और दोनों हाथों की कुहनियों को मोड़कर कोहनियों पर खड़ा कर दें।
4. हथेलियों से ठुड्डी को आधार दें।
5. कोहनियों को इस प्रकार रखें कि गर्दन और कमर पर कम दबाव रहे।
6. दोनों पैरों के अंगूठे की दिशा एक–दूसरे से विपरीत और एड़ियों को एक दूसरे की तरफ रखें।
7. अब संपूर्ण शरीर को शिथिल रखें ओर आंखें बंद कर धीरे–धीरे सांस लें।
8. यह आसन अपनी क्षमतानुसार करें तथा विशेष व्याधियों में लंबे समय तक करें।

लाभ

- उच्च रक्तचाप, अस्थमा, स्लिप डिस्क तथा गर्दन व कमर दर्द में लाभकर।
- पाचन शक्ति ठीक करता है।
- अनिद्रा दूर करता है।
- शरीर में रक्त संचार ठीक करता है।
- थकान होने पर रिलेक्स होने के लिए यह आसन कर सकते हैं।

सावधानियां

(क) अत्यधिक दर्द या असुविधा होने पर यह आसन न करें।

(ख) हर्निया की शिकायत होने पर यह आसन न करें।

(ग) इस आसन को करने के बाद कुछ समय पीठ के बल लेटकर शवासन करें।

(2) शवासन

शवासन को आसनों का सम्राट कहा जाता है। इसे Corpse pose भी कहते हैं। इससे मन तथा शरीर की चिंता समाप्त हो जाती है। शवासन का अभ्यास सभी आसनों व यौगिक क्रियाओं की समाप्ति करने के पश्चात किया जाता है।

विधि

इस आसन को करते समय मन को तनाव व चिंता मुक्त रखना चाहिए। शांत स्थान तथा स्वच्छ हवादार स्थान पर चटाई बिछाकर करें। सर्वप्रथम पीठ के बल सीधा लेट जाएं व शरीर को बिल्कुल ढीला छोड़ दें। दोनों पैरों के बीच में 45 से 60 सेंटीमीटर तक की दूरी रखें। अब दोनों हाथों को बगल में सीधा रखें। हथेलियों को ऊपर की ओर रखें। इस स्थिति में आने के बाद अपनी आंखों को बंद कर लें। 10 मिनट तक आंखों

टिप्पणी

को बंद रखें। 10 मिनट के बाद आंखों को खोलकर कुछ सेकंड तक रुकें और पुनः आंखों को बंद कर लें। इस क्रिया को 3–4 बार करें। इस क्रिया में सांस लेने व छोड़ने की गति को सामान्य रखें। इसको करते समय अपने मन व मस्तिष्क को बिल्कुल शांत रखें तथा मन में अच्छे स्थानों की कल्पना करके आनन्दित होकर इस आसन को करें।

सावधानी– शवासन खाली पेट या भोजन करने के 2–3 घंटे बाद करें। हल्के पेट इस आसन को 1 घंटे बाद कर सकते हैं। शवासन करने के लिए शांत व एकांत वातावरण होना चाहिए। नींद पूरी होने के बाद इसे बिस्तर पर भी कर सकते हैं।

लाभ

- सभी अंगों को आराम मिलता है।
- मन शांत व चिंता मुक्त होता है।
- थकावट को दूर करता है।
- अनिद्रा को दूर करता है।
- इससे चिंता, भय, शोक आदि समाप्त होकर मन को शांति मिलती है।

3.2.9 योग साधना का महत्व

भारतीय धर्म एवं दर्शन के अंतर्गत योग का महत्व प्राचीन समय से ही है। चाहे आध्यात्मिक उन्नति का प्रश्न हो या फिर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सभी के लिए योग अत्यधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। इसीलिए प्रायः सभी दर्शनों एवं भारतीय धार्मिक संप्रदायों ने एकमत तथा मुक्त कंठ से इसको स्वीकार किया है। भगवत् गीता भारत का प्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है। इसमें भी योग शब्द का कई बार प्रयोग किया गया है। जैसे– बुद्धियोग, संन्यासयोग तथा कर्मयोग। वेदोत्तर काल में भक्तियोग एवं हठयोग भी प्रचलित हुए हैं। महात्मा गांधी ने 'अनासक्ति योग' का व्यवहार किया। पंतजलि में 'क्रिया योग' मिलता है। 'पाशुपत योग' एवं 'माहेश्वर योग' भी मिलते हैं। इन सब स्थलों में योग शब्द के अर्थ एक दूसरे के विरोधी हैं।

वैदिक, जैन और बौद्ध दर्शनों में योग का महत्व सर्वमान्य है। सविकल्प बुद्धि और निर्विकल्प प्रज्ञा में परिणित करने हेतु योग–साधन का महत्व सर्वमान्य है।

1. **वर्तमान युग में योग का महत्व**– आधुनिक समय में योग का महत्व दिन–प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। इसके बढ़ने का एकमात्र कारण व्यस्तता और मन की व्यग्रता है। आधुनिक मनुष्य को आज योग की नितांत आवश्यकता है। जबकि मन और शरीर अत्यधिक तनाव, वायु प्रदूषण तथा भागमभाग के जीवन से रोगग्रस्त हो चला है। व्यक्ति का मन केंद्र से भटक चुका है। उसके अंतर्मुखी एवं बहिर्मुखी होने में संतुलन नहीं रहा है।
2. **अंतरिक्ष युग में योग का महत्व**– मनुष्य यदि जीवन में और अधिक प्रगति करना चाहता है तो उसे अपने जीवन में योग को अपनाना ही होगा। अगर उसे अंतरिक्ष में जाना है, नए ग्रहों की खोज करनी है, शरीर और मन को स्वस्थ एवं संतुलित रखना है तो विज्ञान एवं योग की महत्ता एवं महत्व को समझना होगा।
3. **भविष्य में धर्म योग का महत्व**– वस्तुतः धर्म योग भविष्य का धर्म एवं विज्ञान है। भविष्य में योग का महत्व और अधिक बढ़ेगा। यौगिक क्रियाओं में इतनी

शक्ति है कि वह उस सबको भी बदल सकती है जो प्रकृति ने हमें दिया है और नहीं दिया है।

अंततः मानव अपने जीवन की श्रेष्ठता के चरम पर अब योग के ही माध्यम से आगे बढ़ सकता है। इसलिए योग के महत्व को स्वीकारना होगा। योग केवल व्यायाम नहीं है बल्कि योग है विज्ञान का चौथा आयाम।

4. **तनाव में योग का महत्व**— तनाव कई बीमारियों की जड़ है। यह अपने साथ कई अन्य बीमारियों को भी जन्म देता है। इस सत्य को चिकित्सा विज्ञान ने भी स्वीकार किया है। योग का महत्व इसलिए भी है कि यह तनाव से मुक्ति दिलवाता है। योग मुद्रा, ध्यान और योग में श्वसन की विशेष क्रियाओं द्वारा तनाव से राहत मिलती है। क्योंकि योग मन को विभिन्न विषयों से हटाकर स्थिरता प्रदान करता है। तनाव मुक्त होने से शरीर और मन पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है तथा कार्य करने की क्षमता बढ़ती है। योग के दौरान गहरी सांस लेने से शरीर तनाव मुक्त हो जाता है।

5. **मानसिक शक्ति को बढ़ाने में योग का महत्व**— स्मरण शक्ति एवं बौद्धिक क्षमता जीवन में प्रगति के लिए प्रमुख साधन माने जाते हैं। योग से मानसिक क्षमताओं का विकास होता है और स्मरण शक्ति भी बढ़ती है। योग मुद्रा एवं ध्यान मन को एकाग्रता प्रदान करते हैं। एकाग्रता से स्मरण शक्ति बढ़ती है। योग से तर्क शक्ति भी बढ़ती है, तथा कार्यकुशलता बढ़ती है। योग क्रियाओं द्वारा तार्किक शक्ति एवं कार्यकुशलता में गुणात्मक प्रभाव होने से आत्मविश्वास भी बढ़ता है।

6. **शरीर में लोच**— योग करने से शरीर लचीला एवं मजबूत बनता है। योग मांसपेशियों को सुगठित एवं संतुलित बनाता है। सुगठित, संतुलित एवं लोचदार शरीर होने से कार्य क्षमता बढ़ती है। योग से शरीर की हड्डियां भी पुष्ट एवं मजबूत बनती हैं। योग अस्थियों में होने वाले रोगों की संभावनाओं को भी कम करता है। योग से रक्त संचार सुचारू रूप से होता है और शरीर स्वस्थ रहता है। यह थकान, सिरदर्द, जोड़ों के दर्द तथा ब्लड प्रेशर को सामान्य बनाये रखने में सहायक होता है।

   बाबा रामदेव ने कहा है कि— ''जो रोज करेगा योग उसे न होगा कोई रोग'। अर्थात योग हमारी शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति में सहायक है।

7. **मांसपेशियां एवं अस्थि तंत्र में योग का महत्व**— योगिक क्रियाएं मांसपेशियों को गतिशील एवं पुष्ट बनाती हैं। ये क्रियाएं मानसिक रूप से कार्य करने में लाभदायक हैं।

8. **पाचन—तंत्र में योग का महत्व**— योग से शरीर के अंगों में संकुचन एवं प्रसरण होता है। इससे पूरे पेट की मालिश हो जाती है। पाचन तंत्र स्वस्थ रहता है तथा भूख बढ़ती है।

9. **श्वसन तंत्र में योग का महत्व**— योग के माध्यम से फेफड़ों के हर भाग से fo"kSyh xSl fudyrh gS rFkk mldk LFkku 'kq) ,oa rkth vkWDlhtu ¼O_2) ले लेती है। इससे बुद्धि एवं स्मरण शक्ति तीव्र हो जाती है। योग एवं प्राणायाम करने से श्वसन प्रणाली मजबूत होती है। कपालभाति, नाड़ीशोधन, शीतली,

शितकारी जैसे प्राणायाम शरीर में ऑक्सीजन बढ़ाते हैं। संतुलित स्वस्थ श्वसन क्रिया रहने से अस्थमा, मधुमेह, उच्च रक्तचाप और कर्करोग जैसे रोग दूर रहते हैं।

टिप्पणी

10. **अंतःस्रावी ग्रंथियों के लिए योग का महत्व**– व्यक्तित्व के विकास में अंतःस्रावी ग्रंथियों का विशेष महत्व है। जीवन में सभी प्रणालियां आवश्यक हैं। परंतु शारीरिक क्रिया–कलापों में समन्वय बनाये रखने, शारीरिक एवं मानसिक विकास के लिए अंतःस्रावी ग्रंथियों का विशेष महत्व है।
11. **प्रजनन तंत्र में महत्व**– स्त्री एवं पुरुषों के प्रजनन संस्थान को सक्रिय बनाने में इसका विशेष महत्व है। यह स्त्रियों की मासिक धर्म की अनियमितताओं को दूर करने में सहायक है।
12. **उत्सर्जन तंत्र में महत्व**– उत्सर्जन संस्थान के प्रमुख अंग त्वचा एवं वृक्क हैं। योगाभ्यास द्वारा पीठ एवं रीढ़ प्रदेश का व्यायाम हो जाता है जिसके अंतर्गत वृक्कों पर दबाव पड़ने पर उनकी मालिश अच्छी प्रकार से हो जाती है। उनमें रक्त संचार की क्रिया भी तीव्र हो जाती है और सभी कार्य व्यवस्थित हो जाते हैं। वृक्कों का कार्य मंद हो जाने से गहरे रंग का तीव्र गंध वाला मूत्र आना प्रारंभ हो जाता है। ऐसी स्थिति में अधिक पानी पीने तथा सूर्य नमस्कार करने की सलाह दी जाती है। त्वचा द्वारा भी रक्त में से विषाक्त तत्वों का उत्सर्जन किया जाता है जिसके कारण त्वचा कांतियुक्त व स्वच्छ हो जाती है।
13. **रक्त संचरण तंत्र में योग का महत्व**– हृदय को रक्त संचार संस्थान का केंद्र कहा जाता है। तनाव में हृदय गति को नियंत्रित रखने, रक्त प्रवाह की गति को भी सामान्य एवं स्वाभाविक बनाये रखने में यौगिक क्रियाओं का महत्वपूर्ण स्थान है।
14. **स्नायु तंत्र में योग का महत्व**– संपूर्ण मेरुदंड एवं स्नायु केंद्रों में रक्त संचार की क्रिया को उत्तेजित करने में योगासनों का विशेष महत्व है। स्नायु संस्थान के दो भाग हैं– प्रथम ऐच्छिक एवं द्वितीय अनैच्छिक।

    ऐच्छिक नाड़ी प्रणाली शरीर के उन कार्यों पर नियंत्रण करती है जो चेतना के नियंत्रण के अंतर्गत आते हैं, जैसे– मांसपेशियों की तीव्र गति।

    अनैच्छिक नाड़ी संस्थान का अधिकार उन कार्यों पर रहता है जो चेतना के नियंत्रण से दूर होते हैं। हृदय का स्पंदन, श्वसन क्रिया, ग्रंथिस्राव तथा प्रायः सभी आंतरिक अंगों के कार्य। शारीरिक आवश्यकता एवं प्रयोजन के अनुकूल अनैच्छिक नाड़ी संस्थान के दो उपविभाग हैं जिन्हें अनुकंपी तथा परानुकंपी कहते हैं। शरीर के सभी कार्य इनके द्वारा ही संपन्न होते हैं। इन दोनों नाड़ियों में संतुलन रहता है तभी मन भी स्वस्थ रहता है। असंतुलन की स्थिति में चयापचय संबंधी रोग हो जाते हैं। ऐसे में नाड़ियों एवं तंतुओं को स्वस्थ बनाना आवश्यक है। आधुनिक युग में शारीरिक परिश्रम की कमी होने के कारण नाड़ी शैथिल्य तथा उसके फलस्वरूप उनके कार्यों में शिथिलता आ जाती है।

    अतः संपूर्ण नाड़ी संस्थान को सक्रिय एवं सजग तथा मस्तिष्क को अधिक क्रियाशील बनाये रखने के लिए रीढ़, रज्जू तथा पीठ संबंधित योगासनों का विशेष महत्व होता है।

टिप्पणी

15. **आध्यात्मिकता के लिए योग का महत्व**– योग के माध्यम से मन तथा चित्त की वृत्तियों को संयत करने तथा ध्यान एकाग्र करने की क्षमता का विकास होता है। व्यक्ति केवल भौतिक सुखों में ही जीवन की शांति या पूर्णता पाने में सर्वथा असफल रहा है। यदि उसने चिर शांति पाई है तो केवल शरीर व मन दोनों के द्वारा। यदि यह कहा जाए कि यह केवल योग द्वारा ही संभव है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। कहा गया है कि 'योगः चित्तवृत्तिः निरोधः'।
16. **वजन नियंत्रण**– विश्व में मोटापा आज एक भयंकर बीमारी हो गया है। यह समस्या आगे चलकर मधुमेह, हृदय रोग और उच्च रक्तचाप जैसी बीमारियों को जन्म देती है। कपालभाति प्राणायाम, पश्चिमोत्तानासन, सूर्यनमस्कार, त्रिकोणासन, सर्वांगासन जैसे व्यायाम करके मोटापा कम किया जा सकता है।
17. **गर्भावस्था में योग का महत्व**– गर्भावस्था में स्वस्थ रहने के लिए योग को अपनाना आवश्यक है। इसको नियमित करने से थकान कम होती है, तनाव दूर होता है तथा मांसपेशियों में खिंचाव के कारण लचीलापन आता है। रक्त संचार, पाचन एवं स्नायु तंत्र पर नियंत्रण रहता है। योग करने से पीठ में दर्द, नींद न आना, पैरों में दर्द तथा अपच में आराम मिलता है। गर्भवती महिलाओं को डॉक्टर की सलाह के अनुसार ही योग करना चाहिए।

जब भी कोई व्यक्ति योग करता है तो उसकी वह योग क्रिया इन्हीं चारों श्रेणियों में से किसी एक श्रेणी के अंतर्गत आती है। हर व्यक्ति इन चारों श्रेणियों का एक अद्भुत संगम माना जाता है। योग के लिए हमेशा यह निर्देश दिया जाता है कि यह किसी गुरु के मार्गदर्शन में ही किया जाना चाहिए। प्रारंभ से ही योग शिक्षा अनुभवी एवं बुद्धिमान व्यक्तियों द्वारा और फिर आश्रमों में ऋषियों, मुनियों एवं आचार्यों द्वारा दी जाती थी। एक स्वस्थ व्यक्ति, सच्ची राह को अपनाने वाला, अच्छे एवं उच्च विचारों वाला, केवल अपने परिवार के लिए ही नहीं अपितु समाज, राष्ट्र एवं पूरी मानवता के लिए एक वरदान होता है।

योग साधना स्वस्थ्य जीवन के लिए रामबाण का कार्य करती है। हर व्यक्ति, हर धर्म, हर जाति, हरेक देश सभी के लिए यह उपयोगी है। यह किसी एक की जागीर नहीं है और न ही यह किसी धर्म और जाति से जुड़ा हुआ है। बस इसका तो एक ही उद्देश्य है कि हर व्यक्ति निरोगी काया वाला बने अर्थात 'जो अपनाये योग वह रहे निरोग'।

कम्प्यूटर एवं योग

आधुनिक युग में कम्प्यूटर का चलन अत्यधिक हो गया है जिसके कारण व्यक्ति आठ से दस घंटे तक इसके सामने बैठे–बैठे काम करते रहते हैं तथा अनेक रोगों के शिकार हो जाते हैं या फिर तनाव और थकान महसूस करते हैं। लगातार कम्प्यूटर पर काम करने से आंखों को नुकसान होता है साथ ही अनेक छोटी–छोटी समस्याएं भी पैदा हो जाती हैं जिससे हम जाने–अनजाने लड़ते रहते हैं।

इससे स्मृति दोष, दूर दृष्टि कमजोर होना, चिड़चिड़ापन, पीठ दर्द, गर्दन दर्द, थकान आदि हानियां होती हैं। कम्प्यूटर पर लगातार काम करते रहने से हमारा मस्तिष्क एवं आंखें थक जाती हैं जिससे नींद पूरा करने के लिए पर्याप्त स्थिति प्राप्त नहीं

टिप्पणी

होती है। आठ–दस घंटे एक दिन में काम करने से दृष्टि–दोष हो जाता है और चश्मा पहनना पड़ता है। इसके कारण शारीरिक एवं मानसिक हानि भी होती है। कम्प्यूटर को ठीक आंखों के सामने रखना चाहिए। यह आंखों से कम से कम तीन फुट की दूरी पर होना चाहिए। एक दूसरी ध्यान देने योग्य बात है कि हर 5 से 10 मिनट बाद कम्प्यूटर से 20 फुट दूर देखना चाहिए। ऐसा करने से दूर–दृष्टि बनी रहती है। स्मृति–दोष से छुटकारा पाने के लिए अपने दिनभर के कार्यों को रात में उल्टे क्रम में याद करें। थकान दूर करने और ऊर्जा प्राप्त करने के लिए ध्यान एवं योग–निद्रा का प्रयोग करें।

अपनी प्रगति जांचिए

1. इनमें से किसका उल्लेख 'गीता' में नहीं हुआ है?
   (क) अर्थ योग (ख) संन्यास योग
   (ग) कर्म योग (घ) बुद्धि योग
2. नाक को दाएं–बाएं नथुने (छिद्र) को बाकरी बारी से बंद करके श्वास प्रश्वास की क्रिया किस प्राणायाम में की जाती है?
   (क) उज्जायी (ख) भस्त्रिका
   (ग) अनुलोम–विलोम (घ) भ्रामरी

3.3 शारीरिक शिक्षा का अभ्यास

इस विषय का विस्तारपूर्वक अध्ययन निम्नानुसार किया जा सकता है।

3.3.1 लचीलापन, सहनशक्ति और गति में वृद्धि हेतु व्यायाम

योग आपके शरीर को पूरी तरह से लचीला और आरामदायक बनाने में मदद करता है। तनाव, थकान और आलस्य को भी दूर करता है। लचीलापन आपके शरीर में उठ रहे हर तरह के दर्द को खत्म कर देता है। योग से आप अपने शरीर को ही नहीं मन और मस्तिष्क को भी संतुलित बना सकते हैं।

टिप्पणी

लचीलेपन से शारीरिक ऊर्जा बनी रहती है। श्वास–प्रश्वास में किसी भी प्रकार की रुकावट नहीं आती। व्यक्ति अधिक फुर्तीला, शांत, लेकिन जोश में रहता है। शरीर में जो भी अवरुद्ध और अव्यवस्थित ऊर्जा है, वह मुक्त होकर संतुलन में आ जाती है और आप हमेशा ताजगी महसूस करते हैं।

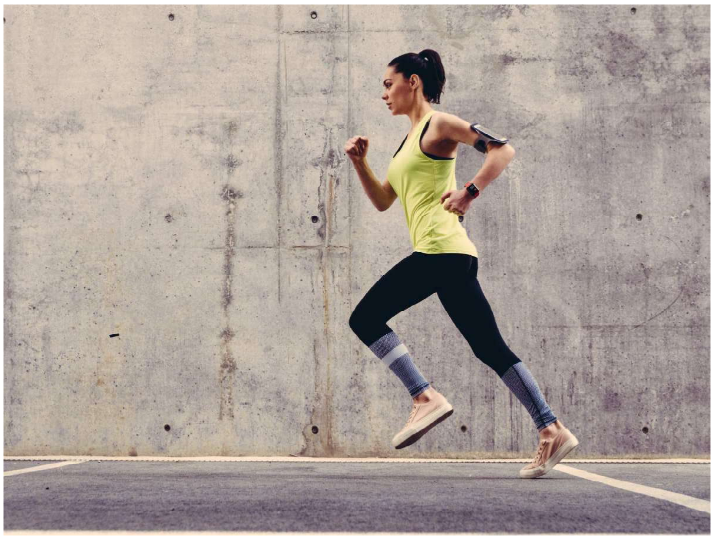

लचीलेपन के लिए उपक्रम

आहार संयम : सर्वप्रथम तो अपना आहार बदलें। भूख से थोड़ा कम खाएं। पानी का अधिकाधिक सेवन करें, ताजा फलों का रस, छाछ, आम का पना, जलजीरा, बेल का शर्बत आदि तरल पदार्थों को अपने भोजन में शामिल करें।

ककड़ी, तरबूज, खरबूजा, खीरा, संतरा तथा पुदीने का भरपूर सेवन करें तथा मसालेदार या तैलीय भोज्य पदार्थ से बचें। हो सके तो दो बार भोजन कम ही करें।

योगासन–प्राणायाम : प्रतिदिन सवेरे सूर्य नमस्कार का अभ्यास करें। कपालभाति और भस्त्रिका के साथ ही अनुलोम–विलोम करें। खड़े होकर किए जाने वाले योगासनों में त्रिकोणासन, कटिचक्रासन, ताड़ासन, अर्धचंद्रासन और पादपश्चिमोत्तानासन करें।

बैठकर किए जाने वाले आसनों में उष्ट्रासन, अर्धमत्स्येंद्रासन, सिंहासन, समकोणासन, ब्रह्म मुद्रा और भारद्वाजासन करें। लेटकर किए जाने वाले आसनों में नौकासन, विपरीत नौकासन, भुजंगासन, धनुरासन और हलासन करें। बंधों में जालंधर और उड्डियान बंध का अभ्यास करें।

आप शुरुआत कहीं से भी कर सकते हैं, यह धारणा सही नहीं है। ज्यादा अच्छा होगा कि आप शुरुआत में सिर्फ सूर्य नमस्कार और प्राणायाम का ही अभ्यास करें। फिर उपरोक्त में से कम से कम तीन आसनों का चयन कर उनका नियमित अभ्यास करें। सिर्फ दो माह में परिणाम आपके सामने होगा।

वॉर्मअप : लचीले शरीर के लाभ यह हैं कि आप सदा स्वस्थ तथा ऊर्जावान बने रहेंगे। बुढ़ापा आपसे कोसों दूर रहेगा। इन्हें करने से मोटापा दूर होगा। पाचन तंत्र संबंधी रोग दूर होंगे। हाथों और पैरों का दर्द दूर होकर उनमें सबलता आएगी। गर्दन, फेफड़े तथा पसलियों की माँसपेशियाँ सशक्त होंगी। शरीर की फालतू चर्बी कम होकर शरीर हलका–फुलका हो जाएगा।

टिप्पणी

जैसे–जैसे हम औद्योगीकरण की तरफ बढ़ रहें हैं वैसे ही हम ज्यादातर मशीनों के ऊपर निर्भर होते जा रहे हैं। घंटों एक जगह बैठ कर काम करना, कुछ भी खा लेना और इतना व्यस्त हो जाना कि अपने लिए भी समय ना निकाल पाना। और इसका परिणाम ढेर सारी बीमारियों को न्योता देना, जिससे आगे चल कर शरीर में दर्द होगा। फिर इस दर्द से बचने के लिये दवाइयों का सहारा लेना होगा।

सुबह उठ कर सबसे पहले थोड़ा वार्मअप कर लें जिससे मासपेशियां रिलैक्स हो जाएं। और आपका ब्लड सर्कुलेशन भी अच्छा होता है। जोड़ों का व्यायाम करें आप हमेशा अपने पैरों पर चलते रहें, और आपके पैर मजबूत बने रहें इसके लिए आपको अपने पैरों से व्यायाम जरूर करना चाहिए।

इसके लिए आपने पैरों को गोल गोल घुमाएं इससे आपके घुटने मजबूत होंगे।

स्ट्रेचिंग : आप शरीर को अच्छे से स्ट्रेच करें। इससे शरीर में लचीलापन बना रहता है, और मांसपेशियों को भी आराम मिलता है। लंबे समय तक स्ट्रेचिंग करें लंबे समय तक खिंचाव मांसपेशियों में लचीलापन और आपके शरीर को लम्बे व्यायाम के बाद आराम मिलता है।

सुबह उठ कर स्ट्रेचिंग करें। सुबह स्ट्रेचिंग करने से शरीर में लचीलापन बढ़ता है। साथ ही जो मांसपेशियाँ ज्यादा सख्त हो गयी हैं उनमें लचीलापन बढ़ता है।

खूब पानी पियें हम सब जानते हैं, कि पानी हमारे लिए कितना जरुरी है। पानी हमारे शरीर को लचीला बनाने में बहुत मदद करता है। इससे हमारा ब्लड सर्कुलेशन अच्छा होता है। सोने से पहले अपने शरीर को स्ट्रेच करें सोने से पहले 5 से 8 मिनट तक शरीर को स्ट्रेच करने से शरीर लचीला होता है।

किसी–किसी का शरीर इतना लचीला नहीं होता कि वह खुद अपने शरीर को स्ट्रेच कर सके। इसके लिए आप किसी और की मदद भी ले सकते हैं। योग और एरोबिक्स योग सालों से हमें कई बीमारियों से बचाता आ रहा है। योग से हमारा शरीर इतना मजबूत और लचीला हो जाता है जिसकी आप कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। एरोबिक्स करने से आपका ब्लड सर्कुलेशन भी अच्छा होता है।

टिप्पणी

सहनशक्ति हेतु व्यायाम

खिलाड़ियों और धावकों के लिए उच्च स्तर की शारीरिक सहन शक्ति (Endurance Stamina) अत्यंत महत्वपूर्ण है जो कि उन्हें खेल के पूरे समय के दौरान लंबी दूरी की दौड़ या मैराथन में उच्च स्तरीय शक्ति और गतिपूर्ण प्रदर्शन में सहायता करती है। आम व्यक्ति एक किलोमीटर भी नहीं दौड़ पाते हैं। सांसे फूल जाती हैं। पैर उठना बंद हो जाते हैं और पेट में दर्द होने लगता है। ये सभी लक्षण स्टैमिना की कमी के हैं। स्टैमिना बनाने और बढ़ाने से संबंधित बहुत सारे कारक हैं जिनका खिलाड़ियों को ध्यान रखना चाहिए। अगर इन बातों को सुधार लिया तो निश्चित ही स्टैमिना में बढ़ोत्तरी होगी।

किसी काम को बिना थके और बिन रुके लंबे समय तक जारी रखने को स्टैमिना कहते हैं। जैसे कि एक मजदूर सुबह से काम शुरू करता है और शाम तक बिना थके करता रहता है। इसे स्टैमिना कहते हैं। ठीक वैसे ही एक धावक जो कि बिना थके लंबे समय तक दौड़ता रहता है तो उसे Running stamina कहते हैं। और ऐसा तब होता है जब शरीर और दिमाग उस काम में निपुण हो जाता है। किसी काम को बार–बार दोहराते रहने से वह काम जीवन की सामान्य क्रिया हो जाती है जिसको करने में कोई कठिनाई नहीं होती। फिर चाहे जितनी भी देर उस काम को क्यों न करते रहें। ठीक उसी तरह दौड़ना भी है। यदि लगातार इस दौड़ने की क्रिया को दोहराते रहेंगे तो एक समय ऐसा आएगा कि दौड़ने में कोई भी कठिनाई महसूस नहीं होगी और दौड़ का स्टैमिना काफी बढ़ जाएगा।

निरंतर अभ्यास से शरीर में इतनी सहनशक्ति आ जाती है कि मैराथन दौड़ भी पूरा कर पाएंगे।

मांसपेशियों की ताकत बढ़ाना

खिलाड़ी तथा धावकों का शरीर मजबूत और लचीला होना चाहिए। यदि शरीर की मांसपेशियां मजबूत नहीं होंगी तो दौड़ने के दौरान तथा बाद में मांसपेशियों में दर्द होगा। फिर चाहे धावक कितनी ही अच्छी स्थिति में क्यों न दौड़े। स्ट्रेंथ ट्रेनिंग से शरीर का आकार तो अच्छा होता ही है और साथ में मांसपेशियों की सहनशक्ति और हड्डियों की मजबूती बढ़ती है। जिससे दौड़ने से पड़ने वाला नकारात्मक प्रभाव कम हो जाता है और यह प्रभाव जब कम हो जाता है तो दौड़ने की स्पीड भी बढ़ जाती है। धावकों को दौड़ने में पूरे शरीर की मसल्स सहायता करते हैं। तब शरीर आगे की तरफ तेजी से बढ़ पाता है। दौड़ में जब पैर थक जाते हैं तो हाथों की सहायता से शरीर को आगे की तरफ ढकेलते हैं।

टिप्पणी

दौड़ने में हर एक अंग का अपना एक काम है। कंधे, पेट, सर सभी दौड़ में मदद करते हैं। प्रतिदिन किसी एक अंग के लिए स्ट्रेंथ ट्रेनिंग करनी चाहिए। और शुरुआत अपने पैरों से करें। पंजों को और पिंडलियों को खूब मजबूत करें ताकि shine splint जैसी दिक्कत न हो। फिर जांघों और कूल्हों को मजबूत करें क्योंकि ऊपर की बॉडी का वजन यहीं पड़ता है। फिर पेट को पत्थर की तरह मजबूत करना होता है जिससे कि दौड़ के समय पेट दर्द न हो। फिर कंधों को मजबूत करना है जिससे कि दौड़ में संवेग (momentum) प्राप्त कर सकें। तो अच्छा धावक बनना है तो कम से कम 30 मिनट बॉडी स्ट्रेंथ जरूर करें।

मजबूत फेफड़े

दूसरा सबसे महत्वपूर्ण कारक है हृदय की मजबूती क्योंकि दौड़ के दौरान यह पूरे शरीर को ऑक्सीजन की पूर्ति करता है और ऑक्सीजन की मदद से ही ऊर्जा पैदा होती है। लेकिन अगर फेफड़े मजबूत नहीं हैं तो वह कुछ ही देर में थक जाएंगे। जिसका परिणाम यह होगा कि थक के रुक जाएंगे या फिर ऑक्सीजन की कमी के कारण उल्टियां होने लगेंगी। इसके अलावा अगर ऑक्सीजन की कमी होती है तो बॉडी में लैक्टिक अम्ल बनने लगता है जो कार्य क्षमता को कम करता है। अतः खेलों में उच्च क्षमता प्राप्ति हेतु फेफड़ों की कार्य क्षमता बढ़ानी होगी जिससे हृदय की मांसपेशियां जल्दी न थकें।

शरीर में उपयुक्त ऊर्जा उत्पादन

स्टैमिना बिना ऊर्जा के संभव नहीं है। फिर चाहे कोई भी खेल हो, स्प्रिंट दौड़ हो या फिर लंबी दूरी की दौड़। ऊर्जा के लिए जटिल कार्बोहाइड्रेट और वसा की जरूरत होती है। अतः भोजन में इनका उचित समावेश शरीर में उपर्युक्त ऊर्जा उत्पादन में सहायक होता है।

आराम

दौड़ने के बाद शक्ति की पुनः प्राप्ति पर ध्यान देना बेहत जरूरी है। अगर ऐसा नहीं करते तो अगले दिन मांसपेशियों में दर्द होने लगता है। रनिंग स्टैमिना को बढ़ाने हेतु पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन और एंटी–ऑक्सीडेंट का भोजन में प्रयोग करें जिससे खेल और दौड़ के दौरान नष्ट हुई कोशिकाओं की जगह नई कोशिकाएं बन सकें। प्रतिदिन कम से कम आठ घंटे की नींद लें तो शक्ति की पुनः प्राप्ति जल्दी ही होगी तथा दूसरे दिन बिना दर्द के अपनी प्रेक्टिस को दोहरा कर स्टैमिना को बढ़ा पाएंगे।

टिप्पणी

पर्याप्त जल का सेवन

शरीर में सबसे ज्यादा जरूरत पानी की होती है। जैसे कि शरीर में 70 प्रतिशत सिर्फ पानी होता है। शरीर की लगभग सभी प्रक्रियाओं में पानी की जरूरत होती है। रक्त में भी पानी होता है और यह रक्त दौड़ के दौरान ऑक्सीजन और एनर्जी को शरीर के सभी अंगों तक लेकर जाता है। ऐसी स्थिति में यदि पानी की कमी होती है तो रक्त गाढ़ा हो जाता है, ऑक्सीजन और ऊर्जा कम मात्रा में शरीर के अंगों तक पहुंचता है। अतः थकान हो जाती है और स्टैमिना में कमी आ जाती है। यदि पेशाब पीली आती है तो यह पानी की कमी का संकेत है, यदि यूरिन सफेद आता है तो पानी की कमी नहीं है। अतः समय–समय पर उचित मात्रा में पानी पी कर शरीर में जल का संतुलन बनाए रखना चाहिए।

उपर्युक्त बातों के अलावा साइक्लिंग, अलग–अलग जगहों पर अभ्यास तथा दौड़, कार्डियो, रस्सी कूट, नियंत्रित श्वसन क्रिया दिमाग को धोखा देने वाली क्रियाएं, तैराकी प्रतिदिन अभ्यास, अन्य खेल जैसे– फुटबाल आदि का समावेशन, पिरामिड इंटरवल ट्रेनिंग तथा संतुलित भोजन (60 प्रतिशत कार्बोहाइड्रेट, 20 प्रतिशत वसा, 20 प्रतिशत प्रोटीन) के उपयोग से खिलाड़ियों को अपनी क्षमता, सहनशक्ति को बढ़ाने में बहुत सहायता मिलती है और उनके प्रदर्शन में उत्तरोत्तर सुधार होता जाता है।

गति बढ़ाने हेतु व्यायाम

यदि आप एक खिलाड़ी हैं तो मांसपेशियों की मजबूती व गति (स्पीड) आपके लिए बहुत महत्व रखती है। गति में सैकेंड के सौवें भाग की कमी होने पर भी पदक का रंग बदल जाता है या पदक हाथों से ही फिसल जाता है। अतः खेलों में गति अति महत्वपूर्ण है।

गति को बढ़ाने हेतु निम्न अभ्यास महत्वपूर्ण हैं–

(क) **एक पैर से स्क्वैट** (Oscillation Squat): एक पैर से प्रतिदिन स्क्वैट करना भी आपकी गति को बढ़ाने में बहुत उपयोगी सिद्ध हो सकता है। किसी बैंच या कुर्सी का सहारा ले कर अपने एक पैर को ऊपर उठाने के साथ–साथ दूसरे पैर से स्क्वैट करने की कोशिश करें। तीन से पांच का एक सैट बनाएं व रोजाना तीन सैट करने का प्रयास करें।

(ख) **डाउन अप हिंज** (Down-up hings): इस व्यायाम में तीन गतिविधियां सम्मिलित हैं। पहले अपने पैर को पीछे की तरफ करते हुए यह मूवमेंट करें। अपने घुटने

टिप्पणी

को आगे बढ़ाएं ओर फिर उस पैर को किसी टेबल पर रखें। बैलेंस बनाने के लिए हाथों का प्रयोग करें, इसलिए अपने हाथों का ध्यान रखें।

(ग) **लंज स्विच** (Lunge Switches): इस व्यायाम का प्रभाव बहुत अच्छा होता है। इसको किसी नरम सतह पर करें। इसके द्वारा आप एक ही समय पर संतुलन व स्पीड बनाए रखना सीख जाएंगे। यह एक मेहनत भरा व्यायाम है। पर संतुलन और गति के लिए बहुत ही अच्छा है। प्रत्येक छह स्विच का एक सैट बनाएं व रोजाना तीन से पांच सैट करें। यदि आपके पास मैट न हो तो घास पर भी कर सकते हैं।

(घ) **हैमस्ट्रिंग टैंट्रम** (Hamstring Tantrum): एक्सरसाइज के दौरान आप एक जिद्दी बच्चे जैसे दिखाई देंगे। इस व्यायाम से घुटने और हिप की मसल्स लचीली होती हैं। इस व्यायाम के 10 सेकेंड दोहराव के तीन सैट नियमित रूप से करें। अपने ग्लूट्स व हैमस्ट्रिंग पर ध्यान देना बिल्कुल भी न भूलें। इस व्यायाम को करते समय अपने घुटनों से 90 डिग्री का कोण बनाएं।

(ङ) **स्टिफ लैग जम्प्स** (Stiff Leg Jumps): पैर के टखनों की ताकत व स्पीड बढ़ाने के लिए यह एक अच्छा व्याम है। इसको करने के लिए अपने पंजे को ऊपर की ओर मोड़ के रखें और पैर को सीधा रखें। अपने घुटनों को न मोड़ें। 10 सेककेंड के तीन से पांच सैट नियमित रूप से करें।

(च) **कार्डियो एक्सरसाइज** (Cardio Workouts): शरीर की गति बढ़ाने के लिए कार्डियो एक्सरसाइज एक आसान तरीका है। कार्डियो एक्सरसाइज से कैलोरी अधिक बर्न होती है और रक्त संचरण बढ़ता है। जॉगिंग, जंपिंग जैक या बपीफ आदि कुछ कार्डियो एक्सरसाइज हैं। यही नहीं दौड़ने, जंपिंग व स्वीमिंग से भी लाभ होता है।

(छ) **तेजी से दौड़ने वाले खेल** (Running Exercises): आपको जो भी आउटडोर खेल जैसे गेम फुटबॉल बास्केटबॉल या बॉलीबॉल जो भी पसंद है, वह जरूर खेलें। इन खेलों को खेलने से भी स्पीड में बहुत तेजी से सुधार होता है क्योंकि यह एक प्रकार की एरोबिक एक्सरसाइज भी है। इन खेलों को खेलने से बॉडी में रक्त संचरण बढ़ता है। जिससे सभी अंगों की अच्छी प्रकार से ऑक्सीन मिलती है।

सीमा में रह कर व्यायाम

स्पीड बढ़ाने के लिए इन सभी व्यायामों को करना लाभदायक है। लेकिन इन्हें एक निश्चित सीमा में ही किया जाना चाहिए। जरूरत से ज्यादा व्यायाम करने से लाभ की जगह हानि हो सकती है। इसलिए जरूरत से ज्यादा एक्सरसाइज मांसपेशियों के लिए हानिकारक है।

3.3.2 ट्रैक और फील्ड की मूलभूत बातें : 100 मीटर, 200 मीटर, लांग जंप, ब्रॉड जंप

ट्रैक एंड फील्ड एक ऐसा खेल है जिसमें दौड़, कूद और फेंकने के कौशल पर स्थापित एथलेटिक प्रतियोगिताएं शामिल हैं।

यह नाम उस जगह से संबंधित है जहां खेल होता है. एक रनिंग ट्रैक और फेंकने के लिए एक घास का मैदान और कूदने आदि से संदर्भित स्थल को ट्रैक एंड फिल्ड कहा जाता है। यह विविध खेलों के अनुरूप संरचित किया जाता है.

टिप्पणी

ट्रैक एंड फिल्ड एथलेटिक्स खेल आयोजनों का एक संग्रह है जिसमें प्रतिस्पर्धी दौड़, कूदना, फेंकना और चलना जैसे खेल आते हैं। एथलेटिक्स प्रतियोगिताओं के सबसे आम प्रकार का ट्रैक और फ़ील्ड साइकल चलाना, क्रॉस कंट्री रनिंग और दौड़ है।

रेसिंग घटनाओं के नतीजों को परिष्कृत स्थिति (या समय, जहां मापा जाता है) द्वारा तय किया जाता हैस कूद और फेंक एथलीट द्वारा जीते जाते हैं जो प्रयासों की एक श्रृंखला से उच्चतम या सबसे दूर माप प्राप्त करता है।

प्रतियोगिताओं की सादगी, और महंगे उपकरण की आवश्यकता की कमी, एथलेटिक्स को दुनिया में सबसे अधिक प्रतिस्पर्धी खेलों में से एक बनाता है। एथलेटिक्स ज्यादातर एक व्यक्तिगत खेल है, रिले रेस और प्रतियोगिताओं के अपवाद के साथ जो क्रॉस कंट्री जैसे टीम स्कोर के लिए एथलीटों के प्रदर्शन को जोड़ती है।

संगठित एथलेटिक्स 776 ईसा पूर्व से प्राचीन ओलंपिक खेलों में आए हैं। एथलेटिक्स में आधुनिक घटनाओं के नियमों और प्रारूप को 19वीं और 20 वीं शताब्दी की शुरुआत में पश्चिमी यूरोप और उत्तरी अमेरिका में परिभाषित किया गया था, और फिर ये दुनिया के अन्य हिस्सों में फैल गए।

अधिकांश आधुनिक शीर्ष स्तरीय मीटिंग इंटरनेशनल एसोसिएशन ऑफ एथलेटिक्स फेडरेशन और इसके सदस्य संघों द्वारा आयोजित की जाती हैं। एथलेटिक्स मीटिंग ग्रीष्मकालीन ओलंपिक की रीढ़ की हड्डी निर्मित क्रती है। सबसे प्रमुख अंतरराष्ट्रीय एथलेटिक्स मीटिंग एथलेटिक्स में आईएएएफ विश्व चैम्पियनशिप है, जिसमें ट्रैक और फील्ड, मैराथन दौड़ और दौड़चलन शामिल है।

एथलेटिक्स में अन्य शीर्ष स्तर की प्रतियोगिताओं में आईएएएफ वर्ल्ड क्रॉस कंट्री चैम्पियनशिप और आईएएएफ वर्ल्ड हाफ मैराथन चैम्पियनशिप शामिल हैं। शारीरिक विकलांगता वाले एथलीट समर पैरालीम्पिक्स और विश्व पैरा एथलेटिक्स चैंपियनशिप में प्रतिस्पर्धा करते हैं। आरंभ में एथलेटिक्स शब्द का प्रयोग मुख्य रूप से मानव शारीरिक मिंजे पर आधारित खेल प्रतियोगिताओं के लिए किया जाता थास

19वीं शताब्दी में एथलेटिक्स शब्द ने यूरोप में एक और परिभाषा हासिल की और प्रतिस्पर्धी दौड़, चलने, कूदने और फेंकने वाले खेलों का वर्णन करने में प्रयुक्त हुआ। यह परिभाषा यूनाइटेड किंगडम और पूर्व ब्रिटिश साम्राज्य के अधिकांश क्षेत्रों में सबसे प्रमुख है।

ट्रैक एंड फिल्ड व्यापक रूप से भूमि पर होने वाली एथलेटिक प्रतियोगिताओं के लिए एक सामूहिक शब्द है। आम तौर पर, यह ट्रैक और फ़ील्ड को संदर्भित करता है जो मनुष्यों की मूल गतिविधि है, जो समय, दूरी और ऊंचाई को मापकर श्रेष्ठता के लिए प्रतिस्पर्धा करने, दौड़ने, कूदने और अभ्यास करने से संबंधित है।

100 मीटर दौड़

100 मीटर दौड़ को कम समय में पूरा करने के लिए बहुत–सी बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता है जिन्हें मुख्यतः निम्नांकित तीन वर्गों में रखा जा सकता है– (क) दौड़ने

का तरीका (Running Technique), (ख) खान–पान (Diet Plan), (ग) 100 मीटर दौड़ का अभ्यास कार्यक्रम।

टिप्पणी

दौड़ने की गति को बढ़ाने के लिए ट्रेनिंग, फोकस, नियमितता और दृढ़ता की जरूरत होगी। पहले अपनी शुरुआती गति को जानें, उसके बाद एक लक्ष्य निर्धारित करें और फिर अपनी ओर से उस लक्ष्य को पाने की पूरी कोशिश करें।

विधि 1 : शुरुआत करना

(क) आपकी मौजूदा स्पीड का पता लगाएं (दौड़ना शुरू करने से पहले स्ट्रेच करना न भूलें): अपनी स्पीड बढ़ाने की शुरुआत करने से पहले यह जरूरी है कि आप जान लें कि आपकी मौजूदा स्पीड कितनी है, आप अभी कितनी तेजी से दौड़ सकते हैं, ताकि आप स्वयं में होने वाले सुधारों पर सही ढंग से गौर कर सकें। एक स्टॉपवॉच लें ओर देखें कि आपको 100 मीटर दौड़ने में कितना समय लगता है। उसे सुधारने की दशा में काम करर सकते हैं।

एक सैकेंड में कितने लंबे कदम ले सकते हैं, यह भी जान लें। दौड़ने की गति को बढ़ाकर कदमों की संख्या को बढ़ाने की कोशिश करनी चाहिए।

(ख) एक अच्छी लोकेशन की तलाश करें : धावक जो अपनी गति बढ़ाना चाहते हैं, उनके लिए ट्रैक एक सबसे आदर्श जगह है क्योंकि सभी ट्रैक की एक स्टेंडर्ड लंबाई होती है– 100 मीटर, जिससे आसानी से स्पीड में आए सुधार को माप सकते हैं। ट्रैक ट्रैफिक से फ्री और सपाट होते हैं।

(ग) एक समय निर्धारित करें : अपनी स्पीड को बढ़ाने के लिए बहुत अधिक अनुशासन और समर्पण की जरूरत होगी इसलिए यह जरूरी है कि एक चुनौतपूर्ण लेकिन पूरे किए जा सकने योग्य एक शेड्यूल निर्धारित करें।

ट्रेनिंग का नियम तैयार करना : हफ्ते में 5–6 बार दौड़ें और तेज दौड़ने के लिए आपको हर सप्ताह कुछ अधिक अभ्यास कर स्टैमिना और सहनशीलता को बढ़ाना होगा।

अलग–अलग दूरी को मिलाएं : एक दिन लंबा दौड़ें और अगले दिन कुछ कम, और हफ्ते में कम से कम एक दिन जरा कम स्पीड से दौड़ें। तेज स्पीड से दौड़ने की तैयारी करने के साि ही इस तरह से स्पीड और दूरी में बदलाव करने से आपकी बॉडी को स्वस्थ बनाए रखने में मदद मिलेगी।

हर एक दौड़ से कुछ सीखने का लक्ष्य रखें : दौड़ को मापने के लिए एक रेगुलर टाइमर जरूर रखें जिससे आप हर सप्ताह यह देख सकते हैं कि आपकी स्पीड बढ़ रही है या नहीं।

आपकी बॉडी के लिए क्या सही है, यह जानें : शरीर को फिटनेस के अनुसार अभ्यास कम–अधिक किया जा सकता है। किसी अंग के दर्द होने पर सावधानी बरतनी चाहिए और आवश्यकतानुसार डॉक्टर को दिखा देना चाहिए। इस प्रकार लक्ष्य प्राप्ति में तेजी आ जाएगी।

(घ) अपने लिए एक लक्ष्य निर्धारित करें : आपकी दौड़ने की स्पीड बढ़ाने के लिए एक लक्ष्य बनाकर आगे बढ़ें। यदि आपका एक लक्ष्य होगा, तो यह हमेशा प्रेरित करेगा और साि ही इसे पाने के लिए वह आपको और मेहनत करने के लिए मजबूर करेगा। जो भी लक्ष्य चुनें, उसका बेहद चुनौतीपूर्ण लेकिन यथार्थवादी होना जरूरी है।

टिप्पणी

(ङ) अपने साथ सही सामान रखें : जैसे– जूते, कपड़े आदि। इससे आप कंफर्टेबल महसूस करेंगे साथ ही अपने पैरों पर हल्का महसूस करेंगे।

हल्के और आरामदायक कपड़े भी शारीरिक और मानसिक रूप से, दौड़ते वक्त आपको शीतलता और कम बोझ का एहसास दे सकते हैं।

आप एक हाई–टेक वाच (घड़) भी खरीद सकते हैं, जिसका इस्तेमाल करके आप एकदम सटीक ढंग से अपनी दौड़ने के समय को माप सकते हैं, और साथ ही आप इससे अपनी दूरी, स्पीड, बर्न हुई कैलोरी और हार्ट रेट (ह्रदय गति) को भी माप सकते हैं।

(च) अपने किसी मित्र को भी शामिल करें : अपने इस नए फिटनेस प्लान में अपने किसी मित्र को शामिल करके, अपने प्रेरणा स्तर में बढ़ोत्तरी कर सकते हैं। आपका मित्र आपके साथ दौड़े, या फिर आपके पर्सनल ट्रेनर की भूमिका अदा करे, अपने साथ किसी और के होने से यह सुनिश्चित हो जाएगा कि आप हार नहीं मानेंगे और शायद आपको एक अच्छा प्रतिद्वंद्वी भी मिल जाए।

(छ) एक मंत्र तैयार करें : अगर आप खुद को मेहनत करने के लिए प्रेरित नहीं कर पा रहे हैं, या आप दौड़ने की तेज स्पीड प्राप्त करने के लिए संघर्ष कर रहे हैं, तो ऐसे में आपके लिए एक ऐसा प्रेरणादायक मंत्र बनाना मददगार साबित हो सकता है, आप जिसे दौड़ते वक्त दोहरा सकें। यह कुछ भी हो सकता है, जो आपको और अच्छा करने के लिए प्रेरित करे।

विधि 2 : गति को बढ़ाना

(क) अपने पुराने तरीके को खत्म करें : अपनी गति और सहनशक्ति दोनों को बढ़ाने के लिए, आपको अपने दायरे को और भी ज्यादा बढ़ाने की और अपने कसरत के रूटीन में कुछ बदलाव करने की जरूरत होगी। आप अगर कुछ महीनों से एक ही तरह की एक्सरसाइज कर रहे हैं, तो आपका शरीर अब तक उस रूटीन में ढल चुका होगा और संभव है कि आप एक पड़ाव पर पहुंच जाएंगे। तो यह सही समय होगा कि आप परिवर्तन करें और कुछ नई चीजों को करने की कोशिश करें।

कुछ क्रॉस ट्रेनिंग शामिल करना

- **स्टेशनरी बाइक (ट्रेडमिल) पर दौड़ें** : स्पिन क्लासेस करें या फिर कुछ मिनट के लिए स्टेशनरी बाइक पर रहकर भी आप अपनी सहनशीलता में वृद्धि कर सकते हैं। इस तरह से आपकी ह्रदय संबंधी फिटनेस में भी वृद्धि होगी, जो कि आपको दौड़ते मय आपकी स्पीड को बढ़ाने में सहायक साबित होंगी।
- **रस्सी कूदें** : फिटनेस रूटीन में 30 मिनट रस्सी कूदना भी आपके पैरों के बीच में सामंजस्य ओर पैरों की गति को बढ़ाने में सहायता करेगा। कूदना आपके बॉडी को झटकों को सहने योग्य बनाता है, जो आपको चोट लगने की संभावना को कम करेगा।
- **योग करें** : योग आसन आपके अंदर लचीलेपन को बढ़ाते हैं, जिससे आपकी मांसपेशियों की पुनः प्राप्ति (मसल रिकवरी) के समय में कमी आती है और यह स्पीड बढ़ाने में भी सहायक होगा।
- **ट्रेडमिल का प्रयोग करें** : ट्रेडमिल से स्पीड को बढ़ाया जा सकता है, साथ ही यह लंबे–लंबे कदम लेने में भी सहायता करता है।

टिप्पणी

(ख) अपनी मुद्राओं में सुधार करें : दौड़ते वक्त सही मुद्रा के प्रयोग से आपके शरीर को सही ढंग से काम करने की पुष्टि होगी और यह आपके दौड़ने की स्पीड को बढ़ाने में मदद करेगा, और इसके साथ–साथ ही चोटों को रोकने में मदद करते हुए, यह सुनिश्चित करेगा कि आपका शरीर जितना हो सके उतनी कुशलता से काम कर सके। दौड़ते वक्त आपको नॉर्मल ओर ढीलापन महसूस होना चाहिए, आपको तनाव या जकड़न महसूस नहीं होना चाहिए।

सही मुद्रा पाना : अपना सिर ऊपर रखें और सीधे सामने देखें। अपनी दृष्टि को एकदम सामने रखने से, आपको आपकी गर्दन और कमर को एक सीध में रखने में सहायता मिलेगी। साथ ही दौड़ते समय जूतों की बजाए सामने देखेंगे, तो आप काफी तेजी से दौड़ सकेंगे।

अपनी बांहों को 90 डिग्री के एंगल में घुमाएं। मुट्ठी को ना बांधे और कंधों को न उठाएं, बांहों को एकदम शांत रखें। ऊपरी शरीर में कुछ तनाव महसूस होने पर बांहों को झटका दें।

घुटनों को धीरे–धीरे हिलाएं। पैरों के जमीन पर पड़ते समय घुटनों को हल्का सा मोड़ें ताकि वे खुद ही थोड़ा झुक जाएं। स्पीड को बढ़ाने के लिए घुटनों को ज्यादा टाइट करके नहीं उठाना चाहिए। घुटनों को आराम से उठाएंगे, तो ज्यादा छोटे–छोटे कदम ले पाएंगे।

(ग) फोर्टलेक्स प्रयोग करने की कोशिश करें : 'फोर्टलेक' एक स्वीडिश शब्द है जिसका अर्थ 'तेज गति का खेल' होता है और यह रनर्स के बीच में, ट्रेनिंग का सबसे ज्यादा लोकप्रिय तरीका बनता जा रहा है जो अपनी गति बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। फोर्टलेक प्रशिक्षण में अपनी दौड़ने की रफ्तार को थोड़े–थोड़े अंतरालों में बदलते रहना होता है।

(घ) पहाड़ों पर दौड़ें : यह प्रभाषित हो चुका है कि पहाड़ी इलाके में दौड़ने पर धीरे–धीरे समय के साथ स्पीड बढ़ती जाती है। अतः वर्कआउट शेड्यूल में थोड़ा पहाड़ी ट्रेनिंग को भी शामिल करना चाहिए। ऊपर की ओर दौड़ना पहली बार में कठिन हो सकता है, लेकिन कुछ समय बाद जब आपको ऐसा करने की आदत हो जाएगी, फिर आपको एक समतल जगह पर दौड़ना बहुत आसान लगेगा, और फिर आप तेज स्पीड से भी दौड़ पाएंगे।

(ङ) प्रभावी ढंग से सांस लेने का अभ्यास : सांस लेने की क्षमता का अच्छे ढंग से प्रयोग करने से स्पीड तो बढ़ती ही है, साथ ही इससे स्टैमिना को बढत्राने में भी मदद मिल सकती है। यह इसलिए है क्योंकि गहरी सांस लेने से आपके खून में अधिक ऑक्सीजन पहुंचती है, जो मांसपेशियों का चलना जारी रखने के लिए अधिक ऊर्जा देता है।

मुंह और नाक दोनों से सांस लेने और छोड़ने का अभ्यास करना चाहिए, और अपनी छाती के बजाये अपने पेट में सांस लेने का उद्देश्य रखना चाहिए।

(च) सीधे आगे देखें : दौड़ते वक्त सीधे आगे देखने जैसी एक आसान आदत से भी आपकी दौड़ने की स्पीड बढ़ सकती है। कुछ धावकों की आदत होती है, कि वो दौड़ते समय नीचे अपने पैरों की ओर देखते हैं या उसके आस–पास देखते हैं। दौड़ते

समय नजर आगे, कम से कम से कम 20 से 30 मीटर की दूरी पर केंद्रित करने का लक्ष्य रखना चाहिए।

(छ) वजन कम करें : जितना ज्यादा अतिरिक्त वजन रखेंगे, दौड़ पूरी करने में उतनी ही अधिक मेहनत करनी पड़ेगी। अतिरिक्त वजन कम करके आपको लंबे समय तक तेजी से दौड़ने में मदद मिल सकती है।

(ज) रनिंग लॉग रखें : वर्कआउट का लॉग (ब्यौरा–आंकड़े) रखना अपनी प्रगति का पता लगाने का और हर एक दौड़ से कुछ सीखने का एक शानदार तरीका है, इसे देखकर आप ये समझ पाएंगे कि कौन–सी परिस्थिति आपकी दौड़ने की स्पीड को किस तरह से प्रभावित करती है। इस तरह से जब आप बाद में इस लॉग को देखेंगे, तब आपको इससे कुछ अतिरिक्त प्रेरणा मिलेगी।

आपके द्वारा तय किए हुए मीलों को लॉग रखने के लिए लिखें

- आपका
- आपकी औसत गति
- आपके द्वारा लिया हुआ रास्ता
- मौसम की स्थिति
- दौड़ते वक्त आपको महसूस होनेवाला किसी भी तरह का दर्द

सलाह– उपर्युक्त लॉग को देखें और जब आपको लगे कि आपका रूटीन और वर्कआउट काफी समय से एक समान है, तो इसमें कुछ बदलाव कर लें।

विधि 3 : आहार लेना

(क) स्वस्थ रहें : तेजी से दौड़ने का अर्थ केवल ज्यादा व्यायाम करना ही नहीं है बल्कि आहार को सही रखना, उपयुक्त हाइड्रेशन को भी बनाए रखना होगा। धावकों को एक पौष्टिक डाइट लेना आवश्यक है, क्योंकि तीव्र, उच्च ऊर्जा वाले व्यायाम आपके शरीर को काफी नुकसान पहुंचा सकते हैं। यह महत्वपूर्ण है कि व्यायाम के दौरान आप खर्च हो चुकी कैलोरी को ऊर्जा, विटामिन और पोषक तत्वों से भरपूर खाद्य पदार्थों से बदल दें, जो कि आपको हमेशा ऊर्जावान रहने में और अपनी क्षमता के अनुसार सबसे अच्छा प्रदर्शन करने में मदद करेगा।

आपको ज्यादा से ज्यादा पशु उत्पादों का सेवन करना चाहिए जैसे कि चिकन, अंडे एवं डेयरी उत्पाद तथा दूध और दही। इन खाद्य पदार्थों में प्रोटीन का उच्च स्तर होता है, जो धावकों के लिए एक आवश्यक ऊर्जा का स्रोत है और साथ ही इनमें काफी मात्रा में आयरन और जिंक भी होता है, जो लाल रक्त कोशिकाओं के उत्पादन हेतु आवश्यक हैं और इम्यून सिस्टम की रक्षा करते हैं। डेयरी उत्पादों में मौजूद कैल्शियम भी हड्डियों की मजबूती को बढ़ावा देता है।

नाश्ते में अतिरिक्त प्रोटीन के साथ होल–ग्रेन अनाज खाना चाहिए। स्वस्थ कार्बोहाइड्रेट आपको ऊर्जा भी प्रदान करेंगे, और दौड़ से पहले, दौड़ के दौरान और दौड़ के बाद में ऊर्जा के स्तर को बनाए रखने के लिए, होल–ग्रेन अनाज को एक बहेतर पसंद माना जाता है। होल–ग्रेन चावल और पास्ता (सफेद चावल और पास्ता के बजाय, जिनमें पोषक तत्वों की मात्रा शून्य होती है), बिना चर्बी वाले मांस, सब्जियों के साथ हर दिन फल खाने की कोशिश करें। फलों और सब्जियों में बहुत ज्यादा विटामिन,

पोषक तत्व और अच्छे कार्बोहाइड्रेट होते हैं, जो कि कैलोरियों के बिना, पूरे दिन आपका पेट भरा रखने में मदद करते हैं। अलग–अलग रंग की फल या सब्जियां खांए, क्योंकि विभिन्न फलों और सब्जियों के रंग असल में उनमें मौजूद विभिन्न स्वस्थ, एंटीऑक्सीडेंट पिगमेंट की वजह से होते हैं। उदाहरण के लिए टमाटर का रंग लाइकोपीन की वजह से लाल होते हैं, जबकि मीठे आलुओं में बीटा कैरोटीन होता है जो उन्हें नारंगी बनाता है।

(ख) खूब पानी पीयें : रनर्स को दौड़ते वक्त और बीच में, हाइड्रेटेड रहना काफी जरूरी होता है, क्योंकि निजलीकरण आपकी मांसपेशियों में ऑक्सीजन की आपूर्ति को कम कर सकता है, जिससे आपकी दौड़ने की गति और भी धीमी हो जाएगी। हालांकि आम धारणा के विपरीत, अधिक पानी पीने से ओवर–हाइड्रेशन भी हो सकता है, जो कि चरम परिस्थितियों में खतरनाक भी हो सकता है। अतः पानी संतुलित मात्रा में पीनी चाहिए।

(ग) मिठाई और चिकने खाद्य पदार्थों से बचें : जंक फूड और मिठाई में मौजूद चीनी और वसा का उच्च स्तर ऊर्जा एकदम से बढ़ा सकता है, लेकिन बाद में उस अचानक वृद्धि में तेजी से गिरावट भी होगी, जिससे आप धीमा और सुस्त महसूस करेंगे। जहां तक हो सके चीनी के नेगेटिव साइड इफेक्ट से बचने के लिए चीनी और वसा के प्राकृतिक स्रोतों का ही सेवन करें।

यदि आपका मन कुछ मीठा खाने का कर रह रहा है, तो एक केला खा लें, जो कि प्राकृतिक चीनी से भरा है और साथ ही ये किसी चॉकलेट के एक बार की तुलना में आपका पेट ज्यादा देर के लिए भरा रखेगा।

यदि आप कुछ फैट वाला भोजन खाना चाहते हैं, तो एक चम्मच पीनट बटर को सीधे ही खा लें या उसे एक होल ग्रेन टोस्ट पर लगाकर खाएं।

(घ) खूब आराम करें : अच्छा भोजन करना, हाइड्रेटेड रहना और प्रभावी ढंग से प्रशिक्षण करने के अलावा, आपको यह भी सुनिश्चित करने की जरूरत है कि अच्छी तरह से प्रदर्शन कर सकने के लिए आपके शरीर को उपयुक्त आराम और रिकवरी का समय मिल रहा है। अपने शरीर से ज्यादा मेहनत करवाने से थकान और चोट भी लग सकती है, जो कि आपको कुछ समय के लिए खेल से बाहर रख सकती है।

ऐसा होने से राकेने के लिए सुनिश्चित करें कि– आप एक सप्ताह में अपने आपको आराम करने के लिए एक या दो दिन जरूर दें, जिनमें आप बिल्कुल भी न दौड़ें। यदि आप चाहें, तो आप उन आराम के दिनों में कम तीव्रता वाले व्यायाम जैसे कि योग कर सकते हैं।

आपको यह भी सुनिश्चित करने की जरूरत है कि आप रात में काफी अच्छी क्वालिटी की नींद लें, क्योंकि अध्ययनों से पता चला है कि वे एथलीट जिनकी सोने की स्वस्थ आदतें होती हैं, उनकी प्रतिक्रिया का समय कम होता है और वे दौड़ तेजी से खत्म करते हैं।

विधि 4 : सफलता के लिए स्ट्रेचिंग करना

(क) दौड़ने से पहले स्ट्रेचिंग करें : रूट्रेचिंग करना, लचीलेपन को बढ़ाने का प्रदर्शन में सुधार करने का और दौड़ते वक्त चोटों के जोखिम को कम करने का एक

बहुत अच्छा तरीका है। ट्रेडिशनल स्टेटिक स्ट्रेच (खिंचाव करना और स्थिर रहना) की तुलना में डायनामिक स्ट्रेच (जिसमें गतिविधि शामिल होती है) को रनर्स और अन्य समान एथलीटों के लिए अधिक लाभदायक साबित होता है क्योंकि यह शरीर में अधिक गतिशील, कार्यात्मक तरीके से खिंचाव करता है।

(ख) लेग लिफ्ट करें : एक पैर को बाहर की ओर जितना दूर हो सके उतना दूर ले जा कर हिलाएं और फिर उसे अपने शरीर के पार दूसरे पैर के सामने जितना दूर तक संभव हो, उतना दूर ले जा कर हिलाएं। इस स्ट्रेच को हर पैर के लिए दस बार दोहराएं।

(ग) टिन सोल्जर करें : अपनी पीठ और घुटनों को सीधा रखें, और आगे चलते हुए, अपने पैरों को सामने की ओर सीधे उठा कर एक कदमताल करें और अपने पैर की उंगलियों को अपनी ओर झुकाएं और कूदते हुए आगे बढ़िए। इसे भी हर पैर के साथ दस बार दोहराएं।

(घ) बट–किक करें : अपने खुद के नितंबों (बट) को किक करें। जब आप खड़े हों, तो आगे की ओर चलें, और अपने बट पर किक करने की कोशिश करते हुए अपनी टांगों को पीछे की ओर घुमाएं। यदि आपको यह आसान लगने लगे, तो इसे जॉगिंग करते हुए करें। दोनों पैरों के साथ दस बार दोहराएं।

(ङ) लन्जेज करें : एक लंबे कदम का उपयोग करते हुए आगे कदम रखें, और अपने सामने के घुटने को पैरा की उंगलियों के ऊपर या पीछे रखते हुए, अपने पीछे के घुटने को नीचे की ओर ले जाकर अपने शरीर को नीचे झुकाएं। ऐसा करते हुए चलें। स्ट्रेच के दौरान एक खड़ी मुद्रा बनाए रखें, और अधिकतम लाभ के लिए अपने पेट में कसाव रखें। एक बार फिर, हर टांग के लिए दस दोहराव करें।

(च) पाइक स्ट्रेचेज करें : अपने नितंबों (बट) को हवा में रखकर एक 'पाइक' की मुद्रा में आएं। अपने दाहिने पैर को अपने बाएं टखने के पीछे रखें। अपनी टांगों को सीधे रखते हुए अपने बाएं पैर की एड़ी को नीचे की ओर दबाएं और फिर छोड़ दें। हर टांग के लिए दस बार दोहराएं।

(छ) हैकी सैक करें : एक हैकी सैक लात मारते हुए अपनी बाएं टांग को ऊपर उठाएं, और घुटने पर झुकाएं ताकि वह बाहर की ओर आए। आगे की ओर झुके बिना अपने दाहिने हाथ से अपने बाएं पैर को थपथपाएं। दौनों पैरों के लिए इसे दस बार दोहराएं।

(ज) प्लैंक्स करें : प्लैंक एक्सरसाइज आपकी सहनशक्ति के निर्माण के लिए और आपके पेट और पीठ दोनों को मजबूत करने के लिए एक बहुत अच्छा अभ्यास है। एक प्लैंक करने के लिए चेहरा नीचे की ओर करके लेट जाएं, और अपने हाथों को जमीन पर अपने सिर के स्तर पर समतल रखें। अपने हाथों को समतल रखकर अपनी कोहनियों पर आराम करते हुए, अपनी पैर की उंगलियों पर, जमीन से ऊपर उठें। आपकी पीठ सिर से पैर तक एक सीधी रेखा की तरह होनी चाहिए। अपने भीतरी भाग को कसा हुआ रखें ताकि आपके कूल्हे ऊपर की ओर न जाए या वह मुड़े नहीं। एक मिनट के लिए उसी अवस्था में रहें और फिर वापस नीसे जाएं। इसे 15 बार दोहराएं।

एक लेग स्विंग एड करें : अपने प्लैंक्स से अधिकतम लाभ पाने के लिए, अपनी टांगों से गतिविधि करें, एक बार में केवल एक टांग। एक टांग को ऊपर उठाएं ताकि वह लगभग जमीन के समानांतर हो, फिर उसे बाहर की ओर घुमाएं (समानांतर रखते हुए), फिर आरंभ वाली स्थिति में वापस आएं, और दूसरे पैर से ऐसा फिर से करें।

टिप्पणी

विधि 5 : मित्रों के साथ ट्रेनिंग करना

(क) एक मित्र या अपने परिवार के किसी सदस्य को साथ लें जो इस लक्ष्य को प्राप्त करने में मदद करने के लिए तैयार हो : यह भाईचारा और हल्के प्रतिद्वंद्विता जारी रखने के लिए प्रेरणा का बहुत अच्छा स्रोत हो सकता है। यह एक दूसरे को टेस्ट करने के लिए भी एक अच्छा अवसर है।

(ख) अपने इस मित्र को, आपको उत्तेजित करने के लिए प्रोत्साहित करें : उदाहरण के लिए, यदि आप कहें कि आप काफी थक गए हैं या बोर हो रहे हैं, तो आपका दोस्त आपके बहानों का विरोध करे। बदले में, भी उसे प्रोत्साहित करें। दोनों के बीच ऐसा समझौता हो कि आप दोनों एक दूसरे को प्रेरित करने के लिए सब कुछ करेंगे।

(ग) जैसा कि ऊपर बताया गया है, ठीक उसी रूटीन से व्यायाम करें। रोज व्यायाम करने का एक रूटीन बनाएं।

(घ) एक प्रेरक मित्र पाने के लिए कोई और रास्ता खोजें : यदि आपका मित्र या परिवार का सदस्य आपके साथ नहीं दौड़ना चाहता है, तो कोशिश करें कि आप कम से कम अपने साथ इस व्यक्ति को एक बाइक ले जाने के लिए मना सकें। यह आप दोनों के लिए व्यायाम करने का एक अच्छा तरीका हो सकता है और इससे आपके मित्र को ज्यादा थकावट भी नहीं होगी।

सलाह

- जब आप दौड़ने के बाद थक रहे हों, तब अपनी भुजाओं को हिलाने और लहराने पर ध्यान केंद्रित करें। अपनी भुजाओं को तेजी से हिलाने से आपके पैरों में भी तेजी आती है।
- दौड़ने से पहले वार्मअप जरूर करें।
- अपनी भुजाओं का प्रयोग करें, वे जितनी तेजी से हिलंगी, आपकी टांगें भी उतनी ही तेजी से चलेंगी।
- दौड़ना शुरू करने से पहले, शरीर में जोश लाने के लिए जॉगिंग का अभ्यास करें।
- अपने सिर और आंखों को आगे की ओर सीधे रखना याद रखें।
- दौड़ते वक्त अपनी पीठ सीधी रखें।
- एक भारी बैग के साथ दौड़ना शुरू करें और फिर तेजी से दौड़ें। फिर बैग हटाएं और तेजी से दौड़ें।
- एक ऐसे मित्र के साथ दौड़ें जो आपसे तेज हो। ऐसा सप्ताह में 2–4 बार करें और फिर उसके साथ एक बार फिर दौड़ कर देखें कि क्या गति में कोई वृद्धि हुई है या नहीं।
- दौड़ते वक्त पीछे न देखें, हमेशा अपना ध्यान सामने की तरफ रखें, ताकि आप गिरने से और स्पीड कम होने से बच जाएं।
- मित्र को कहीं कि वह आपी दौड़ते हुए वीडियो बनाए, ताकि आप अपनी दौड़ने की मुद्रा में उन गलतियों का पता लगा सकें जिन्हें आपको बदलने की जरूरत है।

- सुनिश्चित करें कि आप नंगे पैर नहीं बल्कि जूते पहन कर दौड़ें, क्योंकि नंगे पैर दौड़ना काफी चोटों का कारण बन चुका है।
- यदि आपके बाल लंबे हैं, तो यह बेहतर होगा कि आप अपने बालों को पीछे बांध लें, ताकि वे आपके चेहरे पर न आएं और आपकी दृष्टि न रोकें।

चेतावनी

- शुरुआती दिनों के दौरान अपने शरीर पर अपनी क्षमताओं से ज्यादा जोर न डालें, याद रखें कि हर व्यक्ति की अपनी अलग क्षमता होती है और कोई भी दौड़ आपके जीवन से ज्यादा महत्वपूर्ण नहीं है।
- दौड़ के दौरान एक बार में ही बहुत ज्यादा पानी न पिएं, इससे आपको दर्द हो सकता है। इसके बजाए, पानी के छोटे घूंट पिएं। एक ही बार में पानी की एक पूरी बोतल न पिएं, क्योंकि उससे आपके प्रदर्शन में कमी आएगी।
- अभ्यास आरंभ करने से पहले डॉक्टर से मिलकर सलाह लेनी चाहिए।

चीजें जिनकी आपको आवश्यकता होगी

- टी–शर्ट/स्वेटशर्ट। एक खास टी–शर्ट लेना, एक अच्छा विचार होगा।
- कुछ ऐसा जिससे आपके चेहरे से बालों की छूती हुई लटें दूर रहें। उदहारण के लिए– एक पोनीटेल होल्डर (बालों का रबर बैंड), एक स्पोर्ट्स हेयरबैंड या फिर बालों को ही कटवा देना।
- भरपूर पानी।
- एक टाइमर (स्टॉप वाच)।
- दौड़ने के लिए जूते।
- वर्कआउट के लिए बनी हुई खास पेंट (कुछ एक्सरसाइज पेंट से आपके पैरों के बीच में घर्षण हो सकता है)।

200 मीटर दौड़

200 मीटर एक ऐसी रेस है जो शक्ति और गति को सहनशक्ति के कौशल से जोड़ती है। इस दौड़ में 100 मीटर दौड़ की तरह ही विभिन्न ऊर्जा प्रणालियों के उपयोग की आवश्यकता होती है। सफल होने के लिए प्रशिक्षण में बहुत अधिक गति, सहनशक्ति एवं कार्य की आवश्यकता होती है।

200 मीटर का आयोजन सटीकता, न्यूरोमस्कुलर पैटर्न के विकास और मजबूत स्प्रिंटिंग फॉर्म की मांग करता है। प्रतिभागी को एक सामरिक योजना की भी आवश्यकता होती है कि वह किस लेन में है और उसे कैसे आगे होना है।

200 मीटर के लिए तैयारी

अधिक चरों को समान रखने से आपको प्रत्येक दौड़ में अपना सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शन करने का सर्वोत्तम अवसर मिलता है। प्रस्तुत हैं कुछ पूर्व–दौड़ दिशानिर्देश :

ब्लॉक : अपने शुरुआती ब्लॉकों को प्रतियोगिता में उसी तरह सेट करना सुनिश्चित करें जैसे आप प्रशिक्षण के दौरान करते हैं। प्रतियोगिता के दौरान किसी भी बदलाव को लागू करने का प्रयास न करें क्योंकि इससे आपकी शुरुआत खराब हो

सकती है। आपके प्रशिक्षण सत्रों के दौरान कुछ भी नया आजमाया और परखा जाना चाहिए।

टिप्पणी

रूटीन : हर दौड़ शुरू होने से पहले आपकी सुनिश्चित दिनचर्या होनी चाहिए। बहुत सारे एथलीट गहरी सांस अंदर और बाहर लेते हैं, कुछ विस्फोटक छलांग लगाते हैं, अपनी जांघों को थप्पड़ मारकर खुद को ऊपर उठाते हैं आदि।

स्थिति में आएं : जब अधिकारी आपको अपने अंक लेने के लिए कहता है, तो आपको खुद को ब्लॉक में वापस काम करना चाहिए। खुद को एक कुंडलित के रूप में कल्पना करें जो पॉप के लिए तैयार हो। ऐसी स्थिति में आएं जो आरामदायक हो। सुनिश्चित करें कि आपके हाथ शुरुआती रेखा के पीछे हैं और दबाव आपके पैरों पर बना हुआ है न कि आपके हाथों पर।

200 मीटर के चरण

चरण 1: 0–40m पर हमला करें : एक बार जब आप अपने अंक ले लेते हैं, तो अधिकारियों की बात सुनें। सेट कॉल के दौरान अपने कूल्हों को ऊपर उठाएं और दबाव अपने पैरों पर रखें न कि हाथों पर। इस तरह, आप शुरुआती ब्लॉकों से अधिक बलपूर्वक विस्फोट करने में सक्षम होंगे।

एक बार जब बंदूक चली जाती है, तो दोनों पैरों से जोर से धक्का दें, गति बनाने के लिए अपनी बाहों को घुमाएं, और ब्लॉक से बाहर निकलें।

इस चरण के दौरान, आपके ऊर्जा भंडार एटीपी–पीसी ऊर्जा प्रणाली से आते हैं। यह ऊर्जा प्रणाली अल्पकालिक है, इसलिए त्वरण के दौरान मांसपेशियों के तंतुओं को सक्रिय करने के लिए शक्तिशाली होने पर ध्यान दें।

इसे सफलतापूर्वक करने के लिए, ब्लॉकों से विस्फोट करें, अपने पैरों को जमीन में जोर से चलाएं। यह 100 मीटर के त्वरण चरण के समान नहीं है। जैसे ही आप मोड़ पर चलते हैं, आप पाएंगे कि आपकी ड्राइव कम हो गई है।

चरण 2: 40–110m के लिए बेंड के चारों ओर ग्लाइड करें : एक सफल मोड़ दौड़ना दौड़ जीतने और हारने के बीच का अंतर हो सकता है। पहले 40 मीटर के लिए कड़ी मेहनत करने के बाद, आपको अपना स्ट्राइड ढूंढना होगा और मोड़ को 'ग्लाइड' करना होगा।

एक एथलीट के लिए यह समझना मुश्किल हो सकता है कि इसे हासिल करने की बात तो दूर है। ग्लाइडिंग का मतलब धीमा करना या कम प्रयास करना नहीं है।

आप अपने त्वरण से निर्मित गति को लेना चाहते हैं और इसका उपयोग अपनी गति को बनाए रखने के लिए करते हैं क्योंकि आप मोड़ को तेज करते हैं। यह आपको एक लंबी और आरामदायक स्ट्राइड के साथ दौड़ने की अनुमति देगा।

यदि आप एथलीटों को मोड़ पर या सामने से बाहर निकलते हुए देखते हैं, तो आपको प्रतिक्रिया करने की आवश्यकता नहीं है। याद रखें कि हर कोई धीमा हो रहा है। यदि आप ऐसी दौड़ में हैं जहाँ आपका समय प्रतिस्पर्धी है, तो संभावना है कि ये एथलीट भाप से बाहर निकलेंगे और आप उन्हें पकड़ लेंगे।

आप अपनी खुद की दौड़ में दौड़ें और अपनी योजना पर कायम रहें! जब आप इस बात पर ध्यान देते हैं कि दूसरे क्या कर रहे हैं तो आप पहले ही हार चुके हैं। दौड़ छोटी है, आपके पास किसी और पर ध्यान केंद्रित करने का समय नहीं है।

एक सफल मोड़ चलाने के लिए, आपको अपने शरीर को वक्र में झुकाने की आवश्यकता नहीं है। अपनी दृष्टि को उस बिंदु पर केंद्रित करें जिस पर आप दौड़ना चाहते हैं और आपका शरीर स्वाभाविक रूप से मोड़ का अनुसरण करेगा।

चरण 3 : अगले 110–140m के लिए गैस पर वापस : इस चरण के दौरान, आप पुनः गति करना चाहते हैं। इससे पहले कि आप कहें कि यह असंभव है, मैं समझता हूं कि यहां वास्तव में ऐसा नहीं हो रहा है। लेकिन यह दृश्य उद्देश्यों के लिए इसे समझाने का एक अच्छा तरीका है।

जैसे ही आप मोड़ से बाहर आते हैं, आप उस तेज़ हाथ और पैर की गति को किक करना चाहते हैं जो आपने पहले 40 मीटर के दौरान उत्पन्न की थी।

आपको अपने प्रयासों (पुनः त्वरण) में एक बदलाव महसूस करना चाहिए क्योंकि आप उस रिजर्व का उपयोग करते हैं जिसे आपने मोड़ पर ग्लाइडिंग से बचाया था और अगले 30 मीटर के लिए जारी रखा था।

यहां से यह महत्वपूर्ण है कि आप अपनी गति और तकनीक को यथासंभव लंबे समय तक बनाए रखने पर ध्यान केंद्रित करें ताकि दौड़ने के रूप में टूटने से बचा जा सके।

चरण 4: अंतिम 140m–200m के लिए अपनी तकनीक रखें : एक बार जब आप जाने के लिए लगभग 60 मीटर के साथ घर से सीधे टकराते हैं तो आप अपने प्रयासों में कमी महसूस कर पाएंगे।

इस बिंदु पर, यह आवश्यक है कि आप अपने प्रयासों को एक अच्छे स्प्रिंटिंग फॉर्म पर केंद्रित करें। एक तंग कोर रखें, और एक आरामदायक प्रगति बनाए रखें। यह अनावश्यक आंदोलनों से किसी भी ऊर्जा अपव्यय को कम करने में मदद करेगा।

अपनी तकनीक बनाए रखें और इसे आपको अंतिम पंक्ति तक ले जाने दें।

200 मी. वार्म–अप

एक अच्छा वार्म–अप तेजी से मांसपेशियों के संकुचन की सुविधा प्रदान करेगा और आपको प्रशिक्षण के लिए तैयार करेगा। आपको यह सुनिश्चित करने की ज़रूरत है कि आपको बहुत अधिक रक्त प्रवाहित हो रहा है ताकि ऑक्सीजन को सक्रिय मांसपेशियों के संकुचन में ले जाया जा सके।

200 मीटर वार्म अप प्रमुख बिंदु हैं :

- कार्डियो के 5 मिनट
- लेग स्विंग्स
- गतिशीलता अभ्यास
- तकनीकी अभ्यास
- त्वरण × 2–3 × 30–50m

लॉन्ग जंप (लम्बी कूद)

पुरुषों की ऊंची कूद स्पर्धा वर्ष 1896 से ही ओलंपिक खेलों का हिस्सा है जबकि महिलाओं की स्पर्धा वर्ष 1928 से आरंभ हुई।

टिप्पणी

एक खेल के तौर पर ये ज्यादा सीधा–सरल खेल है। हर खिलाड़ी को एक निश्चित ऊंचाई पर लगी एक बाधा को कूद कर पार करना होता है।

इसके लिए हर खिलाड़ी को तीन अवसर मिलते हैं। जो खिलाड़ी सफल होते जाते हैं, उनके लिए इस बाधा की ऊंचाई क्रमिक रूप से बढ़ाई जाती है। ऐसा तब तक जारी रहता है जब तक कि मुकाबले में एक खिलाड़ी बचता है।

वर्ष 1968 से ऊंची कूद के ज्यादातर खिलाड़ी, अमरीकी खिलाड़ी डिक फॉसबरी की शैली 'फ्लॉप' का इस्तेमाल कर रहे हैं जिन्होंने अपनी खास तकनीक की मदद से स्वर्ण पदक जीता था। इन खिलाड़ियों को बाधा से दूरी का बड़ा ख्याल रखना होता है क्योंकि कम या ज्यादा दूरी से उछलने पर वे बाधा से टकरा सकते हैं।

कूद के प्राथमिक नियम

प्रतियोगिता की शुरुआत में, सभी चरणों के लिए बार ऊंचाई बढ़ाने का क्रम निर्धारित किया जाता है। प्रत्येक ऊंचाई को पार करने के लिए एथलीट को तीन प्रयास दिए जाते हैं।

यदि एथलीट ने सफलतापूर्वक ऊंचाई हासिल की, तो उसके पास फिर से तीन प्रयास हैं। एथलीटों को अगली ऊंचाई तक एक या दो शेष प्रयास करने का अधिकार है।

अगली ऊंचाई पर परिणामों की समानता और प्रतिभागियों द्वारा सभी प्रयासों की थकावट के मामले में, कई एथलीटों में से विजेता को निम्न एल्गोरिथम के अनुसार निर्धारित किया जाता है :

1. इसका लाभ उस व्यक्ति को दिया जाता है जिसने ऊँचाई पर कम प्रयास किए थे जहाँ समानता उत्पन्न हुई।
2. बिंदु 1 पर समानता के मामले में, लाभ उस व्यक्ति का है जिसके पास पूरे सर्कल (मुख्य) के दौरान असफल प्रयासों की कम से कम संख्या है।
3. पैरा 2 के अनुसार समानता के मामले में, एथलीट एक कूद–प्रदर्शन करते हैं – क्रम में अगली ऊंचाई के लिए एक अतिरिक्त प्रयास। यदि इस ऊंचाई पर काबू पाने से विजेता का पता नहीं चलता है, तो बार को सहमति राशि (उच्च कूद में 2 सेमी और पोल वाल्ट में 5 सेमी) द्वारा कम किया जाता है। यदि सभी एथलीटों ने ऊंचाई ली, तो बार इस मूल्य से बढ़ जाता है, अगर वे इसे नहीं लेते हैं, तो यह इस मूल्य से गिरता है, और इसी तरह जब तक विजेता निर्धारित नहीं होता है।

अन्य स्थानों (दूसरे, तीसरे और निचले) के परिणामों की समानता के मामले में, कोई जंप–ऑफ नहीं सौंपा गया है, और जगह एथलीटों के बीच विभाजित है।

अन्य तकनीकी रूपों में विनियम

योग्यता (क्वालिफाइंग) प्रतियोगिताओं में प्रत्येक एथलीट को 3 प्रयास दिए जाते हैं।

यदि मुख्य प्रतियोगिताओं में 8 से अधिक एथलीट भाग लेते हैं, तो प्रत्येक को 3 प्रयास दिए जाते हैं और 3 प्रयासों के अंत में सर्वश्रेष्ठ 8 एथलीटों को (अंतिम) तीन और दिए जाते हैं। यदि 8 या उससे कम एथलीट हैं, तो प्रत्येक को 6 प्रयास दिए जाते हैं।

सर्वोत्तम प्रयासों में परिणामों की समानता के मामले में, विजेता को क्रमशः दूसरे (तीसरे और इतने पर छठे) प्रयास द्वारा निर्धारित किया जाता है।

जंपिंग सेक्टर में ऊंची कूद

प्रारंभिक स्तर पर एथलीट और अंतिम को प्रत्येक ऊंचाई पर तीन प्रयास दिए जाते हैं। प्रतियोगिता के दौरान ऊंचाइयों में वृद्धि न्यायाधीशों द्वारा निर्धारित की जाती हैस यह 5 सेंटीमीटर से कम नहीं हो सकती। आमतौर पर, कम ऊंचाई पर, बार 10–15 सेमी की वृद्धि में उगता है और फिर चरण 5 सेमी तक चला जाता है।

बार धारकों के बीच की दूरी 4 मीटर है।

लैंडिंग साइट का आयाम 5 × 5 मीटर है। रनवे की लंबाई कम से कम 40 मीटर है, चौड़ाई 1.22 मीटर है। एथलीट को अधिकार है कि वह जजों को पोल सपोर्ट बॉक्स की पिछली सतह के सामने 40 सेमी से प्लैंक रैक की स्थिति को समायोजित करने के लिए, टेकऑफ़ रन की दिशा में 80 सेमी तक करने का अधिकार है।

प्रयास को असफल माना जाता है यदि–

- कूदने के परिणामस्वरूप, बार रैक पर नहीं रहता था
- एथलीट ने क्षेत्र की सतह को छुआ है, जिसमें ऊर्ध्वाधर बॉक्स के पीछे स्थित लैंडिंग साइट शामिल है, जो समर्थन बॉक्स के दूर किनारे से गुजर रहा है, शरीर के किसी भी हिस्से के साथ या एक पोल के साथ।
- उड़ान के चरण में, एथलीट ने अपने हाथों से बार को गिरने से रोकने की कोशिश की।
- न्यायाधीश सफेद झंडा उठाकर एक सफल प्रयास का प्रतीक है। यदि सफेद झंडा उठाने के बाद बार रैक से गिर गया, तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता – प्रयास वैध है। यदि प्रयास के दौरान पोल टूट जाता है, तो एथलीट को फिर से प्रयास करने का अधिकार है।

ब्रॉड जंप

इस जंप में अभ्यास की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इसमें दौड़ने की गति, पंजों से टांगो की उछाल, बार के ऊपर बॉडी की पोजीशन एवं बारक्रॉन के बाद लैंडिंग पोजीशन आदि विशेष महत्वपूर्ण हैं।

आवश्यक पाथेय

ब्राड जम्प में दौड़ने की गति पर नियंत्रण रखें, बहुत तेज न दौड़ें, कदम छोट छोट होने चाहिएस ध्यान रहे जम्प के लिए पंजों का इस्तेमाल जरूरी है।

आप जम्प बार के सामने सीधा न खड़े हों, सीधी दौड़ लगाकर ऊँची छलांग लगाना बहुत मुश्किल होता है। आप को सफलता पाने के लिए छाता के डंडी ”ज” यानि की अंग्रेजी के ”ज” का आकार बनाते हुए जम्प करना है।

ऊँची कूद के लिए लैंडिंग पॉइंट से या अपनी लम्बाई की सुबिधा के अनुसार लगभग 9 फुट दूरी से हाई जम्प करने की आवश्यकता है।

ऊँची कूद के लिए यदि आप दाहिने पैर का इस्तेमाल करते हैं तो आप को को हाई जम्प बार के दाहिने से पोजीशन बनानी है और यदि आप बाएं पैर का इस्तेमाल करते हैं तो आप को बार की बाएं खड़े होने की आवश्यकता है।

पुरुषो की कूद के लिए बार से दूरी

पुरुषों के लिए जंपिंग बार से लगभग 50 से 70 फिट की दुरी से रेस लगनी चाहिए एवं 12 से 16 फ़ीट पहले दाहिने या बाएं से वक्र बनाना चहिये।

टिप्पणी

महिलाओं की जम्प के लिए बार से दूरी

महिलों को ऊँची कूद बार से लगभग 35 से 55 फुट की दूरी से रेस लगनी चाहिए एवं 9 से 12 फ़ीट पहले दाहिने या बाएं से वक्र बनाना चाहिए।

जंप के नियम

आप को प्रारंभिक अवस्था में दौड़ लगाने के लिए उस पैर का इस्तेमाल करना है जिससे आप जम्प जाहि लगते हैं यानी की यदि दाहिने पैर से जम्प करना है तो दाहिना पैर आगे करते हुए बाएं पैर से बॉडी को दौड़ के लिए पुश करें।

यदि आप को बाएं पैर से जम्प करना है तो बांयां पैर आगे करते हुए दाहिने पैर से बड़ी को रेस के लिए आगे पुश करें।

सबसे आसान ऊँची कूद "कैंची कूद"

ऊँची कूद के लिए आप एक सरल तारिक अपना सकते हैं जिसे कैंची कूद कहा जाता है। ग्रामीण अंचल के अभ्यर्थी एवं महिलाओं के लिए या तरीका बिलकुल सही साबित हो सकता है।

कैंची कूद भी "J" का आकर बनाते हुए हाई जम्प की जाती है। कैंची कूद के सारे के सारे नियमों का अनुसरण पहले जैसे ही हैं मात्र जंपिंग पोजीशन बदली जाती है।

कैंची कूद में आप के शरीर को पीछे झुकाने की वजाय आप अपनी पीठ के साथ बैठने की स्थिति में बार के ऊपर से पार करते हैं एवं आप की टाँगें आपस में कैंची की तरह से क्रास होती हैं।

महत्वपूर्ण निर्देश

दौड़ने की "J" स्थिति : आप सुनिश्चित करें की आप के दौड़ने की स्थिति "J" के आकर में है। यानि की आप दौड़कर जो रास्ता बनाते हैं वह "J" के आकर का होना चाहिए। आप दाहिने या बाएं से पहले सीधा दौड़ते हैं और अंततः बार की तरफ बक्र बनाते हैं। जंपिंग बार या मैट से लगभग 3 फिट पहले दूरी से हाई जम्प लगाएं।

गति की निरंतरता

छलांग लगाने से पहले अपनी दौड़ की गति को कम या ज्यादा न करें गति की निरंतरता बनाये रखें। दौड़ की गति टूटने से अच्छी छलांग नहीं लग पाएगी।

मैट की तरफ ऊँची छलांग लगाएं

इसे आप पुश ऑफ भी कह सकते हैं। अपनी बॉडी को छलांग लगाने वाले पैर से बार के ऊपर से हवा में उछालें। आप का गैर प्रभावी पैर एवं आप के घुटने स्वाभाविक रूप से मुड़कर ऊपर उठ जायेगें।

सेना मे घुड़सवारी

ब्राड जंप की प्रतियोगिता सेना में भी होती है। घुड़सवारी भी इसमें शामिल है। एनईसी के ग्रेड इवेंट में चार भाग हैं जिनमें हर ग्रेड में बाधाओं की ऊंचाई बढ़ती जाती है।

ऊंचाई बढ़ने के साथ–साथ लगाई गई दो या तीन बाधाओं के बीच की चौड़ाई भी बढ़ा दी जाती है। इससे घोड़ों को ऊंची छलांग लगाने के साथ ही लंबी छलांग भी लगानी पड़ती है।

टिप्पणी

तीनों ग्रेड में अंतर

एमईसी ग्रेड–3 में बाधाओं की ऊंचाई 120 सेंटीमीटर और दूरी 140 सेंटरीमीटर होती है। इसी तरह ग्रेड–2 में ऊंचाई 130 सेंटीमीटर और दूरी 150 सेंटीमीटर होती है।

वहीं ग्रेड–3 में बाधाओं की ऊंचाई 140 सेंटीमीटर और दूरी 160 सेंटीमीटर हो जाता है।

इनके बाद होने वाले ग्रांड प्रिक्स में बाधाओं की ऊंचाई 150 सेंटीमीटर और दूरी 170 सेंटीमीटर हो जाती है।

घुड़सवारी की सिक्स बार इवेंट में एक घुड़सवार को एक सीध में लगाई गई छह बाधाओं को पार करना पड़ता है। जो घुड़सवार बिना किसी पेनालटी के छह बाधाएं पार करते हैं उन्हें ही दूसरे राउंड में जाने का मौका मिलता है।

सिक्स बार में पहली बाधा से आखिरी बाधा तक हर बार ऊंचाई बढ़ती जाती है। दूसरे राउंड में बाधाओं की संख्या कम कर ऊंचाई को और बढ़ा दिया जाता है।

यदि कोई दूसरा राउंड पार करता है तभी तीसरा राउंड होता है जिसमें ऊंचाई और बढ़ जाती है।

3.3.3 राष्ट्रीय अंतर्राष्ट्रीय स्तरीय दो खेलों का अध्ययन : कबड्डी, खो–खो, बॉस्केटबॉल, क्रिकेट, हाकी, फुटबाल, वालीबॉल

प्रायः खेलों की दो श्रेणियां होती हैं, एक खेल वे जो बाहर खेले जाते हैं उन्हें आउटडोर गेम्स कहते हैं और दूसरे वे जो अंदर हॉल में खेले जाते हैं, ऐसे खेलों को इनडोर–गेम्स कहते हैं। राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खेले जाने वाले कुछ प्रमुख खेलों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जा सकता है–

- **बास्केटबॉल**

सर्वप्रथम बास्केटबॉल का इतिहास जानें–

1. 1881 में बास्केटबॉल खेल का आविष्कार डॉ. जेम्स नेस्मिथ ने अमेरिका के स्प्रिंगफील्ड कॉलेज में किया था।
2. सर्वप्रथम 1892 में बॉस्केटबॉल का खेल खेला गया था।
3. 1924 के पेरिस ओलम्पिक खेलों में बॉस्केटबॉल को प्रदर्शन खेलों के रूप में शामिल किया गया।
4. 1932 में अंतर्राष्ट्रीय बॉस्केटबॉल संघ की स्थापना हुई।
5. 1934 में बॉस्केटबॉल को ओलम्पिक खेलों के रूप में मान्यता मिली।
6. 1936 के बर्लिन ओलम्पिक खेलों में बॉस्केटबॉल को शामिल किया गया था, इसमें अमेरिका प्रथम स्थान पर रहा था।
7. 1950 में पहली बार बॉस्केटबॉल का विश्वकप खेल अर्जेंटीना में शुरू किया गया था।

8. 1953 में पहली बार महिलाओं का बॉस्केटबॉल विश्वकप चिली में शुरू हुआ था।
9. 1976 में महिलाओं के लिए बॉस्केटबॉल को ओलम्पिक खेलों में शामिल किया गया था।

टिप्पणी

अब भारत के संदर्भ में भी बॉस्केटबॉल को जानें–

1. 1930 में भारत में अंतर्राष्ट्रीय बॉस्केटबॉल संघ की सदस्यता ग्रहण की गई थी।
2. 1934 में भारत में पुरुषों की राष्ट्रीय बॉस्केटबॉल खेल प्रतियोगिता नई दिल्ली में आयोजित की गई थी।
3. जबकि 1950 में बॉस्केटबॉल फेडरेशन ऑफ इंडिया की स्थापना मुंबई में की गई थी।
4. नई दिल्ली में 1951 में आयोजित पहले एशियाई खेलों में बास्केटबॉल खेल को भी शामिल किया गया था।

- **बास्केटबॉल के नियम/विनियम**

नियम–1 गेम

1. बास्केटबॉल खेल दो टीमों के बीच खेला जाता है। इसमें प्रत्येक टीम में 5–5 खिलाड़ी होते हैं। बास्केटबॉल की 1 टीम में अधिकतम 12 खिलाड़ी होते हैं।
2. खेल की समाप्ति पर अधिक अंक अर्जित करने वाली टीम विजेयी घोषित की जाती है।

नियम–2 कोर्ट तथा उपकरण

1. बास्केटबॉल कोर्ट की लंबाई 28 मीटर एवं चौड़ाई 15 मीटर होती है।
2. बास्केटबॉल कोर्ट की सभी रेखाओं का रंग सफेद होता है। ये 5 सेमी. चौड़ी होती हैं।
3. Centre Line 15 मीटर लंबी होती है। दोनों Side Line से 0.15 मीटर बाहर तक खींची जाती है।
4. Playing Court के केन्द्र में Centre Circle का Radius 1.80 मीटर का होता है।
5. Free Throw Semi Circles का Radius 1.80 मीटर का होता है।
6. Free Throw Lines की लंबाई 5.8 मीटर होती है। जबकि चौड़ाई 4.90 मीटर होती है।
7. 3 Point-Field goal area विपक्षी टीम के बास्केट के पास के क्षेत्र को छोड़कर, कोर्ट का अन्य सारा क्षेत्र होता है।
8. Side Line और Three Point Line के बीच की दूरी 0.90 मीटर की होती है।
9. End Line से रिंग के बीच की दूरी 1.575 मीटर होती है और रिंग के सेंटर से Three Point Area dk Radius 6.75 मीटर का होता है।
10. Side Line ls Team Bench कम–से–कम 2 मीटर की दूरी पर होनी चाहिए और Centre Line से 5 मीटर की दूरी पर होनी चाहिए।
11. Back Line ls Throw-in Line की दूरी 8.325 मीटर और Side Line से 0.15 मीटर होती है।

टिप्पणी

12. No Charge Semi Circle का Radius रिंग के मध्य बिन्दु से 1.25 मीटर का होता है।
13. बास्केटबॉल रिंग के मध्य बिन्दु से बोर्ड की दूरी 0.375 मीटर होती है। बास्केटबॉल रिंग का रंग नारंगी होता है। बास्केटबॉल में रिंग का व्यास 45 सेमी. होता है। बास्केटबॉल रिंग की मोटाई 1.66 सेमी. से 2 सेमी. के मध्य रखी जाती है। बास्केटबॉल से रिंग की ऊंचाई 3.05 मीटर होती है।
14. बास्केटबॉल रिंग से बोर्ड की दूरी 15 सेमी. होती है जबकि बास्केटबॉल रिंग से लगे नेट की लंबाई 40 से 45 सेमी. के मध्य होती है।
15. बास्केटबॉल बोर्ड की लंबाई 1.80 मीटर चौड़ाई 1.05 मीटर और ऊंचाई 3 मीटर होती है।
16. बास्केटबॉल का 74.9–78 सेमी. होता है। गेंद का भार 567–650 ग्राम के मध्य होता है।

नियम–3 टीम

1. किसी भी टीम का सदस्य तभी तक यह गेम खेल पाएगा जब गेम से पहले उसका नाम स्कोरसीट में लिखा हो और उसे Disqualify नहीं किया गया हो और न ही उसने 5 Foul किये हों।
2. बास्केटबॉल टीम में कप्तान सहित 12 से अधिक खिलाड़ी नहीं होंगे।
3. बास्केटबॉल टीम के साथ एक कोच और 1 असिस्टेन्ट कोच भी हो सकता है।
4. टीम बैंच के साथ निम्न 5 लोग हो सकते हैं–Manager, Doctor, Physiotherapist, Statistician vkSj Interpreter.
5. खेल के समय प्रत्येक दल के 5 खिलाड़ी कोर्ट में रहेंगे। उन्हीं का Substitution किया जाएगा।

यूनीफार्म

1. प्रत्येक टीम के सभी खिलाड़ी समान रंग की ड्रेस पहनते हैं। उस ड्रेस पर नंबर होना जरूरी होता है।
2. खिलाड़ी अपनी ड्रेस पर 4 से 15 तक की संख्या का उपयोग नंबर डलवाने के लिए करेंगे।
3. खिलाड़ी की पीठ पर लगाए गए नंबर कम–से–कम 20 सेमी. ऊंचे तथा 2 सेमी. से कम चौड़े नहीं होने चाहिए।
4. खिलाड़ी की टी–शर्ट के आगे लगाए गए नंबर कम–से–कम 10 सेमी. ऊंचे तथा 2 सेमी. से कम चौड़े नहीं होने चाहिए।
5. टी–शर्ट पर लगाया गया विज्ञापन या 'लोगो' कम से कम 5 सेमी की दूरी पर होना चाहिए।

चोटिल खिलाड़ी

1. जब गेम के दौरान खिलाड़ी घायल हो जाते हैं तो उस स्थिति में अधिकारी गेम को रोक देते हैं।

2. यदि चोटिल खिलाड़ी 15 सेकेण्ड के अंदर नहीं खेल सकता या उसने प्राथमिक उपचार ले लिया है तो उस खिलाड़ी का तुरंत Substitution किया जाएगा वरना तो टीम 5 खिलाड़ियों से कम से कम खेल जारी रखेगी।

टिप्पणी

नियम–4 खेल के विनियम

1. यह खेल Jump Ball से शुरू होता है।
2. बास्केटबॉल के पूरे गेम की अवधि 40 मिनट की होती है। इसमें 10–10 मिनट की 4 अवधियां होती हैं। पहली और दूसरी अवधि के बीच में 2 मिनट का Interval होता है जबकि तीसरी एवं चौथी अवधि के बीच में भी 2 मिनट का Interval होता है। Half- Time Interval 15 मिनट का होता है।
3. यदि चौथे पीरियड के बाद इस खेल में स्कोर टाई हो जाता है तो टाई को ब्रेक करने के लिए 5 मिनट का अतिरिक्त समय (Extra-Time) दिया जाता है।

इस खेल में गोल कब स्कोर माना जाता है

1. Free Throw से गोल होने पर 1 अंक मिलता है।
2. Two Point Field से गोल होने पर इस खेल में 2 अंक मिलते हैं। Three Point ûeld से गोल होने पर 3 अंक मिलते हैं।
3. यदि खिलाड़ी अनजाने में अपनी टीम की बास्केट में गोल कर देता है तो विपक्षी टीम के पक्ष में 2 अंक जोड़ दिये जाते हैं। कारण, ऐसी स्थिति में इसे विपक्षी टीम के कप्तान द्वारा स्कोर किया माना जाएगा।
4. यदि खिलाड़ी जान–बूझकर अपनी टीम की बास्केट में गोल कर देता है तो यह Violation होता है, ऐसे में गोल स्कोर नहीं माना जाता है।

थ्रो–इन

1. इस खेल में Throw in लेते समय रैफरी खिलाड़ी से 4 मीटर से अधिक दूर नहीं होना चाहिए।
2. Throw पद लेते समय अन्य खिलाड़ी Throw पद लेने वाले खिलाड़ी से कम–से–कम एक मीटर की दूरी पर होंगे।
3. Throw पद लेते समय गेंद को छोड़ने में 5 सेकेण्ड से अधिक समय नहीं लेना चाहिए।

टाईम आउट

1. बास्केटबॉल में प्रत्येक Time Out 1 मिनट का होता है।
2. पहले हाफ में प्रत्येक टीम को 2 Time out दिये जाते हैं। दूसरे हाफ में 3 Time out और Extra time में प्रत्येक टीम को 1 Time out दिए जाने का नियम है।

समपहरण के तहत् गेम हारना

1. खेल प्रारम्भ होने के निर्धारित प्रारम्भिक समय से 15 मिनट तक कोई टीम क्रीड़ा क्षेत्र में उपस्थित नहीं हो पाती है या उसके 5 खिलाड़ी खेलने के लिए तैयार नहीं हो पाते तो उस स्थिति में, विपक्षी टीम को विजेता मान लिया जाएगा। उसे 20 अंक और हारी टीम को 0 अंक दिए जाएंगे।

अनुपस्थिति की स्थिति में गेम हारना

टिप्पणी

1. यदि क्रीड़ा क्षेत्र में किसी टीम के खिलाड़ी 2 से कम रह जाते हैं तो उसे उस टीम की अनुपस्थिति के कारण हारा हुआ माना जाएगा।
2. जिस टीम को जीता हुआ माना गया है, यदि खेल रुकने पर वह टीम जितने अंकों से आगे है तो उसका स्कोर ज्यों–का–त्यों रहेगा। यदि खेल के रुकने पर जीते हुए दल के अंक विपक्षी टीम से कम हैं तो स्कोर सीट में 2–0 रिकॉर्ड किया जाएगा।
3. जिस खिलाड़ी से 5 Personal Foul हो जाते हैं, तब वह खिलाड़ी Disqualify माना जाता है। उसका Substitution 30 सेकेण्ड के अंदर अवश्य होना चाहिए।

नियम–5 उल्लंघन

नियमों का उल्लंघन Violation है।

1. Three Second–खिलाड़ी लगातार 3 सेकेण्ड से अधिक समय तक विपक्षी के त्मेजतपबजमक ।तमं में नहीं रह सकता जबकि जीवित गेंद टीम के नियंत्रण में है और खेल घड़ी अपना कार्य कर रही है।
2. 8 Second–जब कोई खिलाड़ी अपने Back Court में Live Ball को अपने अधिकार में ले लेता है तो उस टीम को 8 सेकेण्ड के अंदर–अंदर गेंद को Front Court में अवश्य डालना होता है।
3. 24 Second–जब कोई खिलाड़ी क्रीड़ा क्षेत्र में Live Ball को अपने अधिकार में ले लेता है तो उसकी टीम को 24 सेकेण्ड के अंदर गोल के लिए प्रयास करना चाहिए।

किसी भी टीम के खिलाड़ी द्वारा Live Ball को Front Court में पहुंचाने के बाद उसे Back Court में गेंद को नहीं ले जा सकता। ऐसा करने वाली टीम के विरुद्ध विपक्षी टीम को Throw पद दिया जाता है।

नियम–6 त्रुटि

1. व्यक्तिगत त्रुटि वह त्रुटि कहलाती है जिसमें विपक्षी खिलाड़ी के साथ अवेध संस्पर्श है, भले ही उसके पास गेंद है या नहीं है।
2. खिलाड़ी को अपने विपक्षी को धकेलना, पकड़ना या बाधा डालना नहीं चाहिए। न ही अपने घुटने, कूल्हे, भुजाओं को पकड़कर विपक्षी की प्रगति में बाधा ही डालनी चाहिए।
3. यदि किसी खिलाड़ी का विपक्षी टीम के खिलाड़ी की त्रुटि से क्षेत्र गोल स्थल से प्रहार सफल हो जाता है तो गोल मान लिया जाएगा और उस सूरत में 1 थ्तमम जीतवू मिलेगा।
4. दोहरी त्रुटि, वह स्थिति होती है जिसमें दो विपक्षी एक दूसरे के प्रति लगभग एक ही समय में Foul करते हैं। दोहरी त्रुटि (Double Foul) में Free throw नहीं दिये जाते अपितु प्रत्येक ऐसे खिलाड़ी पर व्यक्तिगत त्रुटि का दोष लगाया जाता है।

टिप्पणी

तकनीकी त्रुटि

1. यदि सपअम इंसस होने के बाद तकनीकी त्रुटि का ज्ञान होता है तो खेल को रोककर तकनीकी त्रुटि का आदेश दे दिया जाता है। त्रुटि होने और त्रुटि का ज्ञान होने के अंतराल में जो कुछ हुआ वह सब सही (मान्य) माना जाएगा।
2. यदि किसी खिलाड़ी द्वारा तकनीकी त्रुटि होती है तब विपक्षी टीम को एक अंक, तकनीकी त्रुटि का दिया जाएगा। इसे टीम त्रुटि में माना जाएगा।
3. ; fn Team bench personnel द्वारा तकनीकी त्रुटि किया जाता है तो उसे उस टीम के प्रशिक्षक के विरुद्ध माना जाएगा। इसे टीम त्रुटि के रूप में लिया जाएगा।

नियम–7 सामान्य प्रावधान

1. जो खिलाड़ी 5 व्यक्तिगत या तकनीकी त्रुटि करता है तो रैफरी उसे खेल छोड़ने के लिए तुरन्त कहेगा और 30 सेकेण्ड के भीतर उसका Substitution करेगा।
2. किसी ऐसे खिलाड़ी से थ्वनस होता है जो पहले से ही 5 त्रुटि कर चुका है तब वह त्रुटि कोच की मानी जाएगी। तब स्कोर शीट में 'बी' शब्द लिख लिया जाएगा।
3. एक अवधि में जब कोई टीम 4 टीम त्रुटि से अधिक करती है तब प्रत्येक थ्वनस पर विपक्षी टीम को 2 अंक प्रदान किए जाते हैं।

नियम–8 निर्णायक, टेबल निर्णायक तथा कमीश्नर

1. बास्केटबॉल खेल में 1 त्मतिममए 1 वत 2 न्उचपतमे होते हैं। साथ ही इनकी सहायता के लिए Table Ofûcials और Commissioner भी होते हैं।
2. टेबल अधिकारी में 1 Scorer, 1 Assistant Scorer, 1 Timer और 1 24 Second Operator होते हैं।
3. Commissioner, Scorer और Timer के बीच में बैठेगा। उसका मुख्य काम खेल के दौरान टेबल अधिकारियों का निरीक्षण करना रहता है। उन पर नजर रखना होता है।

बास्केटबॉल के मूलभूत कौशल होते हैं–

चेस्ट पास, बाउंस पास, लॉंग पास, अंडरहैंड पास, लो ड्रिबल हाई ड्रिबल, अंडर द लेग ड्रिबल, बिहाइंड द बैक ड्रिबल, जंप शॉट, सेट शॉट, हुक शॉट, डंक शॉट, ले–अप शॉट, टिप–इन शॉट, ब्लाकिंग और स्क्रीनिंग।

बास्केटबॉल के महत्त्वपूर्ण टूर्नामेंट इस प्रकार हैं–

1. येरोपियन कप
2. एशिया कप
3. अमेरिका कप
4. विलियम टॉड मेमोरियल ट्राफी (राष्ट्रीय पुरुष), और
5. प्रिंस वसालत झा ट्राफी (राष्ट्रीय महिला)

टिप्पणी

- **क्रिकेट**

क्रिकेट एक बहुत ही प्राकृतिक खेल माना जाता है। इसकी शुरुआत सृष्टि के शुरू से ही हो गई थी। समय के साथ–साथ यह खेल अपनी यात्रा तय करता चलता रहा। इस यात्रा की अवधि में इसने अनेकानेक रूप लिए, यथा–हॉकी, गिल्ली–डंडा और अब क्रिकेट। परन्तु आज यह क्रिकेट खेल सर्वाधिक आकर्षक और खर्चीला खेल बनकर खेल जगत में छाया हुआ है। वर्तमान में क्रिकेट को पैसे वालों का खेल माना जाता है।

वस्तुतः क्रिकेट का उद्‌भव ब्रिटेन में तेरहवीं सदी में गडरियों द्वारा हुआ था। गाय बकरी चराते समय जब भी गाय बकरी चराने वालों को खाली समय मिलता तभी वे चौड़ी लकड़ी का बल्ला बनाकर गेंदनुमा वस्तु से इस खेल को खेलते हुए परवान चढ़ाया करते थे।

परन्तु 300 वर्ष पूर्व से यह खेल इंग्लैंड में विभिन्न वर्गों में लोकप्रिय होता चला गया। फिर तो बाद में यह खेल जगह–जगह खेला जाने लगा। ऐसे ही में इसके नियम–विनियम भी बनाए गए। उनमें भी सुधार होते चले गए। 1760 में एक बड़ी ऐतिहासिक घटना घटी, और इंग्लैंड में इस क्रिकेट के लिए मेरीलिबोन क्रिकेट क्लब की स्थापना हुई। इस क्लब के गठन के साथ इस क्रिकेट खेल की लोकप्रियता में भी चार चांद लगते चले गए। क्लब के नियंत्रण के चलते इसके नियम–विनियमों में भी एकरूपता आ गई। शनैः–शनैः यह क्रिकेट दूसरे देशों में पहुंच गया। वहां भी इसे अच्छी लोकप्रियता प्राप्त हुई। उस समय ब्रिटिश साम्राज्य में सूर्य डूबता नहीं था–ऐसा सर्वमान्य कथन था। वेस्टइंडीज, न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया जैसे देशों में अंग्रेजी राज चल ही रहा था। सो, अंग्रेज इन देशों में क्रिकेट खेलने लगे और उनकी देखा–देखी स्थानीय लोग भी इस खेल को खेलने लगे।

उधर इंग्लैंड में एमसीसी ने 1835 तक इस खेल से संबंधित नियम–कायदे काफी विकसित कर दिए। आस्ट्रेलिया में भी यह खेल काफी लोकप्रिय हो गया और पहले–पहल इन दो देशों की टीमों का मुकाबला हुआ। इसके साथ ही 1877 से क्रिकेट टेस्ट मैचों की परम्परा प्रारम्भ हुई।

1909 में इंपीरियल क्रिकेट काउंसिल का गठन हुआ जिसने क्रिकेट को अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट का विस्तार दिया। अब अनेक देश इस काउंसिल के नियमों के तहत टेस्ट मैच खेलने लगे। 1956 में काउंसिल का नाम बदलकर इंटरनेशनल क्रिकेट काउंसिल (आईसीसी) रख दिया गया। आज यह क्रिकेट की सर्वोच्च अंतर्राष्ट्रीय संस्था है।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि भारत में भी क्रिकेट का प्रादुर्भाव अंग्रेजी राज में हुआ। 1848 में पहले–पहल भारतीय धरती पर क्रिकेट खेला गया। पारसियों में यह शीघ्र ही बहुत लोकप्रिय हो गया। उस समय पारसी समुदाय अंग्रेजों के बहुत करीब था। धनाढ्‌य भी था।

अब भारत में भी क्रिकेट क्लबों की स्थापना हुई। आपस में मैच खेले जाने लगे। पारसियों ने खेल में खासी जगह भी बना ली। उनकी टीमें खेल दौरों पर इंग्लैंड भी जाने लगी। यूरोपीय खिलाड़ियों और पारसी खिलाड़ियों के बीच 1892 से नियमित मैच खेले जाने लगे। इन मैचों को प्रेसीडेंसी मैचों के नाम से पुकारा जाता था। प्रारम्भ में ये मुंबई व पूना में खेले गए। बाद में इनके अनुकरण अन्य स्थानों पर भी होने लगे।

टिप्पणी

बाद में एक अन्य टीम विकसित हुई जो हिन्दू टीम के नाम से जानी जाने लगी। इसके साथ ही त्रिकोणीय मुकाबला 1912 से प्रारम्भ हो गया। यह मुकाबला मुंबई में ही होता था। यह मुकाबला तब चतुष्कोणीय हो गया जब मुस्लिम टीम का गठन हो गया। इसके बाद यहूदियों की टीम बनी। तत्पश्चात् फिर भारतीय इसाइयों की टीम बनी।

इन सबसे क्रिकेट में लोगों की दिलचस्पी तो बढ़ी पर साथ ही घिनौने संप्रदायवाद की बू भी आने लगी। उस समय स्वतंत्रता–आंदोलन चल रहा था। आजादी के लिए लड़ रहे नेताओं को लगा कि इससे समाज में विष फैलेगा। ऐसे में हो सकता है कि इस खेल के माध्यम से अंग्रेज भारतीय समाज को बांटने का षड्यंत्र कर रहे हों।

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने इस प्रकार के सांप्रदायिक क्रिकेट के विरूद्ध आंदोलन चलाया। परिणाम स्वरूप 1945 में इस प्रकार की प्रतियोगिता बंद हो गई। अब यह खेल भ. ारत के अन्य शहरों में भी खेला जाने लगा और दिल्ली, चेन्नई, कलकत्ता, कानपुर, हैदराबाद, बंगलौर इसके नए केन्द्र के रूप में विकसित होते चले गए। परन्तु मुंबई का दबदबा जो प्रारम्भ में ही बन गया था, अभी भी जारी रहा और अब भी जारी है। श्रेष्ठ खिलाड़ी देने की जो परम्प्रा विजय मर्जेंट व विजय हजारे के काल में प्रारम्भ हुई थी वह आज सचिन तेंडुलकर के काल में भी जारी है। सचिन तेन्डुलकर को क्रिकेट का भगवान ही घोषित कर दिया गया। कारण, सचिन ने क्रिकेट जगत में 20,000 रन पूरे करके क्रिकेट इतिहास में प्रथम स्थान जो प्राप्त कर लिया था।

दिल्ली में 1920 में रोशन आरा क्रिकेट क्लब की स्थापना हुई जिसने बाद में दिल्ली डिस्ट्रिक्ट क्रिकेट ऐसोसिएशन का रूप ले लिया।

प्रारम्भ में भारत में इस खेल पर राजाओं–महाराजाओं का दबदबा था। प्रभाव था–महाराजकुमार विजयनगरम, राजा भूपिन्द्र सिंह जैसे राजपुरुषों ने इसमें प्रारंभिक योगदान किया। भूपिंद्र सिंह द्वारा दी गई रणजी ट्रॉफी से राष्ट्रीय प्रतियोगिता की नींव पड़ी। 1934 से रणजी प्रतियोगिता प्रारम्भ हुई और यह अभी भी अनवरत जारी है। 1927 में 'बोर्ड ऑफ कंट्रोल फॉर क्रिकेट इन इंडिया' की स्थापना हुई जो आज एक अति शक्तिशाली व धनवान संस्था का रूप धारण कर चुकी है।

प्रारम्भ में क्रिकेट में सिर्फ पांच–दिवसीय टेस्ट मैच ही अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर खेले जाते थे। राष्ट्रीय स्तर पर तीन दिवसीय प्रतियोगिताएं भी होती थीं। परन्तु समय के साथ पसंद भी बदली। लोग क्रिकेट तो चाहते थे, परन्तु उन्हें धीमा, नीरस, उबाऊ क्रिकेट पसंद नहीं था। वे अब तेज नृत्य की तरह तेज क्रिकेट चाहने लगे। इस क्रम में एक–दिवसीय अंतर्राष्ट्रीय मैचों का चलन प्रारम्भ हुआ जिसने शीघ्र ही टेस्ट क्रिकेट को दूसरे स्थान पर पहुंचा दिया।

क्रिकेट में प्रयोग होने वाले लगभग सभी आइटमों के स्वरूप में समय के साथ बदलाव आया। आज जिस क्रिकेट बैट का हम प्रयोग करते हैं उसका स्वरूप 1853 में विकसित हुआ था। इसका एक हिस्सा ब्लेड कहलाता है। दूसरा हिस्सा हैंडल कहलाता है। हैंडल पर रबर की परत चढ़ी होती। खेलते समय खिलाड़ी की उस पर पकड़ बनी रहे, इसका स्पष्ट प्रावधान होता है। इसी तरह 22 गज की पिच का प्रावधान भी काफी पहले विकसित हो गया था।

समय और धन का इसमें ज्यादा व्यय होता है। फिर भी इस खेल की लोकप्रियता बढ़ती ही जा रही है। आज यह गांवों में और गली–मुहल्लों तक में खेला जा रहा है। विश्व–स्तर पर भी अनेक देशों की टीमें अब टेस्ट मैचों व एक दिवसीय प्रतियोगिताओं में भाग लेती हैं। अंतर्राष्ट्रीय क्रिकेट के खिलाड़ियों को मोटा पारिश्रमिक मिलता है, ऐसे में फिक्सिंग से भी इसका तथा इसके खिलाड़ियों का नाम जब–तब जुड़ता है तब सब गुड़–गोबर हुआ–सा लगता है।

इस समय क्रिकेट का खेल सर्वाधिक लोकप्रिय हो रहा है। क्रिकेट ऐसा खेल है जिसके ऊपर करोड़ों अरबों का सट्टा रातों रात लग जाता है। एशिया के देशों में क्रिकेट यूरोप के देशों से कहीं अधिक लोकप्रिय है। पश्चिमी देशों में तो केवल इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड जैसे देशों में ही इसका अधिक चलन है। शेष देशों में तो अभी क्रिकेट का खेल शुरू भी नहीं हुआ। उनसे तो कहीं अधिक यह अफ्रीका में चल रहा है।

वेस्टइंडीज का तो क्रिकेट जगत में इसलिए भी अधिक नाम है कि यह देश नहीं बल्कि छोटे–छोटे कई टापुओं का एक समूह है.... जिसमें क्रिकेट का खेल सबसे अधिक चल रहा है। वहां के छोटे–छोटे बच्चे भी गलियों–मोहल्लों में क्रिकेट खेलते नजर आते हैं। इस प्रकार से इस समय पूरे विश्व का खेल न होते हुए भी क्रिकेट सबसे अधिक लोकप्रिय खेल बन गया है। अब वह भी दिन दूर नहीं.... जब क्रिकेट का खेल पूरी दुनिया में फैल जाएगा। अरब देशों में तो यह चलना भी शुरू हो गया है।

सुनील गवास्कर विश्व प्रसिद्ध क्रिकेट खिलाड़ी हैं। टेस्ट क्रिकेट में सर्वाधिक सेंचुरियां बनाने वाले सर्वप्रथम बल्लेबाज। जिन्होंने क्रिकेट इतिहास में नए कीर्तिमान स्थापित किए। क्रिकेट खेल का जन्म इंग्लैंड देश में हुआ क्योंकि अंग्रेजों ने अनेक देशों पर राज किया। यही कारण था कि जिन–जिन देशों पर उनका राज था। वहां पर क्रिकेट का खेल खूब चमकता रहा। उन्हीं में से भारत भी एक ऐसा ही देश रहा है।

जैसा कि आपको पहले भी बताया जा चुका है कि हॉकी का खेल भी अंग्रेजों के आने से ही भारत में शुरू हुआ था। विदेशी शासक अपने मनोरंजन के साधन भी साथ ही लेकर आए थे। उनमें हॉकी के खेल के साथ–साथ क्रिकेट का खेल भी प्रमुख था। सन् 1721 ई. के आस–पास भारत में अंग्रेजों ने ईस्ट इंडिया कम्पनी के नाम से भारत में प्रवेश किया। कई हजार मील की दूरी से किसी भी बड़े देश को यदि मुट्ठी भर लोग आकर अपना गुलाम बना लें तो यह कोई कम आश्चर्य की बात नहीं है। लेकिन उन लोगों ने हमारे देश में आकर कुछ अच्छे काम भी किए। बुरे कामों की सूची तो बड़ी लम्बी है। इन अच्छे कामों से आज भी लोग लाभ उठा रहे हैं; खेल–कूद में अंग्रेजों की देन, क्रिकेट और हॉकी को हम कहां भूल पाएंगे।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आज हमारे देश का 60: युवा वर्ग एवं बाल वर्ग क्रिकेट के रंग में पूरी तरह डूब चुका है। ऐसे में, अब हमें उस वर्ग के लिए क्रिकेट का अधिकतम ज्ञान देना बहुत जरूरी हो गया है।

इतिहास

1792 ई. में सबसे पहले कोलकाता में क्रिकेट की स्थापना की गई, उन दिनों 'कलकत्ता' भारत की राजधानी थी। इस क्रिकेट क्लब के सदस्य अधिकतर बड़े–बड़े अंग्रेज अफसर ही थे।

टिप्पणी

1848 में मुंबई में एक पारसी, वासवल ने छोटे बच्चों को क्रिकेट खिलाना शुरू किया, तो उसी से भारत में क्रिकेट की नींव पड़ी। 1848 में ही ओरियंटल क्रिकेट क्लब की स्थापना की गई। यह क्लब पारसी लोगों ने ही स्थापित किया था। इस क्लब का मैदान आज भी मुम्बई में 'आजाद मैदान' के नाम से जाना जाता है।

क्रिकेट का प्रारम्भिक जीवन भी बड़ा विचित्र है। उन दिनों पैवेलियन तो होते नहीं थे। बस खुले मैदान में मैच के पूर्वी छोर पर एक टैंट लगा दिया जाता था।

1877 में क्रिकेट का नाम पहली बार भारत के आम लोगों तक पहुंचा वह भी जब, जब पारसी क्लब और जिमखाना क्लब की टीमों के बीच पहला क्रिकेट मैच हुआ। बंबई जिमखाना के 168 रनों के जवाब में पारसी टीम 105 रन बनाकर आउट हो गई। एक–एक पारी का यह पहला ऐतिहासिक मैच था। इस मैच को देखकर लोगों के मन में इस खेल के लिए उत्साह पैदा हुआ। धीरे–धीरे, क्रिकेट भारत में लोगों की जुबान पर आने लगा। याद रहे, भारत की ओर से इंग्लैंड के दौरे पर जाने वाली पहली क्रिकेट टीम पारसी ही थी जिसने वहां पर कुल 28 मैच खेले। उनमें से 19 मैच हारे 8 अनिर्णीत रहे। मैच जीता। इस टीम के कैप्टन जे.एम. फ्रांस जीटेल थे, यह टीम 12 अगस्त सन् 1886 को भारत से इंग्लैंड गई थी।

इसके पश्चात् 1888 में एक टीम फिर इंग्लैंड गई जिसके कैप्टन एच.डी. कांग थे। यह दौरा काफी सफल रहा। इसमें 31 मैच खेले गए जिनमें से 8 मैच जीते, 11 में हार हुई, और शेष सारे मैच अनिर्णीत ही रहे।

इन दोनों दौरों के पश्चात् भारत में क्रिकेट के बीज बोये जिसका यह परिणाम था कि 1878 में हिन्दू क्रिकेट क्लब की नींव रखी गई। इसने अपना पहला मैच 1884 में जिमखाना क्लब मुम्बई से खेला था।

हिन्दू क्रिकेट क्लब के जवाब में कुछ मुसलमान भाईयों ने मुहम्डन जिमखाना क्लब की स्थापना कर डाली। इसकी नींव 1883 में रखी गई थी।

अब क्रिकेट खेलने के सामान और मैदान के विषय में भी जान लें–

बॉल

सबसे पहले नम्बर में क्रिकेट की बॉल आती है। यह गोल बॉल जब नई होती है तो इसमें बहुत चमक होती है। जैसे–जैसे यह बॉल पुरानी होती जाती है, तब स्वाभाविक रूपेण इसकी चमक मद्धम पड़ती चली जाती है।

क्रिकेट का बल्ला

इस बल्ले का ब्लेड साढ़े चार इंच से अधिक चौड़ा नहीं होना चाहिए। इसकी लम्बाई 1 मीटर के करीब होती है।

जिस मैदान पर क्रिकेट खेला जाता है उसे पिच कहते हैं। इसी पिच पर तीन विकेट लगे होते हैं। इनके नीचे वाले सिरे जमीन के अन्दर होते हैं और ऊपर के तीनों भागों को जोड़ने के लिए दो लकड़ी की किल्लियां रखी होती हैं। इस पिच का सारा कार्य एम्पायर के हाथ में होता है। मैच से पहले अम्पायर ही पिच का पूरा निरीक्षण करके अपना निर्णय देते हैं।

क्रिकेट का मैदान काफी फैला होता है। दोनों टीमों में कुल मिलाकर ग्यारह–ग्यारह खिलाड़ी होते हैं। जो टीम बॉलिंग करती है उसके दो बॉलर दोनों छोरों से अलग–अलग बालिंग करते हैं। एक बॉलर जब बालिंग करता है तो दस खिलाड़ी फिल्डिंग में होते हैं।

क्रिकेट के कपड़े

क्रिकेट के सारे खिलाड़ी पैंट, टी–शर्ट, शर्ट, जूते–जुराब पहनते हैं। दोनों टीमों के अलग–अलग रंग के कपड़े होते हैं। विकेट कीपर पैड, और ग्लब्स पहनता है। बैट्समैन भी पैड बांधकर सिर पर हैलमेट रखता है ताकि बॉल की चोट न लग जाए। सर्दी हो तो खिलाड़ी स्वेटर पहनते हैं।

टॉस

खेल शुरू होने से पहले टॉस होता है। इस टॉस में यह निर्णय होता है कि पहले कौन–सी टीम बैटिंग करेगी। कौन क्षेत्र रक्षण, टॉस दोनों कप्तानों के सामने अम्पायर करवाता है। जो भी कप्तान टॉस जीत जाता है। उसकी इच्छा पर निर्भर करता है कि बैटिंग करें या फिर वह बॉलिंग करें।

मैच का समय

क्रिकेट के.जी. असल मैच जिनका क्रिकेट इतिहास के साथ नाम जुड़ा होता है, वे मैच टेस्ट मैच कहे जाते हैं। जो पांच दिन तक होते हैं। पहले इन पांच दिनों के बीच में एक दिन अवकाश का होता था। किन्तु यह अब बंद कर दिया गया है।

वनडे मैच सीमित ओवरों (50) का होता है। इसमें एक दिन में ही हार जीत का फैसला हो जाता है।

गेंदबाजी

हर गेंदबाज एक ओवर में छः गेंदे फेकता है। इसका ओवर पूरा होने पर दूसरे छोर से दूसरा गेंदबाज गेंद फेंकने के लिए आता है।

इस गेंद को विकेट के आगे बनी स्क्रीन के अंदर से ही डाला जा सकता है, जो गेंद क्रीज के बाहर से फेंकी जाएगी, उसे नोबॉल माना जाता है जिसके बदले में एक फालतू रन और एक बॉल और विरोधी टीम को मिल जाती है। नो बॉल का फैसला अम्पायर देता है।

रन

जब बल्लेबाज शार्ट लगाकर दोनों बैटस मैन एक दूसरे का छोर बदल देते हैं तो इसमे यदि एक चक्र पूरा करें तो एक रन बनता है और दो चक्र, दो, तीन चक्र तीन रन यदि बॉल ठप्पा खाकर पिच पर से रेंगती हुई बाउंड्री लाइन से पार होती है तो बिना दौड़े भी बैट्समैन को चार रन मिलते हैं। यदि पिच से लगे बिना ही बॉल बॉडर लाइन से पार होती है तो बैट्समैन को 6 रन मिलते हैं।

बाई के रन

जब कोई बल्लेबाज शार्ट खेलता है मगर बॉल उसके बल्ले में आती नहीं और फिल्डर उसे फिल्ड भी नहीं कर सकते तो ऐसे में जो भी रन मिलता है। उसे बाई के रन कहते हैं जो बैट्समैन के खाते में नहीं जुड़ते। और जब गेंदबाज द्वारा फेंकी गई गेंद बल्लेबाज

के हैंडिल ग्लब्स को छूकर निकल जाए और इसका लाभ उठाकर बल्लेबाज जितने भी रन बना ले तो भी बाई के रन होंगे।

लेग बाई

यदि कोई बॉल बल्लेबाज के जूते या पैड को छूकर निकल जाए तो ऐसे बैट्समैन भागकर जो रन बनाएं उसे लैग बाई रन कहते हैं।

स्टम्प आउट

यदि कोई खिलाड़ी गेंद पर शार्ट मारते समय, पापिंग क्रीज के बाहर आ जाए और गेंद उससे छूटकर विकट कीपर के पास आ जाए या फिर अन्य क्षेत्र रक्षक के हाथ में चली जाए और वह.... बल्लेबाज की क्रीज में पहुंचने से पहले विकेट को छू जाए तो बल्लेबाज को स्टम्प आउट दिया जाएगा।

क्लीन बोल्ड

जब गेंदबाज गेंद फेंकता है। बैट्समैन के बल्ले पर वह गेंद न आकर सीधी विकेट से टकराकर उसे नीचे गिरा दे तो खिलाड़ी क्लीन बोल्ड आउट माना जाता है।

कैच आउट

जब बल्लेबाज सामने आती गेंद को शार्ट मारता है और गेंद उसके बल्ले से लगकर पिच से लगे बिना सीधी किसी फील्डर के हाथों में चली जाती है तो बैट्समैन कैच आउट होता माना जाता है।

एल.बी.डब्ल्यू

लेग बिफोर विकिट अर्थात् पग बाधा आउट का आशय है कि बल्लेबाज ने सीधी जाती गेंद को जानबूझ कर अपने पैड से रोका। इस प्रकार की गलती से बैट्स मैन को आउट दिया जाएगा। इस आउट के बारे में कई विवाद भी खड़े हुए हैं। अम्पायर के फैसले गलत कहे गए हैं। परन्तु गलत हो या सही अम्पायर के फैसले को मानना ही पड़ता है। इसी विवाद को देखते हुए एल.बी.डब्ल्यू. के निर्णय को भी तीसरे अम्पायर के हाथों में दे दिया गया है।

रन आउट

रन लेते समय यदि दोनों बल्लेबाज तेजी से भागते हुए अपनी क्रीज तक नहीं पहुंच पाते और बॉल फील्ड करके विकिटों में मार दी जाए तो जो खिलाड़ी अपनी क्रीज तक न पहुंच जाए उसे रन आउट माना जाता है।

हिट विकेट

जो बल्लेबाज शार्ट खेलने के चक्कर में बल्ला घुमाते हुए अपने ही बल्ले से विकेट गिरा लेता है या उसके अपने ही शरीर के किसी अंग के लगने से विकेट गिर जाए तो उसे हिट विकेट आउट दे दिया जाता है।

जब गेंदबाज से गेंद छूटे

गेंदबाज से छूटी गेंद को बल्लेबाज हाथ से पकड़ ले या उसे छू दे तो (हैंडल दी बॉल) में आउट माना जाता है। गेंद फेंकने से रोकने या हिट करने के प्रयास में यदि बल्लेबाज दो बार गेंद को हाथ से छू ले तो उसे हैंडल द बॉल ट्वाइस नियम के अंतर्गत आउट दिया जाता है।

यदि कोई बल्लेबाज अपने साथी के आउट होने के पश्चात् दो मिनट तक अपना स्थान ग्रहण नहीं करता तो उसे भी आउट मान लिया जाता है। रन आउट को छोड़कर किसी भी स्थिति में बल्लेबाज 'नो बॉल' पर आउट नहीं होगा।

टिप्पणी

'वन डे' मैचों में जिस टीम के निर्धारित ओवरों में जिस टीम के अधिक रन होंगे वही विजयी मानी जाएगी।

टेस्ट मैचों में दोनों पारियों के स्कोर को जोड़कर देखते हैं जिसके अधिक रन होंगे वही जीता हुआ घोषित कर दिया जाता है।

यदि दूसरी टीम पहली के बराबर रन न बना पाई हो और उसके सारे खिलाड़ी आउट न हुए हों तो मैच अनिर्णीत माना जाएगा।

फालोऑन

यदि कोई टीम पहली पारी में 300 से अधिक रन बना ले और विरोधी टीम के रन सौ से कम हों तो पहली टीम उसे फालोऑन कर सकती है जिससे उसकी बजाय स्वयं ही दो बार खेलना पड़ेगा। यह पहली टीम की इच्छा पर निर्भर है।

इसके लिए शर्त यह है कि पहली टीम की रन संख्या इतनी अधिक हो कि दूसरी विरोधी टीम की पहली पारी का स्कोर पहली टीम के स्कोर से 200 रन कम हो।

बैट्समैन के कंधे से ऊपर जाती बॉल को वाइड बॉल माना जाएगा। इससे टीम को एक रन और एक गेंद मिलेगी। अम्पायर और कप्तानों की इच्छा से ओवर कम हो सकते हैं। वन डे मैचों में 15 ओवर तक सर्कल में ऑफ साइड में 6 खिलाड़ी होंगे। 16 ओवरों के पश्चात् इन्हें हटाना होगा।

• फुटबॉल

सर्वप्रथम फुटबॉल का इतिहास जानें–

जब पहली बार चीन में दो टीमों के बीच यह खेल खेला जाता था तो हर वर्ष चीन के राजा के जन्म दिन की खुशी में राजमहलों के बाहर यह खेल टीमें खेला करती थी। विजेता टीम को चांदी के बर्तनों में शराब और फलों को देकर सेवा की जाती थी और जो टीम हार जाती थी उसे कड़ा दण्ड भी दिया जाता था।

प्राचीन इतिहास के आधार पर कह सकते हैं कि मैदानी खेल फुटबॉल की शुरूआत सबसे पहले मिश्र में 700 ई.पू. के आसपास हुई मानी जाती है। जबकि चीन में इस खेल को सुचुनाम के नाम से जाना जाता था। चीन में 300 ई.पू. में इस खेल की शुरूआत मानी जाती है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि आज फुटबॉल विश्वि में सबसे अधिक लोकप्रिय खेलों में से एक खेल माना जाता है। पश्चिमी देशों अरब अफ्रीकन देशों में तो फुटबॉल के दीवानों की संख्या की गिनती करना भी कठिन हो चुका है। इस खेल के कारण तो वहां पर अच्छे–खासे झगड़े भी हो जाते हैं।

हां, जहां तक आधुनिक फुटबॉल की बात है तो इसकी शुरुआत इंग्लैंड से मानी जाती है।

12वीं शताब्दी में इंग्लैंड में फुटबॉल दिवस मंगलवार के दिन को माना जाता था।

- परन्तु 1314 में सम्राट एडवर्ड द्वितीय ने कतिपय सैन्य कारणों से इस खेल पर प्रतिबंध लगा दिया था।

टिप्पणी

- 1857 में इंग्लैंड में फुटबॉल का पहला क्लब शेफील्ड फुटबॉल के नाम से खोला गया था।
- 1863 में लंदन में फुटबॉल का पहला संगठन बना जिसका नाम लंदन फुटबॉल एसोसिएशन रखा गया।
- 1871 में फुटबॉल की पहली प्रतियोगिता एफ.ए. कप के नाम से शुरू हुई।
- 1872 में फुटबॉल का पहला अंतर्राष्ट्रीय मैच इंग्लैंड और स्कॉटलैंड के बीच खेला गया था।
- 1908 में फुटबॉल को पहली बार लंदन ओलम्पिक खेलों में सम्मिलित किया गया।
- 1904 में सभी अंतर्राष्ट्रीय मैचों का आयोजन करने वाली संस्था फीफा की स्थापना की गई।
- 1930 में प्रथम फुटबॉल विश्वकप का आयोजन किया गया। इसके विजेता उरूग्वे थे।
- 1954 में नामक संगठन की शुरूआत की गई। यह यूरोप में फुटबॉल आयोजित कराने वाली एक जानी मानी संस्था है। जबकि 1964 में एशियाई फुटबॉल संघ प्रकाश में आया।

अब भारत के संदर्भ में फुटबॉल को जानें–

– 1878 में भारत में बंगाल में पहला फुटबॉल एसोसिएशन प्रकाश में आया। यह अंग्रेजों द्वारा बनाया गया था।

– 1888 में भारत में विश्व का दूसरा सबसे पुराना फुटबॉल टूर्नामेंट डूरंड कप शिमला में प्रारम्भ किया गया।

– 1948 में भारत ने पहली बार ओलम्पिक में फुटबॉल में भाग लिया। इसके बाद 1952, 1956 और 1960 में भी भारत ने भाग लिया था।

– 1956 के मेलबोर्न ओलम्पिक खेलों में भारत को फुटबॉल में चौथा स्थान मिला था। खेद का विषय यह रहा कि1960 के बाद से भारत फुटबॉल में ओलम्पिक के लिए क्वालीफाई नहीं कर सका।

अब फुटबॉल के नियमों/विनियमों को भी जानें–

नियम–1 क्रीड़ा का स्थान–

क्रीड़ा क्षेत्र का चिन्हांकन (Field Marking)

1. फुटबॉल का मैदान आयताकार होता है। दो लंबी बाउन्ड्री रेखाएं टच लाइन्स और दो छोटी रेखाएं गोल लाइन्स कहलाती हैं।
2. Field of Play की सभी रेखाओं की चौड़ाई 5 इंच से अधिक नहीं होनी चाहिए।
3. Field of Play, Half way रेखा द्वारा दो Halves में बंटा होता है।
4. Centre Mark, Half way line का मध्य बिन्दु होता है, इसके चारों ओर 9.15 मी. (10 गज) Radius dk Circle खींचा जाता है।

परिमाप (Dimension)

Touch Line (Length)–Min. 90 m. to Max. 120m

Goal Line (Width)–Min. 45 m. to Max. 90m.

अंतर्राष्ट्रीय मैचों के लिए परिमाप (Dimension for International Matches)

Touch Line (Length)–Main. 100m. to Max. 110m. Goal Line (Width)–Main. 64m. to Max. 75m.

टिप्पणी

गोल एरिया

Goal Area की लंबाई एवं चौड़ाई 5.5 मी. (6 गज) होती है।

पेनाल्टी एरिया

Penalty Area की लंबाई तथा चौड़ाई 16.5 मी. होती है।

कॉर्नर एरिया

Corner Area dk Radius 1 मीटर का होता है।

फ्लैग पोस्ट

फ्लैग पोस्ट की लंबाई 1.5 मी. (5 फीट) से कम नहीं होनी चाहिए। Half-way Line पर Flag Post, टच लाईन से बाहर 1 मीटर से कम दूरी पर नहीं लगे होने चाहिए।

गोल पोस्ट

1. Goal Post की लंबाई 7.32 मी. (8 गज) तथा भूमि से ऊंचाई 2.44 मी. (8 फीट) की होती है।
2. Goal Post, Crossbar का रंग सफेद और चौड़ाई एक समान होती है, वह 12 सेमी. या 5 इंच से अधिक नहीं होनी चाहिए।

नियम–2 बॉल की गुणवत्ता और इसका मापन

1. गेंद गोलाकार होती है।
2. बॉल की परिधि अधिकतम 28 इंच एवं न्यूनतम 27 इंच होती है।
3. मैच प्रारम्भ होने से पहले 450 ग्राम से अधिक तथा 410 ग्राम से कम वजन नहीं होना चाहिए।

नियम–3 खिलाड़ी

1. मैच दो टीमों के मध्य खेला जाता है। प्रत्येक टीम में 11 से अधिक खिलाड़ी नहीं होते। इनमें एक गोलकीपर होता है। यदि किसी टीम में 7 से कम खिलाड़ी होंगे तो मैच नहीं खेला जाएगा।
2. फीफा द्वारा आयोजित प्रतियोगिताओं में अधिकतम 3 Substitution किये जा सकते हैं। प्रतियोगिता के नियम में इसकी व्याख्या अवश्य होनी चाहिए कि अधिकतम कितने खिलाड़ियों का Substitution किया जाना चाहिए अर्थात् 3 से 7 के बीच का।
3. अन्य रिजर्व खिलाड़ियों में से किसी एक खिलाड़ी से रैफरी की आज्ञा से गोलकीपर को बदल सकते हैं। गोलकीपर के Substitution के समय खेल रोक देना चाहिए।

नियम–4 खिलाड़ी के उपकरण

1. खिलाड़ी को कोई ऐसा परिधान नहीं पहनना चाहिए, जो दूसरों एवं स्वयं के लिए खतरा बने। किसी प्रकार की ज्वैलरी भी नहीं पहननी चाहिए।

2. खिलाड़ियों को निम्न चीजें पहनना आवश्यक है–Jersey, Shorts, Socks, Shinguards.
3. प्रत्येक गोलकीपर की पोशाक का रंग ऐसा होना चाहिए जो उसे अन्य खिलाड़ियों एवं रैफरी से अलग पहचान दे सके।

टिप्पणी

नियम–5 रैफरी

1. प्रत्येक मैच रैफरी द्वारा नियंत्रित किया जाता है, उसकी सहायता के लिए दो सहायक रैफरी एवं जरूरत पड़ने पर चौथे अधिकारी की भी सहायता ली जा सकती है।

नियम–6 मैच के अन्य निर्णायक–गण

1. अन्य मैच अधिकारियों में दो सहायक रैफरी भी नियुक्त किये जाते हैं जिनका दायित्व रैफरी के कहे अनुसार कार्य करना होता है।

नियम–7 मैच की समयावधि

1. खेल 45 मिनट की दो समान अवधियों तक खेला जाता है, नहीं तो, जब तक रैफरी की अनुमति से कोई अन्य समय निश्चित हो।
2. मध्य अंतराल 15 मिनट से अधिक नहीं होना चाहिए।

नियम–8 खेल को प्रारम्भ और पुनः प्रारम्भ करना

1. मैच के पहले टॉस किया जाता जो टीम टॉस जीतती है, वही निर्णय भी लेती है कि पहले हॉफ में किस गोल पर अटैक करेगी। दूसरी टीम मैच प्रारम्भ करने के लिए Kick Off लेती है।
2. दूसरे हॉफ में जिस टीम ने टॉस जीता था वह Kick off लेकर मैच प्रारम्भ करती है।
3. जब कोई टीम गोल करती है तो विपक्षी टीम Kick off लेती है।
4. किक–ऑफ–किक–ऑफ खेल को Start and re-start करने का एक तरीका अपनाया जाता है। किक ऑफ द्वारा सीधे ही गोल किया जा सकता है।
5. किक–ऑफ की प्रक्रिया–
   (क) किक ऑफ के समय सभी खिलाड़ी अपने क्रीड़ा क्षेत्र में रहते हैं। विपक्षी दल का प्रत्येक खिलाड़ी किक ऑफ के समय कम–से–कम 9.15 मी की दूरी पर रहेगा।
   (ख) गेंद को Centre Mark पर स्थिर रखेंगे और खिलाड़ी गेंद को किसी भी दिशा में किक कर सकता है (पहले खिलाड़ी को गेंद को केवल आगे किक करना होता था) किक करने वाला खिलाड़ी गेंद को दुबारा छू नहीं सकता जब तक कि कोई अन्य खिलाड़ी गेंद को छू न लें।
   (ग) किक ऑफ करने वाला खिलाड़ी यदि गेंद को दुबारा छूता है तो विपक्षी टीम को Indirect Free Kick दी जाती है। जब कोई टीम गोल कर देती है तो किक ऑफ दूसरी टीम लेकर मैच फिर से शुरू करती है।

नियम–9 बॉल खेल में और खेल से बाहर

1. गेंद खेल से बाहर मानी जाती है,

- जब गेंद भूमि या हवा में Goal Line or Touch Line को पूरी तरह पार कर ले।
- जब रैफरी द्वारा खेल रोक दिया जाए।

टिप्पणी

2. गेंद अन्य समय के अतिरिक्त तब भी खेल में मानी जाती है,
   - जब गेंद गोल पोस्ट, क्रॉसबार या Corner Flag Posts से Rebound होकर खेल में बनी रहती है।
   - जब गेंद Match Ofûcial से Rebound होकर खेल में बनी रहती है।

नियम–10 मैच के परिणाम का निर्धारण

1. गोल तभी माना जाएगा जब समूची गेंद गोल स्तम्भों के बीच क्रॉस–बार के नीचे और गोल रेखा के पार न चली जाए, बशर्ते इस बीच गोल करने वाले दल द्वारा कोई उल्लंघन न हुआ हो।
2. जो टीम अधिक संख्या में गोल करती है उसे ही विजेता घोषित किया जाता है।

नियम–11 ऑफ साइड

1. खिलाड़ी को उस स्थिति में ऑफ साइड माना जाएगा यदि उसकी अपेक्षा दो विपक्षी खिलाड़ी अपने गोल–रेखा के समीप न हों।
2. खिलाड़ी ऑफ साइड नहीं माना जाएगा–
   (अ) यदि वह अपने क्रीड़ा क्षेत्र के हॉफ में है।
   (ब) यदि वह दूसरे अंतिम विपक्षी खिलाड़ी के बराबर खड़ा है।
   (स) यदि वह दो अंतिम विपक्षी खिलाड़ी के साथ खड़ा है।

नियम–12 त्रुटियां एवं दुराचरण

1. त्रुटियों एवं दुराचरण के कारण खिलाड़ी को निम्नलिखित दंड दिये जाएंगे–
   (a) Direct Free Kick, (b) Indirect Free Kick (c) Penalty Kick

नियम–13 फ्री किक

1. फ्री किक दो प्रकार की होती है–डाइरेक्ट फ्री किक और इनडाइरेक्ट फ्री किक।
2. यदि Direct free kick से गेंद विपक्षी गोल में चली जाती है तो यह गोल माना जाता है।
3. यदि Direct free kick से गेंद स्वयं के गोल में चली जाती है तो विपक्षी टीम को कॉर्नर किक दी जाती है।
4. Indirect free kick से गोल तभी माना जाएगा यदि किक के बाद गेंद किसी खिलाड़ी को छूकर गोल में जाती है।
5. यदि Indirect free kick से सीधे ही विपक्षी गोल पर किक किया जाता है तो गोल किक दी जाती है।
6. यदि Indirect free kick से सीधे ही स्वयं के गोल पर किक किया जाता है तो विपक्षी टीम को कॉर्नर किक दी जाती है।
7. दोनों किकों को लेते समय गेंद स्थिर रहनी चाहिए। किकर को गेंद को दोबारा तभी छूना चाहिए जब गेंद किसी अन्य खिलाड़ी द्वारा छू दी जाए।

टिप्पणी

नियम–14 पेनाल्टी किक

1. पेनाल्टी किक से सीधे ही गोल किया जा सकता है।
2. लेने वाले खिलाड़ी के अतिरिक्त अन्य खिलाड़ी पेनाल्टी चिन्ह के पीछे कम–से–कम 9.15 मीटर की दूरी पर रहेंगे।

नियम–15 थ्रो–इन

1. थ्रो–इन खेल को फिर से शुरू करने की एक प्रणाली है। थ्रो–इन से सीधा गोल नहीं किया जा सकता।
2. जब गेंद किसी खिलाड़ी को अंतिम बार छूते हुए भूमि पर या हवा में ज्वनबी स्पदम को पार कर जाए तो उस खिलाड़ी के विपक्षी को थ्रो–इन दिया जाता है।
3. थ्रो–इन लेते समय सभी विपक्षी खिलाड़ी 2 मीटर की दूरी पर होने चाहिएं।

नियम–16 गोल किक

1. गोल किक खेल को फिर से प्रारम्भ करने की एक प्रणाली है। जब समूची गेंद आक्रमण दल के खिलाड़ी को छूने के बाद भूमि पर अथवा हवा में गोल रेखा को पार कर जाती है और नियम 10 के अंतर्गत गोल नहीं होता तो गोल किक दी जाती है।
2. गोल किक से सीधा गोल किया जा सकता है, परन्तु यह केवल विपक्षी टीम के विरुद्ध होगा।

नियम–17 कॉर्नर किक

1. जब समूची गेंद आक्रमण दल के खिलाड़ी को छूने के बाद भूमि पर अथवा हवा में गोल लाइन को पार कर जाती है और नियम 10 के अंतर्गत गोल नहीं होता तो कॉर्नर किक दी जाती है।
2. कॉर्नर किक से सीधा गोल किया जा सकता है, परन्तु यह केवल विपक्षी टीम के विरुद्ध होगा।
3. कॉर्नर किक के समय विपक्षी दल के सभी खिलाड़ी गेंद से 9.15 मी. की दूरी पर रहेंगे, जब तक कि गेंद को खेला नहीं जाता। फुटबॉल के मूलभूत कौशल निम्नलिखित होते हैं–

   इनस्टेप किक, पंट किक, सिसर किक, चिप किक, रोल बैक किक, ड्रिब्लिंग, हैडर, पासिंग, थ्रो–इन, टैकलिंग, ट्रैपिंग, कॉर्नर–किक।

फुटबॉल के महत्त्वपूर्ण टूर्नामेंट हैं–

1. फीफा विश्व कप
2. एशिया कप
3. कोपा–अमेरिका कप
4. यूएफा कप
5. कोलम्बो कप
6. डूरण्ड कप, 1888 से प्रारम्भ

7. डी.सी.एम. कप, 1945 से शुरू
8. फेडरेशन कप, 1977 से शुरू
9. संतोष ट्राफी (राष्ट्रीय पुरुष)
10. बेगम हजरत महल ट्राफी (राष्ट्रीय–महिला)
11. डॉ. बी.सी. राय ट्राफी (राष्ट्रीय जूनियर फुटबॉल)
12. मीर इकबाल हुसैन ट्राफी (राष्ट्रीय सब–जूनियर फुटबॉल)

• वॉलीबॉल

सर्वप्रथम वॉलीबॉल का इतिहास जान लें–

1895 में वॉलीबॉल खेल का आविष्कार अमेरिका में हुआ था। इस खेल के आविष्कारकर्ता थे–विलियम जी. मार्गन।

1922 में न्यूयार्क में पहली–पहली बार वाई.एम.सी.ए. द्वारा राष्ट्रीय वॉलीबॉल प्रतियोगिता का आयोजन किया गया था।

1924 के पेरिस ओलम्पिक खेलों में वॉलीबॉल को प्रदर्शनी खेलों के अंतर्गत शामिल किया गया था।

1947 में अंतर्राष्ट्रीय वॉलीबॉल संघ की स्थापना पेरिस, फ्रांस में हुई थी।

1949 में पहली बार पुरुषों के लिए विश्व चैम्पियनशिप का आयोजन प्राग में किया गया था।

1964 में प्रथम बार वॉलीबॉल को टोक्यो ओलम्पिक खेलों में शामिल किया गया था।

1966 में वॉलीबॉल की पहली राष्ट्रीय चैम्पियनशिप लाहौर में आयोजित की गई। भारतीय वॉलीबॉल संघ की स्थापना 1951 में की गई थी।

वॉलीबॉल खेल के नियम एवं विनियम इस प्रकार होते हैं–

नियम–1 सुविधा एवं उपकरण

क्रीड़ा स्थल का परिमाप

1. वॉलीबॉल कोर्ट आयताकार 18×9 मीटर का होता है जिसके साथ कम–से–कम 3 मी. चौड़ा फ्री जोन होता है। क्रीड़ा स्थल कम–से–कम 7 मीटर की ऊंचाई तक सभी बाधाओं से स्वतंत्र होना चाहिए।

वॉलीबॉल कोर्ट की रेखाएं

1. वॉलीबॉल के कोर्ट में तीन प्रकार की लाइनें होती हैं।
2. वॉलीबॉल कोर्ट की सभी लाइनें 5 सेमी. चौड़ी होती हैं। इनका रंग हल्का होता है। फ्लोर और अन्य लाइन के रंगों से अलग होता है।
3. मध्य रेखा–कोर्ट को दो समान भागों में विभक्त करती है। इसकी माप 9×9 मीटर होती है। यह लाइन नेट के नीचे साइड–लाइन–टू–साइड लाइन को बढ़ाई जाती है।

टिप्पणी

4. आक्रमण रेखा–हरेक खेल के मैदान पर सेंटर लाइन के पीछे 3 मीटर की दूरी पर एक रेखा खींचते हैं। इसे आक्रमण रेखा कहा जाता है। यह लाइन फ्रन्ट जोन को चिन्हित करती है।
5. जोन और एरिया–वॉलीबॉल में 4 जोन होते हैं, यथा–फ्रन्ट जोन, सर्विस जोन, सब्सीट्यूशन जोन और लीबिरो रिप्लेसमेंट जोन। एरिया वार्म–अप एरिया और पेन्ल्टी एरिया होते हैं।

तापमान

1. न्यूनतम तापमान 10 डिग्री सेंटीग्रेड से कम नहीं होना चाहिए। अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं में अधिकतम तापमान 250C एवं न्यूनतम तापमान 160C होना चाहिए।

प्रकाश–व्यवस्था

1. अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिताओं के लिए Playing area में लाइट 1000 से 1500 स्नग के बीच होनी चाहिए। यह Playing area के तल से 1 मीटर ऊपर मापा जाता है।

नेट की ऊंचाई

नेट की संरचना

1. वॉलीबॉल नेट– वॉलीबॉल नेट की ऊंचाई पुरुषों के लिए 2.43 मीटर और महिलाओं के लिए 2.24 मीटर रखी जाती है। इसका नेट 1 मीटर चौड़ा तथा 9.50 मीटर से 10 मीटर लंबा (दोनों ओर के साइड बैंड से 25 से 50 सेमी.) होना चाहिए। इसकी जाली 10 सेमी. वर्ग की होती है।
2. नेट के ऊपरी भाग में एक horizontal band लगा होता है जो 7 सेमी. चौड़ी सफेद कैनवास की पट्टी से निर्मित होता है। नेट के निचले भाग में भी एक horizontal band लगा होता है जो 5 सेमी. चौड़ा होता है।

साइड बैंड

1. नेट के दोनों किनारों पर 5 सेमी. चौड़े एवं 1 मीटर लंबे सफेद रंग के दो White Band, Side Line के ऊपर लगाये जाते हैं ये नेट का ही भाग होते हैं।

एंटीना

1. एंटीना एक Flexible rod यह फाइबर ग्लास से बना होता है। इसकी लंबाई 1. 80 मीटर एवं Diameter 10 मिलीमीटर होता है।
2. एंटीना नेट से 80 सेमी. ऊंचा रहता है। इसमें 10 सेमी. की लाल और सफेद रंग की Stripes होती हैं। एंटीना को भी नेट का ही भाग माना जाता है।

नेट पोस्ट

1. क्रीड़ा क्षेत्र के दोनों छोरों पर नेट को बांधने के लिए दो Posts होते हैं। ये Side Line से 0.50–1.00 मीटर की दूरी पर होते हैं। इनकी ऊंचाई 2.55 मीटर होती है।

बॉल स्टैंडर्ड

1. बॉल गोल होती है। ये सिंथेटिक लेदर से बनी होती है।
2. बॉल विभिन्न रंगों के संयोजन में हो सकती है।

3. बॉल की परिधि 65–67 सेमी. और भार 260–280 ग्राम के बीच होता है।
4. बॉल में आंतरिक दबाव 0.30 to 0.325 kg/cm2 (4.26 to 4.61 psi) (294.3 to 318.82 mbar or hPa) होता है।

टिप्पणी

नियम–2 खिलाड़ी

1. टीम में अधिकतम 12 खिलाड़ी होते हैं। इनमें स्पइमतव के अतिरिक्त एक खिलाड़ी Team Captain होता है। इसके अतिरिक्त कोचिंग स्टाफ में 1 कोच, 1 सहायक कोच, 1 ट्रेनर तथा 1 मेडिकल डॉक्टर भी होते हैं।
2. खिलाड़ियों की जर्सी पर 1 से 20 तक नंबर होने चाहिएं।
3. खिलाड़ियों की जर्सी पर Chest and Back पर 15 और 20 सेमी. ऊंचे नंबर होने चाहिएं। नंबर संकेतिक करने वाली Stripe की चौड़ाई 2 सेमी. होनी चाहिए।
4. कप्तान की पहचान के लिए कप्तान के बैमेज पर 8 गुणी 2 सेमी.ेजतपचम लगाई जाती है।

नियम–3 खेल का प्रारूप

1. जब कोई टीम न्यूनतम 25 अंक बनाकर 2 अंकों से बढ़त प्राप्त कर लेती है तो वह सैट जीत जाएगी। स्कोर टाई होने पर अर्थात् जब स्कोर 24–24 हो तो टीम 2 अंकों का लाभ प्राप्त करती है, तब वह सैट जीती मानी जाएगी।
2. जो टीम 3 सैट जीतती है। वह मैच जीत जाती है।
3. जब दोनों टीमें 2–2 सैट जीतती हैं तो निर्णायक सैट (5वां सैट) 15 अंक का होगा। स्कोर टाई होने पर कम–से–कम 2 अंक की लीड होने पर ही टीम विजयी मानी जाएगी।

अपरिपूर्ण टीम

1. यदि टीम को सूचित किये जाने पर भी वह खेलने से इंकार कर देती है और यदि कोई दल बिना उचित कारण के क्रीड़ा क्षेत्र में समय पर उपस्थित नहीं होता है, तब उस स्थिति में वह उसकी त्रुटि मानी जाएगी। ऐसे में, विपक्षी टीम को विजेता घोषित कर दिया जाएगा। परिणाम 0–3 अंक होगा तथा प्रत्येक सैट के लिए 0–25 अंक होंगे।

वार्म–अप सत्र

मैच प्रारम्भ होने के लिए टीम को अभ्यास के लिए कोर्ट दिया गया है तो दोनों टीमों को नेट पर वार्म–अप करने के लिए 6 मिनट दिए जाएंगे, यदि नहीं दिया गया तो 10 मिनट दिये जाएंगे।

यदि दोनों टीमों के कप्तान एक ही समय अपने खिलाड़ियों के Warming-up के लिए निवेदन करते हैं तो दोनों टीमों को 3 या 5 मिनट दिये जाएंगे।

टीम का प्रारंभिक विन्यास

1. पूरे खेल में 6 खिलाड़ी ही खेल में भाग लेंगे।

नियम–4 खेल क्रिया

1. पहले Referee के सीटी देने के बाद सर्विस करने के क्षण से गेंद खेल में मानी जाती है।

टिप्पणी

2. यदि खेल के दौरान कोई त्रुटि करता है अथवा गेंद क्षेत्र से बाहर चली जाती है तो रैफरी सीटी देकर रैली समाप्त कर देता है। गेंद खेल से बाहर चली जाती है।
3. खिलाड़ी गेंद को शरीर के किसी भी अंग से स्पर्श कर सकता है।
4. यदि खेल के दौरान गेंद नेट को चीरकर निकल जाती है या जाल फट जाता है तो Rally रद्द कर दी जाएगी और फिर से खेली जाएगी।
5. विपक्षी क्षेत्र को एक या दोनों पैर से स्पर्श करने की अनुमति है। परन्तु शर्त यह है कि पैर Centre Line को Touch कर रहे हों।

नियम–5 व्यवधान, समयांतराल एवं विलंब

1. प्रत्येक टीम प्रत्येक सैट में nks Time out तथा 6 खिलाड़ियों का Substitution कर सकती है। प्रत्येक Time out का समय 30 सेकेण्ड का होता है।
2. विश्व कप और अधिकारिक प्रतियोगिताओं में सैट 1–4 के दौरान 2 Technical Time out 60 सेकेण्ड के स्वतः ही मिल जाएंगे, जब कोई टीम बढ़त लेती हुई 8वें और 16वें अंक तक पहुंच जाती है, तब Technical Time out 60 सेकेण्ड का होता है।
3. निर्णायक 5वें सैट में कोई Technical Time out नहीं दिया जाता है, केवल दो टाइम आउट 30 सेकेण्ड के प्रत्येक टीम को दिये जाते हैं।
4. दिये कोई खिलाड़ी खेल में विलंब करता है तो पहली बार उस टीम को विलंब चेतावनी दी जाएगी। यदि टीम दुबारा से देरी करती है तो विपक्षी टीम को 1 अंक और सर्विस दी जाएगी।
5. यदि खेल के दौरान कोई बाहरी व्यवधान होता है तो खेल रोक दिया जाएगा और रैली दुबारा खेली जाएगी।
6. यदि अज्ञात परिस्थितिवश मैच को चालू रखने में असमर्थता हो रही है और मैच को चालू करने में 4 घंटे से अधिक का विलम्ब होता है तो पूरा मैच फिर से खेला जाएगा।

समयांतराल

1. प्रत्येक सैट के बीच 3 मिनट के समय का अंतर होता है।
2. दूसरे और तीसरे सैट के बीच के समय के अंतर को 10 मिनट तक बढ़ाया भी जा सकता है।

कोर्ट परिवर्तन

प्रत्येक सेट की समाप्ति के बाद टीम दिशा परिवर्तन करेंगी बशर्ते कि यह 5वां सेट न खेला जा रहा हो। निर्णायक सेट में जब कोई टीम 8 अंक बना लेती है तो टीम बिना देर किये दिशाएं बदलती है।

नियम–6 लिबेरो खिलाड़ी

1. मैच के पहले Libero Player को स्कोर सीट में जो स्थान विशेष रूप से रखा गया है उसमें अंकित किया जाना चाहिए।
2. Libero टीम कप्तान और गेम कप्तान नहीं बन सकता है।

3. Libero खिलाड़ी को Back Zone के किसी भी खिलाड़ी से बदला जा सकता है।
4. Libero खिलाड़ी भिन्न रंग की पोशाक पहनता है। Libero की जैकेट का रंग भी अन्य खिलाड़ियों की जैकेट से अलग होना चाहिए।

5. Libero न तो Service और न ही ठसवबा कर सकता है।
6. Libero Player का Substitution तभी होगा जब गेंद खेल से बाहर हो, वह भी सर्विस के लिए सीटी बजने से पहले।
7. सर्विस के लिए सीटी दिये जाने के बाद किया गया Substitution रद्द नहीं किया जाएगा, किन्तु इसके लिए चेतावनी दी जा सकती है।
8. नामांकित लिबेरो खिलाड़ी के घायल होने पर यदि वो खेल नहीं सकता तो कोच नये Libero Player को मनोनीत करता है।
9. इस प्रकार नया Libero Player खेल के बचे हुए समय के लिए Libero हो जाता है।
10. यदि नया Libero Player भी घायल हो जाता है तो पुनः किसी और खिलाड़ी को Libero Player मनोनीत कर सकते हैं परन्तु प्रथम Libero Player फिर से नहीं खेल सकता।
11. यदि Libero Player अयोग्य कर दिया जाता है और टीम ने दूसरे Libero Player का नाम स्कोर सीट में नहीं लिखा गया है तो टीम को शेष समय के लिए बिना Libero Player के खेलना पड़ेगा।

नियम–7 खिलाड़ियों का व्यवहार

1. मैच के दौरान किसी टीम के खिलाड़ी द्वारा पहली बार अभद्र व्यवहार करने पर दंड स्वरूप विपक्षी टीम को 1 अंक तथा सर्विस दी जाएगी।
2. यदि किसी टीम के खिलाड़ी को निकाल दिया गया है तो वह चल रहे सेट के शेष समय में भाग नहीं लेगा।
3. यदि किसी टीम के खिलाड़ी को दंड स्वरूप अयोग्य कर दिया गया है तो उसे बिना किसी अन्य परिणाम के साथ प्रतियोगिता नियंत्रण क्षेत्र को तुरंत छोड़ना पड़ता है।

दण्ड के लिए कार्ड दिखाना

1. चेतावनी–चरण–1 : मौखिक चेतावनी और, चरण–2 : पीला कार्ड दिखाया जाता है।
2. दंड–लाल कार्ड दिखाया जाता है।
3. निष्कासन–लाल एवं पीला कार्ड संयुक्त रूप से दिखाया जाता है।
4. निरर्हता–लाल एवं पीला कार्ड अलग–अलग दिखाया जाता है।

नियम–8 रैफरी

वॉलीबॉल मैच के लिए निम्न अधिकारियों को नियुक्त किया जाता है–

1. प्रथम रैफरी
2. द्वितीय रैफरी

3. स्कोरर

4. 4 या 2 लाइन जज

टिप्पणी

वॉलीबॉल के मूलभूत कौशल इस प्रकार हैं–

अंडरहैंड सर्विस, टेनिस सर्विस, फ्लोटिंग सर्विस, स्मैश, डम्प, टिप अथवा लिफ्ट, बम्प या अंडरआर्म लिफ्ट, डाइव लिफ्ट, ब्लॉक तथा डब हिट।

वॉलीबॉल के महत्त्वपूर्ण टूर्नामेंट हैं–

1. विश्व कप
2. एशिया कप
3. फेडरेशन कप
4. मपाकट्टू एम.एम. जोसेफ ट्राफी (राष्ट्रीय–पुरुष), और
5. पूर्णिमा ट्राफी (राष्ट्रीय–महिला)

• खो–खो

यह खो–खो खेल तो भारत देश का बहुत ही लोकप्रिय खेल है, जो बड़े शहरों से लेकर छोटे गांवों तक फैला हुआ है। असल में यह एक पारिवारिक खेल भी है। इसे जहां चाहें, जब चाहें अपनी इच्छा से खेल सकते हैं। यही कारण है कि साधारण–से–साधारण लोग भी इस खेल को खेल लेते हैं।

प्राचीन इतिहास में खो–खो

जैसा आपको पहले भी बताया जा चुका है कि खो–खो साधारण खेलों में आता है। इस खेल का इतिहास जब हम देखते हैं और पढ़ते हैं तो पता चलता है। इस खेल की नींव महाभारत काल में रखी गई थी। इसके पश्चात् हर दौर में ही यह खेल किसी–न–किसी रूप में हमें नजर आता ही रहा है। अब तो करीब हर स्कूल कॉलेजों में यह खेल खेला ही जाता है। नए खिलाड़ियों के लिए पहले इसके बारे में जानकारी प्राप्त करनी बहुत जरूरी है–

खो–खो खेल भी एक विशुद्ध रूप से भारतीय खेल ही है। अनुमानों के अनुसार इसकी उत्पत्ति महाराष्ट्र में हुई थी। महाराष्ट्र के अखाड़ों व व्यायामशालाओं में इसका विकास हुआ और फिर यह धीरे–धीरे लोकप्रिय होता चला गया।

समय के साथ इसका स्वरूप भी बदला और बड़ौदा स्थित हनुमान व्यायाम प्रचारक मंडल ने इस खेल को वर्तमान रूप दिया। सन् 1928 में अखिल महाराष्ट्र शारीरिक शिक्षण मंडल की स्थापना हुई थी। उसने इस खेल को विकसित करने और लोकप्रिय बनाने में विशेष भूमिका निभाई। खो–खो के नियमों को अंतिम रूप देने के उद्देश्य से दक्षिण जिमखाना ने पूना में एक सम्मेलन भी आयोजित किया था।

सन् 1955 में भारतीय खो–खो फेडरेशन का गठन हुआ। इसने सन् 1960 में पुरुषों के लिए पहली राष्ट्रीय खो–खो प्रतियोगिता का आयोजन किया। यह खेल महिलाओं में भी

शीघ्र ही लोकप्रिय हो गया। सन् 1961 में कोल्हापुर में महिलाओं के लिए भी राष्ट्रीय खो–खो प्रतियोगिता का आयोजन हुआ।

सन् 1985 में खो–खो फेडरेशन ऑफ इंडिया की स्थापना हुई। सन् 1987 में एशियन खो–खो फेडरेशन का अस्तीत्त्व सामने आया। इनसे पहले इस खेल के नियम कोई विशेष सुदृढ़ नहीं थे।

टिप्पणी

पहली राष्ट्रीय स्तर की खो–खो खेल की प्रतियोगिता सन् 1956–60 में प्रथम बार विजयवाड़ा में आयोजित की गई। मुंबई की टीम को इसमें प्रथम स्थान मिला। जबकि आंध्र प्रदेश दूसरे नम्बर पर ही रहा था।

एकलव्य और रानी लक्ष्मीबाई पुरस्कार फेडरेशन ने शुरू कराए। साथ ही, 1970–71 में खो–खो खेल में अर्जुन पुरस्कार भी शुरू हुआ। यह पहला अर्जुन पुरस्कार गुजरात के सुधीर को दिया गया था। सन् 1971 में एन.आई.एस. पटियाला ने इस खेल में ओरियन्टेशन कोर्स की भी शुरूआत की। भारत सरकार ने भी गांव से खिलाड़ियों को तैयार करने के लिए अभियान चलाए। जिसके चलते कुछ चुनिंदा खेलों में खो–खो को भी इस कार्यक्रम का हिस्सा बनाया गया। एन.आई.एस. ने सन् 1975 में साउथ सेंटर बंगलौर में खो–खो के साथ कबड्डी में भी नियमित कोर्स शुरू किए।

सरकार ने इस खेल के खिलाड़ियों के पुरस्कार भी घोषित किए। इनमें अर्जुन पुरस्कार प्रमुख माना जाता है। इसके साथ ही एकलव्य पुरस्कार पुरुष वर्ग और रानी लक्ष्मीबाई पुरस्कार महिला खिलाड़ियों के लिए घोषित किए गए। जबकि वीर अभिमन्यु पुरस्कार 18 वर्ष से कम आयु के लड़कों के लिए रखा गया। जानकी पुरस्कार 16 वर्ष से कम उम्र की लड़कियों के लिए घोषित किए गए। इस खेल में अनेकानेक प्रतियोगिताएं भी शामिल की गई। इनमें नेशनल चैम्पियनशिप, स्कूल नेशनल चैम्पियनशिप, मिनी स्कूल चैम्पियन शिप, वूमैन नेशनल ऑल इंडिया इंटरवर्सिटी तथा फेडरेशन कप भी खेले जाते हैं।

परन्तु यह भी कटु सत्य है कि यह खेल भारतीय उप–महाद्वीप के बाहर लोकप्रिय नहीं हो पाया है। जैसा कि पहले भी बतलाया जा चुका है कि भारत के अतिरिक्त केवल बांग्लादेश, पाकिस्तान, श्रीलंका, म्यांमार में ही यह खेला जाता है। इस खेल के भी अनेक रूप हैं, परन्तु भारतीय कबड्डी फेडरेशन सिर्फ कबड्डी संजीवनी को ही मान्यता देता है।

यह अत्यन्त सरल व सस्ता खेल है, जिसमें थोड़ी–सी जगह की आवश्यकता होती है। परन्तु शहरों में यह खेल अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाया है। अभी तो इसके पूर्णतः एशियाई स्तर का खेल होने की भी कोई संभावना नजर नहीं आती है।

अब हम आपको इस खेल की जानकारी देना इस खेल के मैदान से शुरू करते हैं– खो–खो का मैदान आयताकार होता है यह 27 मी. × 15 मी. का तैयार होना चाहिए।

इसके मैदान के अन्त में दो आयताकार होते हैं।

दो आयताकारों की एक भुजा 16 मीटर और दूसरी 2.70 मीटर होती है। इन आयताकारों के बीच में दो लकड़ी के स्तम्भ (पोल) होते हैं, जिनके बीच की गली का फासला 21.60 मी. लम्बा और 30 सेमी. चौड़ा होता है। इसमें 30 सेमी. × 30 सेमी. के आठ वर्ग होते हैं।

इन छोटे वर्गों के आर–पार–8 क्रास लेन (2.60) (2) और (20.40) (6) होती है जो बीच वाली गली के समकोण (900) 15 मीटर लम्बी तथा 30 सेमी. चौड़ी होगी केन्द्र गली। इसके दो बराबर के भाग करती है। इसका हर भाग 7.30 मी. का होता है।

इस मैदान को पूरी तरह से समझने के लिए चित्र को देखें तो अपने आप ही आपकी समझ में खो–खो का मैदान आ जाएगा। अब कुछ खेल नियम भी जान लें।

परिधियां

टिप्पणी

स्तम्भ रेखा का बाहरी भाग आयताकार कहलाता है। केन्द्रीय लेन तथा बाहरी सीमाएं निश्चित करने वाली दोनों आयताकारों की रेखाओं से 7.30 मी. दूरी को दोनों पार्श्व रेखाओं की परिधियां कहते हैं।

मेजर

वर्गों में बैठे खिलाड़ी को मेजर कहते हैं। विरोधी खिलाड़ी को पकड़ने या छूने के लिए भागने वाला मेजर सक्रिय अनुधावक कहलाता है।

धावक

मेजरों के विरोधी खिलाड़ी, धावक अथवा रनर कहे जाते हैं।

खो देना

अच्छी खो देने के लिए सक्रिय मेजर को बैठे हुए मेजर की पीछे के हाथ से छूते ही 'खो' शब्द बहुत ऊंची आवाज में बोलना होता है। साथ ही उसे छूना भी होता है। यह दोनों शब्द मेजर के मुख से एक साथ निकलने चाहिएं।

त्रुटियां

1. यदि कोई भी बैठा हुआ या खेलता हुआ मेजर किसी नियम का उल्लंघन करता है तो यह उसकी त्रुटि मानकर उसे फाउल घोषित कर दिया जाएगा।
2. जब भी कोई खिलाड़ी मेजर अपनी खास दिशा की ओर जाते समय अपने कन्धे की रेखा 900 कोण से अधिक दिशा में मोड़ ले तो यह भी त्रुटि मानी जाएगी।
3. यदि कोई खिलाड़ी खेल लाइन पर चलता हुआ विपरीत दिशा की ओर आ जाता है तो यह भी एक त्रुटि ही मानी जाएगी।
4. जब रनर के दोनों पांव सीमा से बाहर हों और धरती को छू लें तो उसे आउट माना जाएगा।

जब सारे रनर सात मिनटों के अंदर आउट हो जाएं तो मेजरों द्वारा रनों के विरूद्ध 'लीना' अंकित किया जाएगा। लीना के अंक का प्वाइंट नहीं मिलता।

अब, खो–खो खेल के कुछ और नियम भी देखें–

1. दौड़ने अथवा मेजर बनने का निर्णय टास द्वारा किया जाता है।
2. एक मेजर को छोड़कर शेष सारे मेजर वर्ग ऐसे बैठेंगे कि दो एक साथ बैठे मेजरों का मुंह एक ओर नहीं होगा। नौवां मेजर (सक्रिय) पीछा करने के लिए किसी एक स्तम्भ के पास रहेगा।
3. सक्रिय मेजर के शरीर का कोई भी अंग गली के साथ छू नहीं सकता। वह स्तम्भों के अंदर से केन्द्रीय रेखा पार नहीं कर सकता।
4. यदि कोई मेजर बैठा हो तो उसे 'खो' देते समय जोर से खो की आवाज लगानी होगी। वह बिना खो प्राप्त किए उठ नहीं सकता।
5. जब कोई सक्रिय मेजर उस वर्ग की केन्द्रीय गली से बाहर चला जाता है जिस पर कोई मेजर बैठा हो और यदि वह निष्क्रिय मेजर की पकड़ छोड़ देता है तो फिर सक्रिय मेजर उसे खो नहीं देगा।

6. ऊपर लिखे 3, 4, 5 नियम का उल्लंघन फाउल माना जाएगा।
7. सक्रिय मेजर खो देने के पश्चात् यदि उस समय खो पाने वाले का स्थान ग्रहण नहीं करता तो उसे त्रुटि माना जाएगा।

टिप्पणी

8. ठीक से 'खो' देने के पश्चात् यदि एक्टिव मेजर का कदम सेंटर लाइन को छूता हुआ हो तो उसे फाउल नहीं माना जाता (और जब तक किसी भी खिलाड़ी का क्रास लेन की धरती को स्पर्श तब तक वह उस लेन से बाहर नहीं माना जाएगा)।
9. आदेश लेने के पश्चात् एक्टिव मेजर पुनः क्रास लाइन में आक्रमण कर सकता है।
10. सक्रिय मेजर वह दिशा ग्रहण करेगा जिस ओर उसका मुंह मुड़ चुका होगा। यानी जिस ओर उसने अपने कंधे की रेखा को मोड़ा होगा।
11. सक्रिय मेजर किसी एक स्तम्भ की ओर दिशा–ग्रहण करने के पश्चात् स्तम्भ की उसी दिशा में जाएगा जब तक उसके मुख से खो–खो निकलता है। सक्रिय–मेजर केन्द्र गली से दूसरी ओर नहीं जाएगा। जब तक वह स्तम्भ के चारों ओर घूम न ले।
12. यदि कोई सक्रिय मेजर स्तम्भ छोड़ देता है तो स्तम्भ की ओर जाने वाली केन्द्रीय लेन पर रहते हुए दूसरे स्तम्भ की ओर जाएगा।
13. सक्रिय मेजर का मुंह सदा उसके द्वारा ग्रहण की गई दिशा की ओर रहेगा। वह अपना मुंह दूसरी ओर नहीं मोड़ सकता।
14. मेजरों को अपना स्थान इस हिसाब से ग्रहण करना होगा कि धावकों (रनरों) के खेल में कोई बाधा न पड़े।
15. कोई धावक बैठे हुए मेजर को नहीं छू सकता।
16. यदि खिलाड़ी के दोनों पांव सीमा रेखा से बाहर होंगे तो उसे उस सूरत में आउट माना जाएगा।
17. यदि सक्रिय मेजर बिना किसी नियम उल्लघंन किए रनर को छू लेता है तो रनर आउट होगा।

मैच के विषय में कुछ आवश्यक नियम ये भी होते हैं–

1. हर टीम के खिलाड़ियों की संख्या 9 होती है।
2. हर पारी में सात–सात मिनट छूने तथा दौड़ने का काम बारी–बारी से होगा। हर मैच में 4 पारियां होंगी जिनमें से दो पारियां छूने की और दो–दो पारियां दौड़ने की मानी जाती हैं। सारे रनर जिस क्रम से खेलना चाहेंगे उसकी सूचना खेल रैफरी को देंगे।
3. मेजर या रनर समय से पूर्व भी अपनी पारी को यदि समाप्त करना चाहें तो मिलकर कर सकते हैं। परन्तु इसके लिए उन्हें खेल रैफरी से भी अनुमति लेनी होगी।
4. मेजर पक्ष के हर रनर के आउट होने पर एक अंक मिलेगा। यदि सारे रनर समय से पहले आउट हो जाते हैं तो उनके विरूद्ध एक 'लीना' दे दिया जाता

टिप्पणी

है। उसके पश्चात् वह टीम उसी क्रम से खेलेगी। लीना प्राप्त करने के लिए कोई फालतू का खेल नहीं खेलना होगा।

5. नाक आउट—इस पद्धति में मैच के अन्त में अधिक अंक प्राप्त करने वाली टीम को विजय घोषित किया जाता है। यदि दोनों के अंक बराबर हों तो एक रनिंग और खेलने का अवसर दिया जाएगा जो टीम के मेजर और रनर को खेल जाएगी। यदि फिर कोई निर्णय नहीं होता, तो टाई ब्रेकर नियम को अपनाया जाता है। फिर इस निर्णय के पश्चात् यह जरूरी नहीं होता है कि टीम में पहले वाले खिलाड़ी ही रहें। यदि फिर भी बराबर की स्थिति रहे तो दोनों को एक—एक अंक दे दिया जाता है। लीग प्रणाली में जीतने वाली टीम को दो अंक मिलते हैं। पराजित टीम को शून्य।

   जिन टीमों के लीग मैच में बराबर के अंक चले आ रहे हों, उनके लिए नियम यह है कि पर्चियों के आधार पर फिर से मैच खेलें। यह मैच नाक आउट मैच कहलाता है।

6. यदि किसी विवशता के कारण मैच पूरा नहीं हो पाता तो उसे बाद में भी खेला जा सकता है।

7. यदि किसी भी टीम के अंक 12 से ऊपर हो जाते हैं तो पहली टीम दूसरी टीम को मेजर के रूप में पीछा करने को कह सकती है। यदि दूसरी टीम इतने अंक प्राप्त कर ले तो उसके लिए मेजर का स्थान बना रहेगा।

   रैफरी—खो—खो मैच में दो रैफरी होते हैं, वे लॉबी से बाहर खड़े रहते हैं। इनकी निगाह पूरे मैच पर रहती है।

   अम्पायर—अम्पायर इस खेल में मैच रैफरी के साथ मिलकर ही निर्णय ले लेते हैं। खेल समाप्ति पर वे दोनों ही मैच के सारे निर्णय लेते हैं। परन्तु खेल में एक टाइम कीपर भी होता है। वह खेल की अवधि का पूरा—पूरा ध्यान रखता है।

- **कबड्डी**

हमारे देश में कबड्डी प्राचीन खेलों की सूची में आता है। दौड़ के पश्चात् यदि कोई दूसरा प्राचीन खेल है तो उसे हम कबड्डी एवं कुश्ती ही कह सकते हैं।

कबड्डी की सबसे बड़ी विशेषता यही है कि कुश्ती की भांति इसमें भी मनुष्य का अपना पूरा शरीर शक्ति के साथ काम करता है। वस्तुतः यह कबड्डी खेल महाभारत काल में ही

शुरू हुआ था, उस समय से लेकर यह भिन्न—भिन्न नामों से पुकारा जाता रहा है जैसे कि महाभारत काल में इसे श्वास के नाम से पुकारा जाता था। इसके पश्चात् इसका नाम अभंग हो गया। अब उ.प्र. में इसका नाम तो, तो है।

बिहार बंगाल में इसे हु, हु, हु, के नाम से खेलते हैं। तमिलनाडु कर्नाटक में चंडु, गुडू के नाम से खेला जाता है। यह खेल भारत में आम जनता का खेल होने के कारण गांवों से लेकर शहरों तक बराबर लोकप्रिय है।

कबड्डी का बदला रूप तथा नियम

सन् 1920 में जब यह खेल बहुत लोकप्रिय हो गया तो इस खेल के विद्वानों ने इसके लिए कुछ नई तकनीक और विधान बनाए। जैसे कि, सितारा के एक छोटे से गांव में

यह नए नियम बनाये गये। इन नियमों को अंतिम रूप परांजपे जी ने दिया था, जिसे दक्कन जिमखाना ने प्रकाशित किया।

टिप्पणी

इसके पश्चात् सन् 1935 में महाराष्ट्र शारीरिक शिक्षामंडल ने इसकी एक नई नियमावली तैयार की। इसी नियमावली के अंतर्गत 1938 में प्रथम अखिल भारतीय कबड्डी प्रतियोगिता आयोजित की गई।

कबड्डी केवल भारत में ही नहीं बल्कि सारे एशियाई देशों में यह खेल बहुत ही लो. कप्रिय हो रहा है।

कबड्डी राष्ट्रीय खेल के रूप में सन् 1951 में ही दुनिया के सामने आ सका। तब से ही इसकी प्रतियोगिता हर वर्ष होती है।

महिला कबड्डी

पुरुषों के साथ–साथ माडर्न युग (आधुनिक समय) में नारी जाति भी किसी से कम नहीं रही। उन्होंने भी कबड्डी खेलना शुरू कर दिया। अब भारत में पुरुष हॉकी तथा महिला हॉकी दोनों ही खेल खेले जाते हैं।

कबड्डी के लिए

इस खेल में भाग लेने के लिए दृढ़ता के गुणों के साथ–साथ शारीरिक शक्ति भी पूरी होनी चाहिए। यह खेल भी अधिकतर मिट्टी पर ही खेला जाता है। जो लोग मिट्टी से नफरत करते हैं उनके लिए यह खेल नहीं है। इस खेल में तो पूरी तरह से शक्तिमान को अपनी शक्ति का पूरा भरोसा और इसके दांव पेच का पूरा ज्ञान होना ही चाहिए।

जैसे भी हो अपने शरीर को पूरी तरह से चुस्त रखें। अपने बाजू और पीठ को विरोधियों को पकड़ने का अवसर न दें। उछल–कूद बंदर की भांति कर सकता हो। तेज दौड़ सकता हो। सांस लम्बी खींच सकता हो। वही खिलाड़ी कबड्डी के लिए उपयुक्त माना जा सकता है।

कबड्डी का मैदान

कबड्डी का मैदान बहुत नर्म होना चाहिए। उस पर किसी प्रकार की ईंट पत्थर न हों तो सुखदायक होता है।

मैदान में आने से पूर्व सामान–

1. TOP फीता
2. चूना
3. रस्सी
4. प्वाइंट लगाने के लिए कील
5. दो Mark Ers
6. ध्यान रहे, कबड्डी का मैदान उत्तर या दक्षिण की ओर तैयार किया जाए, जिससे आंखों पर रोशनी न पड़े।

खेल–खेल में

कबड्डी खेल के बारे में यह बात बहुत प्रसिद्ध है कि यह खेल बहुत सस्ते में ही हो जाता है। इस खेल की कोई पोशाक नहीं। केवल एक लंगोट में ही इस खेल में काम

चल जाता है। यह खेल 14 खिलाड़ियों द्वारा खेला जाता है। इसे हम दो भागों में विभक्त कर सकते हैं–

1. RIDE (आक्रमण)

टिप्पणी

2. DEFENCE (बचाव)

यही दो असली दांव हैं इस खेल के जिनकी नींव पर यह खेल चलता है।

1. कबड्डी में दो टीमें भाग लेती हैं, दो पालों में खड़ी टीमों का एक खिलाड़ी दूसरी टीम के लोगों पर हमला करने जाता है। वह ऊंचे स्वर में बोलता रहता है 'कबड्डी...... कबड्डी.... यदि वह किसी खिलाड़ी को हाथ मारकर अपने पाले में वापस आ जाए तो इसे सफल आक्रमण बोला जाता है।
2. यदि हमला करने वाला शत्रु के पाले में घुसकर उनको छूकर अंक प्राप्त कर ले, उसकी टीम विजय की ओर बढ़त करती है।

कोना दांव

मैदान के दोनों ओर खड़े हुए खिलाड़ियों को कोना दांव कहते हैं।

केन्द्रीय दांव

जिस समय बचाव पक्ष के खिलाड़ी अपने को शत्रु से बचाने का प्रयास करते हैं तो खिलाड़ी 2, 3, 2 के नियम से खड़े होते हैं।

डाइव मारना

जिस समय बचाव पक्ष का एक खिलाड़ी हमला करने वाले शत्रु को दांव मारकर दबोच लेता है तो यह डाइव आक्रमण कहलाता है।

वृत्ताकार दबाव

जब भी आक्रमणकारी शत्रु वाक लाइन से आगे बढ़कर वार करता है तो दोनों कोनों पर खेड़े खिलाड़ी एकदम से उसे घेर लेते हैं।

दिशा बदलना

जिस समय बचाव पक्ष के खिलाड़ी हमलावर को असफल घोषित करके पीछे की ओर मुड़ने के लिए मजबूर करते हैं तो यह दिशा बदलना दांव कहलाता है।

हमले कैसे करें

हमले के लिए आपके पास दो कुदरती हथियार होते हैं–

1. हाथ से
2. पांव से।

हाथ से

जब विरोधी खिलाड़ी शत्रु के सीने पर बार–बार हाथ उसकी ओर बढ़ाकर उसे छूने का प्रयास करता है तो वह उसके सीने, ठोड़ी, नाक, सिर को कभी भी छू सकता है।

वास्तव में हाथ का आक्रमण कबड्डी के खेल में अपना एक विशेष महत्त्व रखता है। सिर, सीने, नाक, सिर पर बार करके विरोधी पक्ष को आउट किया जा सकता है।

पांव से

एक टांग धरती पर तो दूसरी को थोड़ा उठाकर आगे की ओर बढ़ाकर शत्रु पर वार करना यह कबड्डी खेल में बड़ा ही सफल दांव माना जाता है।

जब विरोधी खिलाड़ी पीछे से आकर आक्रमण करते हैं तो उसी टांग से पीछे की ओर जैसे घोड़ा दुलत्ती मारता है, उसी भांति आप आक्रमण (वार) करेंगे।

विरोधी टीम के लोग जब आक्रमणकारी को करने का प्रयास करते हैं तो उस समय डुबकी दांव का प्रयोग किया जा सकता है.... जैसा कि लोग पानी में डुबकी लगाते हैं ऐसे ही

एकदम से नीचे–नीचे बैठ जाओ–और उन सबकी टांगों में जोर से सिर मारते हुए वाक लाइन को पार कर जाओ, इसमें खिलाड़ी भी आउट होंगे, और आप भी बचकर साफ निकल जाओगे।

धोबी पटका

जब कोई खिलाड़ी, पीछे से आकर आपकी गर्दन को पकड़ कर पीठ पर सवार हो जाए तो अपने बचाव के लिए गर्दन को आगे की ओर झुकाकर एक जोरदार पटखनी देकर उसे उल्टा धरती पर पटकें। बस इस प्रकार चारों खाने चित्त हो जाएगा आपका शत्रु।

पकड़

पकड़ का दांव तीन प्रकार का होता है, जो इस प्रकार है–

1. हाथ की पकड़
2. पांव की पकड़, और
3. शरीर की पकड़

हमारे जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब हमें शक्ति, धैर्य, साहस और टीम भावना आदि की परम आवश्यकता होती है।

प्राचीन काल से ही उपरोक्त गुणों को विकसित करने के लिए तरह–तरह के खेल तैयार किए जाते रहे हैं। इसी क्रम में एक खेल भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में खेला जाता रहा है जिसे आज भी कबड्डी के नाम से जाना जाता है।

प्रारम्भ में यह खेल इतना परिपक्व नहीं था। जैसा कि पहले भी बतलाया जा चुका है कि सन् 1918 में सतारा मे ंइस खेल को परिष्कृत करने के प्रयास प्रारम्भ हुए। दक्षिण जिमखाना ने इस खेल के काफी सारे नियम तैयार किए। सन् 1923 में हिंद विजय जिमखाना, बड़ौदा ने इस खेल के नियम प्रकाशित किए। इसी साल बड़ौदा मे कबड्डी की अखिल भारतीय प्रतियोगिता भी आयोजित की गई थी।

सन् 1934 में अखिल भारतीय शारीरिक परिषद ने इस खेल के नियमों को प्रकाशित किया। इसके साथ ही महाराष्ट्र में यह खेल काफी लोकप्रिय हो गया। सन् 1952 में भारतीय राष्ट्रीय कबड्डी फेडरेशन की स्थापना हुई। अब यह खेल राष्ट्रीय रूप लेने लगा। इस नई फेडरेशन ने सन् 1952 से पुरुषों की राष्ट्रीय प्रतियोगिता आयोजित करना प्रारम्भ कर दिया। सन् 1955 से महिलाओं की राष्ट्रीय प्रतियोगिता भी आयोजित की जाने लगी है।

टिप्पणी

यह खेल भारतीय ग्रामीण परिवेश के लिए एक आदर्श है। इसे खेलने के लिए न तो किसी सामग्री की ही आवश्यकता होती है। और न ही अधिक या विशेष स्थान की। परन्तु इसके माध्यम से सांस रोकने से लेकर मांसपेशियां विकसित करने तक के गुण सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।

3.3.4 विद्यालयों अथवा समुदाय में स्वास्थ्य संदर्भित परियोजना

जन–समुदाय की पोषाहार स्थिति के द्वारा ही किसी राष्ट्र का विकास परिलक्षित होता है। उचित पोषण न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य और विकास पर अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के स्वास्थ्य, विकास एवं उत्पादन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। प्रत्येक देश का उद्देश्य माता, शिशु एवं छोटे बच्चों को सुनिश्चित आहार पद्धति द्वारा पोषण प्रदान करना होना चाहिए। उचित पोषण मानव कल्याण की कुंजी है। परन्तु आज भी दुनिया भर में बहुत से लोग कुपोषण से ग्रस्त हैं। कुपोषण एक जटिल समस्या है भारत में पोषण सम्बन्धी स्थिति काफी खराब है। अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत में बाल मृत्यु दर तथा मातृ मृत्यु दर काफी ऊंची है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारत विश्व का सबसे अधिक अल्पपोषित देशों में से एक है। भारत सरकार द्वारा स्वास्थ्य की देखभाल के लिए समय–समय पर विभिन्न पोषण एवं स्वास्थ्य कार्यक्रम एवं योजनाएं चलाई गई हैं। इन स्वास्थ्य योजनाओं के सफल संचालन हेतु विभिन्न कमेटियां गठित की गईं जैसे 1946 में मारे कमेटी, 1963 में मुदालियर कमेटी, 1965 में मुखर्जी कमेटी, 1977 में श्रीवास्तव कमेटी। इन कमेटियों की सिफारिशों पर वर्ष 1981 में केन्द्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय की अध्यक्षता में एक कार्यकारिणी समिति का गठन किया गया जिसके द्वारा सन् 2000 तक सबके लिए स्वास्थ्य के लक्ष्य को पूरा करने के लिए अनेक यथेष्ट योजनाएं व कार्यक्रम तैयार किये गये और उनका क्रियान्वयन भी किया जा रहा है।

'वर्ष 2000 तक स्वास्थ्य सबके लिए' के अन्तर्गत जो कार्यक्रम व लक्ष्य लिए गये उनसे स्वास्थ्य स्तर में सुधार आया। शिशु मृत्यु दर में कमी भी आयी, राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण की नवीनतम (2015–16) रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण क्षेत्रों में शिशु मृत्यु दर 46 प्रतिशत है जबकि कुल शिशु मृत्यु दर 41 प्रतिशत है। इससे पूर्व के सर्वेक्षण (2005–06) में देश में कुल शिशु मृत्यु दर 57 प्रति हजार थी। इससे स्पष्ट है कि शिशु मृत्यु दर में कमी आयी है। लेकिन आज भी अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत में स्वास्थ्य स्तर काफी निम्न है। भारत में जन्मदर, मृत्युदर तथा मातृ एवं शिशु मृत्युदर अधिक है। इसके लिए आवश्यक है कि वर्तमान स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार किया जाना चाहिए। निःशुल्क चिकित्सा केन्द्रों की अधिक से अधिक स्थापना एवं मातृ एवं शिशु मृत्युदर को कम करने के लिए पूर्व प्रसव, प्रसव कालीन एवं प्रसवोपरान्त सेवाओं एवं योजनाओं का विस्तार किया जाना चाहिए जिससे माताओं एवं शिशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा की जा सके। सरकार इन समस्याओं से निपटने के लिए विभिन्न राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय संगठनों के सहयोग से ऐसे कार्यक्रमों का संचालन कर रही है जो मृत्यु दर को कम करने, पोषण एवं स्वास्थ्य स्तर को ऊंचा उठाने में सहायक है।

एक स्वस्थ मां ही स्वस्थ बच्चे को जन्म दे सकती है। स्वस्थ शिशु के जन्म के लिए मां का पूर्ण रूप से स्वस्थ होना अति आवश्यक है। गर्भधारण के बाद यदि कोई

मां कुपोषित रहती है, रक्तहीनता रोग से पीड़ित रहती है या किसी संक्रामक रोग से ग्रस्त हो जाती है तो इसका गर्भ में पल रहे शिशु पर दुष्प्रभाव पड़ता है। रोगी, कमजोर तथा कुपोषित गर्भवती माताओं के शिशु दुर्बल और अस्वस्थ होते हैं और जन्म के बाद अधिक समय तक जीवित नहीं रह पाते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश दुर्बल एवं रोगी माताएं भी प्रसव के दौरान मर जाती हैं। अतः मातृ एवं शिशु रक्षा के लिए ऐसे कार्यक्रमों और अभियानों की आवश्यकता है जो गर्भवती माताओं व शिशुओं के स्वास्थ्य स्तर में सुधार करे तथा मातृत्व एवं शिशु मृत्यु को रोकने में सहायक हों। मातृ एवं शिशु कल्याण कार्य से तात्पर्य माताओं एवं शिशुओं के उच्च स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम से है जिसमें माताओं को प्रसव से पूर्व, प्रसव के समय तथा प्रसवोपरान्त और शिशुओं को जन्म के पश्चात् पांच वर्ष तक समुचित स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान की जाएं।

भारत में पोषण संबंधी नीतियां

कुपोषण एक जटिल राष्ट्रीय समस्या है और इसके उन्मूलन के लिए विभिन्न प्रयासों की आवश्यकता बनी रहती है। कुपोषण से सबसे अधिक बच्चे ही प्रभावित होते हैं। सन् 1947 के पूर्व अर्थात् आजादी से पूर्व जब भारत में ब्रिटिश राज्य था तब माताओं व शिशुओं के पोषण एवं स्वास्थ्य की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) के बाद जब भारत की कल्याणकारी राज्य (Welfare State) की स्थापना हुई तो मातृ एवं बाल मृत्यु की समस्या पर विचार किया गया। इस समस्या को राष्ट्रीय स्तर पर स्वीकार किया गया तथा उसके समाधान के लिए स्थानीय स्तर पर, राज्य स्तर पर तथा केन्द्र स्तर पर मातृ एवं बाल कल्याणकारी संस्थाओं की स्थापना की गयी। इन संस्थाओं द्वारा मातृ एवं शिशु पोषण व स्वास्थ्य सम्बन्धी अनेक कार्यक्रम चलाये गये।

1993 में भारत सरकार द्वारा महिला एवं बाल विकास विभाग द्वारा राष्ट्रीय पोषाहार नीति में माताओं, शिशुओं एवं छोटे बच्चों के पोषण और आहार पर समुचित बल दिया गया तथा बच्चों में कुपोषण को कम करने के संबंध में मातृ व्यवहार परिवर्तन हेतु प्रयासों को प्रत्यक्ष कार्यक्रम माना गया।

भारतीय संविधान के अनुच्छेद 47 में राज्य के नीति निर्देशक सिद्धान्त के अनुसार पोषाहार और जीवन स्तर को ऊंचा उठाना तथा लोक स्वास्थ्य को बेहतर बनाना राज्य का कर्तव्य होगा। भारत में स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए नीति का निर्माण करना बेहद चुनौतीपूर्ण एवं जटिल है। भारत को आजादी के साथ ही बीमारियों का भारी बोझ विरासत में मिला, जिसमें नवजातों एवं प्रसूताओं की मौत, बेहद कम जीवन प्रत्याशा, चिकित्सकों एवं नर्सों की अपर्याप्त संख्या स्वास्थ्य का घटिया बुनियादी ढांचा और मामूली बजट शामिल थे। आजादी के बाद पहले तीन दशक तो भारत की स्वास्थ्य नीति संक्रामक रोगों पर नियन्त्रण, परिवार नियोजन, बेहतरीन स्वास्थ्य सेवाओं को तैयार करने के लिए एम्स जैसे शिक्षण अस्पतालों के निर्माण एवं बुनियादी ढंाचे को प्रोत्साहन दिया।

1978 में भारत ने अपने सभी लोगों को समग्र प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा प्रदान करने के लिए अलग–अलग घोषणा पत्र स्वीकार किया। 1983 में भारत की पहली राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति तैयार की जिसमें प्राथमिक स्वास्थ्य सेवा एवं रोग नियन्त्रण कार्यक्रमों के लिए एकीकृत, लक्षित दृष्टिकोण अपनाया गया। 1990 के दशक में कठिन वर्षों के दौरान (अत्यधिक वित्तीय घाटा) स्वास्थ्य क्षेत्र के लिए आवंटन कम हो गया।

टिप्पणी

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2002

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2002 पहली राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 1983 का ही संशोधित रूप है। मोटे तौर पर एन.एच.पी. 2002 में पिछली नीति की सिफारिशों को ही दोहराया और सार्वजनिक व्यय को बढ़ाकर सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) के 2 प्रतिशत तक लाने की सिफारिश की। इस स्वास्थ्य व्यवस्था का विकेन्द्रीकरण कर इसकी पहुंच देश के जनसाधारण के बीच बेहतर स्वास्थ्य के स्वीकार्य मानक प्राप्त करना है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कमी वाले क्षेत्रों में नयी सुविधाएं जुटाने तथा वर्तमान संस्थानों में उपलब्ध सुविधाओं के स्तर में सुधार एवं विस्तार करने हेतु एक योजना बनाई गई। इस नीति में सबको समान स्वास्थ्य सुविधाएं प्रदान करने पर बल दिया गया।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति में विशेष आवश्यकता वाले क्षेत्रों और अनेक मुद्दों को जोड़ा गया है। इसमें सरकार (केन्द्र व राज्य), निजी क्षेत्र, स्वैच्छिक संगठन, अन्य नागरिक सोसायटी के सदस्य बीमारी की देखरेख, स्वास्थ्य अधिकारी उनके सिद्धान्त, शिक्षा, राष्ट्रीय स्वास्थ्य लेखा की आवश्यकता, सूचना, शिक्षा एवं संचार की भूमिका, महिला स्वास्थ्य, स्वास्थ्य क्षेत्र पर वैश्वीकरण का प्रभाव आदि शामिल हैं।

नई राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017

स्वास्थ्य नीति अति महत्वपूर्ण है क्योंकि किसी भी अर्थव्यवस्था के समुचित विकास के लिए उसके कार्यबल का पूरी तरह निरोगी होना अति आवश्यक है। भारत इस समय दुनिया की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्थाओं में शामिल है और सबसे तीव्र गति से विकास करने वाली अर्थव्यवस्था भी लेकिन जब स्वास्थ्य की बात आती है तो भारत बहुत नीचे पायदान पर खड़ा मिलता है। भारत को स्वास्थ्य सेवाओं के उपलब्धता के मामले में 195 देशों में 154वें स्थान पर रखा गया है। 2002 में बकायदा स्वास्थ्य नीति बनाकर बड़े–बड़े लक्ष्य भी निर्धारित किये लेकिन इन लक्ष्यों को पाने के लिए प्रयास गंभीरता से नहीं किये गये तथा कुछ अपरिहार्य कारणों से ये लक्ष्य प्राप्त नहीं किये जा सके, अतः 2017 में नई स्वास्थ्य नीति की घोषणा की गई।

नई स्वास्थ्य नीति में प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल को प्राथमिकता दिए जाने के साथ–साथ स्वास्थ्य खर्च को समयबद्ध तरीके से जीडीपी के 2.5 प्रतिशत तक बढ़ाने तथा सार्वजनिक अस्पतालों में निःशुल्क दवाएं मुहैया कराने एवं अनिवार्य स्वास्थ्य देखभाल करने पर जोर दिया गया है।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 बदलते सामाजिक, आर्थिक, प्रौद्योगिकी और महामारी विज्ञान परिदृश्य में मौजूदा एवं उभरती चुनौतियों से निपटने के लिए 15 वर्ष के अन्तराल के बाद अस्तित्व में आयी है। राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 को संसद के दोनों सदनों ने 16 मार्च, 2017 में मंजूरी दी जो देश के स्वास्थ्य के क्षेत्र में एक बड़ी उपलब्धि है।

नई राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

(1) वंचित एवं सामाजिक रूप से संवेदनशील लोगों को स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध कराने पर विशेष बल देना।

(2) प्रत्येक परिवार को स्वास्थ्य कार्ड जारी करना जिसमें प्राथमिक स्वास्थ्य सेवाएं और सुनिश्चित सेवाएं प्रदान की जाएंगी।

(3) स्कूल पाठ्यक्रम में स्वास्थ्य एवं स्वच्छता भी शामिल किये जाएंगे।

(4) स्कूलों एवं दफ्तरों में योग का व्यापक प्रसार।

(5) भारत में निर्मित दवाओं, उपकरणों के अधिक प्रयोग को प्रोत्साहन।

(6) सभी राज्यों में जन स्वास्थ्य प्रबंधन प्राधिकरण की स्थापना।

(7) सार्वजनिक स्वास्थ्य पर खर्च को निश्चित समय में जी.डी.पी. के 2.5 प्रतिशत तक पहुंचाया जाए।

(8) मुफ्त दवा, मुफ्त निदान सेवा तथा मुफ्त आपातकालीन सुविधा देकर स्वास्थ्य सेवा सस्ती करना।

(9) कम से कम दो तिहाई (2/3) संसाधन प्राथमिक चिकित्सा को आवंटित करना।

(10) चिकित्सा शिक्षा में सुधार करना।

(11) पहले से जांच के द्वारा असंक्रामक रोगों के कारण मृत्यु की दर में कमी करना।

नई राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति, 2017 में निम्न लक्ष्यों को प्राप्त करने का लक्ष्य रखा गया–

- जीवन प्रत्याशा को 67.5% वर्ष से बढ़कर 70 वर्ष तक पहुंचाना।
- प्रजनन दर को 2025 तक घटाकर 2.1% तक लाना।
- नवजात मृत्युदर को 2019 तक घटाकर 28% करना।
- पांच वर्ष से कम आयु में मृत्यु दर को 2025 तक घटाकर 23% करना।
- हृदय रोगों, कैंसर, मधुमेह अथवा श्वास रोग से असामयिक मृत्यु की दर में 2025 तक 25% कमी लाना।
- वर्ष 2020 तक एच.आई.वी. के बारे में 90–90–90 का वैश्विक लक्ष्य प्राप्त करना।
- नेत्रहीनता को 2023 तक घटाकर 0.25 प्रति हजार व्यक्ति करना।
- रोगों के बोझ को वर्तमान स्तरों से एक–तिहाई तक कम करना।
- वर्ष 2018 तक कुष्ठ रोग, 2017 के अन्त तक कालाजार, तथा फीलपांव (फाइलेरिया) को पूर्णतः समाप्त करना।
- इलाज को किफायती बनाने के लिए हर सम्भव प्रयास कर रही है। भारत में बनी दवाओं व उपकरणों पर सरकार का जोर भी सराहनीय है। नई स्वास्थ्य नीति के तहत राष्ट्रीय स्वास्थ्य देखभाल मानक संगठन का सृजन किया जायेगा जो स्वास्थ्य देखभाल के लिए दिशा–निर्देश और प्रोटोकोल तैयार करेगा।

पोषण सुरक्षा संबंधी विभिन्न कार्यक्रम

भारत सरकार ने पौषणिक समस्याओं को नियंत्रित करने के लिए अथवा उनकी रोकथाम करने के लिए राष्ट्रीय स्तर पर अनेक पोषण योजनाएं एवं कार्यक्रम आरम्भ किए हैं। इन कार्यक्रमों व योजनाओं में प्रमुख अग्रलिखित हैं–

टिप्पणी

अनुप्रयुक्त पोषण कार्यक्रम

सन् 1963 में भारत सरकार ने यूनीसेफ, संयुक्त राष्ट्र संघ के खाद्य एवं कृषि संगठन (FAO) तथा विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) की सहायता से गर्भवती स्त्रियों, दूध पिलाने वाली माताओं तथा बच्चों के पोषण के उन्नयन के लिए अनुप्रयुक्त पोषण कार्यक्रम को आरम्भ किया। इस कार्यक्रम का मुख्य लक्ष्य स्वास्थ्य शिक्षा द्वारा (जो कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण घटक है), रक्षात्मक खाद्य पदार्थों जैसे सब्जियों, फलों, दूध्
ा, अंडों तथा मछलियों आदि को उत्पन्न करने तथा माताओं व बच्चों के द्वारा इनके उपयोग को प्रोत्साहित करना है। वास्तव में अनुप्रयुक्त पोषण कार्यक्रम (ANP) को यह सिखाने के लिए आरम्भ किया था कि वे कैसे रक्षात्मक और पौष्टिक खाद्य पदार्थों के उत्पादन एवं उनके उपभोग को उन्नत कर सकते हैं। इस कार्यक्रम का एक महत्वपूर्ण पहलू विभिन्न श्रेणियों के कार्यकर्ताओं जैसे ग्रामीण स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं व अध्यापकों को प्रशिक्षित करना है।

स्कूल के बच्चों का मध्याह्न आहार कार्यक्रम

स्कूल में बच्चों को मध्याह्न आहार कार्यक्रम को स्कूल मध्याह्न भोजन कार्यक्रम (School Lunch Programme; SLP) भी कहा जाता है। स्कूल में बच्चों को आहार देने का मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य एवं पोषण स्तर में सुधार लाना है। साथ ही इस कार्य का एक और प्रमुख लक्ष्य स्कूल में दाखिला लेने तथा नियमित रूप से स्कूल में आने के लिए अधिक से अधिक बच्चों को आकर्षित करना है। जिससे साक्षरता के स्तर में वृद्धि हो सके तथा बच्चों का सम्पूर्ण विकास हो सके। यह कार्यक्रम सम्पूर्ण देश में सन् 1961 में शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के मुख्य सिद्धांत निम्नलिखित हैं–

- आहार को अनुपूरक होना चाहिए।
- बच्चे की आयु के अनुरूप कैलोरी तथा प्रोटीन की आवश्यक मात्रा का एक तिहाई प्रदान करना चाहिए।
- आहार का मूल्य यथोचित कम होना चाहिए।
- जहां तक हो सके स्थानीय रूप से उपलब्ध खाद्य पदार्थों का ही उपयोग करना चाहिए।
- व्यंजन सूची को प्रायः बदलते रहना चाहिए।
- भोजन ऐसा होना चाहिए जो स्कूलों में आसानी से तैयार किया जा सके।

भारत सरकार द्वारा एक स्कूल लंच समिति बनाई गयी है जिसका कार्य प्रत्येक राज्य में बालकों की संख्या, भोज्य पदार्थों का उत्पादन, स्कूल लंच बनवाना तथा वितरण आदि करना है। इस समिति ने एक विशिष्ट मात्रा की अनुशंसा की है जिसमें स्कूल लंच में बालकों को उपलब्ध होने वाले भोज्य पदार्थों की मात्रा इस प्रकार है–

- अनाज – 75 ग्राम
- हरी सब्जी (पत्तेदार) – 30 ग्राम
- अन्य सब्जी व फल – 30 ग्राम
- शक्कर – 30 ग्राम
- तेल – 10 ग्राम
- दालें – 8–10 ग्राम

टिप्पणी

बच्चों के लिए राष्ट्रीय नीति

बच्चों के लिए 22 अगस्त, 1947 को राष्ट्रीय नीति को स्वीकार किया गया। इसके अन्तर्गत प्रावधान है कि शासन द्वारा बच्चों को उनके जन्म से पूर्व तथा उनके जन्म के बाद तथा उनके पूरे शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक विकास के लिए उपयुक्त सेवाएं प्रदान की जाएंगी। इसके अन्तर्गत एक समग्र स्वास्थ्य कार्यक्रम, माताओं एवं बच्चों के लिए पूरक पोषण, 14 वर्ष की आयु तक के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था की गयी है।

विशेष पोषाहार कार्यक्रम

भारत सरकार द्वारा विशेष पोषाहार कार्यक्रम की शुरुआत 1970–71 में समाज कल्याण मंत्रालय की देखरेख में की गयी थी। इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य 0–6 वर्ष तक के शिशुओं एवं बच्चों तथा गर्भवती महिलाओं एवं माताओं के स्वास्थ्य तथा उनके पोषण स्तर में सुधार करना था ताकि कुपोषण तथा अल्पपोषण के कारण बढ़ रही मातृ एवं शिशु मृत्यु दर को कम किया जा सके।

इस कार्यक्रम के अंतर्गत आदिवासी क्षेत्र तथा मलिन बस्तियों व पिछड़े क्षेत्रों में रहने वाले शिशुओं, बालकों, गर्भवती महिलाओं तथा स्तनपान कराने वाली माताओं को अधिक प्राथमिकता प्रदान की गयी।

इस योजना के अन्तर्गत शिशुओं तथा माताओं के लिए प्रोटीन व कैलोरी युक्त पूरक आहार की व्यवस्था की गयी और उन्हें यह आहार सम्पूर्ण वर्ष में 250 से 300 दिन तक उपलब्ध कराया जाता है। पूरक आहार के अन्तर्गत कैलोरी एवं प्रोटीन से भरपूर मक्का और सोयाबीन का दूध, अनाज एवं दालों की खिचड़ी, विटामिन से युक्त डबल रोटी तथा अन्य विभिन्न बाल आहारों का वितरण किया जाता है।

सन् 1970–71 में 3–6 वर्ष तक की आयु के बच्चों को प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने हेतु समाज कल्याण विभाग के आधीन बालवाड़ी पोषण कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया। इसमें बच्चों को दिए जाने वाले अनुपूरक आहार से एक बच्चे को प्रतिदिन 300 कैलोरी तथा 10 ग्राम प्रोटीन उपलब्ध होते हैं।

व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम

कुपोषण एक गम्भीर एवं विश्वव्यापी समस्या है। इस समस्या के निराकरण के लिए व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम की नींव पड़ी। भारत वर्ष में इस कार्यक्रम की शुरुआत 1959 में उड़ीसा राज्य में हुई। प्रारम्भ में इसे विस्तृत पोषाहार कार्यक्रम (Expanded Nutrition Programme) नाम दिया गया परन्तु बाद में इसे बदलकर व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम कर दिया।

व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों के पोषण स्तर को ऊंचा उठाना है। इसके लिए यह कार्यक्रम ग्रामीण लोगों को पौष्टिक आहार के उत्पादन के लिए प्रशिक्षित करता है। साथ ही सन्तुलित एवं पौष्टिक आहार का ज्ञान भी प्रदान करता है जिससे ग्रामीण व्यक्ति स्वयं ही पौष्टिक आहार का उत्पादन करके एवं ग्रहण करके अपने पोषण स्तर में सुधार कर सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इस योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य किये जाते हैं–

1. ग्रामीण स्तर पर अंडे, मुर्गी, मछली, फल एवं सब्जियों जैसे पौष्टिक खाद्य पदार्थों के उत्पादन को बढ़ावा देना।

टिप्पणी

2. पौष्टिक आहार के उत्पादन में वृद्धि करने के लिए ग्रामीण लोगों को बीज, खाद, मुर्गी का दाना और खेती के लिए आधुनिक उपकरण प्रदान करके सहयोग दिया जाता है।
3. ग्रामीणों को उनके आहार में दूध, अंडा, मछली तथा फल और सब्जियों की अधिक मात्रा में सम्मिलित करने के लिए प्रेरित करना।
4. स्कूली बच्चों, उनके माता–पिता तथा शिक्षकों को सन्तुलित व पौष्टिक आहार की जानकारी प्रदान करके दैनिक आहार को सन्तुलित एवं पौष्टिक बनाना।

प्राथमिक विद्यालयों के लिए पोषाहार

15 अगस्त, 1995 को तत्कालीन प्रधानमंत्री द्वारा प्राथमिक विद्यालयों के लिए पोषाहार कार्यक्रम की घोषणा की गई थी। इस कार्यक्रम के अंतर्गत सरकारी स्कूलों में वर्ग 1 से 5 तक पढ़ने वाले सभी बच्चों को जिनकी प्रतिमाह वर्ग में उपस्थिति 80% रहती है उन्हें प्रतिदिन 100 ग्राम अनाज (चावल/गेहूं) की दर से महीने में 3 किलो अनाज दिया जाता है। 2446 प्रखंडों में चल रहा यह कार्यक्रम 1997–98 से सभी प्राथमिक विद्यालयों में यह कार्यक्रम शुरू करने का कार्य किया जा रहा है।

प्राथमिक विद्यालयों के लिए पोषाहार कार्यक्रम के उद्देश्य

इस पोषाहार कार्यक्रम के प्रमुख उद्देश्य निम्न हैं–

1. बच्चों में जाति और समुदाय के भेदभाव को दूर करके सही सामाजिक व्यवहार को बढ़ावा देना।
2. बच्चों के पोषण स्तर में वृद्धि करना।
3. निर्धन वर्गों में धीरे–धीरे सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन लाना।
4. सबके लिए प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देना।

समन्वित बाल विकास योजना

समन्वित बाल विकास योजना 6 वर्ष तक की उम्र के बच्चों के विकास की योजना है। इस योजना का शुभारम्भ 2 अक्तूबर, 1975 को महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के अंतर्गत हुआ था। इस योजना के अंतर्गत प्रारम्भ में केवल 33 विकास खंडों का चयन किया गया था अर्थात् प्रारम्भ में यह योजना केवल 22 विकास खंडों में लागू की गयी किन्तु वर्तमान समय में यह 2000 से अधिक क्षेत्रों में चलायी जा रही है। यह योजना समाज कल्याण विभाग द्वारा संचालित होती है। इस योजना के अंतर्गत गर्भवती महिलाओं तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य पोषण एवं शैक्षणिक सेवाओं का एक एकीकृत पैकेज प्रदान किया जाता है।

इस योजना के द्वारा आंगनवाड़ी भवनों, सीडीपीओ कार्यालयों एवं गोदामों के लिए ऋण प्रदान किया जाता है। हाल ही में केन्द्र सरकार द्वारा इस योजना को प्रभावपूर्ण ढंग से क्रियान्वित करने के लिए कुछ नये कदम उठाये हैं। इस योजना के अन्तर्गत 11–18 वर्ष की किशोर आयु वर्ग की बालिकाओं के लिए सेवाओं, गैर सरकारी संगठनों की प्रभावशाली भागीदारी और निगरानी को सुदृढ़ बनाया गया है। 2009–10 के केन्द्रीय बजट

के अनुसार इस योजना के तहत प्रत्येक 6 वर्ष के नीचे की उम्र वाले बच्चों को सभी सेवाएं गुणवत्ता के साथ उपलब्ध करायी गई। वर्ष 2012–13 के केन्द्रीय बजट में इस योजना पर 15650 करोड़ रुपये की धनराशि आवंटित की गयी।

टिप्पणी

6 वर्ष तक की उम्र के बच्चों, गर्भवती महिलाओं तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं को स्वास्थ्य, पोषण एवं शैक्षणिक सेवाओं द्वारा उनके सर्वांगीण विकास के लिए शुरू की गयी इस योजना के मुख्य उद्देश्य निम्न हैं–

1. 0–6 वर्ष की उम्र के बच्चों के स्वास्थ्य स्तर में तथा स्तनपान कराने वाली माताओं व गर्भवती महिलाओं के पौष्टिक आहार एवं स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाना।
2. बच्चों में समुचित मनोवैज्ञानिक, शारीरिक और सामाजिक विकास की नींव डालना ताकि वे बचपन से ही मजबूत बने रहें।
3. माताओं व बच्चों के पोषण स्तर में सुधार करके बाल मृत्यु तथा मातृत्व मृत्यु दर में कमी लाना।
4. बच्चों को छः जानलेवा बीमारियों से बचाने के लिए टीकाकरण कार्यक्रम में सहयोग प्रदान करना।
5. बच्चों के स्वास्थ्य व पोषण स्तर में सुधार के लिए माताओं को पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करना।
6. समय–समय पर बच्चों का स्वास्थ्य परीक्षण करना।
7. बच्चों को रोग, मृत्यु, कुपोषण आदि से बचाने के लिए पूरक आहार की व्यवस्था करना।
8. माताओं व बच्चों के स्वास्थ्य व पोषाहार संबंधी आवश्यकताओं की देखरेख करना तथा पोषाहार की समुचित व्यवस्था करना।

कार्य : अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए समन्वित बाल विकास योजना के अन्तर्गत निम्न कार्यों का आयोजन किया जाता है–

(i) पूरक आहार
(ii) स्वास्थ्य परीक्षण
(iii) पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा
(iv) टीकाकरण
(v) स्कूल पूर्व अनौपचारिक शिक्षा
(vi) प्रशिक्षण

(i) **पूरक आहार** : समन्वित बाल विकास परियोजना (ICDS) के अंतर्गत 0–6 वर्ष तक के ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में गंदी बस्तियों के बालकों को पूरक आहार प्रदान किया जाता है। पूरक आहार वर्ष में लगभग 300 दिन दिया जाता है। जो बच्चे अधिक कुपोषित होते हैं उनके लिए विशेष आहार की व्यवस्था की जाती है।

(ii) **स्वास्थ्य परीक्षण** : समन्वित बाल विकास योजना के अंतर्गत खोले गये आंगनवाड़ी केन्द्रों पर नियमित रूप से प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों के चिकित्सक

व नर्स आती हैं जो शिशुओं व माताओं का स्वास्थ्य परीक्षण करते हैं तथा उनके स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्याओं का निदान करने में सहायता प्रदान करते हैं।

(iii) **पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा** : समन्वित बाल विकास परियोजना के अन्तर्गत गर्भवती महिलाओं और धात्री महिलाओं को सन्तुलित आहार और स्वास्थ्य के संबंध में शिक्षित किया जाता है ताकि वे शिशुओं की कुपोषण से रक्षा कर सकें तथा अपने व बच्चों के स्वास्थ्य के स्तर को ऊंचा उठा सकें।

(iv) **टीकाकरण** : शिशुओं को छः जानलेवा बीमारियों से बचाने के लिए आंगनवाड़ी के माध्यम से टीके लगवाये जाते हैं (आंगनवाड़ी बाल कल्याण केन्द्र)। गांव व शहर में प्रति 1000 की संख्या पर तथा आदिवासी क्षेत्रों में प्रति 700 की जनसंख्या पर एक आंगनवाड़ी खोली जाती है। आंगनवाड़ी कार्यकर्ता शिशुओं और माताओं को स्वास्थ्य, शिक्षा तथा पोषण सम्बन्धी विभिन्न प्रकार की सेवाएं प्रदान करते हैं। ये कार्यकर्ता अपने क्षेत्र के घरों में जाकर भी सेवाएं व स्वास्थ्य शिक्षा प्रदान करते हैं।

(v) **स्कूल पूर्व अनौपचारिक शिक्षा** : समन्वित बाल विकास योजना (ICDS) आंगनवाड़ी के माध्यम से 3–6 वर्ष तक के बच्चों को खेल द्वारा पूर्व प्राथमिक शिक्षा प्रदान की जाती है। बच्चों की शिक्षा के लिए आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को विशेष शिक्षा प्रशिक्षण दिया जाता है और उनसे यह अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चों को रुचिपूर्ण तरीके से शिक्षा देने के लिए नये–नये तरीके अपनाएं ताकि बच्चे खेल–खेल में अच्छी–अच्छी बातें सीखें और उन्हें अपने जीवन में लागू करें।

(vi) **प्रशिक्षण** : आंगनवाड़ी के माध्यम से समन्वित बाल विकास योजना के निध ाारित लक्ष्य अच्छी तरह से पूरे हों इसके लिए आंगनवाड़ी कार्यकर्ताओं को तीन महीने का प्रशिक्षण दिया जाता है ताकि वे परियोजना के कार्यों का सफल संचालन कर सकें। योजना के अंतर्गत माताओं को भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

समन्वित बाल विकास योजना की सभी सेवाएं आंगनवाड़ी केन्द्रों द्वारा ही प्रदान की जाती हैं। आंगनवाड़ी केन्द्र गांवों या शहर की गंदी बस्तियों में स्थापित किये जाते हैं। प्रत्येक आंगनवाड़ी में एक प्रशिक्षित कार्यकर्ता होती है जो गांव तथा बस्ती में घरों में जाकर उन्हें आंगनवाड़ी केन्द्र से मिलने वाली सेवाओं के बारे में जानकारी प्रदान करती है। ये कार्यकर्ता आंगनवाड़ी केन्द्रों पर गांव व बस्ती की महिलाओं की सभाओं का आयोजन करती हैं। इन सभाओं में मां तथा शिशुओं के स्वास्थ्य से सम्बन्धित विभिन्न विषयों पर चर्चा की जाती है। इन महिलाओं को सन्तुलित आहार के बारे में बताया जाता है तथा प्राथमिक उपचार की शिक्षा दी जाती है।

मातृ कल्याण कार्यक्रम

मातृ कल्याण कार्यक्रमों के अन्तर्गत महिलाओं को प्रसव से पूर्व, प्रसव के समय तथा प्रसवोपरान्त वांछित सेवाएं व सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। गर्भवती महिलाओं को कुपोषण से बचाने के लिए पौष्टिक आहार का वितरण किया जाता है। महिलाओं में रक्तहीनता से बचाव के लिए आयरन फोलिक एसिड की गोलियां निःशुल्क वितरित की

टिप्पणी

जाती हैं। गर्भ एवं प्रसव के समय बीमारियों से बचाव हेतु टिटनेस का टीका भी निःशुल्क दिया जाता है।

शिशु कल्याण कार्यक्रमों के अन्तर्गत शिशुओं की रक्षा के लिए जन्म के समय तथा जन्म के बाद प्रतिरक्षी टीके लगाये जाते हैं। जन्मोपरान्त तपेदिक से बचाव के लिए बी. सी.जी. का टीका दिया जाता है। 4 से 9 माह की आयु में डिप्थीरिया, काली खांसी और टिटनेस से बचाव के लिए टीका तथा साथ ही पोलियो के लिए वैक्सीन दी जाती है। इसके अतिरिक्त अन्य बीमारियों से बचाव के लिए निःशुल्क टीके 5 वर्ष की आयु तक दिये जाते हैं। इस प्रकार स्पष्ट है कि मातृ एवं बाल कल्याण कार्यक्रमों का लक्ष्य परिवार को स्वस्थ बनाकर समाज को समृद्ध तथा राष्ट्र को शक्तिशाली बनाना है।

गर्भवती महिलाओं के लिए सेवाएं

वर्तमान समय में माता एवं शिशुओं के कल्याण के लिए अनेक योजनाएं चलाई जा रही हैं ताकि मां एवं शिशु स्वस्थ हों और स्वस्थ समाज एवं स्वस्थ राष्ट्र का निर्माण करने में सहयोग प्रदान कर सके। यदि देश के नागरिक स्वस्थ होंगे तब ही देश विकास कर सकेगा।

गर्भवती माताओं को तीन स्तर पर सेवाएं प्रदान की जाती है–

प्रसव से पूर्व सेवा – बालक के जन्म से पूर्व गर्भवती स्त्री को दी जाने वाली सेवाएं

प्रसव कालीन सेवा – बच्चे के जन्म के समय

प्रसवोपरान्त सेवा – बच्चे के जन्म के बाद माता (जच्चा) को दी जाने वाली सेवाएं।

प्रसव से पूर्व सेवा (प्रथम स्तर) : गर्भवती माताओं को प्रसव पूर्व सेवा घर पर तथा स्वास्थ्य केन्द्रों पर प्रदान की जाती है। गांवों में स्वास्थ्य सेवाओं के प्रमुख साधन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र ही होते हैं। भारत में तो अधिकांश आबादी ग्रामीण क्षेत्रों में ही निवास करती है। अतः गर्भवती महिलाओं को प्रसव से पूर्व सेवा प्रदान करने के लिए प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर ही यह व्यवस्था की गयी है। गर्भवती महिलाओं को स्वास्थ्य सेवाएं इन्हीं केन्द्रों पर अथवा केन्द्रों द्वारा घर पर ही प्रदान की जाती हैं। शहरी क्षेत्रों में प्रसव से पूर्व सेवाएं प्रसूति केन्द्रों, प्रसूति अस्पतालों तथा प्रसूति गृहों के माध्यम से प्रदान की जाती हैं। प्रसव से पूर्व की सेवाएं प्राप्त करने के लिए गर्भवती महिलाओं को इन केन्द्रों पर जाकर अपना पंजीकरण करना होता है। पंजीकरण के पश्चात् ही प्रत्येक गर्भवती महिला का नियमित रूप से परीक्षण किया जाता है। यदि कोई महिला पंजीकरण करवाने के पश्चात् नियमित रूप से केन्द्र पर नहीं पहुंच पाती है तो इन केन्द्रों में कार्यरत विजिटर नर्स उनके घर पर जाकर उनके स्वास्थ्य का निरीक्षण करती है। नियमित निरीक्षण के बाद ही स्वास्थ्य सेविकाएं गर्भवती महिला को उसके भोजन, रहन–सहन, स्वच्छता, प्रसव तथा नवजात शिशु के आगमन की तैयारी के बारे में जानकारी प्रदान करती हैं ताकि प्रसव के समय कोई कठिनाई न हो तथा जच्चा एवं बच्चा दोनों स्वस्थ हों। इन केन्द्रों में गर्भवती महिलाओं का पूर्ण परीक्षण किया जाता है जैसे उसका भार, रक्तदाब, श्वसन दर, रक्त व मूत्र आदि का पूरा परीक्षण किया जाता है। यदि स्वास्थ्य में कोई कमी पाई जाती है जो गर्भस्थ शिशु के लिए हानिकारक हो तो उसका तुरन्त उपचार किया जाता है। इसके अतिरिक्त बच्चे की गर्भ में स्थिति, गर्भ वृद्धि, भ्रूण की हृदय गति आदि का भी समय–समय पर परीक्षण किया जाता है। कुपोषण से बचाव के लिए फल, दूध, टॉनिक आदि का निःशुल्क वितरण किया जाता

टिप्पणी

है। इसके साथ–साथ टिटनेस से सुरक्षित रखने के लिए निर्धारित समय पर टिटनेस टॉक्साइड का टीका लगाया जाता है।

प्रसवकालीन सेवा (द्वितीय स्तर) : इस स्तर पर प्रसूता के लिए प्रसवकालीन सेवाएं प्रदान की जाती हैं। जब गर्भवती महिलाएं इन केन्द्रों पर अपना पंजीकरण कराती हैं तथा नियमित रूप से निरीक्षण/परीक्षण कराती हैं तो नियमित परीक्षण से इस बात का पता चल जाता है कि प्रसव सामान्य है अथवा जटिलता से युक्त है। यदि प्रसव सामान्य है तो घर पर ही प्रसव कराने की सुविधाएं उपलब्ध करायी जाती हैं। इन प्रसूति केन्द्रों और अस्पतालों से सम्बद्धित वे ही विजिटर नर्स या मिडवाइफ घर पर प्रसव की पूरी तैयारी कराती हैं जिन्होंने प्रसव से पूर्व प्रसूता की देखरेख की हो। ये नर्स घर पर ही सभी आवश्यक समान व उपकरणों की व्यवस्था करती हैं और आवश्यकता पड़ने पर सम्बन्धित संस्थाओं से वे महिला चिकित्सक को बुलाने की व्यवस्था की जाती है। साथ ही नवजात के आगमन की पूरी तैयारी भी की जाती है।

जिन महिलाओं की जांच के बाद इस बात की पुष्टि हो जाती है कि इनका प्रसव सामान्य नहीं होगा या जिनका प्रथम प्रसव है और जिनके घरों में प्रसव की पूरी समुचित व्यवस्था नहीं है अथवा जो अपनी इच्छा से प्रसूति केन्द्रों में ही प्रसव कराना चाहती हैं, उन महिलाओं के लिए आवश्यकता पड़ने पर एम्बुलेन्स की व्यवस्था की जाती है तथा प्रसव अनुभवी व प्रशिक्षित महिला चिकित्सक द्वारा कराया जाता है और आवश्यकता पड़ने पर प्रसूता व नवजात शिशु के लिए विशेषज्ञ चिकित्सकों का भी प्रबंध किया जाता है।

प्रसवोपरान्त सेवा (तृतीय स्तर): प्रसव के पश्चात् प्रसूता को कम से कम 10 दिन तक समुचित उपचार व देखभाल में रखा जाता है। अस्पताल, प्रसूति केन्द्रों की नर्सें, मिडवाइफ, हैल्थ विजिटर प्रसूता की समुचित देखभाल करते हैं। यदि प्रसव घर पर कराया जाता है तो भी विजिटर, नर्सें व मिडवाइफ 10 दिन तक घर जाकर प्रसूता की समुचित देखभाल करती हैं।

प्रसव के पश्चात् की देखभाल के अन्तर्गत प्रसूता के स्वास्थ्य पर पूरा ध्यान दिया जाता है। उसे किसी प्रकार का कोई संक्रमण न हो इसके लिए उसके प्रजनन अंगों की स्वच्छता पर पूरा ध्यान दिया जाता है। साथ ही प्रसूता को शिशु पोषण, उसके देखभाल, स्वच्छता तथा स्तनपान के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की जाती है। प्रसूता को परिवार नियोजन का महत्व बताकर दूसरे तथा तीसरे प्रसव के पश्चात् बन्ध्याकरण के लिए प्रेरित किया जाता है। इसके लिए उसे पूर्ण निःशुल्क सेवा भी प्रदान की जाती है। प्रसव के 10 दिन पश्चात् अस्पताल से छुट्टी से पूर्व प्रसूता व शिशु का शारीरिक परीक्षण किया जाता है तथा शिशु को बी.सी.जी. का टीका लगाया जाता है तथा घर जाने के चौथे व छठे सप्ताह के बीच पुनःपरीक्षण के लिए बुलाया जाता है और रक्त दाब, भार, रक्त, मूत्र आदि का परीक्षण किया जाता है तथा शिशु पालन–पोषण के विषय में आवश्यक जानकारी भी दी जाती है।

धात्री मां एवं नवजात शिशुओं के लिए सेवाएं

धात्री मां तथा शिशुओं को प्रदान की जाने वाली सेवाएं भी घर पर या संस्था द्वारा दोनों प्रकार से प्रदान की जाती हैं। इन सेवाओं के अन्तर्गत धात्री माताओं को स्वयं के तथा नवजात शिशुओं के स्वास्थ्य विकास के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की जाती है इसमें संतुलित आहार, शिशु देखभाल, शिशु पोषण टीकाकरण और शिशु स्वच्छता के सम्बन्ध में जानकारी प्रदान की जाती है।

टिप्पणी

इन सेवाओं में धात्री माताओं को बताया जाता है कि उन्हें अपने दैनिक आहार में किन–किन खाद्य पदार्थों की कितनी मात्रा लेनी है। उन्हें बताया जाता है कि स्तनपान के दौरान प्रोटीन तथा कैलोरी मुक्त खाद्य पदार्थों को अधिक लें। दूध, दही, अंडा, मांस, मछली, दालें, फल तथा सब्जियों को अधिक मात्रा में लें ताकि शरीर को विटामिन एवं खनिज लवण पर्याप्त मात्रा में मिल सके।

शिशुओं के समुचित विकास के लिए तथा स्वास्थ्य रक्षा के लिए धात्री माताओं को विशेष रूप से प्रशिक्षित किया जाता है। उन्हें बताया जाता है कि स्तनपान से केवल 6 माह तक ही शिशु की शारीरिक मांग पूरी हो पाती है उसके बाद शारीरिक मांग को पूरा करने के लिए दूध के अतिरिक्त अन्य पौष्टिक तत्वों की भी आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति के लिए आहार में पतली खिचड़ी, साबूदाना, दाल का पानी, पतली खीर, दलिया, उबला आलू, फलों का रस तथा सब्जियों का सूप आदि देना चाहिये। शिशुओं के स्वास्थ्य की रक्षा के लिए टीकाकरण के बारे में जानकारी दी जाती है तथा टीकाकरण की सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं। ये टीके मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों एवं अस्पतालों में उपलब्ध रहते हैं।

स्कूल पूर्व आयु वर्ग के बच्चों के लिए सेवाएं

सामान्यतः 1 से 5 वर्ष की आयु वर्ग को स्कूल पूर्व आयु वर्ग माना जाता है। 1 से 3 वर्ष की आयु तक बच्चों को विशेष देखभाल की आवश्यकता होती है। भारतवर्ष में स्कूल पूर्व आयु के बच्चों के लिए स्वास्थ्य सेवाओं का समुचित विकास नहीं हो पाया है लेकिन फिर भी इन बच्चों के शारीरिक विकास के लिए विशेषकर निम्न आर्थिक स्थिति वाले बच्चों के लिए मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्रों पर, दूध, दवा, फल, अन्य पौष्टिक आहारों की निःशुल्क व्यवस्था की जाती है तथा समय–समय पर रोगों से बचाव व निवारण हेतु प्रतिरोधात्मक टीके लगाये जाते हैं। इसके साथ ही कुछ स्थानों पर कामकाजी माताओं के लिए शिशुपालन गृहों की भी व्यवस्था की गयी है। इन शिशुपालन गृहों में महिलाएं प्रतिदिन अपने काम पर जाने से पूर्व अपने बच्चों को छोड़ जाती हैं जहां उनके खाने–पीने, खेलने व सोने की पर्याप्त व्यवस्था की जाती है।

दाइयों का प्रशिक्षण

प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों, प्रसूति गृहों तथा अस्पतालों में अधिकांशतः दाइयां ही प्रसव कराती हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में दाइयों द्वारा प्रसव कराने से प्रसव के समय कई बार मातृ एवं शिशु की मृत्यु हो जाती है। अतः उनके उचित प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। इनके प्रशिक्षण का प्रबंध शासन द्वारा किया जाता है और प्रशिक्षण की व्यवस्था प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों और मातृ शिशु कल्याण केन्द्रों पर की जाती है। यहां इन्हें 6 माह का प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रशिक्षित दाइयों का पंजीकरण होता है। समय–समय पर इनके कार्यों का निरीक्षण भी किया जाता है। प्रशिक्षण के पश्चात् उन्हें प्रसव के लिए प्रयुक्त होने वाली आवश्यक सामग्री से परिपूर्ण एक बॉक्स दिया जाता है। प्रशिक्षित दाइयां स्वच्छ व सुरक्षित प्रसव कराती हैं जिससे प्रसवकालीन दुर्घटनाओं में भी कमी होती है।

व्यापक प्रतिरक्षण कार्यक्रम

भारतवर्ष में बाल मृत्यु का एक प्रमुख कारण शिशुओं में होने वाली गम्भीर बीमारियां हैं। टीकाकरण द्वारा इन गम्भीर बीमारियों से शिशुओं की रक्षा की जा सकती है।

टिप्पणी

सरकार द्वारा 1985 में व्यापक प्रतिरक्षण कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। इस व्यापक प्रतिरक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत शिशुओं को छः जानलेवा बीमारियों (डिप्थीरिया, काली खांसी, टिटनेस, पोलियो, खसरा एवं तपेदिक (T.B.) आदि) से बचाने के लिए टीके लगाये जाते हैं। यदि ये टीके शिशुओं को सही समय पर लगवा दिये जाते हैं तो उन्हें इन बीमारियों से पूरी तरह सुरक्षित रखा जा सकता है। इसके अन्तर्गत गर्भवती महिलाओं को घातक रोगों के विरुद्ध टीके दिये जाते हैं।

प्रत्येक बच्चे को यह सभी टीके एक वर्ष की आयु पूरी होने से पहले सही खुराकों में, सही अन्तराल पर लगवाने चाहिए। व्यापक प्रतिरक्षण कार्यक्रम को सफल बनाने के लिए व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया जा रहा है तथा सही समय व सही अन्तराल पर टीकाकरण हो सके इसके लिए राष्ट्रीय प्रतिरक्षण तालिका दी गई है–

राष्ट्रीय टीकाकरण कार्यक्रम

बच्चे की आयु	**टीके का नाम**	**वैक्सीन की कितनी और कौन सी खुराक**
जन्म के समय	बी.सी.जी.	केवल एक खुराक
	ओ.पी.वी.	एक खुराक (जीरो खुराक)
6 सप्ताह (1½ महीने)	ओ.पी.वी.	एक खुराक (पहली खुराक)
	डी.पी.टी.	एक खुराक (पहली खुराक)
10 सप्ताह (2½ महीने पर)	ओ.पी.वी.	एक खुराक (दूसरी खुराक)
	डी.पी.टी.	एक खुराक (दूसरी खुराक)
14 सप्ताह (3½ महीने पर)	ओ.पी.वी.	एक खुराक (तीसरी खुराक)
	डी.पी.टी.	एक खुराक (तीसरी खुराक)
9 माह से 12 माह के बीच	मीज़ल्स वैक्सीन	केवल एक खुराक आवश्यक है।
15 महीने पर	एम.एम.आर.	केवल एक खुराक
	वैक्सीन	आवश्यक है
	ओ.पी.वी.	एक खुराक (चौथी खुराक)
16 माह से 24 माह के बीच	डी.पी.टी.	एक खुराक (चौथी खुराक)
5–6 वर्ष	डी.टी. वैक्सीन	एक खुराक केवल
10 वर्ष पर	टी. वैक्सीन	एक खुराक केवल
15 वर्ष पर	टी.टी. वैक्सीन	एक खुराक

इस प्रकार व्यापक प्रतिरक्षण कार्यक्रम द्वारा वर्तमान समय में सभी जिलों में यह योजना व्यापक रूप से चल रही है।

डायरिया नियंत्रण कार्यक्रम

हमारे देश में पांच वर्ष से छोटे बच्चों में दस्त की बीमारी अधिक पायी जाती है जो समुचित उपचार के अभाव में बाल मृत्यु का कारण बन जाती है। अधिक दस्त होने पर बच्चे के शरीर में पानी की कमी होने से गम्भीर स्वास्थ्य समस्या उत्पन्न हो जाती है। दस्त की प्रारम्भिक अवस्था में तो बच्चे को नमक व चीनी का घोल देकर जल एवं आवश्यक खनिज तत्वों की पूर्ति की जा सकती है किन्तु अधिक गम्भीर अवस्था होने पर ग्लूकोज/इन्ट्रस्पिशन आदि चढ़ाकर शरीर की पानी व लवणों की कमी को दूर किया जाता है।

टिप्पणी

डायरिया के कारण शिशु मृत्यु न हो इसके लिए डायरिया नियंत्रण कार्यक्रम व्यापक रूप से प्रतिरक्षण कार्यक्रमों के साथ ही चलाया जा रहा है। इसके लिए जन–समुदाय में ओरेल–रिहाइड्रेशन के पैकेट निःशुल्क वितरित किये जाते हैं। माताओं को ओ.आर.एस. घोल (नमक, चीनी का घोल) बनाने की विधि तथा पिलाने की विधि के बारे में बताया जाता है। डायरिया नियंत्रण कार्यक्रम में समेकित बाल विकास योजना (ICDS) व स्वैच्छिक संगठन तथा गैर–सरकारी स्वास्थ्य संस्थाओं द्वारा समय–समय पर विशेष सहयोग प्रदान किया जाता है।

घेंघा नियंत्रण कार्यक्रम

शरीर में आयोडीन की कमी के कारण घेंघा रोग हो जाता है। इस रोग में शारीरिक विकास के साथ–साथ मानसिक विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। इस रोग के कारण बच्चा गूंगा, बहरा और मंदबुद्धि हो जाता है। घेंघा की बीमारी का प्रमुख कारण पानी में पोटेशियम आयोडाइड की कमी होना है। पहाड़ी क्षेत्रों में पानी में पोटेशियम आयोडाइड कम होता है इसलिए वहां यह रोग ज्यादा होता है।

घेंघा नियंत्रण योजना का प्रारम्भ केन्द्रीय सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा किया गया है। भारत में यह योजना 1962 से चलायी जा रही है। इस योजना का प्रमुख उद्देश्य ऐसे क्षेत्रों में आयोडीनयुक्त नमक उपलब्ध कराना है जहां घेंघा व्यापक बीमारी के रूप में दिखाई देता है।

वर्तमान समय में इस योजना का स्वरूप परिवर्तित कर दिया गया है। नई घेंघा नियंत्रण योजना में घेंघा रोग से पीड़ित क्षेत्रों में बच्चे के पैदा होने के समय ही उसके खून की जांच करके यह पता लगाया जाता है कि बच्चे के शरीर में आयोडीन की कमी तो नहीं है यदि है तो तुरन्त उपचार शुरू कर दिया जाता है।

यूनिसेफ (United Nations International Children Emergency Fund – UNICEF) ने भी घेंघा नियंत्रण अभियान को सफल बनाने के लिए विभिन्न क्षेत्रों में/स्थानों पर आयोडीन युक्त नमक तैयार करने के संयंत्र लगाये हैं जहां से प्रतिवर्ष 2 लाख टन नमक तैयार किया जाता है।

राष्ट्रीय रक्तहीनता नियंत्रण कार्यक्रम

रक्ताल्पता या एनीमिया हमारे देश की एक प्रमुख पोषणहीनता जनित समस्या है। यह प्रमुख रूप से महिलाओं में जननीय आयु वर्ग में तथा छोटे बच्चों में अधिक व्यापक रूप से दिखाई देती है। पौष्टिक रक्ताल्पता की रोकथाम के लिए भारत सरकार द्वारा चौथी व पांचवीं योजना के दौरान राष्ट्रीय कार्यक्रम आरम्भ किया जो जनता के स्वास्थ्य के लिए काफी प्रभावशाली सिद्ध हुआ। WHO ने रक्ताल्पता को इस प्रकार परिभाषित किया है–"ऐसा रोग जिसमें किसी एक या अधिक अनिवार्य पोषकों की कमी हो जाने के कारण रक्त में हीमोग्लोबिन की मात्रा सामान्य से कम हो जाती है।" पौष्टिक रक्ताल्पता अधिकतर लोहे की कमी के कारण होती है। कभी–कभी विटामिन B_{12} तथा फोलिक एसिड की कमी के कारण हो जाती है। 88% किशोरियां एवं 85% गर्भवती महिलाएं रक्ताल्पता का शिकार होती हैं। भारत में राष्ट्रीय रक्तहीनता नियंत्रण कार्यक्रम का संचालन प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों तथा इसके उपकेन्द्रों के माध्यम से होता है।

टिप्पणी

रक्तहीनता पर अनेक सर्वेक्षण किये गये हैं। एक सर्वेक्षण के अनुसार 65% शिशु एवं बच्चे, 1 से 6 वर्ष की आयु वाले 60% बच्चों में रक्तहीनता/रक्ताल्पता पायी जाती है। रक्तहीनता से बचाव के लिए गर्भवती माताओं और 1 से 5 वर्ष तक के शिशुओं को 100 दिन तक प्रतिदिन (माताओं के लिए बड़ी तथा बच्चों के लिए छोटी) आयरन व फोलिक एसिड की गोलियां खाने के समय या खाने के बाद दी जाती हैं। छोटे बच्चों के लिए आयरन सीरप का भी वितरण किया जाता है। गांवों में यह सुविधा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र द्वारा तथा शहरों में यह सुविधा परिवार कल्याण केन्द्र, मेडिकल कॉलेज, प्रसूति केन्द्र और सरकारी अस्पतालों द्वारा निःशुल्क प्रदान की जाती है। उत्तर प्रदेश में यह योजना सभी जिलों में क्रियान्वित की जा रही है।

बाल अन्धता निरोधक कार्यक्रम : विटामिन ए आंखों की रोशनी, शरीर के विकास और मजबूत रोग प्रतिरक्षा प्रणाली के लिए आवश्यक तत्व है। विटामिन ए की कमी के कारण बच्चे अंधेपन के शिकार हो सकते हैं। हमारे देश में प्रतिवर्ष सैकड़ों बच्चे विटामिन ए की कमी के कारण केरेटोमलेशिया रोग का शिकार हो जाते हैं और धीरे–ध ीरे कुछ समय बाद अंधे हो जाते हैं। इस कमी को दूर करने के लिए भारत सरकार के स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय द्वारा 1970 में बाल अन्धता निरोधक कार्यक्रम प्रारम्भ किया गया है। इस रोग से निजात पाने के लिए सरकार द्वारा 1 से 5 वर्ष तक के बच्चों को 2 मिली लीटर विटामिन ए की एक खुराक 6 माह के अन्तर पर दी जाती है। एक खुराक 19 वर्ष तक बच्चे की विटामिन ए की पूर्ति करती है। इस घोल का वितरण आंगनवाड़ी तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा निःशुल्क किया जाता है। अविकसित क्षेत्रों में इसका वितरण प्राथमिक स्तर पर किया जाता है। उत्तर प्रदेश के सभी जिलों में यह योजना क्रियान्वित हो रही है।

इन्दिरा गांधी मातृत्व सहयोग योजना

20 अक्टूबर, 2010 को केन्द्रीय मंत्रिमंडल ने देश के दूर–दराज क्षेत्रों में जच्चा–बच्चा की ठीक ढंग से देखभाल के लिए 1000 करोड़ रुपये की इन्दिरा गांधी सहयोग योजना की अपनी स्वीकृति प्रदान की है। प्रथम चरण में योजना 52 चयनित जिलों में क्रियान्वित की गयी। इन जिलों में 14 लाख गर्भवती और छोटे बच्चों वाली माताओं को योजना का लाभ देने का लक्ष्य रखा गया। वर्ष 2013–14 में इस योजना हेतु 500 करोड़ रुपये आवंटित किये।

ग्रामीण महिला शिशु कार्यक्रम

यह योजना प्रत्यक्ष रूप से शिशु स्वास्थ्य रक्षा के लिए कोई कार्य नहीं करती है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली ग्रामीण महिलाओं के आर्थिक स्तर को ऊंचा उठाकर उसके माध्यम से परिवार के स्वास्थ्य पोषण और शैक्षिक स्तर को ऊंचा उठाना है। क्योंकि जब परिवार के पुरुष सदस्य की आय परिवार की जीवन रक्षक आवश्यकताओं की पूर्ति समुचित मात्रा में नहीं कर सकती है तो परिवार का स्वास्थ्य व पोषण स्तर निम्न होना स्वाभाविक है। इसी कारण एक ऐसी योजना की आवश्यकता को महसूस किया गया जो गरीबी रेखा से नीचे रहने वाली महिलाओं को रोजगार के अवसर प्रदान कर सके जिससे वे अपनी पारिवारिक आय में वृद्धि करके परिवार के स्वास्थ्य पोषण एवं शैक्षिक स्तर को ऊंचा उठा सकें। ग्रामीण महिला शिशु विकास कार्यक्रम को सितम्बर, 1982 में प्रारम्भ किया गया। यह योजना समेकित/समन्वित

बाल विकास योजना (ICDS) की ही एक सह–योजना है। इस योजना का मुख्य उद्देश्य गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाली महिलाओं को रोजगार के समुचित अवसर प्रदान कर उनके परिवार के आर्थिक स्तर में सुधार लाना है। इस योजना के लिए उन महिलाओं को प्राथमिकता दी जाती है जिनकी वार्षिक आय 4800 रु. से कम होती है। महिलाओं का चयन करने के बाद उन्हें अलग–अलग समूहों में बांट दिया जाता है। प्रत्येक समूह में 15 से 20 महिलाएं होती हैं जो किसी एक व्यवसाय का चयन करती हैं। व्यवसाय के चयन के पश्चात् उस समूह को व्यवसाय के लिए कच्चा माल तथा प्रशिक्षण दिया जाता है। तैयार माल की बिक्री में भी इन महिलाओं को सहयोग प्रदान किया जाता है। व्यवसाय से जो लाभ होता है वह इन महिलाओं को प्राप्त होता है। इस प्रकार यह योजना ग्रामीण महिलाओं को रोजगार के अवसर प्रदान कर उन्हें आर्थिक रूप से सुदृढ़ करती है तथा आत्मनिर्भर बनाती है।

जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम

नवजात शिशुओं को स्वास्थ्य सुविधाएं प्राप्त न होने के कारण शिशु मृत्यु की समस्या काफी गम्भीर है। शिशु मृत्यु दर में कमी लाने के लिए स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण मंत्रालय ने 1 जून, 2011 को गर्भवती महिलाओं तथा अस्वस्थ/बीमार नवजात शिशुओं के बेहतर स्वास्थ्य के लिए जननी शिशु सुरक्षा कार्यक्रम (JSSY) शुरू किया गया। यह योजना सभी राज्यों एवं केन्द्रशासित राज्यों में क्रियान्वित की जा रही है।

इस योजना के अन्तर्गत गर्भवती महिलाओं को मुफ्त दवाएं एवं खाद्य पदार्थ दिये जाते हैं। इस योजना के अन्तर्गत निःशुल्क जांच सुविधाएं, निःशुल्क भोजन, निःशुल्क रक्त सुविधा, घर से केन्द्र जाने तथा आने के लिए निःशुल्क वाहन सुविधा, निःशुल्क दवाइयां, आवश्यकता पड़ने पर सीजेरियन प्रसव समेत कई सुविधाएं प्रदान की जाती हैं।

राष्ट्रीय पोषण अभियान

यह भारत सरकार का एक महत्वपूर्ण प्रमुख कार्यक्रम है। भारत सरकार के बाल विकास मंत्रालय ने राष्ट्रीय पोषण अभियान (राष्ट्रीय पोषण मिशन) की स्थापना की है। इस मिशन का शुभारम्भ भारत सरकार ने 8 मार्च, 2018 को राजस्थान के झुंझूनू जिले में शुरू किया गया जिसका उद्देश्य अगले 3 वर्ष में अल्पपोषण के स्तर को कम करना, कुपोषण, अनीमिया तथा जन्म के समय बच्चों के कम वजन की समस्या को सुलझाना और किशोरियों, गर्भवती महिलाओं तथा स्तनपान कराने वाली महिलाओं पर ध्यान केन्द्रित करके उनमें कुपोषण जैसी समस्या का समाधान करना शामिल है। इस योजना के अन्तर्गत सभी राज्यों/केन्द्र शासित प्रदेशों तथा जिलों को चरणबद्ध तरीके से 2020 तक लाभान्वित किया जायेगा। यह मात्र पोषण अभियान कार्यक्रम न होकर एक जन आन्दोलन और भागीदारी है। इस कार्यक्रम में व्यापक स्तर पर स्थानीय निकायों, राज्य के सरकारी विभागों, सामाजिक संगठनों तथा सार्वजनिक एवं निजी क्षेत्र के प्रतिनिधियों की भागीदारी भी शामिल है। पोषण अभियान को गति प्रदान करने के लिए राष्ट्रीय परिषद् ने 24 जुलाई, 2018 को सितम्बर माह को राष्ट्रीय पोषण माह के रूप में मनाने की घोषणा की।

पोषण अभियान का लक्ष्य बड़े बच्चों की माताओं, किशोरियों, लड़कियों, गर्भवती व स्तनपान कराने वाली महिलाओं, पारिवारिक सदस्यों और सामुदायिक सदस्यों में पोषण व्यवहार के बारे में पोषण जागरूकता बढ़ाना है।

शिशुओं और छोटे बच्चों के पोषण (फीडिंग) के सम्बन्ध में राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धांत

टिप्पणी

महिला एवं विकास मंत्रालय द्वारा बच्चों के पोषण के लिए मानक तय करते हुए कई योजनाएं एवं सिद्धांत दिये गये हैं। शिशुओं और छोटे बच्चों के पोषण के सम्बन्ध में राष्ट्रीय मार्गदर्शी सिद्धांतों द्वारा स्तनपान के महत्व पर जोर दिया गया है। बच्चे के जन्म के तुरन्त बाद स्तनपान प्रारम्भ कर देना चाहिए तथा अन्य प्रकार के दूध का प्रयोग कम से कम छः माह तक नहीं करना चाहिए अर्थात् पहले छः माह तक केवल स्तनपान कराना चाहिए। इसके बाद उचित व पूरक पोषण शुरू किया जाना चाहिए।

राष्ट्रीय पोषण नीति महिला व बाल विकास मंत्रालय के तत्वावधान में भारत सरकार द्वारा 1993 में स्वीकृत की गयी। इसके द्वारा कुपोषण मिटाने और सबके लिए इष्टतम पोषण का लक्ष्य प्राप्त करने के लिए बहुखंडीय योजना की वकालत भी की गयी है। राष्ट्रीय पोषण नीति में आहार व पोषण बोर्ड भी शामिल है जिसके द्वारा स्तनपान व पूरक फीडिंग के संबंध में सही तथ्यों का प्रचार–प्रसार करने के लिए दृश्य–श्रव्य तुकबंदी विकसित की जाती है। इस नीति के माध्यम से स्तनपान कराने वाली माताओं व गर्भवती स्त्रियों को देश भर में मां के दूध के महत्व को समझाया जा रहा है।

किशोरी शक्ति योजना

किशोरावस्था नारी जीवन की सर्वाधिक महत्वपूर्ण अवस्था होती है। बाल्यावस्था तथा यौवन के बीच की अवस्था होने के कारण किशोरावस्था नारी के मानसिक, भावनात्मक तथा मनोवैज्ञानिक विकास की दृष्टि से अत्यंत परिवर्तनशील होती है।

किशोरी शक्ति योजना वर्तमान समय में ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों में आंगनवाड़ी केन्द्रों के माध्यम से कार्यान्वित की जा रही है। इस योजना के अन्तर्गत गरीबी रेखा से नीचे जीवनयापन करने वाले परिवारों की अविवाहित तथा स्कूली शिक्षा छोड़ चुकी किशोरियों का चुनाव किया जाता है तथा उन्हें स्थानीय आंगनवाड़ी केन्द्रों में 6 माह का शिक्षण एवं प्रशिक्षण दिया जाता है। इस योजना का उद्देश्य किशोरियों में आत्मविश्वास, उत्साह एवं आत्मगौरव की भावना को वृद्धि करना है। किशोरी स्कीम देशभर में 507 आई सी डी एस (ICDS) ब्लॉकों में स्वीकृत की गई है।

योजना के उद्देश्य

किशोरी शक्ति योजना के निम्नलिखित उद्देश्य हैं–

- 11–18 वर्ष की आयु वर्ग की बालिकाओं की पौषणिक एवं स्वास्थ्य स्थिति में सुधार लाना।
- किशोरियों को समाज की आर्थिक दृष्टि से उपादेय एवं उपयोगी सदस्य बनने के लिए प्रेरित करना।
- किशोरियों को घरेलू एवं व्यावसायिक कौशलों में सुधार हेतु प्रशिक्षित करना।
- किशोरियों की अपनी निर्णय क्षमताओं में सुधार करने हेतु सहायता करना तथा अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से उन्हें साक्षर करना।
- किशोरियों में स्वास्थ्य एवं सफाई, पोषण एवं परिवार कल्याण, बाल देखभाल सम्बन्धी जागरूकता को बढ़ावा देने हेतु यथा सम्भव प्रयास करना।

टिप्पणी

उदिशा

'उदिशा' का अर्थ है नए भोर की पहली किरण। उदिशा विश्व बैंक से सहायता प्राप्त महिला एवं बाल विकास परियोजना है। इस कार्यक्रम का उद्देश्य देशभर में महिला एवं बाल देखभाल करने वाले कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना है। यह बाल विकास कार्यक्रम का सबसे महत्वपूर्ण अंग है। उदिशा एक ऐसा गतिशील एवं जागरूक मानव संसाधन कार्यक्रम है जिसमें नये–नये विचारों को शामिल किया जाता है। उदिशा का मूल सिद्धांत सक्रिय कार्यकर्ताओं का ऐसा समूह तैयार करना है जो समन्वित प्रशिक्षण एवं सम्पर्क कार्यक्रम के माध्यम से समुदाय स्तर में परिवर्तन ला सके।

भारत सरकार द्वारा राज्य में महिला एवं बाल विकास विभाग के अन्तर्गत संचालित विभिन्न गतिविधियों एवं कार्यक्रमों में गुणात्मक सुधार लाने के लिए विभिन्न प्रशिक्षण कार्यक्रमों को समन्वित करने तथा सूचना, शिक्षा एवं संचार गतिविधियों को प्रभावी बनाने के लिए उदिशा प्रशिक्षण योजना को 1998 में स्वीकृत किया गया।

बच्चों के लिए राष्ट्रीय घोषणा पत्र

भारत सरकार द्वारा बच्चों के लिए राष्ट्रीय घोषणा पत्र जारी किया गया है। इस पत्र में बच्चों को जीवित रहने, प्रारम्भिक बचपन की देखभाल, शिक्षा, स्वास्थ्य एवं पोषण, जीवन स्तर, खेल, बालिकाओं की सुरक्षा, परिवार के लिए अधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, आर्थिक शोषण एवं अन्य सभी प्रकार के दुर्व्यवहारों से रक्षा के अधिकार के प्रति सरकार की प्रतिबद्धता पर बल दिया गया है।

मिशन इंद्रधनुष

सरकार द्वारा सर्वव्यापी टीकाकरण कार्यक्रम चलाया गया है। देश में प्रत्येक बच्चे तक टीकाकरण सेवाएं पहुंचाने के अपने प्रयासों के पूरक के रूप में एक विशेष लक्षित कार्यक्रम की परिकल्पना की है ताकि उन बच्चों तक पहुंचा जा सके जो नियमित टीकाकरण के दायरे में नहीं आ पाए या जिनका आंशिक टीकाकरण हुआ है। इस कार्यक्रम को मिशन इन्द्रधनुष का नाम दिया गया। यह सम्पूर्ण देश के सर्वव्यापी टीकाकरण कार्यक्रम का एक हिस्सा है। इस कार्यक्रम की शुरुआत 25 दिसम्बर, 2014 में हुई थी। इसका उद्देश्य दो साल तक के सभी बच्चों और गर्भवती महिलाओं का सम्पूर्ण टीकाकरण करना है।

लक्ष्य

मिशन इंद्रधनुष कार्यक्रम के निम्न लक्ष्य हैं–

1. वर्ष 2020 तक कम से कम 90 प्रतिशत बच्चे का टीकाकरण।
2. अब तक मिशन के तीन चरण पूरे हो चुके हैं जिसमें 29 लाख सत्र आयोजित किए गए और 5.2 करोड़ टीके लगाये गये।
3. अप्रैल, 2017 तक 60 लाख विटामिन 'ए' की खुराक दी गयी तथा 52 लाख ओ.आर.एस. के पैकेट और 1.8 करोड़ जिंक टैबलेट्स बांटे गये।
4. 7 फरवरी, 2017 से उत्तर पूर्वी राज्यों के 68 जिलों में मिशन इंद्रधनुष का चौथा चरण चल रहा है।
5. 18 अन्य राज्यों के 180 जिलों में 7 अप्रैल 2017 से चौथा चरण शुरू किया गया।

6. 35 राज्यों / केन्द्र शासित प्रदेशों में 528 जिलों तक इस मिशन को पहुंचाया गया।
7. मिशन इंद्रधनुष का वार्षिक विस्तार 5–7 प्रतिशत तक हुआ है।

किलकारी

वर्ष 2016 में भारत सरकार द्वारा प्रौद्योगिकी आधारित हस्तक्षेप किए गए हैं जो अप्रत्यक्ष रूप से मां व बच्चे के स्वास्थ्य की देखभाल से जुड़े हैं। किलकारी गर्भावस्था, प्रसव, एवं शिशुओं की देखभाल से सम्बन्धित 72 श्रव्य संदेशों का एक सेट है। इन संदेशों को गर्भावस्था की दूसरी तिमाही से लेकर बच्चे के एक साल के होने तक सम्बन्धित परिवारों के मोबाइल फोन पर निःशुल्क दिया जाता है। प्रथम चरण में इस कार्यक्रम की शुरुआत उत्तर प्रदेश, उड़ीसा, उत्तराखंड, मध्य प्रदेश, झारखंड व राजस्थान के उच्च प्राथमिकता वाले जिलों से की गई है। इसमें 41 लाख से अधिक लाभार्थियों को किलकारी सेवाओं के लिए मो–टेक प्लेटफार्म के लिए सबस्क्राइब किया गया है। लाभार्थियों को करीब 5 करोड़ 97 लाख कॉल किये गये और करीब 5 करोड़ 90 लाख मिनट की कॉल सेवा दी गई।

स्वास्थ्य कल्याणकारी संस्थाएं

वर्तमान समय में स्वास्थ्य कल्याण के क्षेत्र में अनेक संस्थाएं भी शामिल हैं जो बालकों के स्वास्थ्य पोषण एवं शिक्षण के क्षेत्र में कार्य कर रही हैं। ये संस्थाएं निम्नलिखित रूप से वर्गीकृत हैं–

1. स्थानीय संस्थाएं
2. प्रादेशिक संस्थाएं
3. केन्द्रीय संस्थाएं
4. अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं
5. स्वयंसेवी संगठन।

(1) स्थानीय संस्थाएं : ये संस्थाएं शहरों एवं ग्रामीण क्षेत्रों में नगर महापालिकाओं और जिला परिषद द्वारा चलायी जाती हैं। इनके द्वारा शहरी तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रसूति केन्द्रों तथा परिवार नियोजन केन्द्रों की स्थापना की जाती है। इन केन्द्रों के संचालन में एच्छिक संस्थाएं तथा धनाढ्य व्यक्ति भी सहायता प्रदान करते हैं। यहां गर्भवती माताओं की प्रसव से पूर्व, प्रसवकालीन और प्रसवोपरान्त देखभाल प्रशिक्षित नर्सों व कुशल चिकित्सकों द्वारा की जाती है।

शहरों में प्रत्येक 1,00,000 जनसंख्या के लिए 50 शैय्यावाला प्रसूति गृह खोलने का प्रावधान है। प्रसूति गृह में कुशल चिकित्सकों की नियुक्ति की जाती है जो शिशुओं व माताओं को स्वास्थ्य रक्षा के लिए निःशुल्क सेवाएं प्रदान करते हैं। यहां निर्धन महिलाओं को दूध, दवा और फलों का निःशुल्क वितरण किया जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में यह सेवाएं प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों द्वारा प्रदान की जाती है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्र में प्रत्येक 10,000 जनसंख्या पर एक उप स्वास्थ्य केन्द्र होता है। प्रत्येक स्वास्थ्य केन्द्र के अन्तर्गत एक डिस्पेन्सरी, एक परामर्श कक्ष, मातृ एवं बाल स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन विभाग, माइनर सर्जरी कक्ष तथा 6 बिस्तरों वाला एक

वार्ड होता है। इन केन्द्रों की स्वास्थ्य निरीक्षिकाएं ग्राम सेविकाओं के साथ घर–घर जाकर सुरक्षित प्रसव, परिवार नियोजन, टीकाकरण, सन्तुलित भोजन, स्वच्छता आदि की जानकारी माताओं को प्रदान करती है।

टिप्पणी

(2) प्रादेशिक संस्थाएं : प्रदेश सरकार भी मातृ एवं बाल कल्याण हेतु कई योजनाएं चलाती हैं। ये योजनाएं प्रदेश सरकारें स्वास्थ्य मंत्रालय के सहयोग से चलाती हैं। इनके अन्तर्गत शहरों व गांवों में बाल मातृ कल्याण सेवाओं का आयोजन किया जाता है। इन सेवाओं में गर्भवती माताओं की समुचित देखभाल की जाती है तथा प्रसव के समय निःशुल्क दवाइयां एवं चिकित्सकीय सुविधाओं की व्यवस्था की जाती है।

प्रादेशिक संस्थाओं के कार्य

प्रादेशिक संस्थाओं के कार्य निम्नलिखित हैं–

(1) प्रत्येक सामुदायिक विकास खण्ड में स्वास्थ्य केन्द्रों की स्थापना करना।

(2) स्वास्थ्य केन्द्रों में प्रसूति गृह व बाल कल्याण केन्द्रों की स्थापना करना।

(3) शिशु अस्पतालों की स्थापना करना तथा बाल रोगियों की स्वास्थ्य सुरक्षा हेतु खाने की वस्तुओं फल, दूध आदि का प्रबन्ध करना।

(4) महिला चिकित्सालयों की व्यवस्था करना।

(5) सामान्य अस्पतालों में प्रसूति कक्षों की व्यवस्था करना।

(6) परिवार नियोजन सम्बन्धी शिक्षा एवं सुविधा प्रदान करना।

(7) मातृ एवं बाल कल्याण केन्द्रों की दाइयों को घर पर प्रसव कराने की अनुमति प्रदान करना।

(3) केन्द्रीय संस्थाएं : भारत सरकार का स्वास्थ्य मंत्रालय केन्द्रीय स्तर पर स्वास्थ्य रक्षा एवं बाल कल्याण के लिए अनेक कार्यक्रम चलाता है। पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत 1953 में भारत सरकार की ओर से समाज कल्याण विभाग की स्थापना की गयी जिसके संरक्षण में नगरों एवं गांवों में गर्भवती महिलाओं एवं शिशु कल्याण के लिए कई विभाग कार्यरत हैं। समाज कल्याण विभाग प्रसूति केन्द्रों में प्रशिक्षित दाइयों एवं नर्सों की व्यवस्था करता है। प्रत्येक पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत इसके लिए सामूहिक विकास की योजनाएं बनायी गयी हैं। इसके द्वारा प्रसूति गृह व शिशु कल्याण केन्द्रों पर ऐसे कार्यकर्ताओं की नियुक्ति की जाती है जो घर– घर जाकर स्त्रियों के शिशु पालन, उनकी देखरेख, खान–पान, पोषक तत्वों की आवश्यकता आदि के बारे में शिक्षित करते हैं।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं : जन स्वास्थ्य के मामले में मातृ एवं बाल कल्याण को सबसे अधिक महत्वपूर्ण माना जाता है क्योंकि यह दोनों मिलकर देश की कुल जनसंख्या का बहुत बड़ा प्रतिशत बनते हैं तथा बच्चे देश के भावी कर्णधार होते हैं और महिलाएं उन कर्णधारों को जन्म देती हैं।

मातृ एवं बाल कल्याण के क्षेत्रों में कुछ अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं भी भारत सरकार की सहायता कर रही हैं। अन्तर्राष्ट्रीय बाल सहायता कोष से शहरों तथा गांवों में स्वास्थ्य केन्द्र खोले जा रहे हैं जहां दवा एवं दूध निःशुल्क दिया जाता है। भारतवर्ष में मातृ एवं बाल कल्याण के क्षेत्र में जो अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं कार्य कर रही हैं वे निम्न हैं–

टिप्पणी

(क) विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organisation; WHO)

(ख) यूनिसेफ (United Nations International Children Emergency Fund; U.N.I.C.E.F.)

(ग) यू.एस.ए.आई.डी. (United State Agency for International Development; U.S.A.I.D.)

(घ) खाद्य एवं कृषि संगठन (Food & Agriculture Organisation; F.A.O.)

(ङ) केयर (Co-operative for American Relief Everywhere; C.A.R.E.)

(क) विश्व स्वास्थ्य संगठन – विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशेष शाखा है जो भारत वर्ष में बाल कल्याण के लिए अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में कार्य कर रही है। इस संगठन की स्थापना 7 अप्रैल 1948 को हुई इसलिए इस दिन को प्रत्येक वर्ष को स्वास्थ्य दिवस मनाया जाता है। इसका मुख्यालय जेनेवा में है।

उद्देश्य – इसका मुख्य उद्देश्य विश्व के समस्त व्यक्तियों को सर्वोच्च स्वास्थ्य स्तर प्रदान करना है। भारत में WHO का क्षेत्रीय कार्यालय दिल्ली में है जिसकी स्थापना 1 जनवरी 1949 में हुई थी।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के कार्य – सबके लिए स्वास्थ्य मिशन को ध्यान में रखते हुए विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) निम्न क्षेत्रों में कार्य करता है–

(1) मातृ एवं शिशु कल्याण

(2) पोषण

(3) जन स्वास्थ्य

(4) जन स्वास्थ्य की देखभाल

(5) मानसिक स्वास्थ्य

(6) जन–शिक्षा

(7) व्यावसायिक शिक्षा

(8) पर्यावरणीय स्वास्थ्य।

उपर्युक्त कार्य क्षेत्रों को आधार मानकर WHO द्वारा निम्न कार्य किये जाते हैं–

(1) रोगों से बचाव व नियन्त्रण।

(2) परिवार के स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाना।

(3) पर्यावरणीय सुधार।

(4) विस्तृत स्वास्थ्य सेवाओं का विकास करना।

(5) चिकित्सकीय अनुसंधान।

(6) स्वास्थ्य सम्बन्धी आंकड़ों को एकत्र करना, आंकड़ों का निर्वाचन करके आगामी योजनाएं लाना।

(7) स्वास्थ्य संबंधी साहित्य व सूचनाएं प्रदान करना।

(8) पोषण स्तर में सुधार करना–बालकों में प्रोटीन कैलोरी कुपोषण को रोकने के लिए WHO द्वारा सराहनीय कार्य किये गये हैं। सन् 1955 में इसके द्वारा

प्रोटीन कैलोरी सलाहकार समिति का गठन किया गया। इस समिति ने प्रोटीन कैलोरी कुपोषण को रोकने के लिए सस्ते उत्तम प्रोटीनयुक्त पदार्थों की जानकारी प्रदान की। सन् 1960 में समिति का पुनर्गठन किया गया।

टिप्पणी

(ख) यूनिसेफ (U.N.I.C.E.F.): इस संगठन की स्थापना 1946 में युद्ध में पीड़ित माताओं तथा बच्चों के कल्याण हेतु की गई थी। इसका उद्देश्य युद्ध पीड़ित देशों के बच्चों का पुनर्वास करना था लेकिन बाद में इस संस्था ने अपने कार्यों का और अधिक विस्तार किया। यूनिसेफ का मुख्य कार्यालय न्यूयार्क में है और भारत में इसका क्षेत्रीय कार्यालय नई दिल्ली में है।

उद्देश्य– यूनिसेफ का मुख्य उद्देश्य बच्चों का सर्वांगीण विकास करना है।

यूनिसेफ के कार्य : यह संस्था प्रमुख रूप से निम्न चार कार्य करती है–

1. **बाल स्वास्थ्य** : बाल स्वास्थ्य में सुधार के लिए यूनिसेफ ॅभ्व के साथ कार्य करती है। इसके लिए यूनिसेफ चिकित्सा महाविद्यालयों में बाल रोग विभाग, स्त्री रोग विभाग को खोलने के लिए सहायता प्रदान करती है। बालकों के संक्रामक रोगों की रोकथाम के लिए टीकाकरण में मदद करता है। यूनिसेफ उन सभी रोगों के निराकरण एवं रोकथाम के लिए सक्रिय रूप से कार्य करता है जो बच्चों के स्वास्थ्य को अधिकाधिक प्रभावित करते हैं।
2. **बाल पोषण** : भारत में आज कुपोषण की समस्या गम्भीर रूप धारण किये हुए है। बालकों में कुपोषण की रोकथाम तथा स्वास्थ्य स्तर में सुधार लाने के लिए यूनिसेफ ने सर्वप्रथम सूखे दूध के वितरण का कार्य प्रारंभ किया। खाद्य एवं कृषि संगठन ;थ्।व्द्ध के साथ मिलकर यूनिसेफ व्यावहारिक पोषण कार्यक्रम के क्षेत्र में भी कार्य कर रहा है। यह संस्था मत्स्य पालन, मुर्गीपालन में सहायता कर रही है। मुम्बई व कलकत्ता में दूध की डेरियां स्थापित करने और कोयम्बटूर में प्रोटीन बहुल आहार उत्पादन केन्द्र खोले हैं।
3. **परिवार एवं बाल कल्याण**–स्वास्थ्य एवं बाल कल्याण के लिए यूनिसेफ परिवार नियोजन के क्षेत्र में कार्य करती है। इस कार्यक्रम को प्रभावशाली बनाने के लिए यूनिसेफ आर्थिक सहायता प्रदान करती है। माताओं के सुरक्षित प्रसव के लिए अच्छे उपकरण व सामग्री प्रदान करती है। प्राथमिक स्वास्थ्य केन्द्रों पर मातृ एवं शिशु कल्याण सेवाओं के लिए आवश्यक सामग्री उपकरण दूध पाउडर वाहन आदि की व्यवस्था करना दाइयों व मिडवाइफों के लिए प्रशिक्षण की व्यवस्था भी यूनिसेफ द्वारा की जाती है।
4. **शिक्षा**– बाल शिक्षा के क्षेत्र में भी यूनिसेफ महत्वपूर्ण कार्य कर रही है। बाल शिक्षा के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए यूनिसेफ काफी धन खर्च करती है। इसके लिए शैक्षणिक संस्थाओं में प्रयोगशालाओं के लिए आधुनिक यन्त्र, उपकरण, पुस्तकालय के लिए पुस्तकें और शिक्षण के लिए दृश्य–श्रव्य साधनों के लिए सहायता प्रदान की जाती है।

(ग) यू.एस.ए.आई.डी. (USAID): यह संगठन स्वास्थ्य योजनाओं के अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण कार्य कर रहा है। इस संगठन की स्थापना यूनाइटेड स्टेट अमेरिका में हुई थी और (T.C.M. Technical Co-operative Mission) के नाम से जाना जाता था।

यह संगठन स्वच्छ वातावरण, सुरक्षित जल पूर्ति प्रदान करने, परिवार नियोजन, उत्तम पोषण आदि योजनाओं के संचालन में आर्थिक सहयोग व तकनीकी सुझाव प्रदान करता है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण स्वास्थ्य सेवाओं, अस्पतालों के विस्तार तथा स्वास्थ्य शिक्षा के प्रसार में सक्रिय भाग लेता है।

(घ) खाद्य एवं कृषि संगठन (F.A.O.): यह एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था है। यह सम्पूर्ण विश्व में विभिन्न क्षेत्रों में अपनी सहायता प्रदान करती है। इसका प्रमुख कार्य विश्व खाद्य से सम्बन्धित आंकड़ों को एकत्रित कर विश्व में खाद्यान्न की स्थिति की जानकारी प्राप्त करना है। इसकी स्थापना 1945 में हुई थी और इसका मुख्यालय रोम है।

उद्देश्य– संगठन का मुख्य उद्देश्य बढ़ती हुई जनसंख्या की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए खाद्य पदार्थों के उत्पादन में वृद्धि करना तथा कुपोषण को दूर करना है।

कार्य– अपने उद्देश्यों की सफलता के लिए संगठन निम्न कार्य करता है।

1. सभी राष्ट्रों की पोषण स्थिति में सुधार करना।
2. उत्तम पोषण तथा कुपोषण से बचाव के लिए आवश्यक जानकारी का प्रचार–प्रसार करना।
3. कृषि, मत्स्य पालन तथा वन उपज को बढ़ावा देना।
4. पोषण शिक्षा प्रदान करना।
5. ग्रामीणों की पोषण स्थिति में सुधार करना।
6. पोषण सर्वेक्षण, सभाएं, गोष्ठी, शोध कार्य करके पोषण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान करना।
7. व्यावहारिक पुष्टाहार कार्यक्रम में सहायता प्रदान करना।
8. विश्व स्वास्थ्य संगठन के सहयोग से सभी के स्वास्थ्य तथा पोषणात्मक स्तर में सुधार करना।

(ङ) केयर (CARE): इस संस्था की स्थापना अमरीकी दानदाताओं द्वारा सन् 1946 में युद्ध पीड़ित यूरोपियन व्यक्तियों को खाद्य सामग्री पहुंचाने के लिए की गई थी। किन्तु युद्धकालीन संकट के बाद यह संस्था अन्य देशों की सहायतार्थ खाद्य सामग्री, चिकित्सीय उपकरण, कृषि यंत्र उपकरण, दवाएं, टॉनिक, पम्प सेट आदि भेजने का कार्य करती रही है। इस संस्था का प्रमुख उद्देश्य प्रत्येक पीड़ित और अभावग्रस्त व्यक्ति को राहत व सहायता प्रदान करना था।

भारत को 1950 में इस संस्था से सहायता प्राप्त हुई जिसके तहत 1960 में भारतीय गरीब बच्चों के लिए प्राथमिक विद्यालयों में मध्याह्न आहार की योजना प्रारम्भ की गयी। इसके अतिरिक्त यह संस्था भारत में यूनिसेफ के माध्यम से कुपोषित माताओं और बच्चों के लिए सोयाबीन, पाउडर दूध, मक्खन, चीज आदि खाद्य सामग्री का वितरण करती है। केयर संस्था ने भारत में चल रही व्यावहारिक पोषाहार कार्यक्रम में सहायता प्रदान की है तथा शिशुओं, स्कूली बच्चों, गर्भवती स्त्रियों तथा धात्री माताओं को उनकी आवश्यकतानुसार पौष्टिक आहार प्रदान करने का प्रबन्ध करती है। केयर ने चिकित्सा के क्षेत्र में भारत को मदद करने की सहमति प्रदान की। इस प्रकार केयर अन्तर्राष्ट्रीय संस्था के रूप में भारत में भी कार्यरत है।

टिप्पणी

(5) स्वयंसेवी संगठन (SHG): यह एक गैर सरकारी संगठन है जो निजी क्षेत्रों में प्राप्त धनराशि से चलता है तथा स्वास्थ्य, शिक्षा एवं चिकित्सा आदि की सेवाएं प्रदान करते हैं। समाज के कुछ सभ्य व्यक्ति समाज सेवा की भावना से प्रेरित होकर व्यक्तिगत अथवा सम्मिलित रूप से महत्वपूर्ण संस्थाओं की स्थापना करते हैं। इन संगठनों में भारतीय रेडक्रॉस सोसाइटी, हिन्दू कुष्ठ निवारण संघ, ट्यूबरक्लोसिस एसोसिएशन ऑफ इण्डिया, भारत सेवक समाज, रामकृष्ण मिशन, भारतीय परिवार नियोजन संघ, कस्तूरबा मेमोरियल फण्ड आदि का नाम प्रमुख है।

(क) भारतीय रेडक्रास सोसाइटी– इस संस्था की स्थापना 1920 में हुई थी। स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् सर्वप्रथम इसी संस्था ने बाल कल्याण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया। इसका मुख्यालय दिल्ली में है। यह संस्था मातृ एवं बाल कल्याण केन्द्रों के माध्यम से अनाथालयों, बाल अस्पतालों, चिकित्सालयों आदि में निःशुल्क औषधियां एवं पौष्टिक खाद्य पदार्थों तथा दूध का वितरण करती है। यह अकाल, बाढ़, भूकम्प महामारी के प्राकृतिक प्रकोप के समय प्रभावित व्यक्तियों की सहायता के लिए दवाइयां, वस्त्र, कम्बल भोजन आदि की व्यवस्था में सहायता करती है। मातृ रथ बाल कल्याण/स्वास्थ्य केन्द्रों पर पाउडर दूध, दवाइयां आदि निःशुल्क वितरित करती है। इस संस्था द्वारा रक्त बैंक भी शुरू किये गये हैं।

(ख) हिन्दू कुष्ठ निवारक संघ– इस संघ की स्थापना 1950 में हुई थी इसका मुख्य कार्यालय दिल्ली में है। इसकी शाखाएं सम्पूर्ण भारत में फैली हुई है जो सरकारी संगठनों के साथ मिलकर कुष्ठ रोग के निदान और उपचारों के लिए कार्य करती है। यह कुष्ठ रोग के क्षेत्र में कार्यरत चिकित्सकों तथा सहायक स्वास्थ्य कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करता है।

(ग) ट्यूबरक्लोसिस एसोसिएशन ऑफ इण्डिया– यह संगठन तपेदिक रोग के निवारण में सहायता प्रदान करता है। इसकी स्थापना 1938 में हुई थी। वर्तमान समय में इसकी शाखाएं सम्पूर्ण भारत में फैली हुई हैं।

कार्य– ट्यूबरक्लोसिस एसोसिएशन ऑफ इंडिया के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं–

- प्रत्येक वर्ष टी.बी. सील बेचने की व्यवस्था करना तथा उससे प्राप्त धनराशि को एकत्र करना।
- क्षयरोग नियन्त्रण केन्द्रों की स्थापना के लिए आर्थिक अनुदान प्रदान करना।
- क्षयरोग निवारण हेतु स्वास्थ्य शिक्षा का प्रसार करना।
- क्षयरोगियों के उपचार एवं आहार की व्यवस्था करना।

(घ) भारतीय परिवार नियोजन संघ– यह संघ परिवार कल्याण एवं परिवार नियोजन के क्षेत्र में कार्य करता है। इसकी स्थापना 1949 में हुई थी। इसका मुख्य कार्यालय मुम्बई में है। इसकी शाखाएं सम्पूर्ण भारत में है। इसके प्रमुख कार्य हैं–

- परिवार नियोजन केंद्रों की व्यवस्था करना।

- परिवार नियोजन के प्रचार संबंधित सामग्री तैयार करना।
- परिवार नियोजन केंद्रों पर आवश्यक सामग्री, उपकरण आदि की व्यवस्था करना।

टिप्पणी

- परिवार नियोजन केंद्रों पर कार्य करने वाली चिकित्सकों, स्वास्थ्य कार्यकर्ता तथा अन्य कर्मचारियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करना।

(ङ) **कस्तूरबा मेमोरियल फण्ड**– यह संस्था मुख्य रूप से महिलाओं के कल्याण के लिए कार्य करती है। इस कार्य के लिए यह संस्था गर्भवती एवं धात्री महिलाओं के लिए स्वास्थ्य सेवाओं का आयोजन करती है।

गर्भवती महिलाओं को पूर्व प्रसव, प्रसवकालीन तथा प्रसवोत्तर सेवाएं निशुल्क प्रदान करती है तथा धात्री माताओं को भी समुचित स्वास्थ्य सेवाएं प्रदान करती है जिससे नवजात शिशुओं का उचित पोषण हो सके। यह ग्राम सेविकाओं को प्रशिक्षित करके उनके माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं के बीच विभिन्न विषयों की जानकारी का प्रचार–प्रसार करवाती है तथा मातृ एवं शिशु कल्याण हेतु कल्याणकारी योजनाओं के माध्यम से सुविधाएं उपलब्ध करती है।

(च) **अखिल भारतीय महिला सम्मेलन**– इसकी स्थापना 1926 में हुई थी। इस संगठन का मुख्य उद्देश्य भी मातृ एवं शिशु कल्याण है। वर्तमान में इनकी शाखाएं सम्पूर्ण भारत में फैली हुई है जो मातृ एवं शिशु कल्याण के लिए कार्यरत है और ये मातृ एवं शिशु कल्याण केन्द्रों, स्वास्थ्य केन्द्रों एवं परिवार नियोजन केन्द्रों पर अपनी सहायता प्रदान करती है।

(छ) **दिव्यांग बच्चों के शिक्षा केन्द्र**– इस प्रकार के केन्द्रों की व्यवस्था समाजसेवी व्यक्ति करते हैं। इन केन्द्रों पर दिव्यांग बच्चों को शिक्षा प्रदान की जाती है। इन केन्द्रों पर इन बच्चों को शिक्षा के साथ–साथ तकनीकी/व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है ताकि वे आत्मनिर्भर हो सकें।

• कुछ अन्य योजनाएं

खाद्य हर व्यक्ति की बुनियादी जरूरत है, हालांकि, देश में खाद्य असुरक्षा के कारण ऐसे कई लोग हैं जिन्हें हर समय सस्ता भोजन नहीं मिलता है खाद्य जरूरतों के मामले में भारत की जनसंख्या को आत्मनिर्भर बनाने के लिए सरकार की पूरी कोशिश कर रही है, तथ्य यह है कि भोजन की कमी कई स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देती है।

चूंकि कई लोगों को भोजन की पर्याप्त मात्रा नहीं मिलती है तो वे खुद को स्वस्थ और फिट रखने में असफल रहते हैं। भोजन जरूरी है क्योंकि यह एक स्वस्थ मन और शरीर के लिए आवश्यक पोषक तत्व प्रदान कर सकता है। कई पोषक तत्व हैं जो कि शरीर के स्वास्थ्य के लिए आवश्यक हैं और जब एक भी पोषक तत्व भोजन में मौजूद न हो तो यह कई स्वास्थ्य समस्याओं को जन्म देता है।

भारत में गरीबी और खाद्य असुरक्षा एक बड़े हिस्से को पोषण पूर्ण भोजन वहन करने में मुश्किल पैदा करती है। भारत की आबादी का एक बड़ा हिस्सा विशेष रूप से बच्चे और महिलाएं कुपोषण से पीड़ित हैं और जो उन्हें बीमारी से ग्रस्त करता है।

भारत में कुपोषण की समस्या को दूर करने के लिए और प्रत्येक व्यक्ति के भोजन में आवश्यक पोषक तत्वों को सुनिश्चित करने के लिए सरकार ने कई पोषण और स्वास्थ्य कार्यक्रमों की शुरुआत की है। इन कार्यक्रमों की पहुंच में कई गांव, कस्बे और शहर हैं, साथ ही देश की ऐसी आबादी के बीच भी उनकी उपस्थिति है जहां कुपोषण ज्यादा है। इस तरह के कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि व्यक्तियों को सही तरह का भोजन मिले ताकि उन्हें आवश्यक पोषक तत्व भी मिलें। इन कार्यक्रमों में एक स्वस्थ आहार के महत्व के बारे में जागरूकता फैलाना और कैसे आहार एक व्यक्ति के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है, अदि प्रमुख लक्ष्य भी होते हैं। इन कार्यक्रमों में भी विभिन्न पोषक तत्वों के महत्व के बारे में लोगों को जागरूक और संवेदनशील बनाकर आबादी समूहों के लिए विशेष रूप से कुपोषण दूर करने के काम में मदद करते हैं। पोषाहार और स्वास्थ्य कार्यक्रम उन्हीं के लिए स्थापित एजेंसियों द्वारा राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय दोनों स्तरों पर किया जाता है। कुछ कार्यक्रमों की केस अध्ययन आगे दी जा रही है—

(क) समन्वित बाल विकास योजना

जैसा कि पहले अध्ययन किया गया है, आईसीडीएस कमजोर पृष्ठभूमि वाले बच्चों के समग्र विकास के लिए 1975 में शुरू किया गया था। आईसीडीएस के तहत, कई आंगनवाड़ी संचालित हैं जहां युवा बच्चों को पौष्टिक भोजन, टीकाकरण के साथ अनौपचारिक शालापूर्व शिक्षा माध्यम से उन्हें सीखने के लिए एक अवसर के साथ प्रदान किया जाता है और माताओं को पोषण एवं स्वास्थ्य शिक्षा के माध्यम से निर्देशित किया जाता है जिससे बच्चों के स्वस्थ विकास को सुनिश्चित किया जा सके।

आईसीडीएस 0–6 वर्ष आयु वर्ग के बच्चों, गर्भवती और स्तनपान कराने वाली माताओं और चयनित किशोरियों के समग्र विकास के लिए दुनिया का सबसे बड़ा कार्यक्रम है। यह एक पूरे कार्यक्रम के रूप समुदाय के प्रति जागरूकता में सुधार करने और उनके व्यवहार में बदलाव लाने के बारे में है। आईसीडीएस 1975 में सिर्फ 33 परियोजनाओं के साथ शुरू कर दिया और इसकी परियोजनाओं की संख्या बढ़ती चली गयी। आईसीडीएस के तहत पूरक पोषण योजना 6 महीने से 6 साल आयु वर्ग के 15. 66 लाख बच्चों के लिए तथा 33.7 लाख गर्भवती और धात्री माताओं के लिए प्रदान की जाती है।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980—1985) के दौरान, आईसीडीएस का विस्तार किया गया था, ताकि अतिरिक्त 400 ब्लॉकों को कवर यह करे। योजना अवधि के अंत तक यह 600 ब्लॉकों को जुटाने में सफल रहा। कई उपाय प्रशिक्षण को मजबूत बनाने, पर्यवेक्षण में सुधार और स्वास्थ्य, पोषण और अन्य सेवाओं और महिलाओं के लिए सामाजिक–आर्थिक कार्यक्रमों के साथ संबंधों को उपलब्ध कराने के द्वारा आंगनवाड़ी केंद्रों की कार्यप्रणाली में सुधार करने के लिए प्रयोग में लाए गए। मौजूदा शिशु सदन, दिन देखभाल केंद्रों और बालवाड़ी भी सेवाओं के एक पैकेज प्रदान करने के लिए एकीकृत किया गया है और उन्हें आर्थिक गतिविधि के क्षेत्रों के साथ जोड़ा गया। अन्य कल्याण विस्तार परियोजनाओं को आईसीडीएस परियोजनाओं के साथ विलय कर दिया गया जहां भी वे एक दूसरे के साथ हुई हैं।

सातवीं पंचवर्षीय योजना अवधि (1985—1990) में, आईसीडीएस का आगे विस्तार किया गया था और समेकन एवं सेवाओं की गुणवत्ता में सुधार किया गया। टीकाकरण,

टिप्पणी

स्वास्थ्य जांच, विटामिन ए रोकथाम, और आयरन और फोलिक एसिड वितरण जैसे कार्यक्रमों के स्वास्थ्य घटक को मजबूत किया था। टीकों के उचित भंडारण के लिए 'कोल्ड चेन' बनाए रखने के प्रयासों को शुरू किया गया। देखा गया कि इन सेवाओं को 3 साल से कम उम्र के बच्चों तक पहुंच जाना चाहिए।

(ख) पौष्टिक मध्याह्न भोजन योजना

2001 में सुप्रीम कोर्ट प्रत्येक सरकारी और सरकार की सहायता प्राप्त प्राथमिक विद्यालयों में हर बच्चे के लिए मध्याह्न भोजन की घोषणा की जिसमें 200 दिनों तक प्रत्येक बच्चों को न्यूनतम 300 कैलोरीज़ और 9 से 12 ग्राम प्रोटीन विद्यालय में हर दिन मिले।

इसे ध्यान में रखते हुए, भारत के सरकारी स्कूल के बच्चों के लिए मिड–डे मील योजना का शुभारंभ किया गया। योजना का ध्येय भारत सरकार द्वारा स्कूली बच्चों के पोषण स्तर में सुधार करना है। यह कार्यक्रम सरकारी स्कूलों में प्राथमिक और उच्च प्राथमिक कक्षाओं के लिए कार्य दिवसों पर लंच प्रदान करता है। मिड–डे मील योजना की जड़ें आजादी के पूर्व समय की है जब दोपहर भोजन योजना को मद्रास निगम में 1925 में ब्रिटिश प्रशासन द्वारा पेश किया गया था। तमिलनाडु भारत में मध्याह्न भोजन कार्यक्रमों को प्रस्तुत करने में अग्रणी है। तमिलनाडु के तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री कामराज ने 1962–63 में चेन्नई में पहली बार इसे शुरू किया और बाद में तमिलनाडु के सभी जिलों में इसे बढ़ाया। गुजरात 1984 में एमडीएम योजना लागू करने वाला दूसरा राज्य था, लेकिन बाद में इसे बंद किया गया था। एक दोपहर भोजन योजना 1984 में केरल में पेश की गई थी, और धीरे–धीरे अधिक स्कूलों और ग्रेड में शामिल करने के लिए इसका विस्तार किया गया था।

सन् 1990–1991 तक, बारह राज्य उनके क्षेत्र में या छात्रों की सबसे अधिक संख्या में इसे लागू करने के लिए इस योजना के लिए वित्त पोषण कर रहे थे। गोवा, गुजरात, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, मेघालय, मिजोरम, नगालैंड, सिक्किम, तमिलनाडु, त्रिपुरा और उत्तर प्रदेश, कर्नाटक, उड़ीसा और पश्चिम बंगाल कार्यक्रम के कार्यान्वयन के लिए अंतरराष्ट्रीय सहायता प्राप्त की, और आंध्र प्रदेश और राजस्थान में इस कार्यक्रम को पूरी तरह से विदेशी सहायता का उपयोग करते हुए वित्त पोषित किया गया।

भारत सरकार ने प्राथमिक शिक्षा (एनपी–एनएसपीई) पोषाहार सहायता के राष्ट्रीय कार्यक्रम का शुभारंभ 15 अगस्त 1995 में किया। इस योजना का मुख्य उद्देश्य स्कूल जाने वाले बच्चों की पोषण स्थिति में सुधार लाने के लिए किया गया जिसका मकसद भारत में प्राथमिक शिक्षा की प्रभावशीलता में सुधार लाना था। इस योजना को शुरू में 2,408 ब्लॉकों में लागू किया गया था। इसके माध्यम से 300 कैलोरी और 12 ग्राम प्रोटीन की स्कीम पद्धति के साथ भोजन को पिछड़े वर्गों के स्कूली बच्चों को मध्याह्न भोजन उपलब्ध कराने के लिए किया गया। सन् 1997–98 तक इस योजना को पूरे देश भर में लागू किया गया था। अक्टूबर 2007 में इस योजना को 3479 शैक्षिक रूप से पिछड़े ब्लॉकों में उच्च प्राथमिक कक्षाओं के छात्रों को शामिल किया और इस राष्ट्रीय कार्यक्रम को प्राथमिक शिक्षा के लिए पोषण सहायता के लिए से मिड–डे मील राष्ट्रीय कार्यक्रम के नाम से बदल दिया गया था।

टिप्पणी

***तालिका** : प्रति दिन प्रति बालक खाद्य और कैलोरी सामग्री की न्यूनतम मात्रा के लिए पोषण संबंधी दिशा निर्देश*

आइटम	प्राथमिक (कक्षा एक से पांच तक)	उच्च प्राथमिक (कक्षा छह से आठ के लिए)
कैलोरी	450	700
प्रोटीन (ग्राम में)	12	20
चावल/गेहूं (ग्राम में)	100	150
दाल (ग्राम में)	20	30
सब्जियां (ग्राम में)	50	75
तेल और वसा (ग्राम में)	5	7.5

***तालिका** : मध्याह्न भोजन योजना के बारे में सुप्रीम कोर्ट के अंतरिम आदेश*

आदेश	विषय	तारीख
न्यूतम पात्रता	हर सरकार में हर बच्चे को 200 दिनों की के लिए एक न्यूनतम 300 कैलोरी और प्रोटीन की 8–12 ग्राम मात्रा, स्कूल के प्रत्येक दिन एक तैयार मिड–डे मील दिया जायेगा जिसके लिए प्राथमिक विद्यालय को सहायता प्रदान की जाएगी	28 नवंबर 2001
परिवर्तन लागत पर प्रभार	एक पूरे पकाये भोजन के लिए रूपांतरण की लागत, किसी भी परिस्थिति में बच्चों या उनके माता पिता से लिया नही जाएगा	20 अप्रैल 2004
केन्द्रीय सहायता	केंद्र सरकार भी मिड डे मील के लिए पकाये गए खाने की सामग्रियों के लिए धन राशि उपलब्ध कराएगी	20 अप्रैल 2004
रसोई शेड	केन्द्र सरकार को रसोई शेड के निर्माण के लिए प्रावधान करना होगा	20 अप्रैल 2004
दलित रसोइयों को प्राथमिकता	रसोइया सहायकों की नियुक्ति में वरीयता अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति तथा दलितों को दी जाएगी	20 अप्रैल 2004
गुणवत्ता सुरक्षा–उपाय	बेहतर बुनियादी ढांचे में सुधार (सुरक्षित पीने के पानी आदि), निगरानी (नियमित निरीक्षण आदि) और भोजन की सामग्री की भी सुधार के रूप में अन्य गुणवत्ता की निगरानी के लिए प्रयास किया जाएगा। इसके अलावा बच्चों को पौष्टिक भोजन उपलब्ध कराने के लिए जिम्मेदारी प्राथमिक विद्यालयों की होगी	20 अप्रैल 2004
सूखा ग्रस्त क्षेत्रों में	सूखा प्रभावित क्षेत्रों में, दोपहर का भोजन गर्मी की छुट्टियों के दौरान भी दिया जाएगा	20 अप्रैल 2004

मिड–डे मील योजना को निम्नलिखित मॉडल के माध्यम से कार्यान्वित किया जाता है–

- **विकेंद्रीकृत मॉडल** : यह सबसे अधिक उपयोग किया गया कार्यान्वयन मॉडल है जिसमें भोजन स्थानीय रसोइये बनाते हैं या सहायकों द्वारा साइट पर पकाया जाता है। इस मॉडल के साथ समस्या यह है कि पर्याप्त बुनियादी सुविधाओं की कमी के मामले में, भोजन गंदी, मैली स्थिति में पकाया जा सकता है और यह बच्चों के लिए अस्वस्थ साबित हो सकता है।
- **केंद्रीकृत मॉडल** : मिड–डे मील योजना के कार्यान्वयन के इस मॉडल में एक बाहरी संगठन खाना बनाता है और फिर स्कूलों में भोजन पहुंचता है।

टिप्पणी

आमतौर पर केंद्रीकृत रसोई भोजन पकाने के लिए इस्तेमाल की जाती है तथा पकाये गए भोजन की स्वच्छता को भी बनाए रखा जाता है।

- **अंतरराष्ट्रीय सहायता** : अंतरराष्ट्रीय सहायता से मतलब यह है कि स्वैच्छिक संगठनों द्वारा मिड–डे मील योजनाओं के लिए वित्तीय सहायता प्रदान किया जाना। उदाहरण के लिए, चर्च वर्ल्ड सर्विस द्वारा दिल्ली और चेन्नई नगर निगम के लिए दूध पाउडर प्रदान किया गया है, केअर संस्था द्वारा मक्का, सोयाबीन भोजन, बुल्गेरियाई गेहूं, और वनस्पति तेलों को प्रदान किया गया। 1982 में, 'लर्निंग के लिए खाद्य' खाद्य और कृषि संगठन (एफएओ) की सहायता से शुरू किया गया था। प्रारंभ में कार्यक्रम, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति लड़कियों को ध्यान में रख कर किया गया था। 1983 में, शिक्षा के संघीय विभाग ने 136 लाख अनुसूचित जाति की लड़कियों और 10.09 दस लाख अनुसूचित जनजाति लड़कियों के वर्ग में 15 राज्यों और तीन केंद्र शासित प्रदेशों में एक से पांच कक्षा की लड़कियों के लिए भोजन की आपूर्ति करने के लिए विश्व खाद्य कार्यक्रम के तत्वावधान में एक योजना तैयार की है। भोजन का मूल्य ही प्रति वर्ष 163. 27 मिलियन था।

मिड–डे मील योजना

मिड–डे मील नियम, 2015 राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम के तहत 2013 में अधिसूचना जारी की गई।

केंद्र सरकार ने 30 सितंबर को अधिसूचित किया कि 'मिड– डे मील नियम 2015', राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013 (राष्ट्रीय खाद्य सुरक्षा अधिनियम, 2013) दोपहर भोजन योजना सहित कल्याणकारी योजनाओं से संबंधित प्रावधान करता है। अधिनियम के प्रावधानों के अनुसार, मानव संसाधन विकास मंत्रालय राज्य और अन्य संबंधित केंद्रीय मंत्रालयों के साथ विचार–विमर्श के बाद MDM नियम को अंतिम रूप दिया गया है। नियमों को मिड–डे मील नियम, 2015 के रूप में जाना जाएगा और भारत के राजपत्र में अधिसूचना की तारीख से प्रभावी हो जाएगा।

नियम अन्य बातों के साथ अन्य मामले में किसी भी कारण स्कूल के MDM निधियों के समाप्त हो जाने पर विद्यालय में MDM के लिए स्कूल के साथ उपलब्ध धनराशि के अस्थायी उपयोग के लिए उपलब्ध कराता है; खाद्य सुरक्षा भत्ता निर्दिष्ट कारणों के लिए भोजन की आपूर्ति न होने की स्थिति में लाभार्थियों को भुगतान किया जाना है; और मान्यता प्राप्त प्रयोगशालाओं द्वारा एक यादृच्छिक आधार पर भोजन की मासिक परीक्षण इसकी गुणवत्ता की जांच की जाएगी। इसके अलावा, नियम यह भी है कि संबंधित राज्य सरकारों व्यक्ति या एजेंसी पर जिम्मेदारी तय करेगा यदि भोजन लगातार 3 स्कूल के दिनों या एक महीने में 5 दिन पर प्रदान नहीं कर रहे हैं तो इन नियमों और राज्यों में कार्यान्वयन एजेंसियों स्कूलों में मध्याह्न भोजन की सेवा में बेहतर नियमितता सुनिश्चित करेगा और भोजन की गुणवत्ता के साथ ही देश में मिड–डे मील योजना के समग्र कार्यान्वयन में सुधार करके उनका प्रभावी अनुपालन करायेगा।

नियमों के मुख्य प्रावधान इस प्रकार हैं–

टिप्पणी

- हर उम्र के बच्चे जो कक्षा 1 से 8 में पढ़ रहे हैं या जिन्होंने दाखिला लिया है उन्हें पका भोजन जिसका पोषक स्तर 450 कैलोरी हो और जिसमें 12 ग्राम प्रोटीन हो प्राथमिक स्तर पर देना चाहिए और उच्चतर प्राथमिक स्तर पर ये मात्रा 700 कैलोरी, 20 ग्राम प्रोटीन के साथ हो जाती है जो उन्हें छुट्टी का दिन छोड़ कर हर दिन मिलनी चाहिए।
- प्रत्येक स्कूल में स्वच्छ तरीके से खाना पकाने के लिए सुविधा होगी। शहरी क्षेत्र में स्कूलों में खाना पकाने के लिए आवश्यकता अनुसार केंद्र सरकार के दिशा–निर्देशों से केंद्रीकृत रसोई की सुविधा का उपयोग कर सकते हैं और संबंधित स्कूल में बच्चों के लिए भोजन भेजा जाएगा।
- स्कूल प्रबंधन समिति, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार अधिनियम के अधिकार 2009 के तहत अनिवार्य मिड–डे मील योजना के कार्यान्वयन और बच्चों को दिए जाने वाले भोजन की गुणवत्ता की निगरानी करेगा, खाना पकाने और कार्यान्वयन में स्वच्छता के रखरखाव की जगह की साफ–सफाई और मिड–डे मील योजना की भी की निगरानी करेगा।
- प्रधानाध्यापक या स्कूल की संचालिका को स्कूल में खाना पकाने की लागत आदि के अस्थायी अनुपलब्धता के मामले में स्कूल में मिड–डे मील योजना को जारी रखने के उद्देश्य के लिए किसी भी फंड को स्कूल में उपलब्ध का उपयोग करने के लिए सशक्त किया जाएगा। उपयोग किया कोष तुरंत मिड–डे मील के लिए धन की प्राप्ति के बाद स्कूल के खाते में भेज दिया जायेगा।
- बच्चों के लिए दिए गए गर्म भोजन का मूल्यांकन किया जायेगा और सरकार खाद्य अनुसंधान प्रयोगशाला या किसी मान्यता प्राप्त प्रयोगशाला या कानून द्वारा मान्यता प्राप्त के रूप में तो यह सुनिश्चित करेगी की कि भोजन में पोषक तत्वों की मानक और गुणवत्ता को पूरा करता है कि नहीं।
- विभाग पोषक मूल्य और भोजन की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए नमूने एकत्र कर सकते हैं। नमूने यादृच्छिक ढंग से चुने हुए स्कूलों या केंद्रीकृत रसोई से एक महीने में कम–से–कम एक बार एकत्र करेगी और मान्यता प्राप्त प्रयोगशालाओं को परीक्षा के लिए भेजा जाएगा।
- अगर किसी भी स्कूल के दिनों में अनाज और सामग्रियों की अनुपलब्धता के कारण, रसोई खर्च, ईंधन या रसोइया या सहायक के अनुपस्थिति के कारण मिड डे मील नहीं दिया जाता है तो, राज्य सरकार अगले महीने के 15वें दिन भोजन सुरक्षा भत्ता प्रदान करेगी, जो इस तरह है–
  - खाद्यान्न की मात्रा प्रति बच्चे की पात्रता के अनुसार; तथा
  - राज्य में प्रचलित भोजन पकाने की लागत के अनुसार
- केंद्रीकृत रसोई से भोजन की आपूर्ति न होने के मामले में, खाद्य सुरक्षा भत्ता केंद्रीकृत रसोईघर से लिया जाएगा जैसा कि ऊपर कहा गया है।
- प्रस्तावित है कि अगर कोई बच्चा किसी कारणवश भोजन नहीं ले पाया तो वह खाद्य सुरक्षा भत्ता का कोई दावा राज्य सरकार या केंद्रीकृत रसोई के साथ नहीं कर सकता है।

- आगे प्रस्तावित है कि कोई खाद्यान्न और भोजन की गुणवत्ता के कारणों के लिए राज्य सरकार या केंद्रीकृत रसोई से दावा नहीं कर सकता है।
- अगर स्कूल के दिनों में लगातार तीन दिनों तक या फिर महीने में 5 दिन मिड डे मील नहीं दिया जाता है तो निर्धारित प्रक्रिया के पूरा न होने पर राज्य सरकार किसी एक व्यक्ति या एजेंसी पर जिम्मेदारी तय नहीं करने के लिए कार्रवाई करेगी।
- जहां भी केंद्र सरकार की एक एजेंसी शामिल है तो राज्य सरकार मामले को अपने हाथों में लेगी तथा जो एक महीने के भीतर उसका समाधान निकालेगी।

(ग) राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो (NNMB)

कुपोषण और अल्प पोषण ऐसी समस्या है जिसका दशकों तक भारत द्वारा सामना किया गया है। सरकार ने अनेक कार्यक्रमों को गरीबी कम करने और एक हद तक गरीबों की हालत में सुधार करने के लिए शुरू किया है जिससे गरीब आदमी कम–से–कम दिन में एक बार पौष्टिक भोजन प्राप्त कर सके। आबादी के पोषण की स्थिति की निगरानी करने के लिए भी विभिन्न कार्यक्रम है जिन्हें सरकार की ओर से शुरू किया गया है जिसके प्रभाव का आकलन करना भी महत्वपूर्ण हैं। इसे ध्यान में रखते हुए भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद (आईसीएमआर) ने वर्ष 1972 में स्थापित राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो (NNMB) हैदराबाद के राष्ट्रीय संस्थान में एक केंद्रीय संदर्भ प्रयोगशाला के साथ आंध्र प्रदेश, गुजरात राज्यों में, कर्नाटक, केरल, मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा, तमिलनाडु, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल में भी कई प्रयोगशालाओं शिलान्यास किया गया।

राष्ट्रीय पोषण नीति, भारत सरकार के 1993 के मुताबिक, 'देश के सभी भागों से विश्वसनीय और तुलनीय डेटा की कमी एक यथार्थवादी और अलग–अलग समस्या की परिभाषा की दिशा में एक निश्चित बाधा है। यह एक देशव्यापी निगरानी प्रणाली की आवश्यकता उत्पन्न करता है। इस लक्ष्य को हासिल करने के लिए मौजूदा राष्ट्रीय पोषण निगरानी ब्यूरो (NNMB) का पुनः संगठन करने और राष्ट्रव्यापी स्तर पर विभिन्न डेटा एकत्रित करने हेतु एक तंत्र विकसित करने के लिए आवश्यक है।'

NNMB की गतिविधियां, राज्य सरकारों और आईसीएमआर के सहयोगी प्रयासों द्वारा चलायी जाती हैं। इसलिए NNMB को राज्य पोषण अधिकारी के प्रशासन के तहत रखा गया है, ताकि NNMB को आवश्यक समर्थन मिले और उसे स्थानीय अधिकारियों और स्टाफ के सदस्यों से मदद भी मिले। NNMB टीम निर्धारित मानक प्रक्रियाओं को अपनाने और सटीक उपकरणों का उपयोग करके आहार सेवन और एक प्रतिनिधि नमूने पर ग्रामीण क्षेत्रों में जनसंख्या के पोषण की स्थिति के बारे में जानकारी एकत्र करता है।

NNMB की प्रमुख विशेषतायें

- आहार और पोषण की स्थिति में समय के रुझान का आकलन करने के लिए सभी राज्यों में एक ही गांवों में उन लोगों का सर्वेक्षण दोहराया गया जिनका सर्वेक्षण 1975–79 के दौरान किया गया था।
- यह समय–समय पर आदिवासी विकास एजेंसी (ITDA) क्षेत्रों में रहने वाले समाज के कमजोर वर्गों जैसे आदिवासी समुदाय, जोखिम वाले विशिष्ट समूहों

जैसे बुजुर्गों, किशोरों और गर्भवती महिलाओं के आहार और पोषण के आंकड़े एकत्रित करता है।

- यह अकेला ऐसा संगठन है जो परिवारों तथा विभिन्न राज्यों में विभिन्न उम्र तथा विभिन्न शारीरिक समूह वाले व्यक्तियों के वास्तविक आहार सेवन पर डाटा का निरंतर संग्रहण करता है।
- NIN के पास योजना समुदाय आधारित सर्वेक्षण की योजना व निष्पादन और विस्तृत डेटा व विश्लेषण की व्याख्या करने के लिए इस क्षेत्र के विशेषज्ञों का मजबूत दल है।

NNMB डिजाइन का अध्ययन और नमूना प्रक्रिया

NNMB की सर्वेक्षण पद्धति, विकास, पूर्व परीक्षण और सर्वेक्षण उपकरणों को अंतिम रूप देने के लिए केंद्रीय संदर्भ प्रयोगशाला (सीआरएल) और राष्ट्रीय पोषण संस्थान हैदराबाद में कार्य किया जा रहा है। NNMB इकाइयों के जांचकर्ता NNMB – CRL से प्रशिक्षित और मानकीकृत हैं। इसके अलावा, कर्मचारियों को पुनः अभिविन्यास प्रशिक्षण हर साल दिया जाता है। मानकीकृत पूर्व परीक्षण प्रश्नावली के प्रयोग से संग्रहीत डेटा में शामिल है–

- घरेलू जनसांख्यिकीय और सामाजिक आर्थिक स्थिति।
- व्यक्तियों और परिवारों के आहार का सेवन।
- परिवार के सभी सदस्यों पर उपलब्ध पोषाहार एन्थ्रोपेमोट्री।
- जनसंख्या, कृषि उत्पादन, पोषण और अन्य विकास कार्यक्रमों पर गांव स्तर की जानकारी।
- आहार सम्बंधित पुराने रोगों जैसे मोटापा तथा उच्च रक्तचाप का मापन।
- विभिन्न पोषण कार्यक्रमों की सफलता का आकलन के द्वारा देश के विभिन्न क्षेत्रों में सर्वेक्षण किया जाता है।

NNMB के सर्वेक्षण निम्नलिखित उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए किये जाते हैं–

- आहार सेवन और एक सतत आधार पर राज्यों में से प्रत्येक में जनसंख्या के पोषण की स्थिति पर डेटा इकट्ठा करने के लिए।
- ये राष्ट्रीय पोषण कार्यक्रम का मूल्यांकन करने के, अपनी शक्तियों और कमजोरियों की पहचान करने और उनकी प्रभावशीलता बढ़ाने के लिए मध्य पाठ्यक्रम द्वारा सुधार की सलाह देते हैं।

उदाहरण के लिए, वर्ष 1987 में, ब्यूरो ने आहार और पोषण की स्थिति का आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, मध्य प्रदेश, उड़ीसा और तमिलनाडु के राज्यों में सूखा प्रभावित क्षेत्रों में आकलन किया। ब्यूरो ने सूखे में आंध्र प्रदेश, गुजरात और राजस्थान के प्रभावित राज्यों में 2000 में इसी तरह के सर्वेक्षण किए। इस तरह के एक अन्य सर्वेक्षण 9 राज्यों आंध्र प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात, कर्नाटक, महाराष्ट्र, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान और तमिलनाडु में 2003 के दौरान किये गए।

(घ) प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल (पीएचसी)

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल या पीएचसी देश में प्रदान की स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की रीढ़ है। पीएचसी का कार्य राज्य के स्वामित्व वाले ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल

टिप्पणी

केंद्रों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार करना है। पीएचसी वास्तव में सबसे कुशल और प्रभावी साधन है जो भारत को अपनी ग्रामीण आबादी के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए सक्षम कर रहा है। प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केंद्र आमतौर पर एक ही चिकित्सक द्वारा प्रबंधित है और ये देश में स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की सबसे आधार इकाई हैं। वर्तमान में भारत में 23,109 पीएचसी है।

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल इकाइयों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों के लोगों को चिकित्सा सहायता प्रदान करना है। इसके अलावा, प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केंद्र निम्नलिखित कार्यक्रमों का दायित्व लेते हैं जो कि महिलाओं, बच्चों के स्वास्थ्य पर ध्यान केंद्रित करने के लिए और ग्रामीण आबादी को महामारी से लड़ने में मदद करते हैं।

- शिशु टीकाकरण कार्यक्रम नवजात शिशुओं के टीकाकरण के साथ संबंधित है और एक पूरी तरह से सब्सिडी वाला कार्यक्रम है।
- यह एक महामारी विरोधी कार्यक्रम है जो कि एक महामारी के नियंत्रण और निदान पर ध्यान केंद्रित करता है।
- ग्रामीण इलाकों में जन्मदर के नियंत्रण के लिए पुरुष नसबंदी और महिला नसबंदी के कार्यक्रमों की तरह सुविधाएं प्राप्त करना।
- गर्भवती महिलाओं के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए गर्भावस्था संबंधी देखभाल कार्यक्रमों को भी प्राथमिक स्वास्थ्य इकाइयों द्वारा आयोजित किया जाता है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में आवश्यक सभी आपात टीकों और दवाओं को भी प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों द्वारा उपलब्ध कराया जाता है।

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल इकाइयों के निम्नलिखित कार्य हैं–

- चिकित्सा देखभाल के प्रावधान
- परिवार नियोजन सहित मातृ–शिशु स्वास्थ्य का प्रावधान
- सुरक्षित जल की आपूर्ति और बुनियादी स्वच्छता का प्रावधान
- स्थानीय स्तर पर स्थानिक रोगों की रोकथाम और नियंत्रण
- महत्वपूर्ण आंकड़े का संग्रह और रिपोर्टिंग
- स्वास्थ्य के बारे में शिक्षा
- राष्ट्रीय स्वास्थ्य कार्यक्रमों का कार्यान्वयन
- रेफरल सेवाएं उपलब्ध कराना
- स्वास्थ्य गाइड, स्वास्थ्य कार्यकर्ताओं, स्थानीय मंच और स्वास्थ्य सहायकों का प्रशिक्षण
- श्रमिकों को बुनियादी प्रयोगशाला उपलब्ध कराना

एक प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल के इकाई में लगभग 1,00,000 की आबादी को शामिल किया गया है और जिसमें एक चिकित्सा अधिकारी, ब्लॉक विस्तार शिक्षक, एक महिला स्वास्थ्य सहायक, एक कंपाउंडर, एक ड्राइवर और प्रयोगशाला तकनीशियन रखा जाता है हालांकि प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल भारत में जिस तरह से होनी चाहिए थी वह उस तरह से विकसित नहीं की गई है। WHO विशेष रूप से इसके लिए 'पीएचसी' को ख़राब का प्रदर्शन जिम्मेदार मानता है। पीएचसी कार्यान्वयन में

अपर्याप्तता, राजनीतिक प्रतिबद्धता की कमी है और पीएचसी के लिए वित्तीय संसाधनों में अपर्याप्त आवंटन तथा अंतर–क्षेत्रीय रणनीतियां और समुदाय की भागीदारी में भी कमी है। नौकरशाही दृष्टिकोण वाले मुख्य लोगों के स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए प्रावधान किया जा रहा है। जनता के लिए जवाबदेही और संवेदनशीलता की कमी तथा उपलब्ध धन और प्रतिबद्धताओं के बीच तालमेल की कमी को ख़त्म करने के भी प्रयास किये जा रहे हैं। पीएचसी में तीन राष्ट्रीय रोग नियंत्रण कार्यक्रमों के कार्यान्वयन का काम पचास के दशक में शुरू हुआ है, लेकिन प्रत्येक पंचवर्षीय योजना का ही परिणाम है जो कि इसे साथ में कार्यक्रमों की सूची में जोड़े रहता है।

समस्या संसाधनों की कमी की वजह से नहीं बल्कि चिकित्सा अधिकारियों की ओर से प्रतिबद्धता की कमी की वजह से है। प्रभावी प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल, प्रतिबद्धता और एक अत्यधिक पुर्नोत्थान के बुनियादी ढांचे को सुनिश्चित करने की आवश्यकता है।

(ङ) न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम (MNP)

MNP को पहले पांचवीं पंचवर्षीय योजना (1974–78) में पेश किया गया था। कार्यक्रम का उद्देश्य लोगों को जरूरत की मूलभूत सुविधाएं प्रदान करना था और उनके जीवन स्तर में सुधार करना था। यह कार्यक्रम मूल रूप से मानव संसाधन में एक निवेश है। इसका उद्देश्य सभी क्षेत्रों में बुनियादी सेवाओं और सामाजिक खपत की सुविधाओं और निर्धारित मानदंड के अंतर्गत नेटवर्क को स्थापित करने का है। इस कार्यक्रम को पूरा करने का प्रयास कर रहे घटक अथवा आवश्यकताएं निम्नलिखित हैं–

- प्राथमिक शिक्षा
- ग्रामीण स्वास्थ्य
- ग्रामीण जल आपूर्ति
- ग्रामीण सड़क
- ग्रामीण विद्युतीकरण
- ग्रामीण भूमिहीन मजदूरों को हाउसिंग सहायता
- शहरी मलिन बस्तियों का पर्यावरण सुधार
- पोषण

न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम का व्यय एवं तालिका प्रारूप

क्रम सं.	प्रकार	1974–75 परिव्यय	1974–78 व्यय	1978–79		1979–80	
				परिव्यय	व्यय	परिव्यय	व्यय
1	प्राथमिक शिक्षा	463	230	139	132	88	61
2	प्रौढ़ शिक्षा		1	7	4	13	7
3	ग्रामीण स्वास्थ्य	296	74	40	33	39	33
4	ग्रामीण जल आपूर्ति	563	262	114	133	152	188
5	ग्रामीण सड़क	502	231	120	152	121	182
6	ग्रामीण विद्युतीकरण	282	103	52	34	53	45
7	मकान के लिए स्थल/ग्रामीण भूमिहीन मजदूर	109	50	16	22	32	53
8	मलिन बस्तियों में पर्यावरण	105	38	11	10	16	16
9	पोषण	287	49	26	20	21	22
10	कुल	2607	1038	525	540	535	607

टिप्पणी

पांचवी पंचवर्षीय योजना के अनुसार, विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित उद्देश्यों में शामिल हैं–

ग्रामीण स्वास्थ्य

- मैदानी इलाकों में 30,000 की आबादी, जनजातीय और पहाड़ी क्षेत्रों में 20,000 की आबादी के लिए एक प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र (पीएचसी)
- मैदानी इलाकों में 5000 की आबादी के लिए एक उपकेंद्र
- 1 लाख की आबादी के लिए एक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (सीएचसी)

पोषण

- 11 लाख पात्र लोगों को पोषण समर्थन देना
- सभी आईसीडीएस परियोजनाओं के लिए 'विशेष पोषण कार्यक्रम' का विस्तार
- मध्याह्न भोजन कार्यक्रम के समेकन और स्वास्थ्य, पीने का पानी और स्वच्छता को जोड़ने के लिए।

तालिका *: एमएनपी और घटकों के उद्देश्यों का सार*

क्रम संख्या	मद	उद्देश्य	1990 तक टारगेट
1	प्राथमिक शिक्षा	वर्ष 1990 तक 6–14 आयु वर्ग का 100 नामांकन। यह अनौपचारिक शिक्षा के साथ पूरा किया जाएगा।	औपचारिक शिक्षा के लिए 25.53 लाख बच्चों और अनौपचारिक शिक्षा के लिए 25 लाख बच्चों का लक्ष्य निर्धारित किया गया है।
2	प्रौढ़ शिक्षा	अनौपचारिक शिक्षा के माध्यम से 15–35 साल की आयु वर्ग के वयस्कों का वर्ष 1990 तक 100 कवरेज।	कोई लक्ष्य तय नहीं
3	ग्रामीण स्वास्थ्य	1. 2000 ई तक जनजातीय और पहाड़ी क्षेत्रों, मैदानी इलाकों में 5000 और 3000 की आबादी के लिए एक उप केंद्र की स्थापना 2. सन् 2000 ई तक 20,000 से 30,000 मैदानी इलाकों में जनसंख्या और जनजातीय और पहाड़ी क्षेत्रों में PHC। 3. सन् 2000 ई तक एक लाख आबादी वाले या एक CD ब्लॉक पर एक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र की स्थापना।	उद्देश्य को पूरी तरह से प्राप्त करने के लिए 83000 मौजूदा उप– केन्द्रों के अलावा 54000 उप केन्द्रों की स्थापना। पूरी तरह से लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए एक दृश्य के साथ मौजूदा 11,000 के अलावा 12,000 पीएचसी की स्थापना। लक्ष्य का 40.65 प्राप्त करने के लिए मौजूदा 649 CHC के अलावा, 1553 अधिक CHC स्थापित किया जाएगा।
4	ग्रामीण जल आपूर्ति		एक प्राथमिकता मद के रूप में शेष सभी समस्या वाले 39,000 गांवों की कवरेज; जिसके बाद पानी की पर्याप्त आपूर्ति अन्य गांवों तक की जाएगी।
5	ग्रामीण सड़क	1990 तक सभी शेष गांवों को 1500 के और ऊपर की आबादी गांवों की कुल संख्या का 50 प्रतिशत।	1500–1000 के जनसंख्या के साथ जोड़ने का प्रावधान 1500 और ऊपर की आबादी और 1500 से 1000 के आबादी वाले 3851 गांवों पर 20487 गांवों का एक मानक लक्ष्य तय कर दिया गया है।
6	ग्रामीण विद्युतीकरण	1990 तक प्रत्येक राज्य और केन्द्र शासित प्रदेशों में गांवों के कम से कम 65 प्रतिशत का विद्युतीकरण किया जाना है।	1989–90 के अंत तक 65 फीसदी गांवों को न्यूनतम कवरेज के साथ सभी राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों में पूरा करने के उद्देश्य से किया जाता है।
7	ग्रामीण भूमिहीन श्रमिकों के लिए आवास सहायता	सभी भूमिहीन मजदूरों को आवास सहायता का प्रावधान वर्ष 1990 तक पूरा हो जाना. घर साइट निर्माण सामग्री, स्लम बस्तियों में पीने के पानी के कुएं तथा पहुंच के लिए सड़क इन सहायता में शामिल है।	लक्ष्यों को 100 पूरा करने तथा 2.71 मिलियन परिवारों को जो पहले से ही घर के लिए भूमि रखे हुए हैं को निर्माण सहायता प्रावधान करना तथा बचे हुए 0.72 मिलियन घरों के लिए घर वाले जमीन का आवंटन को कवर करना।
8	शहरी स्लम बस्तियों के पर्यावरण में सुधार	वर्ष 1990 तक 100 शहरी स्लम आबादी को कवर करना. जलापूर्ति, गली के सीवर का पक्कीकरण, सामुदायिक शौचालय तथा बरसात के पानी की निकासी की सुविधाएं शामिल हैं। अनुसूचित जाति, विशेष रूप से मैला ढोने वालों के क्षेत्रों को प्राथमिकता दी जाए।	1.7 करोड़ में से 9 लाख झुग्गी बस्ती में रहने वाले लोगों को कार्यक्रम के तहत कवर किया जाएगा।
9	पोषण		11 मिलियन योग्य लोगों का पोषण सहायता जारी रखा जायेगा तथा सभी SNP का सभी ICDS प्रोजेक्ट्स के लिए विस्तार किया जायेगा. MDM कार्यक्रम में समेकित और स्वास्थ्य, पीने का पानी और स्वच्छता को जोड़ा जाएगा।

उदाहरण

1. प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रमों का क्रियान्वयन

टिप्पणी

MNP के अनुसार इसका उद्देश्य प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण है। लेकिन इसकी प्रगति का ध्यान विभिन्न राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में रखा गया, यह औपचारिक प्रणाली के माध्यम से प्रस्तावित है, ये दो चरणों में यानी 1985 तक 95 नामांकन 6–11 आयु वर्ग का तथा 50 प्रतिशत नामांकन 11–14 आयुवर्ग का तथा 1990 तक 11–14 आयुवर्ग के लिए यूनिवर्सल नामांकन। इसके अंतर्गत जहां प्राथमिक शिक्षा का सार्वभौमीकरण अधिक तेजी से हो रहा है तथा जहां इसे आसानी से प्राप्त किया जा सकता है वहां धनराशि उपलब्ध नहीं कराई जाएगी। औपचारिक प्रणाली को अनौपचारिक शिक्षा द्वारा पूरा किया जाएगा। 6–11 आयु वर्ग का शत–प्रतिशत नामांकन हासिल करने में मुख्य बाधा गरीबी रेखा से नीचे के परिवारों की सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियां हैं। अतः इन पहलुओं पर इसलिए विशेष ध्यान देने की जरूरत है।

प्राथमिक शिक्षा के संबंध में प्रत्येक राज्य की स्थिति भिन्न होती है तथापि शैक्षिक रूप से पिछड़े राज्यों में द्रुत विकास को कायम रखा जायेगा। 13 राज्यों और संघ शासित प्रदेश, जो अभी तक 1979–80 से अभी भी लड़कों के लिए प्राथमिक शिक्षा सार्वभौमीकरण किया जाना है, उनकी संख्या 1984–85 में 4 हो गयी, ये आंकड़े हरियाणा (93.4 प्रतिशत कवरेज की उम्मीद), कर्नाटक (86.2 प्रतिशत), राजस्थान (94.3 प्रतिशत) और उत्तर प्रदेश (97.0 प्रतिशत) आदि के हैं।

लड़कियों की शिक्षा के मामले में वर्ष 1979–80 में राजस्थान में कवरेज में 30 प्रतिशत की भिन्नता है जबकि केरल, मेघालय, नागालैंड, पंजाब और तमिलनाडु जैसे राज्यों में लगभग कवरेज पूरी है। सन् 1984–85 में राजस्थान में सबसे कम कवरेज हुई जो लगभग 43 प्रतिशत है। इस कमी को राज्यों से दूर करने के लिए गैर–औपचारिक की प्राथमिक शिक्षा दूरदृष्टि के साथ मजबूत करने की आवश्यकता होगी।

कक्षाओं में नामांकन के संबंध में छठी से आठवीं और 11–14 वर्ष की आबादी के संबंध में 50 प्रतिशत की औपचारिक शिक्षा के लिए 23 राज्यों और संघ शासित प्रदेशों में लक्ष्य प्राप्त किया जा सकता है। आंध्र प्रदेश, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान, त्रिपुरा, उत्तर प्रदेश, अरुणाचल प्रदेश आदि जो इसमें पिछड़ रहे हैं यह उनमें लागू होगा। ये राज्यों का एक बैकलॉग है जो प्रयासों द्वारा छठी योजना के दौरान पूरा कर लिया जाएगा जिसके लिए ठोस प्राथमिक शिक्षा के संबंध में मंजूरी दे दी गयी है।

पिछड़े और दूरदराज के क्षेत्रों तक पहुंचने के लिए विशेष प्रयास करना होगा। इसमें सामाजिक और आर्थिक रूप से वंचित खासकर लड़कियों और अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति वर्ग के बच्चे शामिल हैं। इनमें स्कूल शुरू करने और छोड़ने वाले बच्चों की संख्या बहुतयात है। उन बच्चों को

टिप्पणी

स्कूल भेजना भी इसमें शामिल है जो कभी स्कूल नहीं गये। वर्तमान में, प्रत्येक 100 बच्चे जो कक्षा 1 में आये उनमें से केवल 36 बच्चे ही कक्षा 5 तक पूरा कर पाये। स्कूल छोड़ने वाले बच्चों का अनुपात देश में पहली योजना से ही लगभग जस का तस बना हुआ है। इसलिए, छात्रों को प्रणाली की दक्षता बनाए रखने के लिए सुधार करना आवश्यक होगा। उचित प्रोत्साहन कार्यक्रमों से छात्रों की नियमित उपस्थिति सुनिश्चित करने के लिए कार्यक्रम डिजाइन किया जाएगा। इस आधार पर, 905 करोड़ रुपये के परिव्यय की योजना, सन् 1980–85 में इस कार्यक्रम के लिए प्रदान की गयी।

अनौपचारिक शिक्षा या वयस्कों की शिक्षा विशेष रूप से 15–35 साल आयु वर्ग के लिए एमएनपी की प्रारंभिक शिक्षा इस घटक का हिस्सा होगा। इसके लक्ष्य के अंतर्गत 15–35 साल के आयु वर्ग के लिए सन् 1990 नियम द्वारा के कार्यक्रम से विकसित किया जा रहा है।

2. **प्रति MNP के रूप में ग्रामीण स्वास्थ्य का कार्यान्वयन**

वर्ष 2000 तक 'सभी के लिए स्वास्थ्य' के उद्देश्य को प्राप्त करने के क्रम में ग्रामीण स्वास्थ्य के बुनियादी ढांचे को और सुदृढ़ किया जाना। इसके लिए जिन मानदंडों की परिकल्पना की गई है वो हैं–

- हर गांव या समुदाय द्वारा 1000 की आबादी के लिए आधार इकाई के रूप में एक सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवी चुना जाएगा।
- मैदानी इलाकों में 5000 और पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों में 3000 की आबादी के लिए एक उप–केंद्र।
- 20,000 जनसंख्या पहाड़ी और जनजातीय क्षेत्रों में तथा 30,000 जनसंख्या मैदानी इलाकों के लिए एक PHC।
- एक लाख या एक C.D. ब्लॉक की आबादी के लिए एक सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (CHC)।

सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवी योजना प्रशिक्षण और बहुउद्देशीय श्रमिकों के रोजगार की योजना को एमएनपी के तहत जारी रखा जाएगा। ऐसा प्रस्तावित किया गया है कि सामुदायिक स्वास्थ्य स्वयंसेवकों की संख्या को 1 अप्रैल, 1980 को 1.40 लाख से बढाकर 1985 तक 3.60 लाख कर दिया जायेगा। 1 अप्रैल, 1980 तक उपलब्ध 50000 केंद्रों में 40000 उपकेंद्र और जोड़े जायेंगे। यह 122,000 उप केंद्रों की कुल संख्या के 74 प्रतिशत के लिए उत्तरदायी होगा तथा 1984 के मध्य की जनसंख्या के आधार पर स्थापित किया जायेगा। इसके अतिरिक्त 1980–85 के दौरान 600 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों को स्थापित किया जाएगा और इनमें प्राथमिकता आदिवासी क्षेत्रों को दी जाएगी। मौजूदा 1,000 सहायक स्वास्थ्य केंद्रों के अलावा, 1980–85 के दौरान 1,000 और ग्रामीण डिस्पेंसरियों को सहायक स्वास्थ्य केंद्रों में परिवर्तित करके जोड़ दिया जाएगा। इन सभी सहायक स्वास्थ्य केंद्रों को बाद की योजनाओं में प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में परिवर्तित किया जाएगा। इस प्रकार 6000 पीएचसी और 2,000 सहायक स्वास्थ्य केंद्र होंगे। सामुदायिक स्वास्थ्य केंद्र (CHC), 30 बिस्तरों वाले उन्नत अस्पताल का एक संशोधित रूप है, जो बेड के प्रावधान के साथ–साथ स्त्री रोग, बाल चिकित्सा,

शल्य चिकित्सा और दवा की आवश्यक विशेषता के लिए सुविधा प्रदान करेगा। मौजूदा 340 ग्रामीण अस्पतालों के अलावा, 174 नए ग्रामीण अस्पतालों (सीएचसी) को योजना की अवधि में स्थापित किया जाएगा।

टिप्पणी

उप–केंद्रों, प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र भवनों और आवासीय आवास निर्माण की बकाया काम नई इकाइयों के निर्माण कार्य के साथ शुरू किया जाएगा और उपलब्ध संसाधनों को दृढ़ता के साथ पूरा होगा। ग्रामीण स्वास्थ्य के लिए 577 करोड़ रुपये के कुल प्रावधान 1980–85 के लिए बनाए गए हैं।

उदाहरण : एमएनपी के तहत पोषण कार्यक्रम का कार्यान्वयन

पोषण कार्यक्रम के दो घटकों में (क) विशेष पोषण और (ख) मध्याह्न भोजन है।

विशेष पोषण कार्यक्रम (एसएनपी) 1970–71 के दौरान गैर–योजनागत पक्ष पर पेश किया गया था और बाद में न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम के एक भाग के रूप में पांचवें योजना में लाया गया था। ये 0–6 आयु वर्ग को 300 दिन के लिए 300 कैलोरी और 8–12 ग्राम प्रोटीन, गर्भवती एवं नर्सिंग माताओं को 300 दिनों के लिए 500 कैलोरी और 25 ग्राम प्रोटीन उपलब्ध करवाता है।

कार्यक्रम को अतिरिक्त 400 समेकित बाल विकास सेवाएं (ICDS) परियोजनाओं को लागू करने के लिए विस्तारित किया जाएगा। आईसीडीएस परियोजनाओं के बाहर इस योजना के पर्यवेक्षण और निगरानी के लिए स्वास्थ्य और पर्याप्त स्टाफ उपलब्ध कराने के द्वारा पुनर्गठन किया जाएगा। इसे विशेष रूप से महिलाओं के रोजगार के क्षेत्रों में आर्थिक गतिविधि की परियोजनाओं से जोड़ा जाएगा ताकि गरीब तबके की महिलाओं की जरूरतों को पूरा किया जा सके।

मिड–डे मील (एमडीएम) योजना को पांचवीं योजना के तहत न्यूनतम जरूरत कार्यक्रम का एक हिस्सा बनाया गया था। यह छठी योजना के अंतर्गत एमएनपी के हिस्से के रूप में जारी रहेगा। हाल के अध्ययनों से पता चला है कि इस योजना ने नामांकन बढ़ाने में या ड्रॉप आउट अनुपात को कम करने में ज्यादा प्रभावित नहीं किया है। इसीलिए इसे पुनर्व्यवस्थित किया जायेगा और पहले स्वास्थ्य सेवाओं, स्वच्छ पेयजल, पर्यावरण तथा व्यक्तिगत स्वास्थ्य, इंसेंटिव योजनाओं व स्कूल में किचन और सब्जी बाग़ जहां से सब्जियां तथा फल उपलब्ध हो सकें से जोड़ा जायेगा।

अपनी प्रगति जांचिए

3. क्रिकेट के खेल की उत्पत्ति कहां हुई?

   (क) भारत   (ख) इंग्लैंड

   (ग) अमेरिका   (घ) जापान

4. भारत में नई राष्ट्रीय स्वास्थ्य नीति की घोषणा किस वर्ष हुई?

   (क) 2017   (ख) 2010

   (ग) 2019   (घ) 2021

3.4 अपनी प्रगति जांचिए प्रश्नों के उत्तर

1. (क)
2. (ग)
3. (ख)
4. (क)

3.5 सारांश

पौर्वापर्य क्रम में पतंजलि धारणा के पश्चात ध्यान को लेते है। उनके अनुसार हृदयादि देश रूप विषय हैं उनमें जो ध्येयाकार चित्तवृति की एकाग्रता है वह ध्यान है अर्थात ध ारणाकाल में जिस नाभि चक्रादि देश में चित्तवृत्ति को लगाया हो उसी देश में चित्तवृत्ति की एकाग्रता को प्राप्त हो जाना ध्यान कहा जाता है।

भारतीय धर्म एवं दर्शन के अंतर्गत योग का महत्व प्राचीन समय से ही है। चाहे आध्यात्मिक उन्नति का प्रश्न हो या फिर शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य सभी के लिए योग अत्यधिक आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। इसीलिए प्रायः सभी दर्शनों एवं भारतीय धार्मिक संप्रदायों ने एकमत तथा मुक्त कंठ से इसको स्वीकार किया है। भगवत् गीता भारत का प्रसिद्ध ग्रंथ माना जाता है। इसमें भी योग शब्द का कई बार प्रयोग किया गया है। जैसे— बुद्धियोग, संन्यासयोग तथा कर्मयोग। वेदोत्तर काल में भक्तियोग एवं हठयोग भी प्रचलित हुए हैं।

क्रिकेट एक बहुत ही प्राकृतिक खेल माना जाता है। इसकी शुरुआत सृष्टि के शुरू से ही हो गई थी। समय के साथ—साथ यह खेल अपनी यात्रा तय करता चलता रहा। इस यात्रा की अवधि में इसने अनेकानेक रूप लिए, यथा—हॉकी, गिल्ली—डंडा और अब क्रिकेट। परन्तु आज यह क्रिकेट खेल सर्वाधिक आकर्षक और खर्चीला खेल बनकर खेल जगत में छाया हुआ है।

उचित पोषण न केवल व्यक्तिगत स्वास्थ्य और विकास पर अपितु सम्पूर्ण मानव जाति के स्वास्थ्य, विकास एवं उत्पादन क्षमता पर सकारात्मक प्रभाव डालता है। प्रत्येक देश का उद्देश्य माता, शिशु एवं छोटे बच्चों को सुनिश्चित आहार पद्धति द्वारा पोषण प्रदान करना होना चाहिए। उचित पोषण मानव कल्याण की कुंजी है। परन्तु आज भी दुनिया भर में बहुत से लोग कुपोषण से ग्रस्त हैं। कुपोषण एक जटिल समस्या है भारत में पोषण सम्बन्धी स्थिति काफी खराब है। अन्य विकसित देशों की तुलना में भारत में बाल मृत्यु दर तथा मातृ मृत्यु दर काफी ऊंची है। यदि अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में देखें तो भारत विश्व का सबसे अधिक अल्पपोषित देशों में से एक है। भारत सरकार द्वारा स्वास्थ्य की देखभाल के लिए समय—समय पर विभिन्न पोषण एवं स्वास्थ्य कार्यक्रम एवं योजनाएं चलाई गई हैं।

प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल या पीएचसी देश में प्रदान की स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की रीढ़ है। पीएचसी का कार्य राज्य के स्वामित्व वाले ग्रामीण क्षेत्रों में स्वास्थ्य देखभाल केंद्रों के माध्यम से ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों के पोषण और स्वास्थ्य की स्थिति में सुधार करना है। पीएचसी वास्तव में सबसे कुशल और प्रभावी साधन है जो भारत

को अपनी ग्रामीण आबादी के स्वास्थ्य को बढ़ावा देने के लिए सक्षम कर रहा है। प्राथमिक स्वास्थ्य देखभाल केंद्र आमतौर पर एक ही चिकित्सक द्वारा प्रबंधित है और ये देश में स्वास्थ्य देखभाल सेवाओं की सबसे आधार इकाई हैं।

टिप्पणी

3.6 मुख्य शब्दावली

- **निर्विकल्प** : जिसका कोई दूसरा विकल्प (आप्सन) न हो।
- **आध्यात्मिकत्व** : अदृश्य/अलौकिक जगत से संबंधित स्वभाव।
- **अमरत्व** : ऐसा व्यक्ति–चरित्र जो देहांत के बाद भी जीवित रहे।
- **पंचतत्व** : धरती, आकाश, अग्नि, वायु, जल।
- **संपदा** : जो समान रूप से कायम रहे, सर्वदा।
- **मध्याह्न** : दोपहर का समय।
- **डब्ल्यूएचओ** : विश्व स्वास्थ्य संगठन।

3.7 स्व–मूल्यांकन प्रश्न एवं अभ्यास

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. वशिष्ठ ने सगुण ध्यान का क्या स्वरूप बताया है?
2. वीरासन के लाभ बताइए।
3. योगमुद्रा के तीन स्वरूप बताइए।
4. सहनशक्ति के विकास के दो उपाय सुझाइए।
5. स्कूल/समुदाय की स्वास्थ्य विषयक दो परियोजनाओं का उल्लेख कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. ध्यान की आवश्यकता एवं उपादेयता पर प्रकाश डालिए।
2. सर्वांगासन एवं पवनमुक्तासन की विवेचना कीजिए।
3. ब्रह्म मुद्रा एवं योग मुद्रा को समझाइए।
4. शरीर में लचीलापन लाने के उपक्रमों का विश्लेषण कीजिए।
5. स्कूल अथवा समुदाय में संचालित स्वास्थ्य विषयक विविध परियोजनाओं का उल्लेख कीजिए।

3.8 सहायक पाठ्य सामग्री

1. *Patanjal Yoga Predeep*, Swami Omanad Tirth.
2. *Asana Why & How*, Shri O.P. Tiwari
3. *Asana*, Swami Kuvalyananda
4. Pran*ayam*, Swami Kuvalyananda

टिप्पणी

5. *Patanjal Yogasaar*, Dr. Sadhana Dauneia
6. *Physical Activity & Health*, Dr. Dilip Jaiswal
7. *Principles of Anatomy & Phsiologh*, Dr. Thakur & Aneja
8. *Ethics in Sports Management* , Dr. Jawaid Ali
9. *Fundamental Elements of Physical Education*, Dr. Kamlesh
10. *Principles of Sports Training* , Dr. Smt K.G. Jadhav
11. *Health and Physical Eduction*, Geeta Singh Sisodia, Gwalior: Raj publisher, 2006.